ब्रह्मवैवर्त पुराण

लेखक:

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद्, षट्-दर्शन, २० स्मृतियों
एवं १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

बरेली [उ०प्र]

प्रकाशक:
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब,
बरेली।

लेखक:
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

मुद्रक:
शेखर प्रिण्टलैण्ड,
वृन्दावन दरवाजा, मथुरा।

प्रथम संस्करण:
१९७०

मूल्य:
सात रुपये पचास पैसे

प्राक्कथन

'ब्रह्म वैवर्त पुराण' अठारहो पुराणों मे एक दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखता है। अन्य पुराणो में जहाँ अधिकांश वर्णन पांच मुख्य विभागो मे सम्बन्धित होते हैं, वहाँ 'ब्रह्म वैवर्त' मे सृष्टि की उत्पत्ति का थोडा-सा वर्णन कर देने के अतिरिक्त शेष में ऐसी कथाएँ और साम्प्रदायिक भावनाएँ और उपासनाएँ दी हैं, जो अन्यत्र बहुत ही कम पाई जाती हैं। इसके सभी कथानको में कुछ नवीनता है और कितनी बातें तो ऐसी हैं जिनका अन्य किसी भी पुराण मे उल्लेख नहीं है। इसीलिए प्रारम्भ मे दी गई 'अनुक्रमणिका' मे लेखक ने स्वयं कह दिया है—

पुराणोपुराणाना वेदाना भ्रम भंजनम् ।
हरिभक्ति प्रदं सर्वतत्वज्ञान विवर्द्धनम् ॥
कामिनां कामदञ्चेद मुमुक्षूणाञ्च मोक्षदम् ।
भक्तिप्रद वैष्णवाना कल्पवृक्षस्वरूपकम् ॥

अर्थात् 'समस्त पुराणो और उप-पुराणों तथा वेदों के भ्रम का भंजन करने वाला, हरि-भक्ति का उत्पादक, समस्त तात्विक ज्ञान की वृद्धि करने वाला, कामियो को कामना की पूर्ति करने वाला और मोक्षाभिलाषियो को मोक्ष दिलाने वाला, वैष्णव जनो को भगवत् भक्ति का मार्गदर्शक यह 'ब्रह्म वैवर्त पुराण' है। इस प्रकार इसे एक कल्पवृक्ष ही समझना चाहिए।' आगे चल कर फिर कहा है—

सारभूतं पुराणेषु केवल वेदसम्मितम् ।
ततो गणेशखण्डेच तज्जन्म परिकीर्तितम् ।

मान्यता अवश्य ही विचारणीय है । पञ्च भूतों से निर्मित यह पृथ्वी और इसी प्रकार के अन्य पिंडो की तथा उनमे निवास करने वाले मनुष्यों, देव-देवियो तथा अन्य प्राणियो की संख्या अनन्त है, इस तथ्य को उसमे बलपूर्वक प्रतिपादित किया गया है। उसका कथन है—

"विश्व असंख्य हैं और उन असंख्य विश्वो मे से प्रत्येक विश्व मे इसी प्रकार से ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि होते हैं। पाताल से ब्रह्मलोक के अन्त तक एक ब्रह्माण्ड बताया गया है। उसके ऊपर वैकुण्ठलोक है जो इस ब्रह्माण्ड से बाहर है। उसके भी ऊपर गोलोक है जिसका विस्तार पचास करोड़ योजन का है। यह गोलोक धाम नित्य-सत्य स्वरूप वाला है। जिस प्रकार भगवान कृष्ण का स्वरूप नित्य है वैसा ही उनके 'गोलोक' का होना है। यह पृथ्वी तल का मण्डल सात द्वीपों मे सीमित है। इनमे सात महासागर भी हैं जिनमे उनचास उपद्वीप अवस्थित हैं। सहस्रो पर्वत और वन भी है। ऊपर के भाग में ब्रह्मलोक से युक्त सात स्वर्लोक होते हैं और नीचे के भाग मे पाताल भी सात हैं। इस प्रकार यह पूरा ब्रह्माण्ड है जिसमे ऊपर और नीचे चौदह भुवन होते हैं।"

"ये समस्त लोक कृत्रिम हैं और धरा के अन्तर्गत ही हैं। इस धरा के का नाश होने पर वे सब भी नष्ट हो जाते हैं। जल के बुदबुदो के समान ही समस्त विश्वो के समुदाय अनित्य हैं। केवल 'गोलोक' और 'वैकुण्ठ' नित्य हैं—सत्य है और निरन्तर अकृतिम हैं। इनके लोमकूपों मे से प्रत्येक मे एक ब्रह्माण्ड स्थित है। ऐसे ये कितने ब्रह्माण्ड हैं इनकी गिनती स्वयं भगवान भी नही कर सकते, अन्य कोई तो इसे जान ही क्या सकता है? प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे ब्रह्मा, विष्णु और शिव पृथक-पृथक हुआ करते हैं। देव गण की संख्या तीन करोड़ है और प्रत्येक

ब्रह्माण्ड में इतने ही देव रहते हैं। दिशाओं के स्वामी, दिक्‌पाल, नक्षत्र और ग्रह आदि भी प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रहते हैं।"

यद्यपि 'ब्रह्मवैवर्त' का यह वर्णन पौराणिक भाषा में है, पर लोकों और ब्रह्माण्डों के अनन्त होने के सम्बन्ध में इसने जो कुछ विचार प्रकट किया है वही आज का विज्ञान कह रहा है। वर्तमान समय में जो करोड़ों रुपया लगा कर महा विशाल दूरबीनें बनाई गई हैं उनके द्वारा अवलोकन करने से विदित होता है कि आकाश में विश्व-ब्रह्माण्डों की कोई संख्या ही नहीं है। पचास वर्ष पहले बनी दूरबीनों द्वारा ही जितने तारागण (सूर्य) आकाश में दिखाई पड़ते थे उनकी संख्या अरबों मानी गई थी। और अब जितनी अधिक शक्तिशाली दूरबीन बनती है उनमें और भी नये ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ने जाते हैं। ये कितने बड़े क्षेत्र में फैले हैं इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। बिजली और प्रकाश की गति एक सैकिण्ड में पौने दो लाख मील मानी गई है। अगर कोई यन्त्र इसी गति से चलता जाय तो करोड़ वर्ष में वह, जितने विश्व (सौर लोक) दिखाई पड़ रहे हैं उनके सौवें भाग तक भी नहीं पहुंच सकता। इस दृष्टि से पुराणकार का कथन सत्य है कि समस्त लोकों और ब्रह्माण्डों की *गणना कोई नहीं कर सकता यथार्थ ही है*। एक ऐसे युग में जब कि जन साधारण चन्द्रमा को, जो केवल दो लाख मील की दूरी पर है, सूर्य से ऊपर मानते थे, विश्व-ब्रह्माण्ड के विस्तार का इतना अनुमान कर लेना भी कम महत्वपूर्ण नहीं था।

राधा-रहस्य—

यद्यपि अन्य पुराणों में तथा प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में राधा के सम्बन्ध में किसी प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता, पर 'ब्रह्मवैवर्त' में वही सर्वत्र व्याप्त है और उनका महत्व समस्त देव-देवियों से अधिक माना

गया है। यद्यपि इनमें उनके साकार रूप का वर्णन किया है और उनके रास-विलास में श्रृङ्गार-रस की पराकाष्ठा कर दी है। फिर भी जब हम राधा चरित्र का विवेचन करते हैं, तो वह परमात्मा की निराकार शक्ति ही प्रतीत होती हैं। उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'राधिकाख्यान' में कहा गया है—

पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रास मण्डले।
शतशृंगैकदेशे च मालती मल्लिका वने॥
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पति।
स्वेच्छामयश्च भगवान् बभूव रमणोत्सुकः॥
रमण कर्त्तु मिच्छा च तद्‌बभूव सुरेश्वरी।
इच्छाया च भवेत् सर्व तस्य स्वेच्छामयस्य च॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः।
दक्षिणांगश्च श्रीकृष्ण वामार्द्धांगश्च राधिका॥

अर्थात् 'प्राचीन समय में उस वृन्दावन में जो गोलोक के रास मंडल में स्थित है, शतश्रृङ्ग स्थल पर, जहाँ मालती और मल्लिका की लताओं का वन है, एक रत्न सिंहासन पर जगत स्वामी श्रीकृष्णजी विराजमान थे। उस अवसर पर उनको रमण की भावना उत्पन्न हुई। भगवान अपनी इच्छा से परिपूर्ण हैं, इस लिये जैसे ही इच्छा हुई वैसे ही सुरेश्वरी उपस्थित हो गई। उस स्वेच्छामय भगवान की इच्छा मात्र से सब कुछ हो जाता है, उसमें किंचित विलम्ब नहीं हुआ करता। इस लिए रमण-इच्छा होते ही वे दो रूपों में बँट गये। दाहिना भाग श्री कृष्ण रूप हो गया और बांया भाग राधिका के रूप में हो गया।'

यह वर्णन अलंकारिक रूप से 'अर्धनारीश्वर' सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। जैसा हम अन्य पुराणों में भी लिख चुके हैं, भू-

मण्डल पर एक युग ऐसा भी था जब इस पर निवास करने वाले प्राणियों मे नर-मादा का भेद न था। उसके कारण जीव जगत की प्रगति रुकी हुई थी। तब उनमे क्रमश परिवर्तन होने लगा और ब्रह्मा जी की 'मैथुनी सृष्टि' प्रकट हो गई। यह सिद्धान्त इतना स्वाभाविक है कि केवल हमारे पुराणों में इसका उल्लेख नही किया गया है, वरन अन्य धर्मों के ग्रन्थों में भी यह पाया जाता है। ईसाइयो की बाइबिल' मे कहा गया है कि जब भगवान ने ससार मे 'आदम' (आदि मानव) को अकेला देखा तो उसकी बाँयी पसली निकाल कर उसे एक स्त्री के रूप मे निर्मित कर दिया। वही 'आदम' की पत्नी 'हव्वा' हुई। वर्तमान समय में विकास विज्ञान का अनुशीलन करने वाले वैज्ञानिक भी यही मानते हैं कि नर मादा की रचना सृष्टि के आदिकाल से नही है वरन् बीच के किसी युग मे यह विभाजन क्रमशः हुआ है। एक अन्य मत के 'पुराण' मे भी कहा गया है कि 'मैथुनी सृष्टि' से पूर्व ससारमे जो प्राणी थे वे जुगलिय' थे, अर्थात् नर-मादा एक साथ पैदा होते थे।

इस प्रकार राधा-कृष्ण ही विश्व सञ्चालक सत्ता के दो रूप हैं। वर्तमान जगत मे भी हम देखते हैं कि नर और मादा का सयोग हुए बिना सृष्टि क्रम आगे नही बढता, उसी के आधार पर मानव के मन ने विश्व नियन्ता शक्ति को भी उसी प्रकार के दो विभागो में विभाजित कर दिया है। इसके पश्चात् भक्तिमार्गीय विद्वानो ने अनेक प्रकार से उसकी व्याख्या करके उसे दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप दे दिया। इसी अध्याय में राधा की व्याख्या करते हुए कहा गया है—

रा शब्दोच्चारणाद्भक्तो याति मुक्ति सुदुर्लभाम्।
धा शब्दोच्चारणात् दुर्गं धावत्येव हरेः पदम्॥
रा इत्यादानवचनो धा च निर्वाण वाचकः।
ततोऽवाप्नोति मुक्तिञ्च सा च राधा प्रकीर्तिता॥

अर्थात् 'राधा' शब्द में 'रा' का उच्चारण करने से भक्त दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है और 'धा' के उच्चारण से भगवत् पद की तरफ दौड़ कर जाता है। 'रा' का अक्षर आदान वाचक है और 'धा' निर्वाण वाचक कहा गया है। इसलिये जिससे मनुष्य मुक्ति-पद को प्राप्त होता है उसी को 'राधा' कहा गया है।"

राधा की 'अर्ध नारीश्वर' वाली उत्पत्ति को जान कर और उसके नाम के दोनों अक्षरों के आशय को समझ कर उसमें दोष या दुर्भावना का कोई कारण नहीं कहा जा सकता। चाहे दार्शनिक और योग मार्ग के अनुयायी इन बातों को महत्व देने को प्रस्तुत न हों, पर भक्ति-मार्ग वालों में इस प्रकार का भाव बहुत अधिक कल्याणकारी माना गया है। वर्तमान समय में जिस प्रकार सामान्य जनता राधा-कृष्ण की रास-लीलाओं को देख कर उनको केवल मुरली बजाने और नाचने वाला समझ बैठी है, वह बात उपरोक्त विवेचन में कहीं दिखाई नहीं पड़ती। इस रूप में 'राधा' की साधना एक उच्च आध्यात्मिक मार्ग सिद्ध हो सकती है और हमारे देश देश में एकाध सम्प्रदाय इसी भाव से उपासना करके अध्यात्म-क्षेत्र में प्रगति कर भी चुका है।

गणेश-जन्म का अद्भुत वृतान्त—

यद्यपि शिवजी को पुराणों में महान जितेन्द्रिय बतलाया गया है, जिन्होंने कामदेव को जला कर भस्म कर दिया, अर्थात् उस पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली, फिर भी सब देवताओं ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये हर तरह से जोर लगा कर उनका विवाह करा ही दिया। इससे उनके दो पुत्र भी हुए पर उन दोनों के ही जन्म में बड़े विघ्न आये। प्रथम पुत्र स्कन्द कुमार तो जन्मते ही मां-बाप से अलग हो गये और उनका पालन-पोषण अज्ञात रूप से हुआ। दूसरे गणेशजी का भी जन्म

लेने के कुछ देर ही पश्चात् मस्तक कट गया और उनको हाथीका मस्तक जोड़ा गया, जिससे वे गज वदन और लम्बोदर बन गये। ये कथाएँ तो थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में सभी पुराणों में पाई जाती हैं, पर 'ब्रह्म-वैवर्त' के रचयिता ने इन अप्रिय घटनाओं के कारणों पर जो प्रकाश डाला है उसमें उसकी अपूर्व सूझ बूझ का पता लगता है। यद्यपि शास्त्रों में यह भी कह दिया गया है कि सभी देवता अनादि हैं, तो भी गणेशजी की उत्पत्ति और जीवनी एक विशेष विचित्रता अवश्य रखती है, और उसका रहस्य 'ब्रह्मवैवर्त' के सिवाय अन्यत्र कदाचित् ही मिल सके।

गणेश-जन्म की कथा के सम्बन्ध में आमतौर पर यह शंका की जाती है कि भगवान ने हाथी का ही मस्तक काट कर क्यों लगाया? क्या वे किसी मनुष्य का ही मस्तक नहीं लगा सकते थे?। इसका समाधान करते हुए 'ब्रह्मवैवर्त' में कहा गया है कि जिस हाथी का मस्तक लगाया गया था, उसके मस्तक पर कुछ समय पूर्व इन्द्र और रम्भा ने वह फूल रख दिया था, जिसको दुर्वासा ऋषि विशेष रूप से विष्णु भगवान के यहाँ से लाये थे। उसी पुण्य के फल से हाथी ने यह सम्मान प्राप्त किया।

दूसरी कथा गणेशजी के एक दन्त होने की है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि जब परशुराम जी बड़े बड़े राजाओं पर विजय प्राप्त करके शिवजी और पार्वती के दर्शनार्थ पहुँचे तो गणेशजी ने उनको भीतर जाने से रोका, क्योंकि भीतर शिव-पार्वती एकान्त में विराजमान थे। पर परशुरामजी बार बार आग्रह करते रहे और जब गणेश ने उनको मार्ग नहीं दिया तो उन्होंने उन पर परशु से आक्रमण किया जिससे गणेशजी का एक दांत टूट गया।

ऐसी कथाएँ प्रायः मनोरञ्जन का साधन ही होती हैं, फिर भी

मान्यता अवश्य ही विचारणीय है । पञ्च भूतों से निर्मित यह पृथ्वी और इसी प्रकार के अन्य पिंडों की तथा उनमें निवास करने वाले मनुष्यों, देव-देवियों तथा अन्य प्राणियों की संख्या अनन्त है, इस तथ्य को उसमें बलपूर्वक प्रतिपादित किया गया है । उसका कथन है—

"विश्व असंख्य हैं और उन असंख्य विश्वों में से प्रत्येक विश्व में इसी प्रकार से ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि होते हैं । पाताल से ब्रह्म-लोक के अन्त तक एक ब्रह्माण्ड बताया गया है । उसके ऊपर वैकुण्ठ-लोक है जो इस ब्रह्माण्ड से बाहर है । उसके भी ऊपर गोलोक है जिसका विस्तार पचास करोड़ योजन का है । यह गोलोक धाम नित्य-सत्य स्वरूप वाला है । जिस प्रकार भगवान कृष्ण का स्वरूप नित्य है वैसा ही उनके 'गोलोक' का होता है । यह पृथ्वी तल का मण्डल सात द्वीपों में सीमित है । इसमें सात महासागर भी हैं जिनमें उनचास उपद्वीप अवस्थित हैं । सहस्रों पर्वत और वन भी हैं । ऊपर के भाग में ब्रह्मलोक से युक्त सात स्वर्लोक होते हैं और नीचे के भाग में पाताल भी सात हैं । इस प्रकार यह पूरा ब्रह्माण्ड है जिसमें ऊपर और नीचे चौदह भुवन होते हैं ।"

"ये समस्त लोक कृत्रिम हैं और धरा के अन्तर्गत ही हैं । इस धरा के का नाश होने पर वे सब भी नष्ट हो जाते हैं । जल के बुदबुदों के समान ही समस्त विश्वों के समुदाय अनित्य हैं । केवल 'गोलोक' और 'वैकुण्ठ' नित्य हैं—सत्य है और निरन्तर अकृतिम हैं । इनके लोमकूपों में से प्रत्येक मे एक ब्रह्माण्ड स्थित है । ऐसे ये कितने ब्रह्माण्ड हैं इनकी गिनती स्वयं भगवान भी नहीं कर सकते, अन्य कोई तो इसे जान ही क्या सकता है ? प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव पृथक-पृथक हुआ करते हैं । देव गण की संख्या तीन करोड़ है और प्रत्येक

ब्रह्माण्ड में इतने ही देव रहते हैं। दिशाओं के स्वामी, दिक्पाल, नक्षत्र और ग्रह आदि भी प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रहते हैं।"

यद्यपि 'ब्रह्मवैवर्त' का यह वर्णन पौराणिक भाषा में है, पर लोकों और ब्रह्माण्डों के अनन्त होने के सम्बन्ध में उसने जो कुछ विचार प्रकट किया है वही आज का विज्ञान कह रहा है। वर्तमान समय में जो करोड़ों रुपया लगा कर महा विशाल दूरबीनें बनाई गई हैं उनके द्वारा अवलोकन करने से विदित होता है कि आकाश में विश्व-ब्रह्माण्डों की कोई संख्या ही नहीं है। पचास वर्ष पहले बनी दूरबीनों द्वारा ही जितने तारागण (सूर्य) आकाश में दिखाई पड़ते थे उनकी संख्या अरबों मानी गई थी। और अब जितनी अधिक शक्तिशाली दूरबीन बनती हैं उनमें और भी नये ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ते जाते हैं। ये कितने बड़े क्षेत्र में फैले हैं इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। बिजली और प्रकाश की गति एक सैकिन्ड में पौने दो लाख मील मानी गई है। अगर कोई यन्त्र इसी गति से चलता जाय तो करोड़ वर्ष में वह, जितने विश्व (सौर लोक) दिखाई पड़ रहे हैं उनके सौ वे भाग तक भी नहीं पहुँच सकता। इस दृष्टि से पुराणकार का कथन सत्य है कि समस्त लोकों और ब्रह्माण्डों की गणना कोई नहीं कर सकता यथार्थ ही है। एक ऐसे युग में जब कि जन साधारण चन्द्रमा को, जो केवल दो लाख मील की दूरी पर है, सूर्य से ऊपर मानते थे, विश्व-ब्रह्माण्ड के विस्तार का इतना अनुमान कर लेना भी कम महत्वपूर्ण नहीं था।

राधा-रहस्य—

यद्यपि अन्य पुराणों में तथा प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में राधा के सम्बन्ध में किसी प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता, पर 'ब्रह्मवैवर्त' में वही सर्वत्र व्याप्त है और उनका महत्व समस्त देव-देवियों से अधिक माना

गया है। यद्यपि इसमें उनके साकार रूप का वर्णन किया है और उनके रास-विलास में शृङ्गार-रस की पराकाष्ठा कर दी है। फिर भी जब हम राधा चरित्र का विवेचन करते हैं, तो वह परमात्मा की निराकार शक्ति ही प्रतीत होती है। उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'राधिकाख्यान' में कहा गया है—

पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रास मण्डले।
शतशृंगैकदेशे च मालती मल्लिका वने॥
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पति।
स्वेच्छामयश्च भगवान् बभूव रमणोत्सुकः॥
रमणं कर्त्तुमिच्छा च तद्बभूव सुरेश्वरी।
इच्छाया च भवेत् सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः।
दक्षिणांगश्च श्रीकृष्णो वामार्द्धांगश्च राधिका॥

अर्थात् 'प्राचीन समय में उस वृन्दावन में जो गोलोक के रास मंडल में स्थित है, शतशृङ्ग पर्वत पर, जहां मालती और मल्लिका की लताओं का वन है, एक रत्न सिंहासन पर जगत स्वामी श्रीकृष्णजी विराजमान थे। उस अवसर पर उनको रमण की भावना उत्पन्न हुई। भगवान अपनी इच्छा से परिपूर्ण हैं, इस लिये जैसे ही इच्छा हुई वैसे ही सुरेश्वरी उपस्थित हो गई। उस स्वेच्छामय भगवान की इच्छा मात्र से सब कुछ हो जाता है उसमें किंचित विलम्ब नहीं हुआ करता। इस लिए स्वतः-इच्छा होते ही वे दो भागों में बँट गये। दाहिना भाग श्री कृष्ण रूप में रहा और बाँया भाग राधिका के रूप में हो गया।'

यह [illegible] [illegible] रूप में 'अर्धनारीश्वर' सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है जैसा हम अन्य पुराणों में भी लिख चुके हैं, भु-

मण्डल पर एक युग ऐसा भी था जब इस पर निवास करने वाले प्राणियों मे नर-मादा का भेद न था। उसके कारण जीव जगत की प्रगति रुकी हुई थी। तब उनमे क्रमश परिवर्तन होने लगा और ब्रह्मा जी की 'मैथुनी सृष्टि' प्रकट हो गई। यह सिद्धान्त इतना स्वाभाविक है कि केवल हमारे पुराणो में इसका उल्लेख नही किया गया है, वरन अन्य धर्मों के ग्रन्थों में भी यह पाया जाता है। ईसाइयो की बाइबिल' मे कहा गया है कि जब भगवान ने ससार मे 'आदम' (आदि मानव) को अकेला देखा तो उसकी बाँयी पसली निकाल कर उसे एक स्त्री के रूप मे निर्मित कर दिया। वही 'आदम' की पत्नी 'हव्वा' हुई। वर्तमान समय में विकास विज्ञान का अनुशीलन करने वाले वैज्ञानिक भी यही मानते है कि नर मादा की रचना सृष्टि के आदिकाल की नही है वरन् बीच के किसी युग मे यह विभाजन क्रमश' हुआ है। एक अन्य मत के 'पुराण' मे भी कहा गया है कि 'मैथुनी सृष्टि' से पूर्व ससारमे जो प्राणी थे वे जुगलिय' थे, अर्थात् नर-मादा एक साथ पैदा होते थे।

इस प्रकार राधा-कृष्ण ही विश्व सञ्चालक सत्ता के दो रूप हैं। वर्तमान जगत म भी हम देखते है कि नर और मादा का सयोग हुए बिना सृष्टि क्रम आगे नही बढता, उसी के आधार पर मानव के मन न विश्व नियन्ता शक्ति को भी उसी प्रकार के दो विभागो में विभाजित कर दिया है। इसके पश्चात् भक्तिमार्गीय विद्वानो ने अनेक प्रकार से उसकी व्याख्या करके उसे दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप दे दिया। इसी अध्याय में राधा की व्याख्या करते हुए कहा गया है—

रा शब्दोच्चारणाद्भक्तो याति मुक्ति सुदुर्लभाम्।
धा शब्दोच्चारणाद् दुर्गं धावत्येव हरे. पदम् ॥
रा इत्यादानवचनो धाच निर्वाण वाचकः।
ततोऽवाप्नोति मुक्तिञ्च सा च राधा प्रकीर्तिता ॥

अर्थात् 'राधा' शब्द में 'रा' का उच्चारण करने से भक्त दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है और 'धा' के उच्चारण से भगवत् पद की तरफ दौड़ कर जाता है। 'रा' का अक्षर आदान वाचक है और 'धा' निर्वाण वाचक कहा गया है। इसलिये जिससे मनुष्य मुक्ति-पद को प्राप्त होता है उसी को 'राधा' कहा गया है।"

राधा को 'अर्ध नारीश्वर' वाली उत्पत्ति को जान कर और उसके नाम के दोनों अक्षरों के आशय को समझ कर उसमें दोष या दुर्भावना का कोई कारण नहीं कहा जा सकता। चाहे दार्शनिक और योग मार्ग के अनुयायी इन बातों को महत्व देने को प्रस्तुत न हों, पर भक्ति-मार्ग वालों में इस प्रकार का भाव बहुत अधिक कल्याणकारी माना गया है। वर्तमान समय में जिस प्रकार सामान्य जनता राधा-कृष्ण की रास-लीलाओं को देख कर उनको केवल मुरली बजाने और नाचने वाला समझ बैठी है, वह बात उपरोक्त विवेचन में कहीं दिखाई नहीं पड़ती। इस रूप में 'राधा' की साधना एक उच्च आध्यात्मिक मार्ग सिद्ध हो सकती है और हमारे देश देश में एकाध सम्प्रदाय इसी भाव से उपासना करके अध्यात्म-क्षेत्र में प्रगति कर भी चुका है।

गणेश-जन्म का अद्भुत वृतान्त—

यद्यपि शिवजी को पुराणों मे महान जितेन्द्रिय बतलाया गया है, जिन्होंने कामदेव को जला कर भस्म कर दिया, अर्थात् उस पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली, फिर भी सब देवताओं ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये हर तरह से जोर लगा कर उनका विवाह करा ही दिया। इससे उनके दो पुत्र भी हुए पर उन दोनो के ही जन्म में बड़े विघ्न आये। प्रथम पुत्र स्कन्द कुमार तो जन्मते ही मां-बाप से अलग हो गये और उनका पालन-पोषण अज्ञात रूप से हुआ। दूसरे गणेशजी का भी जन्म

लेने के कुछ देर ही पश्चात् मस्तक कट गया और उनको हाथीका मस्तक जोड़ा गया, जिससे वे गज वदन और लम्बोदर बन गये। ये कथाएँ तो थोड़े बहुत परिवर्तित रूप मे सभी पुराणो में पाई जाती हैं, पर 'ब्रह्म-वैवर्त' के रचयिता ने इन अप्रिय घटनाओ के कारणो पर जो प्रकाश डाला है उसस उसकी अपूर्व सूझ बूझ का पता लगता है। यद्यपि शास्त्रो मे यह भी कह दिया गया है कि सभी देवता अनादि हैं, तो भी गणेशजी की उत्पत्ति और जीवनी एक विशेष विचित्रता अवश्य रखती है, और उसका रहस्य 'ब्रह्मवैवर्त' के सिवाय अन्यत्र कदाचित् ही मिल सके।

गणेश-जन्म की कथा के सम्बन्ध मे आमतौर पर यह शंका की जाती है कि भगवान ने हाथी का ही मस्तक काट कर क्यों लगाया ? क्या वे किसी मनुष्य का ही मस्तक नही लगा सकते थे ?। इसका समाधान करते हुए 'ब्रह्मवैवर्त' मे कहा गया है कि जिस हाथी का मस्तक लगाया गया था, उसके मस्तक पर कुछ समय पूर्व इन्द्र और रम्भा ने वह फूल रख दिया था, जिसको दुर्वासा ऋषि विशेष रूप से विष्णु भगवान के यहां से लाये थे। उसी पुण्य के फल से हाथी ने यह सम्मान प्राप्त किया।

दूसरी कथा गणेशजी के एक दन्त होने की है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि जब परशुराम जी बडे-बडे राजाओ पर विजय प्राप्त करके शिवजी और पार्वती के दर्शनार्थ पहुँचे तो गणेशजी ने उनको भीतर जाने से रोका, क्योकि भीतर शिव-पार्वती एकान्त मे विराजमान थे। पर परशुरामजी बार बार आग्रह करते रहे और जब गणेश ने उनको मार्ग नही दिया तो उन्होने उन पर परशु से आक्रमण किया जिससे गणेशजी का एक दांत टूट गया।

ऐसी कथाएँ प्रायः मनोरंजन का साधन ही होती हैं, फिर भी

पाठक उनसे सत्कर्मों के करने और पारस्परिक कलह से बचने की शिक्षा ले सकते है। गणेशजी की कथा जगह-जगह भिन्न प्रकार से कही गई है, पर 'ब्रह्मवैवर्त' की कथा सबसे अधिक पृथक है यह कहना ही पड़ेगा।

शृङ्गार-रस की अत्यधिकता—

पर एक निरपेक्ष पाठक को 'ब्रह्मवैवर्त' को पढ़ते समय जो बात सबसे अधिक खटकती है, वह यही है कि लेखक ने अधिकांश कथाओं में और खास कर 'राधा-कृष्ण' के वर्णन में शृङ्गार-रस के वर्णन को इतना अधिक बढ़ा दिया है कि उसे औचित्य की सीमा से बाहर कहा जा सकता है। इन वर्णनों से यह प्रतीत होता है कि इस पुराण को चाहे जिसने लिखा हो कवि की दृष्टि से वह अवश्य ही शृङ्गार-रस का बहुत बड़ा प्रेमी था। इस प्रकार का वर्णन अन्यत्र भी किया गया है पर 'ब्रह्मवैवर्त' में यह वर्णन जैसे खुले शब्दों में किया गया है, उसका समर्थन नहीं किया जा सकता। हमने ऐसे अनेक अंशों को पहले ही निकाल दिया है, फिर भी जो कुछ बचा है उसी से पाठकों को हमारे कथन की सचाई विदित हो जायगी। पुराणकार ने शरद् पूर्णिमा को गोपियों के रास का वर्णन आरम्भ करते हुए राधा-कृष्ण के मिलन का वर्णन इन शब्दो मे किया है—

> कटाक्ष कामबाणैश्च विद्धः क्रीड़ारसोन्मुखः।
> मूर्च्छां प्राप्य न पपात तस्थौ स्थाणु समो हरिः॥
> पपात मुरली तस्य क्रीडाकमलमुज्ज्वलम्।
> द्वितीय पीत वस्त्रान्च शिखिपिच्छं शरीरत.॥
> क्षणेन चेतनां प्राप्य ययौ राधान्तिकं मुदा।
> कृत्वा वक्षसि तां प्रीत्या समालिग्य चुचुम्ब सः॥

श्रीकृष्ण स्पर्श मात्रेण सम्प्राप्य चेतना सती ।
प्राणाधिक प्राणनाथं समालिङ्ग्य चुचुम्बह ॥
मनोजहार राधाया: कृष्णस्तस्य च मा मुने ।
जगाम राधया सार्धं रसिको रतिमन्दिरम् ॥

रत्नप्रदीप संयुक्त रत्नदर्पण संयुतम् ।
चारु चम्पक शय्याभिश्चन्दनाक्ताभी राजितम् ॥
कर्पूरान्वितताम्बूलैर्भोगद्रव्यै समन्वितम् ।
उवास राधयासार्धं कृष्णस्तत्र मुदान्वित ॥

अर्थात् 'राधा के सुन्दर स्वरूप को देख कर और उसके कटाक्ष रूपी कामदेव के बाणों से बिद्ध होकर श्रीकृष्ण क्रीडा करते हुए उन्मुख होते हुए एक क्षण के लिए बेसुध हो गये। पर वे भूतल पर गिरे नहीं, एक जड़ वस्तु के समान जहां के तहां अचल हो गये। उस अवसर पर उनकी मुरली और हाथ का कमल अवश्य हाथ से छूट कर भूमि पर गिर गया। ऊपर ओढ़ा हुआ पीताम्बर तथा मोर-मुकुट भी खिसक कर गिर पड़े। पर दूसरे ही क्षण उनकी चेतना लौट आई और उन्होंने राधिका के पास जाकर उसे हृदय से लिपटा लिया और बड़े प्रेम से चुम्बन किया। श्रीकृष्ण का स्पर्श पाते ही राधा भी चैतन्य हो गई और उसने भी प्राणों से प्यारे कृष्ण को गाढ़ आलिङ्गन करके चुम्बन किया। उस समय कृष्ण ने राधा के और राधा ने कृष्ण के मन का हरण कर लिया था। रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण फिर राधा के साथ रति मन्दिर में चले गये। वह रति मन्दिर रत्नों के दीपकों से शोभित था और उसमें रत्नों के ही दर्पण लगे थे। वहां चम्पा के सुन्दर पुष्पों की शय्या लगी थी जो चन्दन से चर्चित थी। वह मन्दिर कपूर युक्त ताम्बूल (पान के बीड़ों) आदि अनेक भोग द्रव्यों से समन्वित था। वहां श्रीकृष्ण राधा के साथ अत्यन्त हर्ष युक्त हो विराजमान हुए।'

श्रीकृष्ण और गोपियों के रास का वर्णन 'विष्णु-पुराण' 'भागवत' तथा अन्य ग्रन्थों में भी पाया जाता है। भागवत की 'रास पंचाध्यायी' तो एक बहुत प्रसिद्ध साहित्यिक रचना मानी गई है। पर इन सब में रास का वर्णन करते हुए और उस अवसर पर शृङ्गार रस की आवश्यकता को अनुभव करते हुए भी शालीनता की पूरी तरह रक्षा की गई है। विष्णु पुराण' मे रास आरम्भ होने का वर्णन करते हुए लिखा है—

'तब श्रीकृष्ण ने किसी से प्रिय अलाप, किसी पर भ्रूभङ्गी से दृष्टि और किसी के कर ग्रहणपूर्वक उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। इसके पश्चात् उस उदारचेता ने उन प्रसन्न चित्त वाली गोपियों के साथ रास-विहार किया। उस समय कोई भी गोपी कृष्ण के के स्पर्श से पृथक नहीं होना चाहती थी, इसलिये एक ही स्थान पर उनके स्थिर रहने से रास-मण्डल नहीं बन पाया। तबभगवान श्रीहरि ने एक-एक गोपी का हाथ अपने हाथ में लेकर रास-मण्डल बनाया। उस समय श्रीकृष्ण ने चन्द्रमा, कौमुदी और कुमुदवन विषयक गीत गाये और गोपियां केवल श्रीकृष्ण के नाम का गान करने लगीं। फिर—

परिवृत्ति श्रमेणैका चलद्वलयलापिनीम्।
ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी मधु निघातिनः॥
काचित्प्रविलसद्बाहुः परिरभ्य चुचुम्बतम्।
गोपी गीतस्तुतिव्याजन्निपुणा मधुसूदनम्॥

'तभी एक गोपी नाचते-नाचते थक गई तो उसने कंकण की झनकार करते हुए अपनी बाहुलता श्रीकृष्ण के कण्ठ में डाल दी। एक अन्य चतुर गोपी गीत की प्रशंसा करने के मिस से अपनी बाहु फँसा कर श्रीकृष्ण से लिपट गई और चुम्बन करने लगी।''

ता वार्यमाणा पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा।
कृष्ण गोपांगना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः॥

"वे रतिप्रिया: गोपियाँ पति, पिता, भ्राता आदि के रोकने पर भी चली आई थीं और रात्रि में श्रीकृष्ण के साथ रास-विहार करती थीं।"

'विष्णु पुराण' में इससे अधिक चर्चा रासलीला की नहीं की गई है। जब इतनी अधिक गोपियाँ एक साथ रात्रिकालीन रास-नृत्य में भाग लेने आती थीं तो सम्भोग जैसी बात की चर्चा व्यर्थ ही होती है और पाठक का ध्यान प्रेम-प्रदर्शन तक ही जाता है।

'भागवत' के वर्णन में स्पष्ट कह दिया गया है कि "वे गोपियाँ श्रीकृष्ण के पास 'जार-बुद्धि' से आई थीं, तो भी उन्होंने आलिंगन तो परमात्मा—भगवान का ही किया था। उस समय उन्होंने अपनी मानसिक भावना द्वारा दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त कर लिया था।" आरम्भ में भगवान ने उनकी परीक्षा लेने के लिए समझाया भी कि वे इस समय अपने पतियों, घरों को छोड़ कर यहाँ कैसे चली आईं ? यह तो लोक-प्रथा के विरुद्ध कार्य है। इसलिए उनको तुरन्त वापस चले जाना चाहिए। पर जब इन बातों को सुन कर गोपियाँ व्याकुल हो गईं और रोने-कलपने लगीं तो भगवान ने उन्हें प्रसन्न करने के निमित्त रास नृत्य प्रारम्भ किया—

"गोपियों का जीवन भगवान का प्रेम ही है। वे श्रीकृष्ण से सटकर नाचते नाचते ऊँचे स्वर से मधुर गान कर रही थीं। भगवान का स्पर्श पाकर और भी आनन्दमग्न हो रही थीं। उनके राग-रागनियों के पूर्ण गान से यह जगत अब भी गूँज रहा है। एक गोपी नृत्य करते-करते थक गई तो उसने बगल में ही खड़े श्याम सुन्दर के कन्धे को अपने हाथ से कस कर पकड़ लिया। भगवान ने दूसरा हाथ अन्य गोपी के कन्धे पर रखा हुआ था। एक गोपी नृत्य कर रही थी। नाचने के कारण उसके कुण्डल हिल रहे थे, उनकी छटा से उसके कपोल और भी चमक रहे थे। उसने कपोलों को भगवान के गालों से सटा

दिया। श्रीकृष्णने अपने मुखका चवाया पान उसके मुखमें दे दिया। कोई गोपी नूपुर और करधनी के घुँघरुओं को झनकारती हुई नाच और गा रही थी। जब वह बहुत थक गई तो उसने बगल ही में खड़े मोहन प्यारे के शीतल हाथ अपने दोनों स्तनों पर रख लिए।"

'भागवत' के रास-वर्णन का यही नमूना है। इसमें सन्देह नहीं कि यह पूर्ण शृंगार-रसयुक्त है, तो भी इसको यथा सम्भव अश्लीलता से दूर रखा गया है और कोई अनुचित शब्द प्रयोग में नहीं लाया गया। इस बात पर विवाद करना कि ऐसा कार्य उचित था या अनुचित बिल्कुल व्यर्थ है। ऐसे काव्य-ग्रन्थों के वर्णन सदैव कवि की कल्पना प्रतिभा, और रुचि के अनुसार लिखे जाते हैं, और उनके आधार पर कभी ऐसा निश्चय नहीं किया जा सकता कि ऐसा ही हुआ होगा। हम तो यहाँ केवल विभिन्न ग्रन्थों की वर्णन शैली की आलोचना कर रहे हैं, और यह बतलाना चाहते हैं कि ऐसे शृङ्गारमय वर्णनों में प्रेम युक्त हाव-भाव और व्यवहार का चित्रण करते हुए मर्यादा का अति-क्रमण नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से विद्वान उसे आपत्तिजनक बतलाते हैं और सर्व साधारण के पठन-पाठन के अयोग्य मानते हैं। इसीलिए भागवतकार इस वर्णन को करते हुए बीच-बीच में यह संकेत भी करते जाते हैं कि "यह भगवान की लीला है, इसमें दूषित भावनाओं का संशय रखना अनुचित है।" इसको स्पष्ट करनेके लिए अन्तमें श्रीशुक-देवजी से कहलाया गया है—

एव शशाङ्कांशुविराजिमा निशाः स सत्यकामोऽनुरतावलागणः।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वा शरत्काव्य कथा रसाश्रयः॥
विक्रीडितं व्रजबधूभिरिदं च विष्णोः,
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथवर्णवेद यः।
भक्ति परां भगवयि प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगभाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

"निस्सन्देह शरद पूर्णिमा की उस अत्यन्त सुन्दर रात्रि में, जिसमें काव्यों में वर्णित सभी रस सामग्रियाँ उपस्थित थीं, भगवान ने अपनी प्रेमी गोपियों के साथ यमुना पुलिन पर विहार किया। पर यह स्मरण रखना चाहिए कि भगवान सत्य-संकल्प हैं। यह सब उनके चिन्मय संकल्प की चिन्मयी लीला है। और इस लीला में उन्होंने काम भाव को सर्वथा अपने आधीन—अपने आप में कैद करके रखा।"

"जो धीर पुरुष व्रज-युवतियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण के चिन्मय रास विलास का श्रद्धा के साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान के चरणों में परा भक्ति की प्राप्ति होती है और बहुत ही शीघ्र अपने हृदय रोग—काम विकार से छुटकारा पा जाता है। उसका काम भाव सदा के लिए नष्ट हो जाता है।"

भागवतकार ने श्रीकृष्ण की रास-लीला के मूल स्वरूप और उसके प्रभाव के विषय में जो कहा है वह एक विशेष श्रेणी के साधकों के लिए सत्य हो सकता है। जो सच्चे हृदय से भक्ति-मार्ग के पथिक बन चुके हैं और आरम्भ से ही संयम-नियम का पालन करने से जिनके अन्दर में सच्ची सात्विकता का उदय हो चुका है, वे अपने इष्टदेव का आश्रय लेकर ऐसी स्थिति में भी मन को पवित्र और संयत रख सकते हैं, पर यह मार्ग अल्प संख्यक लोगों के लिए ही सम्भव है। बहुसंख्यक लोगों के लिए जो सांसारिक जीवन व्यतीत करते हैं, यह मार्ग उत्थान के बजाय पतन के माध्यम ही बन सकता है। इस मार्ग को ऐसा ही माना जा सकता है जैसे किसी व्यक्ति की परीक्षा के लिए उसके सम्मुख धन और रूप का बहुत बड़ा प्रलोभन रखना। यद्यपि संसार में ऐसे भी व्यक्ति पाये जाते हैं जो लाखों रुपये और अनुपम सौन्दर्य के प्रलोभन को ठुकरा कर सत्य मार्ग पर दृढ़ रहते हैं पर उनकी अपेक्षा दूसरी प्रकार के व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है, जो इससे कहीं छोटे प्रलोभन पर भी नित्य फिसलते रहते हैं। चरित्र और नीति की उच्चता को जानते

हुए भी अनीति और चरित्र-हीनता के मार्ग पर चलने लग जाते हैं। इसलिए धार्मिक कथाओं और धर्म ग्रन्थों के वर्णन में संयम, नियम, सच्चरित्रता श्रेष्ठ नीति का ही वर्णन कल्याणकारी है।

उदाहरण के लिए हम गोस्वामी तुलसीदास की रामायण को ले सकते हैं। भक्ति की दृष्टि से वह इस युग की महान रचना है और साहित्य की दृष्टि से भी एक स्थायी निधि है। सब रसों का वर्णन उसमें पाया जाता है। जैसे धर्म की दृष्टि से, वैसे ही कवित्व की दृष्टि से वह जगत प्रसिद्ध है, पर उसमें एक भी वर्णन ऐसा नहीं जो पाठक पर विपरीत प्रभाव डाल सके। इस दृष्टि से 'ब्रह्मवैवर्त' में रास-क्रीड़ा के शृङ्गार विषयक वर्णन को जिस सीमा तक बढ़ा दिया गया है, उसे यदि न भी किया जाता तो ग्रन्थ की कोई हानि नहीं थी। यद्यपि इन सब लेखकों ने बीच-बीच में भगवान के आत्मस्वरूप होने और सर्वदा अना-सक्त रहने की चर्चा करदी है, पर फिर भी सामान्य पाठकों पर ऐसी रचनाओं का प्रभाव अवांछनीय होने की ही आशंका रहती है। इस तथ्य को ध्यान में रख कर हमने इस प्रकार के वर्णनों को पृथक कर दिया है, फिर भी कथा के बीच में कहीं ऐसी दो-चार बातें दिखाई पड़ें तो पाठकों को 'भागवतकार' के विवेचन को ध्यान में रख कर उससे भगवत्-भक्ति की प्रेरणा ही ग्रहण करनी चाहिए।

ब्रह्म-निरूपण—

यद्यपि 'ब्रह्मवैवर्त' के रचयिता ने राधा-कृष्ण और उनके निवास स्थान—गोलोक की महत्ता बढ़ाने में अतिशयोक्ति और अलङ्कारों से बहुत अधिक काम लिया है और उन्हीं को विश्व-ब्रह्माण्ड की सर्वोपरि आदिशक्ति बतलाया है, पर जहां 'ब्रह्म-निरूपण' के दार्शनिक विवेचन की आवश्यकता पड़ी है, वहाँ वेदान्त सिद्धान्त को ही स्वीकार करना पड़ा है। जब नारद ने प्रश्न किया कि 'क्या ब्रह्म आकार वाला है अथवा

निराकार है ? उस ब्रह्म का विशेषण क्या है अथवा उसकी अविशेषता क्या है ?" तो उत्तर में यही कहा गया है—'परमात्मा का स्वरूप सनातन परमब्रह्म है, जो कि सबके देहों में स्थित रहता है और कर्मों का साक्षी रूप है। पाँच प्राण स्वयं विष्णु हैं, मन प्रजापति है, समस्त ज्ञान मैं (ब्रह्मा) हूँ और शक्ति 'मूल प्रकृति' है। हम सब उसी परमात्मा के अधीन रहते हैं। उनके स्थित होने पर ही हम सब संस्थित होते हैं। उसके 'परम' में चले जाने पर हम सब भी समाप्त हो जाया करते हैं, जैसे किसी राजा के साथ उसके अनुगामी भी चले जाया करते हैं। यह जीवात्मा उस परमात्म का ही प्रतिबिम्ब होता है और कर्मों के भोगने वाला हुआ करता है। वह ब्रह्म एक ही है। जब विश्व का क्षय हो जाता है तो हम सब उसी में लीन (समाविष्ट) हो जाते हैं और यह चराचर जगत भी उसमें प्रलीन हो जाता है। वह ब्रह्म केवल ज्योति स्वरूप है।"

जैसा हम कह चुके हैं राधा और कृष्ण के तत्व और लीलाओं को विस्तार पूर्वक बतलाने वाला प्रमुख पुराण यही है। यह काफी बड़ा है इसलिए अन्य पुराणों की तरह हमने इसमें से पुनरावृत्तियों और अधिक अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों को छोड़ दिया है। अब इसमें पाठकों को अधिकतर ऐसी कथाएँ ही मिलेंगी। जिनमें कुछ नवीनता है अथवा जो ईश्वर-भक्ति की शिक्षा देती हैं। पर अलङ्कारयुक्त शृङ्गार रस की रचना करना इसके लेखक की विशेषता है। इसलिये रसिक प्रकृति के पाठकों और काव्य प्रेमियों को यह अधिक रुचिकर प्रतीत होगा। वैसे सभी पाठकों को इसमें अनेक नवीन बातें मिलेंगी और वे इसके द्वारा पौराणिक कथाओं की विशेष जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची

※ गणपति खण्ड ※

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणम् ।

ब्रह्मखण्ड

१—अनुक्रमणिका वर्णनम्

गणेशब्रह्मेशसुरेशशेषा सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्रा ।
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च नमन्ति देवा प्रणमामि त विभुम ॥१॥
स्थूलात् स्थूलतमा तनु दधत बिराज त्रिश्वानि
लोमविवरेषु महान्तमाद्यम् ।
सृष्ट्योन्मुख स्वकलयापि ससर्ज सूक्ष्मा नित्या
समेत्य हृदि यस्तमज भजामि ॥२॥
ध्यायन्ते ध्याननिष्ठा सुरनरमनवो योगिनो योगरूढा,
सन्त स्वप्नेऽपि सन्त कतिकतिजनिभिर्य न पश्यन्ति तप्त्वा ॥
ध्याये स्वेच्छामय त त्रिगुणपरमहो निर्विकार निरीह,
भक्तध्यानैकहेतोर्निरुपमरुचिरश्यामरूप दधानम् ॥३॥
वन्दे कृष्ण गुणातीत पर ब्रह्माच्युत यत ।
आविर्बभूवु प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादय ॥४॥
अमृतपरमपूर्व भारतीकामधेनु श्रुतिगणद्रुतवदमो व्यासदेवो दुदोह ॥

अतिरुचिरपुराणं ब्रह्मवैवर्त्तमेतत् पिवत
पिवत मुग्धा दुग्धमक्षय्यमिष्टम् ।।५।।
ओं नमो भगवते वासुदेवाय ।

इस अध्याय में ब्रह्माण्ड का वर्णन है। इस के आरम्भ में मङ्गलाचरण किया जाता है और फिर अनुक्रमणिका को बताया गया है। जिस सर्वव्यापक विभु को ब्रह्मा-गणेश-शिव-सुरेश-शेष और समस्त देवगण-मनु मण्डल तथा मुनीन्द्र वर्ग-सरस्वती-श्री और गिरिजा आदि देवता नमन किया करते हैं उसको मैं प्रणाम करता हूँ ।।१।। स्थूल से भी स्थूलतम शरीर को धारण करने वाले-विराट् स्वरूप-जिसके लोम विवरों में समस्त विश्व रहा करते हैं—महान्-आदि रूप और जो सृजन करने की ओर उन्मुख होता हुआ जो अपनी कला से ही हृदय में नित्य सूक्ष्म को एकचित करके सृजन करने वाला है या सृजन किया था उस अज को मैं भजता हूँ ।।२।। योगाभ्यास से समाधिस्थ होने वाले योगी लोग जो सुर-नर और मनुगण हैं वे ध्यान में एकनिष्ठ होकर जिसका ध्यान किया करते हैं। ऐसे होते हुये भी स्वप्न में भी रहने वाले उसको कितने ही जन्मों मे भी तप करके नहीं देख पाते हैं उस स्वेच्छामय-त्रिगुण से परे रहने वाले-विकाररहित एवं निरीह तथा केवल भक्तों के ध्यान करने के हेतु से ही उपमा रहित परम सुन्दर श्याम स्वरुप के धारण करने वाले का मैं ध्यान करता हूँ ।।३।। गुणों से अतीत अर्थात् पर-परब्रह्म-अच्युत कृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ जिससे प्रकृति-ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि समस्त प्रकट हुए थे ।।४।। श्री मान् व्यास देव ने श्रुति गण को वत्स बनाकर भारती रूपिणी काम धेनु से इस अपूर्व परम अमृत का दोहन किया था। वह यह अत्यन्त सुन्दर-ब्रह्मवैवर्त्त पुराण है। हे मुग्धो ! आप सब लोग इस अक्षय्य मिष्ट दुग्ध का बार-बार पान करो और खूब करो ।।५।। भगवान श्री वासुदेव के लिये नमस्कार है।

ओं नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ।।

ओं भारते नित्या नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः ।
नैमित्तिकी कृत्वा क्रियामूषुः कुशासने ॥१॥
एतस्मिन्नन्तरे सौतिमागच्छन्तं यद्दच्छया ।
प्रणतं सुविनीत तं विलोक्य ददुरासनम् ॥२॥
तसम्पूज्यातिथिभक्त्याशौनकोमुनिपुङ्गवः ।
पप्रच्छकुशलं शान्तं शान्तः पौराणिक मुदा ॥३॥
वर्त्मायासविनिर्मुक्तं वसन्त सुस्थिरासने ।
सस्मितं सर्वतत्वज्ञं पुराणानां पुराणवित् ॥४॥
परं कृष्णकथोपेतं पुराणं श्रुतिसुन्दरम् ।
मङ्गलं मङ्गलार्हञ्च सवदा मङ्गलालयम् ॥५॥
सर्वमङ्गलबीजञ्च सर्वदा मङ्गलप्रदम् ।
सर्वामङ्गलविघ्नञ्च सर्वसम्पत्कर वरम् ॥६॥
हरिभक्तिप्रद शश्वत् सुखद मोक्षद भवेत् ।
तत्वज्ञानप्रद दारपुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥७॥
पप्रच्छ सुविनीतञ्च विनीतो मुनिससदि ।
यथाकाशे तारकाणां द्विजराजो विराजते ॥८॥

भगवान श्री नारायण और नरो मे उत्तम नर को नमस्कार करके तथा भगवती सरस्वती देवी की वन्दना करके जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए। भारत मे नैमिष नामक अरण्य मे शौनक आदि अट्ठासी सहस्र ऋषिगण अपनी नित्य और नैमित्तिक क्रिया का सम्पादन करके कुशा के आसनो पर स्थित हुए थे ॥१॥ इसी अन्तर यद्दच्छया आते हुए सौति को प्रणत एव सुविनीत देख कर समस्त ऋषियो ने उनको आसन समर्पित किया था ॥२॥ मुनिगण मे परम श्रेष्ठ शौनक जी ने भक्ति भाव से उन अतिथि स्वरूप सौति की भली भाँति पूजा करके शान्त भाव वाले शौनक जी ने परम शान्त पौराणिक सौति से प्रसन्नता के साथ कुशल पूछा था ॥३॥ मार्ग के आयास से विनिमुक्त होने वाले तथा सुस्थिर आसन पर वास करते हुए

मन्द स्मित से समन्वित-समस्त तत्वों के ज्ञाता सूत जी से पुराणों के पुराने विद्वान शौनक जी ने कुशल प्रश्न किया था। इसके अनन्तर फिर उस मुनियों की सभा में जिस प्रकार से तारकों के मध्य में द्विजराज विराजमान रहता है उसी भाँति विराजते हुए अत्यन्त विनीत शौनक जी ने सुविनीत सौति से ऐसे पुराण के विषय में पूछा था जो श्री कृष्ण की कथा से युक्त हो - श्रुति सुन्दर-परम पुराण-मङ्गल और मङ्गल करने के योग्य हो-सदा मङ्गल का आलय हो- समस्त मङ्गलों का बीज-शश्वत सुख प्रदान करने वाला और मोक्ष देने वाला हो-तत्वों के ज्ञान का प्रदान करने वाला तथा स्त्री, पुत्र और पौत्रों के वर्धन करने वाला हो। ऐसा जो भी कोई पुराण हो उसके विषय में प्रश्न किया था ॥४-८॥

प्रस्थान भवतः कुत्र कुत आयासि ते शिवम् ।
किमस्माकंपुण्यदिनवत्स ! त्वद्दर्शनेन च ॥९॥
वयमेव कलौ भीता विशिष्टज्ञानवर्जिताः ।
मुमुक्षवो भवे मग्नास्तद्धेतुस्त्वमिहागतः ॥१०॥
भवान् साधुर्महाभागः पुराणेषु पुराणवित् ।
सर्वेषु च पुराणेषु निष्णातोऽतिकृपानिधिः ॥११॥
श्री कृष्णे निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती ।
तत् कथ्यतां महाभाग ! पुराण ज्ञानवर्द्धनम् ॥१२॥
गरीयसी या मोक्षाच्च कर्ममूलनिकृन्तनी ।
संसारसन्निवद्धानां निगड़च्छेदकृन्तनी ॥१३॥
भवदावाग्निदग्धानांपीयूषवृष्टिवर्षिणी ।
सुखदानन्ददा सौते ! शश्वच्चेतसिजीविनाम् ॥१४॥

शौनक ने कहा—इस समय आपका प्रस्थान कहाँ के लिये हुआ है और अब कहाँ से आप आ रहे है। आपका मङ्गल हो। हे वत्स ! आपके आज-दर्शन से क्या ही हम सबका पुण्य दिन है। हम सब इस कलियुग में बहुत ही

डरे हुए हो रहे है क्योंकि हम विशिष्ट ज्ञान से रहित हैं। मुक्ति पाने की इच्छा वाले हैं और इस ससार मे मग्न हो रहे हैं। उसी हेतु के लिये आपका आगमन यहाँ हो गया है। आप परम साधु महान भाग्य वाले और पुराणो मे पुराण के परम वेत्ता है आप तो समस्त पुराणो में अत्यन्त निष्णात्त विद्वान् है और अत्यन्त कृपा के सागर है। जिससे श्री कृष्ण भगवान में निरन्तर रहने वाली निश्चल भक्ति उत्पन्न होवें हे महाभाग ! वही ज्ञान का वर्धन कराने वाला पुराण वर्णन कीजिए ॥ ९-१२ ॥ जो मोक्ष से भी बडी कर्मों के मूल का निकृन्तन करने वाली और ससार में सन्निबद्धो के निगडो का छेदन और कृन्तन करने वाली हो ॥१३॥ ससार रूपी दावानल से दग्ध प्राणियो के लिये पीयूष की वृष्टि करने वाली हो हे सौते ! जो जीवो के चित्त मे शश्वत् सुख देने वाली तथा आनन्द प्रदान करने वाली कथा हो उसे कहिए ॥१४॥

यत्रादौ सर्वबीजञ्चपरब्रह्मनिरूपणम् ।
तस्य सृष्टयोन्मुखस्यापिसृष्टेरुत्कीर्त्तन परम् ॥१५॥
साकारवानिराकारपरमात्मस्वरूपकम् ।
किमाकारञ्च तद्ब्रह्म तद्ध्यान किञ्च भावनम् ॥१६॥
ध्यायन्ते वैष्णवा किम्वा किम्वा सन्तश्च योगिनः ।
मत प्रधान येषा वा गूढ वेदे निरूपितम् ॥१७॥
प्रकृतेश्च य आकारो यत्र वत्स ! निरूपित ।
गुणाना लक्षण यत्र महदादेश्च निर्णय ॥१८॥
गोलोकवर्णन यत्र यत्र वैकुण्ठवर्णनम् ।
वर्णन शिवलोकस्य यत्रान्यत् स्वगवर्णनम् ॥१९॥
अशानाञ्चकलानाञ्चयत्रसौते ! निरूपणम् ।
के प्राकृता काप्रकृति. कआत्मा प्रकृते.पर ॥२०॥
निगूढ जन्मयेषावादेवानादेवयोषिताम् ।
समुत्पत्ति समुद्राणा शैलाना सरितामपि ॥२१॥

जिसमें आदि में सब के वीज स्वरूप परब्रह्म का निरूपण हो-सृष्टि के द्वारा उन्मुख भी उसकी सृष्टि की उत्पत्ति का जिसमें परम कीर्त्तन किया गया है ।१५।। परमात्मा का स्वरूप साकार है अथवा निराकार है और उस ब्रह्म का क्या आकार है— उस ब्रह्म का ध्यान किस तरह का होता है और उसकी भावना किस प्रकार की हुआ करती है ।।१६।। वैष्णव लोग किस तरह का ध्यान किया करते हैं और सन्त योगी जन किस रीति से उसका ध्यान करते हैं। किनका मत इनमें प्रधान होता है अथवा कौन सा गूढ मत है जो वेदों में निरूपित किया गया हो ।।१७।। हे वत्स ! जहां पर कृति का जो आकार निरूपित किया गया हो और गुणों का लक्षण तथा जिसमें यह महदादि निर्णय किया गया है ।।१८।। जिसमें गोलोक का वर्णन और वैकुण्ठ लोक का वर्णन किया गया है तथा शिव लोक का वर्णन और अन्य स्वर्ग का वर्णन किया गया है ।।१९।। हे सौते ! जिसमें अंशों का और कलाओं का निरूपण हो-कौन प्राकृत है-कौन प्रकृति है और प्रकृति से पर आत्मा कौन है यह जिसमें बताया गया हो-जिसमें देवों का तथा देवाङ्गनाओं का निगूढ जन्म हो-समुद्रों-शैलों और नदियों की जिसमें उत्पत्ति का वर्णन हो उसका वर्णन कीजिए ।।२०-२१।।

के वांशाः प्रकृतेश्चापि कलाः का वा कलाकलाः ।
तासाञ्च चरितंध्यानं पूजास्स्तोत्रादिकं शुभम् ।।२२।।
दुर्गासरस्वतीलक्ष्मीसावित्रीणाञ्च वर्णनम् ।
यत्रैव राधिकाख्यानमत्यपूर्वं सुधोपमम् । २३।।
जीवकर्मविपाकश्च नरकाणाञ्च वर्णनम् ।
कर्मणां खण्डनं यत्र यत्र तेभ्यो विमोक्षणम् ।।२४।।
येषाञ्च जीविनां यत् यत् स्थानं यत्र शुभाशुभम् ।
जीविनां कर्मणो यस्मात् यासु यासु च योनिषु ।।२५।।
जीविनां कर्मणो यस्मात् यो यो रोगो भवेदिह ।
मोक्षणं कर्मणो यस्मात्तेषाञ्च तन्निरूपय ।।२६।।

मनसातुलसीकालीगङ्गापृथ्वीवसुन्धरा ।
आसां यत्र शुभाख्यानमन्यासामपि यत्र वै ॥२७॥
शालग्रामशिलानाञ्च दानानाञ्चानिरूपणम् ।
अपूर्वं यत्र वा सौते ! धर्माधर्मनिरूपणम् ॥२८॥

प्रकृति के अंश कौन हैं तथा कला कौन हैं और कला कला कौन है-उनका समग्र चरित्र तथा ध्यान एव पूजा और शुभ स्तोत्र आदि जिसमे हों ॥२२॥ दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी और सावित्री का वर्णन जिसमे हो और अत्यन्त अपूर्व एव अमृत के समान राधिका का आख्यान जिसमे हो ॥२३॥ जीवो के कर्मों के विपाक का वर्णन तथा नरको का वर्णन-कर्मों का खण्डन जिस-जिसमे उनसे विमोक्षण का वर्णन किया गया हो ॥२४॥ जिन जीवो का जो जो स्थान जहाँ शुभ और अशुभ हो-जीवो के कर्मों का जिससे जिन योनियो मे जन्म होता है तथा जीवो के कर्म का जिनसे जो जो रोग यहाँ होता है तथा जिससे कर्मों से मोक्ष अर्थात् छुटकारा होता है उनका सब निरूपण कीजिए ॥२५-२६॥ मन-सा, तुलसी, काली, गगा, पृथ्वी, वसुन्धरा इनका जिसमे तथा अन्यो का भी शुभ आख्यान हो शालग्राम शिलाओ का और दानों का निरूपण तथा धर्म और अधर्म अपूर्व निरूपण जिसमे हो हे सौते ! उसे कथन कीजिए ॥२७-२८॥

गणेश्वरस्य चरित यत्र तज्जन्म कर्म च ।
कवचस्तोत्रमन्त्राणां गूढाना यत्र वर्णनम् ॥२९॥
यदपूर्वमुपाख्यानमश्रुत परमाद्भुतम् ।
कृत्वा मनसि तत् सर्वं साम्प्रत वक्तुमर्हसि ॥३०॥
यत्र जन्मभ्रमो विश्वे पुण्यक्षेत्रे च भारते ।
परिपूर्णतमस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः ॥३१॥
जन्म कस्यगृहेलब्धंपुण्येपुण्यवतो मुने ।
सुतं प्रसूता का धन्या मान्यापुण्यवतीसती ॥३२॥

आविर्भूय च तद्गेहेक गतः केन हेतुना ।
गत्वा किं कृतवांस्तत्र कथं वा पुनरागतः ॥३३॥
भारावतरणं केन प्रार्थितो गोऽश्वकार सः ।
विधाय किं वा सेतुञ्च गोलोकं गतवान् पुनः ॥३४॥
इतीदमन्यदाख्यानं पुराणं श्रुतिदुर्लभम् ।
दुर्विज्ञेयं मुनीनाञ्च मनोनिर्मलकारणम् ॥३५॥

जिसमें गणों के ईश्वर का जन्म और चरित्र एवं कर्म हो तथा कवच, स्तोत्र और मन्त्रों का जोकि अत्यन्त गूढ़ है जिसमें वर्णन किया गया हो ॥२९॥ जो कोई अति अपूर्व और परम अद्भुत पहिले न सुना हुआ उपाख्यान हो वह सब मनमें करके इस समय आप कहने के योग्य होते हैं ॥३०॥ जिसमें परिपूर्णतम परमात्मा कृष्ण का जन्म भ्रम विश्व में और पुण्य क्षेत्र भारत में होता है ॥३१॥ हे मुने ! किस पुण्यवान के परम पुण्य घर में जन्म प्राप्त किया था और वह कौन सी मानने के योग्य पुण्य वाली सती परम धन्य थी जिसने उसे सुत के स्वरूप समुत्पन्न किया था ॥३२॥ उसके घर में प्रकट होकर किस कारण से कहाँ पर गये थे और वहाँ जाकर क्या किया था अथवा क्यों एवं कैसे फिर आ गये थे ? ॥३३॥ किसके द्वारा उससे इस प्रथ्वी के भार के अवतरण की प्राथना की गई थी और क्या सेतु करके फिर वह गोलोक को चले गये थे ॥३४॥ यह इस प्रकार का तथा अन्य श्रुतिदुर्लभ आख्यान और पुराण जोकि मुनियो को दुर्विज्ञेय हो और मन के निर्मल करने का कारण स्वरूप हो वर्णन करिये ॥३५॥

सर्वं कुशलमस्माकं त्वत्पादपद्मदर्शनात् ।
सिद्धक्षेत्रादागतोऽहं यामि नारायणाश्रमम् ॥
दृष्ट्वा विप्रसमूहञ्च नमस्कर्त्तुमिहागतः ।
द्रष्टुञ्च नैमिषारण्यं पुण्यदञ्चापि भारते ॥३६॥

देव विप्र गुरुं दृष्ट्वा न नमेद् यस्तु सम्भ्रमात् ।
स कालसूत्र व्रजति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥३७॥

हरिर्ब्राह्मणरूपेण शश्वद् भ्रमति भारते ।
सुकृती प्रणमेत् पुण्यात् ब्राह्मण हरिरूपिणम ॥३८॥

भगवन् ! यत्त्वया पृष्ट ज्ञातं सर्वमभीप्सितम् ।
सारभूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्त्तमुत्तमम् ॥३९॥

पुराणोपपुराणाना वेदाना भ्रमभञ्जनम् ।
हरिभक्तिप्रद सर्वतत्वज्ञानविवर्द्धनम् ॥४०॥

कामिना कामदञ्चेद मुमुक्षूणाञ्च मोक्षदम् ।
भक्तिप्रद वैष्णवाना कल्पवृक्षस्वरूपकम ॥४१॥

ब्रह्मखण्डे सर्वबीजपरब्रह्मनिरूपणम् ।
ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत् परात्परम् ॥४२॥

सौति ने कहा—आपके चरण कमल के दर्शन से हमारा सब प्रकार का कुशल है। मै इस समय सिद्ध क्षेत्र से आया हूँ और नारायणाश्रम को जा रहा हूँ। आप समस्त विप्रों के एक विशाल समुदाय को यहाँ एकत्रित देख कर सबको नमस्कार करने क लिये ही यहाँ पर आ गया हूँ। और भारत मे परम पुण्य का प्रदान करने वाला इस नैमिषारण्य के दर्शन करने को मैं यहाँ आ गया हूँ ॥३६॥ देवता-विप्र और गुरु को देखकर जो कोई सम्भ्रम से नमन नही किया करता है वह काल सूत्र नामक नरक मे जब तक चन्द्र और सूर्य स्थित रहते हैं जाकर पडा रहा करता है ॥३७॥ इस भारत मे ब्राह्मण के स्वरूप से भगवान हरि निरन्तर भ्रमण किया करते हैं। जो सुकृत करने वाला होता है वही हरि के स्वरूप वाले ब्राह्मण को प्रणाम किया करता है ॥३८॥ हे भगवन् ! आपने जो कुछ भी पूछा है वह सम्पूर्ण आपका अभीप्सित (इच्छित) मैंने समझ

लिया है। पुराणों में जो सारभूत वह उत्तम ब्रह्मवैवर्त्त पुराण है ।।३९।। यह ब्रह्मवैवर्त्त पुराण अन्य पुराण तथा उप-पुराण और वेदों के भ्रम का भञ्जन करने वाला-हरि की भक्ति को प्रदान करने वाला और समग्र तत्वों के ज्ञान का बढ़ाने वाला है ।।४०।। यह ब्रह्मवैवर्त्त पुराण कामियों के कामों का प्रदान करने वाला और जो मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले हैं उनको मोक्ष देने वाला होता है। वैष्णव जनों को भगवद्भक्ति देने वाला कल्प वृक्ष के स्वरूप के समान है ।।४१।। ब्रह्म खण्ड में सबका बीज जो परब्रह्म का निरूपण है और जो पर से भी पर है उसको सन्त-योगीगण वैष्णव ध्यान में लाया करते है ।।४२।।

वैष्णवा योगिनः सन्तो न च भिन्नाश्च शौनक।
स्वज्ञानपरिपाकेन भवन्ति जीविनः क्रमात् ।।४३।।

सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद् योगिसङ्गेन योगिनः।
वैष्णवा भक्तसङ्गेन क्रमात् सद्योगिनः पराः ।।४४।।

यत्रोद्भवश्च देवानां देवानां सर्वजीविनाम्।
ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम् ।।४५।।

जीवकर्मविपाकश्च शालग्रामनिरूपणम्।
तासाञ्च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम् ।।४६।।
प्रकृतेर्लक्षणं तत्र कलांशानां निरूपणम्।
कीर्त्तेरुत्कीर्त्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितः ।।४७।

सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद् यत् स्थानं शुभाशुभम्।
वर्णनं नरकाणाञ्च रोगाणां मोक्षणं ततः ।।४८।।

हे शौनक! वैष्णव-योगी और सन्त भिन्न नहीं हैं। अपने ज्ञान के परिपाक से क्रम से जीवी हुआ करते हैं ।।४३।। सन्तपुरुषों के सङ्ग करने से सन्त होते हैं और योगियों के सङ्ग करने से योगी होते हैं। भक्तों के सङ्ग से वैष्णव होते हैं और इस प्रकार से क्रम से ये पर सद्योगी हुआ करते

हैं। ॥४४॥ जिसमे देवो का और सर्वजीवियों देवियों का उद्भव है वह इसके आगे प्रकृति खण्ड में देवियो का शुभ चरित दिया हुआ है ॥४५॥ जीवो के कर्मों का विपाक और शालग्राम का निरूपण तथा उनके कवच, स्तोत्र, मन्त्र और पूजा का भली भाँति निरूपण है ॥४६॥ वहीं पर प्रकृति का लक्षण और कलाओं का निरूपण है। उनकी कीर्ति का पूर्णतया कीर्तन और प्रभाव भी निरूपित किया गया है ॥४७॥ पुण्य वालों का और दुष्कृत (पाप) करने वालों का जो-जो शुभ और अशुभ स्थान है उसका तथा नरकों का एव रोगों का वर्णन है और फिर उनसे कैसे छुटकारा होता है इसका भी निरूपण वहाँ पर होता है ॥४८॥

ततो गणेशखण्डे च तज्जन्म परिकीर्त्तितम् ।
अतीवापूर्वचरित श्रुतिवेदसुदुर्लभम् ॥४९॥
गणेशभृगुसवादसर्वतत्त्वनिरूपणम् ।
निगूढकवचस्तोत्रमन्त्रतन्त्रनिरूपणम् ॥५०॥
श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च कीर्त्तितञ्च तत. परम् ।
भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीकृष्णजन्म कर्म च ॥५१॥
भुवो भारावतरण क्रीड़ाकौतुकमङ्गलम् ।
सतां सेतुविधानञ्च जन्मखण्डे निरूपितम् ॥५२॥
इद ते कथित विप्र ! पुराणप्रवर वरम् ।
चतु खण्डपरिमित सर्वधर्मनिरूपितम् ॥५३॥
सर्वेषामीप्सिततम सर्वाशापूर्णकारणम् ।
ब्रह्मवैवर्त्तक नाम सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥५४॥
सारभूत पुराणेषु केवल वेदसम्मितम् ।
विवृत ब्रह्मकात्स्न्यंञ्च कृष्णेन यत्र शौनक ! ॥५५॥
ब्रह्मवैवर्त्तक तेन प्रवदन्ति पुराविदः ।
इद पुराणसूत्रञ्च पुरा दत्तञ्च ब्रह्मणे ॥५६॥

इस प्रकृति खण्ड के पश्चात् गणेश खण्ड है उसमे उसका जन्म बताया गया है। यह बहुत ही अपूर्व चरित्र है जोकि श्रुति (वेद) मे भी सुदुर्लभ है

॥४९॥ गणेश और भृगु का सम्वाद है जिसमें सम्पूर्ण तत्वों का निरूपण किया गया है। अत्यन्त गूढ़ कवच-स्तोत्र-मन्त्र और तन्त्रों का निरूपण किया गया है ॥५०॥ इस गणेश खण्ड के पश्चात् श्रीकृष्ण जन्म खण्ड है और उसका बहुत अच्छी तरह कीर्त्तन किया गया है। इस परम पुण्य क्षेत्र भारत में श्रीकृष्ण का जन्म और उनके कर्म कलापों का वर्णन है ॥५१॥ इस जन्म खण्ड में भूमण्डल के भार का अवतरण जोकि क्रीड़ा के कौतुक स्वरूप परम मङ्गल है। सत्पुरुषों के सेतु का विधान इस में निरूपित किया गया है ॥५२॥ हे विप्र ! मैंने आपको यह चार खण्डों के परिमाण वाला-समस्त धर्मों के निरूपण करने वाला पुराणों में सबसे श्रेष्ठ और अत्यन्त उत्तम ब्रह्मवैवर्त्त पुराण बता दिया है ॥५३॥ यह ब्रह्मवैवर्त्त सभी को अभीष्ट पुराण है क्योंकि यह समस्त प्रकार की आशाओं के परिपूर्ण कर देने का कारणस्वरूप होता है और सम्पूर्ण इच्छितों के फलो का प्रदान करने वाला है ॥५४॥ यह पुराणों में सारस्वरूप है और केवल वेदों से सम्मित होता है। हे शौनक ! जिसमें कृष्ण के द्वारा ब्रह्म की पूर्णता को विवृत किया गया है ॥५५॥ इसीलिये इस पुराण को पुरावेत्ता विद्वान लोग ब्रह्मवैवर्त्त नाम से कहा करते हैं। और यह पुराण सूत्र पहिले ब्रह्मा के लिये दिया गया था ॥५६॥

निरामये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना ।
महातीर्थे पुष्करे च दत्तं धर्माय ब्रह्मणा ॥५७॥
धर्मेण दत्तं पुत्राय प्रीत्या नारायणाय च ।
नारायणर्षिर्भगवान् प्रददौ नारदाय च ॥५८॥
नारदो व्यासदेवाय प्रददौ जाह्नवीतटे ।
व्यासः पुराणसूत्रं तत् सव्यस्य विपुलं महत् ॥५९॥
मह्यं ददौ सिद्धक्षेत्रे पुण्यदे सुमनोहरम् ।
मयेदं कथितं ब्रह्मन् ! तत् समग्रं निशामय ॥६०॥
अष्टादशसहस्रन्तु व्यासेनेदं पुराणकम् ।

पुराणकात्स्न्र्य श्रवणे यत् फल लभते नर. ।
तत् फल लभते नूनमध्यायश्रवणेन च ॥६१॥

आमय (रोग-दोष) से रहित गोलोक मे परमात्मा श्रीकृष्ण ने तथा महातीर्थ पुष्करा राज मे ब्रह्मा ने धर्म के लिये दिया था ॥५७॥ फिर इसे धर्म न प्रीति के साथ पुत्र के लिये और नारायण के लिये दिया था । भगवान् नारायण ऋषि ने नारद देवर्षि के लिये दिया था ॥५८॥ देवर्षि नारद ने व्यास को दिया जो कि भागीरथी के तट पर प्रदान किया गया था । इसके अनन्तर महर्षि प्रवर व्यास ने बडा महान बनाकर प्रस्तुत किया था ॥५६॥ सुमनोहर इसको पुण्य प्रदान करने वाले सिद्ध क्षेत्र मे व्यास देव ने मुझे प्रदान किया था । हे ब्रह्मन् ! मैंने समग्र इसको कहा है उसे श्रवण करो ॥६०॥ व्यासदेव के द्वारा यह अठारह सहस्र पद्यो वाला पुराण निर्मित किया गया है । पूर्ण पुराणो के श्रवण करने से जो फल होता है निश्चय ही वही फल इसके एक अध्याय के श्रवण से मनुष्य प्राप्त किया करता है ॥६१॥

२—परब्रह्मनिरूपणम्

किमपूर्व श्रुत सौते ! परमाद्भुतमीप्सितम् ।
सर्व कथय सव्यस्य ब्रह्मखण्डमनुत्तमम् ॥१॥
वन्देगुरो पादपद्मव्यासस्यामिततेजस ।
हरिदेवान् द्विजान्नत्वाधर्मान् वक्ष्येसनातनान् ।२॥
यत् श्रुत व्यासवक्त्रेण ब्रह्मखण्डमनुत्तमम् ।
अज्ञानान्धतमोध्वसि ज्ञानवर्त्मप्रदीपकम् ॥३॥
ज्योति समूह प्रलये पुरासीत् केवल द्विज ! ।
सूर्य्यकोटिप्रभ नित्यमसख्यविश्वकारणम ॥४॥
स्वेच्छामयस्य च विभोस्तज्जोतिरुज्ज्वल महत् ।

ज्योतिरभ्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरम् ॥५॥
तेषामुपरि गोलोकं नित्यमीश्वरवद् द्विज ।
त्रिकोटियोजनायामविस्तीर्णं मण्डलाकृति ॥६॥
तेजःस्वरूपं सुमहद्रत्नभूमिमयं परम् ।
अदृश्यं योगिभिः स्वप्ने दृश्यं गम्यञ्च वैष्णवैः ॥७॥

इस अध्याय में परब्रह्म का निरूपण किया जाता है। शौनक जी ने कहा—हे सौते ! आज कितना अपूर्व और परम अद्भुत श्रवण किया है जोकि मन का इच्छित था। अब आप इस समस्त को भली भाँति विस्तृत करके अत्युत्तम ब्रह्म खण्ड को कहिए। सौति ने कहा—मैं सर्व प्रथम अमित तेज वाले गुरुदेव का व्यास जी के चरण कमल की वन्दना करता हूँ। फिर हरि-देवगण और ब्राह्मणों को नमस्कार करके सनातन धर्मों का कथन करूँगा ॥१-२॥ मैंने श्री व्यासदेव के मुख से जो यह अत्युत्तम ब्रह्म खण्ड सुना है जोकि अज्ञान के अन्धकार का ध्वंस करने वाला और ज्ञान के पथ का प्रदर्शन करने वाला है ॥३॥ हे द्विज ! पहिले प्रलय के होने पर यहां केवल एक ज्योति का समूह था जो कि एक करोड़ सूर्य की प्रभा के समान प्रभा से युक्त-नित्य और इस असंख्य विश्वों का कारण स्वरूप था ॥४॥ उस स्वेच्छामय विभु की वहीं ज्योति अत्यन्त उज्ज्वल और महान थी। उसके अभ्यन्तर में मनोहर तीन लोकों की ज्योति विद्यमान थी ॥५॥ हे द्विज ! उन सबके ऊपर ईश्वर के समान नित्य गोलोक धाम है जो तीन करोड़ योजन वाले आयाम से बहुत विस्तीर्ण (फैला हुआ-लम्बा चौड़ा) मण्डल के आकार वाला है ॥६॥ यह गोलोक धाम तेज के स्वरूप वाला-बड़े २ रत्नों से परिपूर्ण भूमि वाला-योगियों को भी दिखाई न देने वाला और स्वप्न में वैष्णवों के द्वारा जानने के योग्य और देखने योग्य है ॥७॥

योगेन धृतमीशेन चान्तरीक्षस्थितं वरम् ।
आधिव्याधिजरामृत्युशोकभीतिविवर्जितम् ॥८॥
सद्रत्नरचितासंख्यमन्दिरैः परिशोभितम् ।

लये कृष्णयुत सृष्टौ पापगोपीभिरावृतम् ॥९॥
तदधो दक्षिणे सव्ये पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।
वैकुण्ठ शिवलोकञ्च तत्सम सुमनोहरम् ॥१०॥
कोटियोजनविस्तीर्णं वैकुण्ठ मण्डलाकृति ।
लये शून्यञ्च सृष्टौ च लक्ष्मीनारायणान्वितम् ॥११॥
चतुर्भुजै. पार्षदैश्च जरामृ व्यादिवर्जितम् ।
सव्येचशिवलोकञ्च कोटियोजनविस्तृतम् ॥१२॥
लये शून्यञ्च सृष्टौ च सपार्षदशिवान्वितम् ।
गोलोकाभ्यन्तरे ज्योतिरतीवसुमनोहरम ॥१३॥
परमाह्लादक शश्वत् परमानन्द कारणम ।
ध्यायन्ते योगिन शाश्वद् योगेन ज्ञानचक्षुपा ॥१४॥

ईश के द्वारा योग से धारण किया हुआ और अन्तरिक्ष मे स्थित श्रेष्ठ तथा मानसिक व्यथा, शारीरिक रोग, बुढापा, मृत्यु, शोक और भय से रहित है ॥८॥ अच्छी जाति के रत्नो से निर्मित किये हुए असख्य मन्दिरो से चहुँ ओर शोभा वाला है । लय के समय मे कृष्ण से युक्त और सृष्टि के होने पर पाप गोपियों से आवृत रहता है ॥९॥ उसके नीचे के भाग में दक्षिण तथा वाम भाग में पचास करोड योजन दूरी पर वैकुण्ठ लोक और शिव लोक हैं जो कि उस गोलोक धाम के समान ही बहुत सुन्दर हैं ॥१०॥ वैकुण्ठ लोक एक करोड योजन के विस्तार से युक्त है और यह भी मण्डल के आकार वाला होता है । यह वैकुण्ठ लय के समय मे शून्य रहता है और सृष्टि के समय मे लक्ष्मी नारायण से युक्त रहता है ॥११॥ इस वैकुण्ठ मे जो लक्ष्मी नारायण के पार्षद होते हैं वे चार भुजाओ वाले होते हैं और वे जरा तथा मृत्यु आदि सबस रहित रहा करते है । वाम भाग मे शिव लोक है जिसका विस्तार भी एक करोड योजन का होता है ॥१२॥ लय के अवसर में यह शिव लोक भी शून्य स्वरूप वाला रहता है और सृष्टि के समय मे पार्षदो से समन्वित शिव से युक्त रहा करता है । गोलोक के भीतर अत्यन्त मनोहर ज्योति होती है ॥१३॥

यह गोलोक धाम परम आह्लाद के करने वाला और निरन्तर परम आनन्द के करने का कारण है। योगी जन सर्वदा योग से तथा ज्ञान के नेत्रों से इसका ध्यान किया करते हैं ॥१४॥

तदेवानन्दजनकं निराकारं परात्परम्।
तज्ज्योतिरन्तरे रूपमतीवसुमनोहरम् ॥१५॥
नवीननीरदश्यामं रक्तपङ्कजलोचनम्।
शारदीयपार्वणेन्दुशोभातिलोचनाननम् ॥१६॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोरमम्।
द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम् ॥१७॥
सद्रत्नभूषणौघेन भूषितं भक्तवत्सलम्।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥१८॥
श्रीवत्सवक्षःसंभ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम्।
सद्रत्नसाररचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥१९॥
रत्नसिंहासनस्थञ्च वनमालाविभूषितम्।
तमेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥२०॥
स्वेच्छामयं सर्वबीजं सर्वाधारं परात्परम्।
किशोरवयसं शश्वद्गोपवेशविधायकम् ॥२१॥

वही आनन्द को उत्पन्न करने वाले-बिना आकार वाले-पर से भी पर है। अन्तर में उसकी ज्योति का रूप अत्यन्त मनोहर है ॥१५॥ उसका नवीन मेघ के समान श्याम वर्ण होता है और लाल कमल के तुल्य नेत्र है तथा शरत्काल की पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र की शोभा से भी अधिक शोभा वाले लोचनों से युक्त मुख है ॥१६॥ करोड़ों कामदेव के सदृश लावण्य से युक्त है-लीला के धाम और मनोहर हैं। दो भुजाओं से युक्त-हाथ में वंशी धारण करने वाले मन्द मुस्कान से अन्वित और पीले रङ्ग का वस्त्र अर्थात् पीताम्बर धारण करने वाले है ॥१७॥ अच्छी जाति के उत्तम रत्नों के निर्मित भूषणों के समूह से विभूषित है और अपने भक्तों

पर प्यार करने वाले हैं। चन्दन से सब अङ्ग उनके उक्षित हैं जो चन्दन कस्तूरी और कुङ्कुम से अन्वित होता है ॥१९॥ वक्ष स्थल मे श्री वत्स से सम्भ्राजित कौस्तुभ से शोभायुक्त हैं। उसी परम ब्रह्म सनातन भगवान को जो स्वेच्छामय हैं सबका बीज स्वरूप हैं-सबका आधार है। और पर से भी पर हैं तथा किशोर अवस्था वाले हैं और सदा गोप के वेप के करने वाले हैं ॥२०-२१॥

कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यं भक्तानुग्रहकातरम् ।
निरीह निर्विकारञ्च परिपूर्णतम् विभुम् ॥२२॥
रासमण्डलमध्यस्थ शान्त रासेश्वर वरम् ।
मङ्गल्य मङ्गलार्हञ्य मङ्गल मङ्गलप्रदम् ॥२३॥
परमानन्दबीजञ्च सत्यमक्षरमव्ययम् ।
सर्वसिद्धीश्वर सर्वसिद्धिरूपञ्चसिद्धिदम् ॥२४॥
प्रकृते परमीशान निर्गुण नित्यविग्रहम ।
आद्य पुरुपमव्यक्त पुरुहूत पुरुष्टुतम् ॥२५॥
सत्य स्वतन्त्रमेकञ्च परमात्मस्वरूपकम् ।
ध्यायन्ते वैष्णवा शान्ता शान्त तत् परमायणाम् ॥२६॥
एव रूप पर बिभ्रद्भवानेक एव सः ।
दिग्भिश्च नभसा सार्द्ध शून्य विश्व ददर्श ह ॥२७॥

करोड़ा पूर्ण चन्द्र की शोभा से युक्त उनका स्वरूप है। सर्वदा अपने भक्तो पर अनुग्रह करने के लिये कातर रहा करते हैं। निरीह अर्थात् समस्त चेष्टाओ से रहित एव बिना विकार वाले है। परिपूर्णतम एव विभु अर्थात् सर्व व्यापक है ॥२२॥ रास रचने के मण्डल मे मध्य मे स्थित है-शान्त स्वरूप से युक्त-रास के अधिपति वर हैं स्वय मगल करने वाले-मगलो के योग्य-मगल-मय स्वरूप वाले और मगलो के प्रदान करने वाले है ॥२३॥ परम आनन्द के बीज स्वरूप है सत्य रूप है-क्षरण से रहित और अव्यय हैं। समस्त सिद्धियो के स्वामी है समस्त सिद्धियो के स्वरूप और सिद्धियो के प्रदान करने वाले है।

॥२४॥ प्रकृति से पर-सबके स्वामी-निर्गुण-नित्य विग्रह वाले-आद्य पुरुष-अव्यक्त पुरुहूत और पुरुष्टुत हैं ॥२५॥ वे सत्य - स्वतन्त्र और एक हैं तथा परमात्मा के स्वरूप वाले हैं। उस शांत स्वरूप परमायन का शांत वैष्णव ध्यान किया है ॥२६॥ इस प्रकार से पर रूप को धारण करने वाले वह भगवान एक ही हैं उन्होंने दिशाओं और आकाश के साथ शून्य विश्व को देखा था ॥२७॥

३-सृष्टिनिरूपणम् (१)

दृष्ट्वा शून्यमयं विश्वं गोलोकञ्च भयङ्करम्।
निर्जन्तु निर्जलंघोरं निर्वातं तमसावृतम् ॥१॥
वृक्षशैलसमुद्रादिविहीनं विकृताकृतम्।
निर्मूर्त्तिकञ्च निर्धातु निःशस्यं निस्तृणं द्विज ॥२॥
आलोच्य मनसा सर्वमेक एवासहायवान्।
स्वेच्छया स्रष्टुमारेभे सृष्टिं स्वेच्छामयः प्रभुः ॥३॥
आविर्बभूवुः सर्वादौ पुंसो दक्षिणपार्श्वतः।
भवकारणरूपाश्च मूर्त्तिमन्तस्त्रयो गुणाः ॥४॥
ततो महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्र एव च।
रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चैवेतिसञ्ज्ञकाः ॥५॥
आविर्बभूव तत्पश्चात् स्वयं नारायणः प्रभुः।
श्यामो युवा पीतवासा वनमाली चतुर्भुजः ॥६॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरः स्मेरमुखाम्बुजः।
रत्नभूषणभूषाढ्यः शार्ङ्गी कौस्तुभभूषणः ॥७॥

इस अध्याय में सृष्टि का निरूपण किया जाता है। सौति ने कहा—इस विश्व को शून्यता से पूर्ण तथा गोलोक को भयंकर देख कर जो कि जंतुओं

से रहित-निर्जल-घोर-वायु रहित और अधकार से आवृत था ॥१॥ हे द्विज ! यह वृक्ष-शैली और समुद्र आदि से विहीन था-विकृत आकृति से युक्त-मूर्त्तियो से रहित निर्धातु शस्यो से वर्जित-बिना तृणो वाला था ॥२॥ उस समय मे स्वेच्छामय प्रभु ने इस सबको मनसे आलोचित करके एक ही के बिना किसी की सहायता प्राप्त किये हुए अपनी ही इच्छा से इस सृष्टि का सृजन करना आरम्भ कर दिया था ॥३॥ सबके आदि में परम पुरुष के दक्षिण पार्श्व से संसार के कारण स्वरूप मूर्तिमान तीन गुण प्रकट हुए थे ॥४॥ इसके पश्चात् उन से यह सत्व और महत्तत्व से अहकार और अहकार से पच तमात्रा प्रकट हुए थे जो रूप-रस-गध स्पर्श-और शब्द इन सज्ञाओं वाले थे प्रकट हुए ॥५॥ इसके अनन्तर स्वय नारायण प्रभु अविर्भूत हुए थे जो श्यामवर्ण वाले-युवा अवस्था से युक्त-पीताम्बरधारी वनमाला पहिने हुए और चार भुजाओ वाले थे ॥६॥ प्रभु का स्वरूप उस समय मे शख-चक्र-गदा और पदम का धारण करने वाला मन्द मुस्कान से युक्त मुख कमल वाला रत्नो-के भूषणो से विभूषित-शार्ङ्ग धनुष को धारण किये हुए और कौस्तुभ के भूषण वाला था ॥७॥

श्रीव सत्र.ा श्रीवास श्रीनिधि श्रीविभावन
शारदेन्दुप्रभायुष्टमुखे दुसुमनोहर ॥८॥
कामदेवप्रभायुष्टरूपलावण्यसुन्दर ।
श्रीकृष्णपुरत स्थित्वा तुष्टाव त पुटाञ्जलिः ॥६॥
वर वरेण्य वरद वरार्हं वरकारणम् ।
कारण कारणानाञ्च कर्म तत्कर्मकारणम् ॥१०॥
तपस्तत्फलद शश्वत्तपस्विनाञ्च तापसम् ।
वन्दे नवघनश्याम स्वात्माराम मनोहरम् ॥११॥
निष्काम कामरूपञ्च कामघ्न कामकारणम् ।
सर्व सर्वेश्वर सर्वबीजरूपमनुत्तमम् ॥१२॥
वेदरूप वेदबीज वेदोक्तफलद फलम् ।

वेदज्ञं तद्विधानञ्चसर्ववेदविदां वरम् ॥१३॥
इत्युक्त्वा भक्तियुक्तश्च स उवास तदाज्ञया।
रत्नसिंहासने रम्ये पुरतः परमात्मनः ॥१४॥

वक्षःस्थल में श्री वत्स का चिन्ह धारण किए हुए श्री का वास-श्री के निधि और श्री को विभावित करने वाले तथा शरत्काल के चन्द्र की प्रभा से युक्त मुख चन्द्र से अत्यन्त मनोहर थे ॥८॥ काम देव की प्रभा से युक्त रूप और लावण्य से परम सुन्दर वह अंजलि बाँधकर श्री कृष्ण के आगे स्थित होकर उनकी स्तुति करने लगे थे ।६। नारायण ने कहा—परम श्रेष्ठ-वरण करने के योग्य-वर होने की योग्यता वाले-वर के कारण-कारणों के भी कारण और उस कर्म के स्वरूप जो कर्मों का कारण होता है ऐसे आप है ॥१०॥ उसके फल के प्रदान करने तप है और निरन्तर तपस्वियों के भी तापस हैं-परम मनोहर स्वात्मा राम अर्थात् अपने ही आत्मा में रमण करने वाले नूतन मेघ के समान श्याम वर्ण वाले आपको मैं वन्दना करता हूँ ॥११॥ आप स्वयं कामनाओं से रहित हैं और काम रूप वाले हैं। आप काम के नाशक है और काम के कारण स्वरूप भी हैं। आप ही सब है-सब के ईश्वर हैं और अति उत्तम सब के बीज रूप हैं ॥१२॥ आप वेद स्वरूप हैं वेदों के बीज है और वेदों में कहे हुए फल के प्रदान करने वाले तथा स्वयं फल रूप हैं। आप वेदों के तत्व के ज्ञाता हैं-वेदों के पूर्ण विधान हैं और समस्त वेदों के विद्वानों में परम श्रेष्ठ हैं ॥१३॥ भक्ति भाव से युक्त उस नारायण ने इस प्रकार से स्तवन किया था और फिर उनकी आज्ञा से परमात्मा के आगे रत्नों के रम्य सिंहासन पर बैठ गये थे ॥१४॥

नारायणकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।
त्रिसन्ध्यञ्च पठेन्नित्यं पापं तस्य नविद्यते ॥१५॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्य्यार्थी लभते प्रियाम्।
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धनं भ्रष्टधनोलभेत् ॥१६॥
कारागारेविपद्ग्रस्तःस्तोत्रेणमुच्यतेध्रुवम्।

रोगात् प्रमुच्यतेरोगीवर्षं श्रुत्वातु संयतः ॥१७॥
आविर्बभूव तत्पश्चादात्मनो वामपार्श्वतः ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशः पञ्चवक्त्रो दिगम्बरः ॥१८॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरो वर ।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखर. ॥१९॥
त्रिशूलपट्टिशधरो जपमालाकरः पर ।
सर्वसिद्धेश्वर. सिद्धो योगिनाञ्च गुरोर्गुरु. ॥२०॥
मृत्योर्मृत्युरीश्वरश्च मृत्युर्मृत्युञ्जयः शिव· ।
ज्ञानानन्दो महाज्ञानी महाज्ञानप्रदः परः ॥२१॥
पूर्णचन्द्रप्रभायुष्टसुखदृश्यो मनोहरः ।
वैष्णवानाञ्च प्रवर· प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥२२॥
श्री कृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव त पुटाञ्जलि ।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्ग साश्रुनेत्रोऽतिगद्गदः ॥२३॥

इस नारायण के द्वारा किये गये स्तोत्र को जो कोई पुरुष समाहित होकर श्रवण करता है और तीनो सन्ध्याओ मे जो नित्य इसका पाठ किया करता है उसको कोई भी पाप नही रहा करता है ॥१५॥ जो पुत्र की इच्छा रखने वाला है उसे पुत्र प्राप्त होता है और जो भार्या के चाहने वाला पुरुष है उसे भार्या की प्राप्ति हो जाती है। जिसका राज्य भ्रष्ट हो गया हो उसे राज्य का लाभ होता है और भ्रष्ट धन वाला पुरुष धन का लाभ किया करता है ॥१६॥ जो कोई कारागार मे विपत्ति से ग्रस्त होकर निग्रहीत हो वह इस स्तोत्र के पाठ द्वारा निश्चय ही मुक्त हो जाता है। रोगी पुरुष ,रोग से छुटकारा पाता है जो एक वर्ष तक सयत होकर इसका श्रवण करता रहता है ।१७। यह ब्रह्मवैवर्त्त मे नारायण कृत श्री कृष्ण स्तोत्र समाप्त होता है। सौति ने कहा—इसके अनन्तर अपने वाम पार्श्व से शुद्ध स्फटिक के सदृश पाँच मुखो वाला दिगम्बर अर्थात बिल्कुल नग्न का आविर्भाव हुआ था ॥१८॥ तपे हुए

सुवर्ण के तुल्य जटाओं के भार को धारण करने वाला-परम श्रेष्ठ-थोड़े से हास्य से युक्त प्रसन्न मुख वाले-तीन नेत्रों को धारण करने वाले और मस्तक में चन्द्र को धारण किये हुए इनका स्वरूप था ॥१९॥ त्रिशूल और पट्टिश को धारण करने वाले-हाथ मे जप करने की माला लिये हुए-समस्त सिद्ध गण के स्वामी-परम सिद्ध और योगियो के गुरु के भी गुरु थे ॥२०॥ ये मृत्यु के भी मृत्यु-ईश्वर-मृत्यु और मृत्यु के जीतने वाले शिव थे। ज्ञान के आनन्द वाले-महाज्ञानी और महान ज्ञान के प्रदान करने वाले पर थे ॥२१॥ पूर्ण चन्द्र की प्रभा से अपुष्टमुख से देखने के योग्य और मन को हरण करने वाले थे। यह शिव वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ शिरोमणि थे और अपने ब्रह्म तेज से पुज्वलित हो रहे थे ॥२२॥ यह भी श्री कृष्ण के आगे स्थित होकर पुटाञ्जलि हो गये थे और पुलकों से अङ्कित समस्त देह वाले आंखो से अश्रुपात करते हुए अत्यन्त गद्गद होकर उनकी स्तुति करते थे ॥२३॥

जयस्वरूप जयेदं जयशं जयकारणम् ।
प्रवरं जयदानाञ्च वन्दे तमपराजितम् ॥२४॥
विश्वं विश्वेश्वरेशञ्च विश्वेशं विश्वकारणम् ।
विश्वाधारञ्च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम् ॥२५॥
विश्वरक्षाकारणञ्च विश्वघ्नं विश्वजं परम् ।
फलवीज फलाधारं फलञ्च तत्फलप्रदम् ॥२६॥
तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां वरम् ।
इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे ।
नारायणञ्च संभाष्य स उवास तदाज्ञया ॥२७॥
इति शम्भुकृतं स्तोत्रं यो जनः संयतः पठेत् ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य विजयश्च पदे पदे ॥२८॥
सन्ततं वर्द्धते मित्रं धनमैश्वर्य्यमेव च ।
शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःखानि दुरितानि च ॥२९॥

श्री महादेव ने कहा—जय के स्वरूप वाले-जय को प्रदान करने वाले जय के स्वामी और जय के कारण जय देने वालों में अति श्रेष्ठ उस अपराजित को मैं वन्दना करता हूँ ॥२४॥ विश्व रूप विश्व के ईश के भी ईश्वर-विश्व के स्वामी विश्व के कारण विश्व के आधार-विश्वस्त और विश्व के कारण के भी कारण आप है ॥२५॥ इस विश्व की रक्षा के कारण-विश्व का हनन करने वाले विश्व से जन्मा-पर-फल के बीज फल के आधार फल स्वरूप और उसके फल को प्रदान करने वाले आप हैं ।२६। महादेव जी ने कहा आप तेज के स्वरूप है तेज के देने वाले हैं और सम्पूर्ण तेजस्वियों में पर हैं। इस प्रकार से श्रीकृष्ण की स्तुति करके अमूल्य रत्नों के सिंहासन पर उनको नमस्कार करके नारायण से कह कर वह उनकी आज्ञा से निवसित हो गये थे ॥२७॥ इस शम्भु के द्वारा किये गये स्तोत्र का जो मनुष्य संयत होकर पढ़ता है उसको समस्त सिद्धियों और पद-पद में विजय होता है ॥२८॥ उस पाठ करने वाले को सदा मित्रों और धन की तथा ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। शत्रुओं की सेना का क्षय होता है तथा दुःख और पाप भी क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। यह शम्भुकृत श्री कृष्ण स्तोत्र है ॥२९॥

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य नाभिपङ्कजात् ।
महातपस्वी वृद्धश्च कमण्डलुकरो वर ॥३०॥
शुक्लवासा शुक्लदन्त शुक्लकेशश्चतुर्मुख ।
योगीश शिल्पिनामीश सर्वेषा जनको गुरु ॥३१॥
तपसां फलदाता च प्रदातासर्वसम्पदाम् ।
स्रष्टा विधाता कर्त्ताचहर्त्ताचसर्वकर्मणाम ॥३२॥
धाता चतुर्णां वेदाना ज्ञाता वेदप्रसू पति ।
शान्त सरस्वतीकान्त सुशीलश्चकृपानिधि ॥३३॥
श्रीकृष्णपुरत स्थित्वा तुष्टाव त पुटाञ्जलि ।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मकन्धर ॥३४॥

सौति ने कहा—इस के अनन्तर श्री कृष्ण की नाभि के कमल से महान तपस्वी कमंडल को धारण करने वाले वृद्ध एवं वर का अविर्भाव हुआ था ॥३०॥ इनके वसन शुक्ल वर्ण के थे और ये शुक्ल दाँतों वाले-शुक्ल केशों वाले-चार मुखों से युक्त योगी-शिल्पियों के ईश और सबको जन्म देने वाले गुरु थे ।।३१॥ यह तपों के फल के देने वाले और समस्त सम्पत्तियों के प्रदान करने वाले थे । सम्पूर्ण कर्मों के स्रष्टा करने वाले-विधाता-कर्त्ता और हर्त्ता थे ॥३२॥ यह चारों वेदा के धाता-वेदों के ज्ञाता-वेदों को प्रसूत करने वाले-पति-परम शान्त-सरस्वती के कान्त सुशील और कृपा के निधि थे ॥३३॥ पुलकों से अङ्कित समस्त अङ्गों वाले और भक्ति से नम्र आत्म कन्धरा वाले ब्रह्मा ने पुटाञ्जलि होते हुए श्री कृष्ण के आगे स्थित होकर उनकी स्तुति की थी ॥३४॥

कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम् ।
अव्यक्तमव्ययव्यक्तं गोपवेषविधायिनम् ॥३५॥
किशोरवयसंशान्तं गोपीकान्तं मनोहरम् ।
नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥३६॥
वृन्दावनवनाभ्यर्णे रासमण्डलसंस्थितम् ।
रासेश्वरं रासवासं रासोल्लाससमुत्सुकम् ॥३७॥
इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे ।
नारायणेशौ संभाष्य स उवास तदाज्ञया ॥३८॥
इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत् ॥३९॥
भक्तिर्भवति गोविन्दे पुत्रपौत्रविवर्द्धनी ।
अकीर्त्तिः क्षयमाप्नोति सत्कीर्त्तिर्वर्द्धते चिरम् ॥४०॥

ब्रह्मा जी ने कहा—गुणों से अतीत-एक अक्षर गोविन्द कृष्ण को मैं

प्रणाम करता हूँ । जो अव्यक्त-अव्यय-व्यक्त और गोप वेष के विधायक हैं ॥३५॥ किशोर वय वाले-परम शान्त-गोपीकान्त और मन को हरण करने वाले हैं। ब्रह्मा ने कहा आप नवीन मेघ के सदृश श्याम वर्ण वाले हैं, करोड़ो कामदेवो के समान अति सुन्दर हैं ॥३६॥ वृन्दावन के निकट वन मे रासमण्डल मे संस्थित हैं, रास के अधीश तथा रास मे वास करने वाले और रास के उल्लास मे समुत्सुक हैं ॥३७॥ इस प्रकार से श्री कृष्ण का स्तवन करके उनको प्रणाम किया था और नारायणेश ऐसा सम्भाषण करके उनकी आज्ञा पाकर वर रत्नो के सिंहासन पर निवास किया था ॥३८॥ यह ब्रह्मा जी के द्वारा स्तोत्र है इसको जो प्रातः काल मे उठकर पढ़ता है उसके पाप सब नष्ट हो जाते हैं और जो बुरा स्वप्न होता है वह अच्छा स्वप्न हो जाया करता है ॥३९॥ इस स्तोत्र के पाठ करने वाले पुरुष की भी गोविन्द मे भक्ति हो जाती है जो पुत्र और पौत्रो के वर्धन करने वाली होती है । अकीर्त्ति का नाश हो जाता है और सत्कीर्ति चिरकाल तक बढ़ा करती है ॥४०॥ यह ब्रह्मा का किया हुआ कृष्ण स्तोत्र है ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् वक्षसः परमात्मनः ।
सस्मितः पुरुषः कश्चित् शुक्लवर्णोजटाधरः ॥४१॥
सर्वसाक्षी च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्वकारणम् ।
समः सर्वत्र सदयो हिंसाकोपविवर्जितः ॥४२॥
धर्मज्ञानयुतो धर्मो धर्मिष्ठो धर्मदो भवेत् ।
स एव धर्मिणां धर्मः परमात्मकलोद्भवः ॥४३॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा प्रणम्य दण्डवद् भुवि ।
तुष्टाव परमात्मानं सर्वेशं सर्वकामदम् ॥४४॥
कृष्णं विष्णुं वासुदेवं परमात्मानमीश्वरम् ।
गोविन्दं परमानन्दमेकमक्षरमच्युतम् ॥४५॥
गोपेश्वरञ्च गोपीशं गोपं गोरक्षकं विभुम् ।
गवामीशञ्च गोष्ठस्थंगोवत्सपुच्छधारिणम् ॥४६॥

गोगोपगोपीमध्यस्थं प्रधानं पुरुषोत्तमम् ।
वन्दे नवघनश्यामं रासवासं मनोहरम् ॥४७॥
इत्युच्चार्य्य समुत्तिष्ठन् रत्नसिंहासने वरे ।
ब्रह्मविष्णुमहेशांस्तान् सम्भाष्य स उवासह ॥४८॥
चतुर्विंशति नामानि धर्मवक्त्रोद्गतानि च ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स सुखी सर्वतो जयी ॥४९॥
मृत्युकाले हरेर्नाम तस्य साध्यं भवेद् ध्रुवम् ।
स यात्यन्ते हरेःस्थानंहरिदास्यंभवेद्ध्रुवम् ॥५०॥
नित्यं धर्मस्तं घटते नाधर्मे तद्रतिर्भवेत् ।
चतुर्वर्गफलं तस्य शश्वत् करगतं भवेत् ॥५१॥
तं दृष्ट्वा सर्वपापानि पलायन्ते भयेन च ।
भयानि चैव दुःखानि वैनतेयमिवोरगाः ॥५२॥

सौति ने कहा—इसके अनन्तर परमात्मा के वक्षःस्थल से कोई एक स्मित से युक्त शुक्ल वर्ण वाला जटाओं को धारण करने वाला पुरुष प्रकट हुआ था ।।४१ वह सर्व का साक्षी सबका ज्ञाता-सबका सर्व कारण था । सर्वत्र सम-दया से युक्त और हिंसा तथा कोप से रहित था ।।४२।। धर्म और ज्ञान से युक्त-धर्म रूप-धर्मिष्ठ-धर्म को देने वाला था । वह ही धर्मियों का धर्म और परमात्मा की कला से उद्भूत होने वाला था ।।४३।। वह श्री कृष्ण के आगे स्थित होकर दण्ड की भाँति साष्टाङ्ग प्रणाम भूमि मे करके सर्वेश समस्त कामनाओं के देने वाले परमात्मा की स्तुति करने लगा ।।४४।। मैं कृष्ण-विष्णु-वासुदेव-परमात्मा-ईश्वर-गोविन्द-परमानन्द-एक-अक्षर और अच्युत की वन्दना करता हूँ ।।४५।। गोपों के ईश्वर-गोपियों के ईश-गोप-गायों के रक्षक-विभु-गौओं के ईश-गोष्ट में संस्थित और गोवत्स पुच्छ के धारण करने वाले की वन्दना करता हूँ ।।४६।। गो-गोपी और गोपों के मध्य मे स्थित-प्रधान-पुरुषों में उत्तम-नव घन के समान

श्यामवर्ण वाले-रास मे वास करने वाले-मन के हरण करने वाले को प्रणाम करता हूं।४७। यह कहकर ब्रह्मा-विष्णु और महेश से सम्भाषण करके समुत्थित होता हुआ वह वर रत्नों के सिंहासन पर निवासित हो गया था ।४८। धम के मुख से निकले हुए इन चौबीस नामो का जो प्रातः काल मे उठकर पाठ करता है वह सब प्रकार से जय वाला सुखी होता है ।।४९।। उसको मृत्यु के समय मे हरि का नाम निश्चय ही साध्य हो जाता है। वह अन्त मे हरि के स्थान को जाता है और निश्चित रूप से हरि का दास होता है ।।५०।। धर्म उसको नित्य ही धर्म करने को प्रेरित किया करता है और उसकी कमी भी अधर्म मे रति नही होती है। धर्मार्थ काम मोक्ष इस चतुर्वग का फल सर्वदा उसके हस्तगत होता है ।।५१। उसका दर्शन करके समस्त पाप भय से दूर भाग जाया करत हैं। उरग (सर्प वैनतय (गरुड) को देखने की भाँति दु ख भी उसक भयभीत होकर भाग जाते है ।।५२।। यह धर्म कृत स्तोत्र है।

आविर्बभूव कन्यैका धर्मस्य वामपार्श्वत ।
मूर्त्तिर्मूर्त्तिमती साक्षात् द्वितीयकमलालया ।।५३।।
आविर्बभूव तत्पश्चात् मुखत परमात्मन ।
एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी ।।५४।।
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या शरत्पङ्कजलोचना।
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूपणभूपिता ।।५५।।
सस्मिता सुदती श्यामा सुन्दरीणाञ्चसुन्दरी ।
श्रेष्ठाश्रुतीनां शास्त्राणांविदुषां जननीपरा ।।५६।।
वागधिष्ठातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता।
शुद्धसत्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती ।।५७।।
गोविन्दपुरत स्थित्वा जगौ प्रथमत. शुभम्।
तन्नामगुणकीर्तिञ्च वीणया सा ननर्त्त च ।।५८।।

कृतानि यानि कर्माणि जन्मे जन्मे युगे युगे ।
तानिसर्वाणि हरिणा तुष्टाव संपुटाञ्जलिः ॥५६॥

सौति ने कहा-इसके अनन्तर उस धर्म के वामपार्श्व से एक कन्या का अविर्भाव हुआ था। यह मूर्तिमती साक्षात् दूसरी कमलालया (लक्ष्मी) की ही मूर्ति थी ॥५३॥ इसके पश्चात् परमात्मा के मुख से एक शुक्ल वर्ण वाली करों में वीणा और पुस्तक को धारण करने वाली देवी प्रकट हुई थी ॥५४॥ यह देवी करोड़ों पूर्ण चन्द्रों की शोभा से युक्त थी और शरत्काल के विकसित कमलों के समान नेत्रों वाली थी। वह्नि के समान शुद्ध वस्त्रों के परिधान करने वाली तथा रत्नों के भूषणों से विभूषित थी ॥५५॥ वह स्मित से युक्त सुन्दर दाँतों वाली-श्याम वर्ण और सुन्दरियों में भी अति सुन्दरी थी श्रुतियों में परम श्रेष्ठ और शास्त्रों के विद्वानों की परा जननी थी ॥५६॥ वह वाणी की अधिष्ठातृ देवी थी और कवियों की इष्टदेवता थी। वह शुद्ध सत्व स्वरूप से युक्त शान्त स्वरूप वाली सरस्वती देवी थी ॥५७॥ वह गोविन्द के आगे स्थित होकर उसने प्रथम ही शुभ गायन किया था जिसमें उनके नाम और गुणों की कीर्त्ति विद्यमान थी इसके पश्चात् उसने नृत्य किया था ॥५८॥ युग-युग में और जन्म-जन्म में जो भी होने कर्म किये थे उन सब के विषय में हाथ जोड़कर सरस्वती ने स्तवन किया था ॥५९॥

रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् ।
रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥६०॥
रासेश्वरं रासकरं वरं रासेश्वरीश्वरम् ।
रासाधिष्ठातृदेवञ्च वन्दे रासविनोदिनम् ॥६१॥
रासायासपरिश्रान्तं रासरासविहारिणम् ।
रासोत्सुकानां गोपीनां कान्तं शान्तंमनोहरम् ॥६२॥
प्रणम्य तं तानीत्युक्त्वा प्रहृष्टवदना सती ।

उवास सा सकामा च रत्नसिंहासने वरे ॥६३॥
इति वाणीकृत स्तोत्र प्रातरुत्थाय य पठेत् ।
बुद्धिमान् धनवान् सोऽपि विद्यावान् पुत्रवान् सदा ॥६४॥

सरस्वती ने कहा—मैं रासमण्डल के मध्य मे स्थित रास के उल्लास मे अति उत्सुकता रखने वाले—र न जटित सिंहासन पर स्थित और रत्नो के निर्मित भूषणो से सविभूषित की वन्दना करती हूँ ॥६०॥ रास के ईश्वर-रास के करने वाले-वर और रासेश्वरी के स्वामी-रास के अधिष्ठातृ देव तथा रास से विनोद करने वाले को मैं प्रणाम करती हूँ ॥.१॥ रास लीला मे होने वाले आयास से थके हुए-रास मे रास का विहार करने वाले-रास लीला मे अत्युत्सुक गोपियो के कान्त-शान्त और मनोहर अर्थात सुन्दर एव मन का हरण करने वाले को प्रणाम करके हृष्ट मुख वाली सती मे उनको कहकर सकामा वह श्रेष्ठ रत्नो के सिंहासन पर बैठ गई थी ॥६२ ६३॥ यह सरस्वती देवी के द्वार पर विरचित स्तोत्र है। इमका जो प्रात काल मे उठकर पाठ करता है वह बुद्धिमान-धनवान-विद्यावान और सदा पुत्रवान होता है ॥६४॥ यह सरस्वती देवी कृत स्तोत्र यहा समाप्त हुआ है।

आविर्बभूव मनस कृष्णस्य परमात्मन ।
एका देवी गौरवर्णा रत्नालङ्कारभूपिता ॥६५॥
पीतवस्त्रपरीधाना सस्मिता नवयौवना ।
सर्वैश्वर्य्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्फलप्रदा ॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥६६॥
सा हरे पुरत स्थित्वा परमात्मानमीश्वरम् ।
तुष्टाव प्रणता साध्वी भक्तिनम्रात्मकन्धरा ॥६७॥
सत्यस्वरूप सत्येश सत्यबीज सनातनम् ।
सत्याधार च सत्यज्ञ सत्यमूल नमाम्यहम् ॥६८॥

इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा सा चोवास सुखासने ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा भासयन्ती दिशो दश ॥६९॥
आविर्बभूव तत्पश्चात् बुद्धेश्च परमात्मनः ।
सर्वाधिष्ठातृदेवी सा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥७०॥

सौति ने कहा-इसके उपरान्त फिर परमात्मा श्री कृष्ण के मनसे गोरे वर्ण वाली रत्नों के अलङ्कारों से भूषित एक देवी का अविर्भाव हुआ था ॥६५॥ वह देवी पीत वर्ण के वस्त्र का परिधान करने वाली-मन्दमुस्कान से समन्वित नवीन यौवन से युक्त-समस्त ऐश्वर्यों की अधिदेवी और वह सम्पूर्ण सम्पत्तियों के फलों का प्रदान करने वाली थी। वह स्वर्ग में तो स्वर्ग लक्ष्मी और राजाओं में राजलक्ष्मी थी ॥६६॥ वह देवी हरि के सामनें स्थित हो गई और प्रणत होती हुई भक्ति भाव नम्र आत्म कन्धरावाली होकर साध्वी ने परमात्मा ईश्वर का स्तवन किया था ॥६७॥ महालक्ष्मी ने कहा-मैं आप को नमस्कार करती हूँ जोकि आप सत्य के स्वरूप-सत्य के ईश-सत्य के बीज-सनातन-सत्य के आधार रूप-सत्य के ज्ञाता और सत्य के मूल हैं ॥६८॥ इतना कहकर उसने श्री हरि को नमस्कार किया था फिर तप्त सुवर्ण की आभा के सदृश आभा वाली दशों दिशाओं को अपनी आभा से प्रकाशित करती हुई वह सुखासन पर स्थित हो गई थी ॥६९॥ इसके पश्चात परमात्मा की बुद्धि से सब की अधिष्ठात् देवी ईश्वरी मूल प्रकृति का अविर्भाव हुआ था ॥७०॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्य्यकोटिसमप्रभा ।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या शरत्पङ्कजलोचना ॥७१॥
रक्तवस्त्रपरीधाना रत्नाभरणभूषिता ।
निद्रातृष्णा क्षुत्पिपासा दया श्रद्धाक्षमादिकाः ॥७२॥
तासाञ्च सर्वशक्तीनामीशाधिष्ठातृदेवता ।
भयङ्करी शतभुजा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥७३॥

आत्मन शक्तिरूपा सा जगतां जननीपरा ।
त्रिशूलशक्तिशार्ङ्गञ्च धनु खड्गशराणि च ॥७४॥
शङ्खचक्रगदापद्ममक्षमाला कमण्डलुम ।
वज्रमङ्कुशपाशञ्च भुशुण्डीदण्डतोमरम् ॥७५॥
नारायणास्त्र ब्रह्मास्त्र रौद्र पाशुपत तथा ।
पार्ज्जन्य वारुणवाह्न गान्धर्वं बिभ्रती सती ।
कृष्णस्य पुरत स्थित्वा तुष्टाव त मुदान्विता ॥७६॥

तपे हुए सोने की कान्ति के तुल्य आभा वाली और करोडों सूर्यों के भा से युक्त-अल्प हास्य से प्रसन्न मुख वाली तथा शरत्काल के विकसित कमलों के सम सुन्दर नेत्रों वाली वह थी ॥७१॥ रक्त वस्त्रों के परिधान वाली-रत्नों के आभरणों से समलङ्कृत तथा निद्रा,कृष्णा, क्षुत्, पिपासा,दया, श्रद्धा और क्षमा आदि उन सब की समस्त शक्तियों की वह अधिष्ठातृ देवता थी-भय करने वाली-सौ भुजाओं वाली-दुर्गति के नाश करने वाली वह दुर्गा देवी थी ॥७२॥७३॥ आत्मा की शक्ति रूपा वह जगतों की पर जननी थी और वह त्रिशूल-शक्ति- शार्ङ्ग धनु खड्ग- शर-शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म अक्षमाला-कमण्डल-वज्र-अङ्कुश- पाश- भुशुण्डी-दण्ड-तोमा-नारायणास्त्र-ब्रह्मास्त्र-रौद्र-पाशुपत-पार्जन्य-वारुण-वाह्न और गान्धर्व अस्त्रों को धारण करती हुई सती श्री कृष्ण के आगे स्थित होकर आनन्द से युक्त हो उनकी स्तुति करने लगी थी ॥७४-७६॥

अहं प्रकृतिरीशानी सर्वेशा सर्वरूपिणी ।
सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ॥७७॥
त्वया सृष्टा न स्वतन्त्रता त्वमेवजगापतिः ।
गतिश्चपाता स्रष्टा च संहर्त्ता च पुनर्विधिः ॥७८॥
परमानन्दरूपं त्वा वन्दे चानन्दपूर्वकम् ।

चक्षुर्निमेषकाले च ब्रह्मणः पतनं भवेत् ॥७९॥
तस्यप्रभावमतुलवर्णितुं कः क्षमोविभो ! ।
भ्रूभङ्गलीलामात्रेण विष्णुकोटिं सृजेत्तु यः ॥८०॥
चराचरांश्च विश्वेषु देवान् ब्रह्मपुरोगमान् ।
मद्विधाः कति वादेवीःस्रष्टुं शक्तश्चलीलया ॥८१॥
परिपूर्णतमं स्वीड्यं वन्द चानन्दपूर्वकम् ।
महान् विराट् यत्कलांशो विश्वासंख्याश्रयो विभो ! ॥
वन्दे चानन्दपूर्वं तं परमात्मानमीश्वरम् ॥८२॥

प्रकृति ने कहा-मैं ईशानी प्रकृति हूँ जोकि सबकी स्वामिनी और सर्व रूपिणी हूँ । समस्त शक्तियों के स्वरूप वाली हूँ और मेरे द्वारा ही यह समस्त जगत शक्ति वाला है ॥७७॥ मैं आप के द्वारा सृजन की गई हूँ अतएव स्वतन्त्र नही हूँ । आप ही जगतों के पति हैं । आप ही सबकी गति हैं-पाता अर्थात पालन करने वाले हैं-सृजन करने वाले-संहार करने वाले और फिर विधि हैं ॥७८॥ आप परम आनन्द के स्वरूप हैं, मैं आनन्द के साथ आपकी वन्दना करती हूँ । आपके चक्षु के निमेष काल में ब्रह्मा का पतन होता है ॥७९॥ हे विभो ! उन आपके अतुल प्रभाव को कौन वर्णन करने के लिये समर्थ हो सकता है ? जो अपने एक भ्रूभङ्ग मात्र से ही विष्णुओं की कोटि का सृजन कर देता है ॥८०॥ आप समस्त विश्वों में ब्रह्मा से आदि देवों को और अन्य चर और अचरों का सृजन किया करते हैं । अथवा मुझ जैसी कितनी ही देवियों को लीला से ही सृजन करने लिये आप समर्थ हैं ॥८१॥ हे विभो ! भली भाँति स्तुति करने के योग्य परिपूर्णतम आपकी मैं आनन्द के साथ वन्दना करती हूँ । जिसकी कला का अंश विश्व-संख्या का आश्रय महान विराट् है उस परमात्मा ईश्वर की मैं आनन्दपूर्वक वन्दना करती हूँ ॥८२॥

यञ्च स्तोतुमशक्ताश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
वेदाः अहञ्च वाणी च वन्दे तं प्रकृतेः परम् ॥८३॥

वेदाश्च विदुषा श्रेष्ठाः स्तोतु शक्ता न लक्षत ।
निर्लक्ष्य क क्षम' स्तोतु त निरीह नमाम्यहम् ॥८४॥
इत्येवमुक्त्वा सा दुर्गा रत्नसिंहासने वरे ।
उवास नत्वा श्रीकृष्ण तुष्टुवुस्तासुरेश्वरा ॥८५॥
इति दुर्गाकृत स्तोत्र कृष्णस्य परमात्मन ।
य पठेदर्च्चनाकाले स जयी सर्वत' सुखी ॥८६॥
दुर्गा तस्य गृह त्यक्त्वा नैव याति कदाचन ।
भवाब्धौ यशसा भाति यात्यन्ते श्रीहरे पुरम् ॥८७॥

जिस आपका स्तवन करने के लिये ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि देव गण-समस्त वेद-सरस्वती देवी और मैं असमर्थ हैं, उन प्रकृति से पर आपकी वन्दना करता हूँ ॥८३॥ समस्त वेद और विद्वानो मे श्रेष्ठ लक्ष्य से स्तुति करने मे समर्थ नही होते हैं फिर बिना लक्ष्य के योग्य उस निरीह की स्तुति करने मे कौन समर्थ है । मै आपको नमस्कार करती हूँ ॥८४॥ इस प्रकार से कहकर वह दुर्गा श्री कृष्ण को प्रणाम करके वर रत्नो के सिंहासन पर स्थित हो गई थी और सुरेश्वर उसकी स्तुति करते थे ॥८५॥ परमात्मा श्री कृष्ण का यह दुर्गा के द्वारा किया हुआ स्तोत्र है । जो इस स्तोत्र को अर्चना के समय पढता है वह जय वाला और सब प्रकार से सुखी होता है ॥८६॥ दुर्गा देवी उसके ग्रह का त्याग करके कभी भी नही जाया करती है । वह इस स्तोत्र का पाठ करने वाला इस भव सागर मे यश से शोभित होता है और अन्त समय मे श्री हरि के पुर म जाता है ॥८७॥

४—सृष्टिनिरूपणम् (२)

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य रसनाग्रत. ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशा देवी चैका मनोहरा ॥१॥

शुक्लवस्त्रपरीधाना सर्वालङ्कारभूपिता ।
विभ्रती जपमालाञ्च सा सावित्री प्रकीर्त्तिता ॥२॥
सा तुष्टाव पुरः स्थित्वा परं ब्रह्म सनातनम् ।
पुटाञ्जलिपरा साध्वी भक्तिनम्रात्मकन्धरा ॥३॥
नमामि सर्वबीजं त्वां ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
परात्परतरं श्यामं निर्विकारंनिरञ्जनम् ॥४॥
इत्युक्त्वा सस्मिता देवी रत्नसिंहासने वरे ।
उवास श्रीहरिं नत्वा पुनरेव श्रुतिप्रसूः ॥५॥
आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य परमात्मनः ।
मानसाच्च पुमानेकस्तप्तकाञ्चनसंन्निभः ॥६॥
मनामथ्नाति सर्वेषां पञ्चबाणेन कामिनाम् ।
तन्नाम मन्मथं तेन प्रवदन्ति मनीषिणः ॥७॥

इस अध्याय में सृष्टि का निरूपण किया जाता है। सौति ने कहा-इसके अनन्तर श्री कृष्ण की रसना के अग्र भाग से शुद्ध स्फटिक मणि के समान दीप्ति वाली एक अत्यन्त मनोहर देवी का आविर्भाव हुआ था ॥१॥ वह देवी शुक्ल वर्ण के वस्त्रों का परिधान करने वाली और समस्त प्रकार के अलङ्कारो से विभूषित थी। जप करने की माला को हाथ मे धारण करती हुई वह-सावित्री इस नाम से प्रकीर्तित हुई थी ॥२॥ वह आगे से स्थित होकर अञ्जलि पुट करके भक्ति भाव से झुके हुए कन्धरा वाली साध्वी थी और इस प्रकार से उसने सनातन परब्रह्म की स्तुति की थी ॥३॥ सावित्री ने कहा-मैं ब्रह्म ज्योति सनातन आपको नमस्कार करती हूँ। आप पर से भी पर हैं, श्याम वर्ण वाले-निरञ्जन एवं निर्विकार हैं ॥४॥ इतना कहकर स्मित से युक्त वह देवी जो श्रुति को प्रसूत करने वाली है, श्री हरि को पुनः नमस्कार कर श्रेष्ठ रत्न जटित सिंहासन पर स्थित हो गई थी, ॥५॥ इसके पश्चात परमात्मा श्री कृष्ण के मानस से तप्त सुवर्ण के समान एक पुरुषप्रकट हुआ था ॥६॥ वह सब कामियों

के मनको पञ्च बाण से मथन करता था। इसी लिये महा मनीषी मण्डल ने उसका नाम नाम ही मन्मथ रख दिया था ॥७॥

तस्य पुंसोवामपार्श्वात् कामस्य कामिनी वरा।
बभूवातीवललिता सर्वेषां मोहकारिणी ॥८॥
रतिर्बभूव सर्वेषां तां दृष्ट्वा सस्मितां सतीम्।
रतीति तेन तन्नाम प्रवदन्ति मनीषिणः ॥९॥
हरिं स्तुत्वा तया सार्द्धं स उवासहरेः पुरः।
रत्नसिंहासने रम्ये पञ्चबाणो धनुर्द्धरः ॥१०॥
मारणं स्तम्भनञ्चैव जृम्भणं शोषणन्तथा।
उन्मादनं पञ्चबाणान् पञ्चबाणो बिभर्त्ति सः ॥११॥
बाणांश्चिक्षेप सर्वांश्च कामो बाणपरीक्षया।
सद्यः सर्वे सकामाश्च बभुवुरीश्वरेच्छया ॥१२॥
रतिं दृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेतःपातो बभूव ह।
तत्र तस्थौ महायोगी वस्त्रेणाच्छाद्य लज्जया ॥१३॥

उस पुरुष के वाम पार्श्व से जिसका नाम काम था एक परम श्रेष्ठ अत्यन्त ललित और सबके मन को मोहित करने वाली कामिनी रति समुत्पन्न हुई थी। सभी ने उसे मन्द मुस्कान से युक्त सती को देखा था। इसलिये मनीषी लोग उस का नाम रति ऐसा कहा करते हैं क्यों कि उसे देखकर रतीच्छा की इच्छा समुत्पन्न हो जाती है ॥८-९॥ उसी रति के साथ पञ्चबाण धनुर्धारी वह काम देव हरि की स्तुति करके रम्य रत्नों के सिंहासन पर हरि के आगे ही वास करने वाला हो गया था ॥१०॥ वह पंच बाण काम मारण-स्तम्भन-जृम्भण शोषण और उन्मादन नाम वाले पाँच बाणों को धारण करने वाला था। जैसे इन बाणों के ये नाम हैं उनका वैसा ही इनका कर्म प्रभावशाली होता है ॥११॥ उस काम देव ने अपने बाणों की परीक्षा करने के लिये समस्त बाणों का क्षेपण किया था अर्थात् छोड़ दिया था। तुरन्त ही बाणों के लगते ही सब लोग ईश्वर की इच्छा से काम वासना से समन्वित हो गये थे ॥१२॥ उस

समय उस परम सुन्दरी रति को देख कर ब्रह्मा के वीर्य का पात हो गया था। वहां पर महा योगी जो स्थित थे उन्होंने उसको मन्त्र से आच्छादित कर दिया था ।।१३।।

वस्त्रं दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्निः सुरेश्वरः ।
कोटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन् ।। १४ ।।
कृष्णस्तद्वर्द्धनं दृष्ट्वा ससर्जापः स्वलीलया ।
निःश्वासवायुना सार्द्धं मुखविन्दुं समुद्गिरत् ।।१५।।
विश्वौघं प्लावयामास मुखविन्दुजलं द्विज ।
तस्य किञ्चिज्जलकणं वह्निं शान्तंचकार ह ।।१६।।
ततः प्रभृति तेनाग्निस्तोयान्निर्वाणतां व्रजेत् ।
आविर्भूतः पुमानेकस्ततस्तदधिदेवता ।।१७।।
उत्तस्थौतज्जलादेकः पुमान्वरुणःस्मृतः ।
जलाधिष्ठातृदेवोऽसौसर्वेषां यादसाम्पतिः ।।१ ।।
आविर्बभूव कन्यैका तद्वह्नेर्वामपार्श्वतः ।
सा स्वाहा वह्निपत्नीं तां प्रवदन्ति मनीषिणः ।।१६।।
जलेशस्य वामपार्श्वात् कन्या चैका बभूव सा ।
वरुणानीति विख्याता वरुणस्य प्रिया सती ।।२०।।
बभूव पवनः श्रीमान् विभोर्निःश्वासवायुना ।
स प्रगाणश्च सर्वेषां निःश्वासस्तत्कलोद्भवः ।।२१।।

उस वस्त्र को दग्ध करके सुरेश्वर जलता हुआ अग्नि समुत्थित हो गया था। उस समय कोटि ताल के समान उसका प्रभाव था और अपनी शिखा (लौ) के सहित समुज्वलित हो रहा था ।। १४ ।। भगवान श्री कृष्ण ने उस अग्नि देव के इस प्रकार के बढ़ाव को देखकर अपनी लीला से जलों की सृष्टि की थी और अपनी निःश्वास की वायु के साथ मुख विन्दु का समुद्गिरण कर रहे थे ।।१५।। हे द्विज ! उस मुख के विन्दु जल ने

विश्वों के समुदाय को प्लावित कर दिया था और उसके थोड़े से जल कण ने उस बढ़ी हुई वह्नि को एक दम शान्त कर दिया था ॥१६॥ तभी से लेकर इसी कारण से यह अग्नि जल से निर्वाणता को प्राप्त हो जाती है। उससे फिर एक पुरुष प्रकट हुआ था जोकि उसका अधि देवता था ॥१७॥ उस जल से भी एक पुरुष उठकर खड़ा हुआ था जो वरुण इस नाम से कहा गया था। यह जलों का अधिष्ठातृ देव था और यह सब जलाशयों तथा सागरों का स्वामी था ॥१८॥ उस अग्नि के वाम पार्श्व से एक कन्या प्रकट हुई थी। उसका नाम स्वाहा था जिसको मनीषी गण उसकी पत्नी कहते है ॥१९॥ जलेश के वायें भाग से भी एक कन्या समुत्पन्न हुई थी। यह वरुणानी इस नाम से विख्यात हुई थी और वरुण देव की सती प्रिय पत्नी थी ॥२०॥ व्यापक भगवान के निःश्वास वायु से श्रीमान पवन देव ने जन्म धारण किया था। उसी की कला से निःश्वास का उद्भव होता है जोकि सभी को प्रमाण रूप से ज्ञात है ॥२१॥

तस्यवायोर्वामपार्श्वात् कन्यार्चकावभूव ह।
वायो पत्नीसाचदेवीवायवीपरिकीर्तिता ॥२२॥
कृष्णस्य कामवाणेन रेतःपातो बभूव ह।
जले तद्रेचन चक्रे लज्जया सुरससदि ॥२३॥
सहस्रवत्सरान्ते तडिम्बरूप बभूव ह।
ततो महान् विराट् जज्ञे विश्वौघाधार एव स. ॥२४॥
यस्यैकलोमविवरेविश्वंकाम्यव्यवस्थिति।
स्थूलात् स्थूलतम सोऽपिमहान्नान्यस्तत परः ॥२५॥
स एव षोडशांशोऽपिकृष्णस्यपरमात्मनः।
महाविष्णुः स विज्ञेय सर्वाधार. सनातन ॥२६॥
महार्णवे शयान. स पद्मपत्र जले।
बभूवतुस्तौ द्वौ दैत्यौ तस्य कर्णमलोद्भवौ ॥२७॥

तौ जलाच्चसमुत्थायब्रह्माणंहन्तुमुद्यतौ ।
नारायणश्च भगवान् जघने तौ जघान ह म ॥२८॥
बभूव मेदिनी कृत्स्ना कार्त्स्न्येन मेदसा तयोः ।
तत्रैव सन्ति विश्वानि सा च देवी वसुन्धरा ॥२९॥

उस वायु देव के वाम पार्श्व से एक कन्या की समुत्पत्ति हुई थी। वह देवी वायु देव की पत्नी थी जोकि वायवी इस नाम से कही गई है ॥२२। श्री कृष्ण को काम के बाण से रेत (वीर्य) का पात हो गया था। देवों की उस संसद में लज्जा के कारण उसका रेचन जल में कर दिया था ।२३। एक सहस्र वर्षों के समाप्त होने पर उस श्रीकृष्ण के वीर्य ने जल में शिशु का स्वरूप प्राप्त किया था। उससे एक महान विराट की उत्पत्ति हुई थी, वह ही इस विश्वों के समुदाय का आधार हुआ था ॥२४॥ जिस विराट के एक लोम के विवर में एक ही विश्व की व्यवस्थिति होती है, वह भी स्थूल से अधिक स्थूलतम है और अन्य उससे भी पर है ॥२५॥ वह ही सोलहवाँ अंश परमात्मा कृष्ण का है जो सबका आधार और सनातन महाविष्णु जानने के योग्य होता है ॥२६॥ जिस प्रकार से जल में पद्म पत्र होता है वैसे ही वह महार्णव में शयन करने वाला रहता था। उसके कान के मल से जन्म ग्रहण करने वाले दो दैत्य हुए थे ॥२७॥ वे दोनों जल से उठकर ब्रह्मा का हनन करने को उद्यत हो गये थे। भगवान नारायण ने उन दोनों को जघन में हनन किया था ॥२८॥ उन दोनों के भेद से सम्पूर्णतया यह कृत्स्न मेदिनी हुई थी। वहाँ पर ही विश्व थे और वह देवी वसुन्धरा थी ॥२९॥

५—सृष्टिप्रकारवर्णनम्

गोगोपगोप्यो गोलोके किं नित्याः किं नु कल्पिताः ।
मम सन्देहभेदार्थं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

सर्वादिसृष्टौ ताः क्लृप्ताः प्रलये प्रलये स्थिताः ।
सर्वादिसृष्टिकथनयन्मयाकथितद्विज ॥२॥
सर्वादिसृष्टौक्लृप्तौच नारायणमहेश्वरौ ।
प्रलयेप्रलयेव्यक्तौ स्थितौ तौ प्रकृतिश्चसा ॥ ३ ॥
सर्वादौब्रह्मकल्पस्यचरितंकथित द्विज ।
वाराहपाद्मकल्पौ द्वौ कथयिष्यामिश्रोष्यसि ॥४॥
ब्राह्मवाराहपाद्माश्चकल्पाश्चत्रिविधा मुने ।
यथायुगानिचत्वारिक्रमेण कथितानि च ॥५॥
सत्यत्रेताद्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्युगैर्दिव्यं युग स्मृतम् ॥६॥
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ।
चतुर्दशसु मनुषु गतेषु ब्रह्मणो दिनम् ॥७॥

इस अध्याय में सृष्टि के प्रकार का वर्णन किया जाता है। शौनक ने कहा —गोलोक धाम में जो गो —गोप और गोपियां है क्या वे नित्य हैं या कल्पित हैं ? मुझे यह इस विषय में बडा सन्देह है सो आप उसका भेदन करने के लिये मेरे समक्ष पूर्णतया व्याख्या करने के लिये योग्य होते है ॥१॥ सौति ने कहा—सब की आदि सृष्टि मे वे क्लृप्त हैं और प्रलय-प्रलय मे स्थित हैं। हे द्विज ! सर्वादि सृष्टि का कथन मैंने कर दिया है ॥२॥ सर्गादि सृष्टि मे नारायण और महेश्वर क्लृप्त होते हैं वे प्रलय - प्रलय मे कल्प तथा स्थित रहते हैं और वह प्रकृति है ॥३॥ हे द्विज ! सर्वादि मे ब्रह्म कल्प का चरित कहा गया है। अब वाराह कल्प और पाद्म कल्प इन दोनो को मैं कहूँगा, तुम उनका श्रवण करोगे ॥४॥ हे मुने ! ब्राह्म-वाराह और पाद्म ये तीन प्रकार के कल्प होते हैं। यथा युग इन चारों को मैंने क्रम से कहा है ॥५॥ सत्य-त्रेता-द्वापर और कलि ये चार युग होते हैं। तीन सौ साठ युगों से एक दिव्य युग कहा गया है ॥६॥ मन्वन्तर जो होता है वह इकहत्तर दिव्य युगों का होता है। जब चौदह मनु गत हो जाया करते हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥७॥

त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्दिनैर्वर्षञ्च ब्रह्मणः ।
अष्टोत्तर वर्षशत विधेरायुर्निरूपितम् ॥८॥

एतन्निमेषकालस्तु कृष्णस्य परमात्मनः ।
ब्रह्मणश्चायुषा कल्पः कालविद्भिर्निरूपितः ॥९॥
क्षुद्रकल्पा बहुतरास्ते संवर्त्तादयः स्मृताः ।
सप्तकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयश्च तन्मतः ॥१०॥
ब्रह्मणश्च दिनेनैव स कल्पः परिकीर्त्तितः ।
विधेश्च सप्तदिवसे मुनेरायुर्निरूपितम् ॥११॥
ब्राह्मवाराहपाद्माश्च त्रयः कल्पा निरूपिताः ।
कल्पत्रये यथा सृष्टिः कथयामि निशामय ॥१२॥
ब्राह्मे च मेदिनीं सृष्ट्वा स्रष्टा सृष्टिं चकार सः ।
मधुकैटभयोश्चैव मेदसा चाज्ञया प्रभोः ॥१३॥
वाराहे तां समुद्धृत्य लुप्तां मग्नां रसातलात् ।
विष्णोर्वराहरूपस्य द्वारा चातिप्रयत्नतः ॥१४॥

ऐसे तीन सौ साठ दिनों का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है । ऐसे एक सौ आठ वर्षों की ब्रह्मा की आयु निरूपित की गई है ॥८॥ यह इतना समय अर्थात ब्रह्मा की पूर्ण आयु परमात्मा श्रीकृष्ण का एक निमेष काल होता है । काल के वेत्ताओं ने ब्रह्मा की आयु से कल्प निरूपित किया है ॥९॥ जो बहुत-सारे क्षुद्र कल्प होते हैं वे संवर्त्त आदि कहे गये हैं । मार्कण्डेय सात कल्पों के अन्त तक जीवन रखने वाले हैं ऐसा उनका मत है ॥१०॥ वह ब्रह्मा के दिन से ही कल्प का परिकीर्तन किया गया है । विधाता के सात दिन में मुनि की आयु निरूपित की गई है ॥११॥ ब्राह्म-वाराह और पाद्म ये तीन कल्प बताये गये हैं । इन तीनों कल्पों में जिस तरह सृष्टि होती है उसे कहता हूँ। उसका तुम सब श्रवण करो ॥१२॥ ब्राह्म कल्प में स्रष्टा ने इस मोहिनी का सृजन करके फिर उसने इस सृष्टि को किया था । प्रभु की आज्ञा से मधु कैटभ के भेद से सृष्टि की गई थी ॥१३॥ वाराह कल्प में यह मोहिनी रसातल में लुप्त हो गई थी, उसका समुद्धार करके लाया गया था । वाराह रूप वाले विष्णु के

द्वारा अत्यन्त प्रयत्न से लुप्त और भग्न इस मोहिनी को रसातल से लाकर उद्धार किया था ॥१४॥

पाद्मेविष्णोर्नाभिपद्मेस्रष्टा सृष्टिविनिर्ममे ।
त्रिलोकीब्रह्मलोकान्तानित्यलोकत्रयं विना ॥१५॥
एतत्तु कालसंख्यानमुक्तं सृष्टिनिरूपणे ।
किञ्चिन्निरूपणं सृष्टेः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१६॥
अतःपरन्तु गोलोके गोलोकेशो महान् विभुः ।
एतान् सृष्ट्वा किञ्चकार तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१७॥
एतान् सृष्ट्वा जगामासौ सुरम्यं रासमण्डलम् ।
एतैः समेतो भगवानतीवकमनीयकम् ॥१८॥
रम्याणाकल्पवृक्षाणामध्येऽतीवमनोहरम् ।
सुविस्तीर्णञ्च सुसमं सुस्निग्धमण्डलाकृतम् ॥१९॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृतम् ।
दधिलाजाशुक्लधान्यदूर्वापर्णपरिप्लुतम् ॥२०॥
पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तनवचन्दनपल्लवैः ।
संयुक्तरम्भास्तम्भानां समूहैः परिवेष्टितम् ॥२१॥

पाद्म कल्प में विष्णु की नाभि के पद्म में स्रष्टा ने सृष्टि का विशेष रूप से निर्माण किया था। जिसमें ब्रह्म लोक के अन्त तक यह त्रिलोकी थी और तीन जो नित्य लोक हैं वे नहीं थे ॥१५॥ यह मैंने सृष्टि के निरूपण में काल की संख्या बतला दी है और कुछ सृष्टि का भी निरूपण कर दिया है, अब और कुछ पुनः तुम श्रवण करना चाहते हो ? ॥१६॥ शौनक ने कहा—इससे परे गोलोक में गोलोक अधीश महान विभु हैं। इनका सृजन करके फिर क्या किया था-यह मुझे व्याख्या करके बताने के लिये आप योग्य होते हैं ॥१७॥ सौति ने कहा—इन सब की सृष्टि करके वह फिर अत्यन्त रम्य रास मण्डल

में चले गये थे जो रासमण्डल अत्यन्त ही कमनीय है, वहां इन सबको साथ लेकर भगवान गये थे ॥१८॥ अत्यन्त रम्य कल्प वृक्षों का समुदाय वहां पर है उनके मध्य में अत्यन्त मनोहर और बहुत विस्तार वाला समतल स्वरूप से युक्त एवं सुस्निग्ध मण्डलाकार वाला स्थान है ॥१९॥ वह स्थान चन्दन-अगुरु-कस्तूरी और कुङ्कुम से भली भांति संस्कार किया हुआ है। दधि-लाजा (खील)-शुक्ल धान्य-दूर्वा-पर्णां से परि प्लुत है ॥२०॥ यह सूत्र ग्रन्थि से युक्त और नव चन्दन पल्लवों से तथा संयुक्त कदली के स्तम्भों के समूहों से परिवेष्टित है ॥२१॥

सद्रत्नसारनिर्माणमण्डपानां त्रिकोटिभिः।
रत्नप्रदीपज्वलितैः पुष्पधूपाधिवासितैः ॥२२॥
शृङ्गारार्हभोगवस्तुसमूहपरिवेष्टितैः।
अतीवललिताकल्पतल्पयुक्तैः सुशोभितम् ॥२३॥
तत्र गत्वा च तैः सार्द्धं समुवास जगत्पतिः।
दृष्ट्वा रासं विस्मितास्ते बभूवुर्मुनिसत्तम ! ॥२४॥
आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वत ।
धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यप्रभोः पदे ॥२५॥
रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरेःपुरः।
तेन राधासमाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ॥२६॥
प्राणाधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥२७॥

उत्तम रत्नों के सार के द्वारा निर्मित मण्डपों की तीन करोड़ संख्या हैं उनसे तथा जलते हुए से रत्नों के प्रदीपों से पुष्प और धूप की अधिवास से एवं शृङ्गार के योग्य भोग की वस्तुओं के समुदाय से युक्त और अतीव ललित आ कल्प तल्पों से वह मण्डल सुशोभित है ॥२२-२३॥ वहां पर उनके साथ

आकर जगत पति ने निकाम किया था। हे मुनि श्रेष्ठ! वे सब वहाँ रास को देखकर अत्यन्त विस्मित हुए थे ॥२४॥ उस समय श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व में एक कन्या प्रकट हुई थी। उसने दौड़कर पुष्प लाकर प्रभु के चरण में अर्घ्य दिया था ॥२५॥ रास में सम्भूत होकर उसने गोलोक में हरि के आगे अपने आपको अवस्थित किया था। इसी से वह पुरा वेत्ताओं के द्वारा हे द्विजोत्तम! राधा-इस नाम से समाख्यात हुई है ॥२६॥ वह परमात्मा कृष्ण की प्राणों की अधिष्ठात्री देवी है। वह प्राण से आविर्भूत हुई थी और प्राणों से भी अधिक बड़ी हुई है ॥२७॥

सा च सम्भाष्य गोविन्द रत्नसिंहासने वरे।
उवास सस्मिता भर्त्तु पश्यन्ती मुखपङ्कजम् ॥२८॥
तस्याश्च लोमकूपेभ्य सद्यो गोपाङ्गनागण।
आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्सम ॥२९॥
लक्षकोटिपरिमित शश्वत्सुस्थिरयौवन।
संख्याविद्भिश्चसंख्यातोगोलोकगोपिकागरा ॥३०॥
कृष्णस्य लोमकूपेभ्य सद्यो गोपगणोमुने।
आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्सम ॥३१॥
त्रिंशत्कोटिपरिमित कमनीयोमनोहर।
संख्याविद्भिश्चसंख्यातोवल्लव नागण श्रुतौ ॥३२॥
कृष्णस्य लोमकूपेभ्य सद्यश्चाविर्बभूव ह।
नानावर्णो गोगणश्च शश्वत्सुस्थिरयौवन ॥३३॥
वलीवर्दाः सुरभ्यश्च वत्सा नानाविधा शुभा।
अतीवललिता श्यामा बह्वश्च कामधेनव ॥३४॥

उस राधा ने गोविन्द से सम्भाषण किया और फिर वह स्मित से युक्त होती हुई अपने स्वामी के मुख कमल का निरीक्षण करती हुई श्रेष्ठ रत्न

सिंहासन पर स्थित हो गई थी ॥२८॥ और फिर उनके रोमों के छिद्रों से तुरन्त ही गोपियों का समुदाय प्रकट हो गया था। जिन गोपियों का रूप और वेश बिल्कुल राधा के समान ही था ॥२६॥ एक लाख करोड़ परिमाण वाला और निरन्तर सुस्थिर यौवन से समन्वित गोपिकाओं का समूह गोलोक में था—यह संख्या के ज्ञान रखने वाले विद्वानों के द्वारा गणना बताई गई है ॥३०॥ हे मुने ! इसी भाँति श्री कृष्ण के लोमकूपों से तुरन्त ही गोपों का गण आविर्भूत हुआ था। यह गोपों का समुदाय भी वेश और रूप लावण्य से बिल्कुल श्री कृष्ण के ही तुल्य था ॥३१॥ यह गोपों का गण तीस करोड़ परिमाण वाला था और अत्यन्त कमनीय एवं मनोहर था। श्रुति में इन वल्लभों का गण संख्या के वेत्ता मनीषियों ने संख्यात किया है ॥३२॥ श्री कृष्ण के रोमों के छिद्रों से उसी समय तुरन्त ही अनेक प्रकार के वर्णों वाली गौओं का गण भी प्रकट हुआ था जोकि सर्वदा सुस्थिर रहने वाले यौवन से युक्त था ॥३३॥ बली वर्द—सुरभियाँ—वत्स ये सब नाना प्रकार के शुभ थे। अत्यन्त सुन्दर ये थीं—कुछ श्यामा थीं और बहुत सी काम धेनु थीं ॥३४॥

तेषामेकं बलीवर्दं कोटिसिंहसमं बले।
शिवाय प्रददौ कृष्णो वाहनाय मनोहरम् ॥३५॥
कृष्णांघ्रिनखरन्ध्रेभ्यो हंसपंक्तिर्मनोहरा।
आविर्बभूव सहसा स्त्रीपुंवत्ससमन्विता ॥३६॥
तेषामेकं राजहंसं महाबलपराक्रमम्।
वाहनाय ददौ कृष्णो ब्रह्मणे च तपस्विने।
वामकर्णस्य विवरात् कृष्णस्य परमात्मनः।
गणः श्वेततुरङ्गानामाविर्भूतो मनोहरः ॥३७॥
तेषामेकञ्चश्वेताश्वं धर्माय वाहनाय च।
ददौ गोपाङ्गनेशश्च संप्रीत्या सुरसंसदि ॥३८॥
दक्षकर्णस्य विवरात् पुंसश्च सुरसंसदि।

आविर्भूता सिंहपक्तिर्महाबलपराक्रमा ॥३६॥
तेषामेकं ददौ कृष्ण. प्रकृत्यै परमादरम् ।
अमूल्यवरमाल्यञ्च वरं यदभिवाञ्छितम् ॥४०॥
आविर्बभूव कृष्णस्य गुह्यदेशात्तत परम्।
पिङ्गलश्च पुमानेक पिङ्गलांश्च गणं सह ॥४१॥
आविर्भूता यतो गुह्यात्तेन ते गुह्यका स्मृता ।
य पुमान् स कुबेरश्च धनेशो गुह्यकेश्वर ॥४२॥

उनमे एक बली वर्द करोड सिंहो के समान बल म था। इस परम मनोहर बली वर्द को श्रीकृष्ण ने शिव के लिये सवारी करने को दे दिया था ॥३५॥ श्री कृष्ण के चरणो के नखो के रन्ध्रो स परम सुन्दर हसो की पक्ति प्रकट हुई थी। यह हसो की पक्ति सहसा स्त्री और पुरुष भेदो से समन्वित थी ॥३६॥ उन हसो मे एक राज हस था जो महान बल और पराक्रम वाला था उसको ब्रह्मा के वाहन बनाने के लिये ब्रह्मा को श्री कृष्ण ने दे दिया था क्योंकि ब्रह्मा महान तपस्वी थे ॥३७॥ परमात्मा श्री कृष्ण क वाम कर्ण के विवर से श्वेत तुरङ्गो का एक मनोहर गण प्रकट हुआ था ॥३८। उनम से एक श्वेत अश्व को देवो की सभा मे गोपाङ्गनाओ क ईश श्री कृष्ण ने वाहन बनाने के लिये धर्म को बडी प्रीति के साथ दे दिया था ॥३९॥ देवो की ससद मे परम पुरुष के दाहिने कान छिद्र से महान बल पराक्रम वाली एव सिंहो की पक्ति प्रकट हुई थी ॥४०॥ उनमे से एक को श्री कृष्ण ने परम आदर से प्रकृति देवी को दे दिया था और अमूल्य वर माल्य तथा अभिवाञ्छित वर भी दिया था। इसके पश्चात कृष्ण के गुह्य देश म पिङ्गल गणा के साथ एक पिङ्गल पुरुष प्रकट हुआ था ॥४१॥ चूकि व गुह्य भाग मे प्रकट हुए थ इसी कारण से वे लोग गुह्यक कहे गये हैं और जो पुमान था वह गुह्यको का अधीश्वर धनद कुबेर था ॥४२॥

बभूव कन्यका चैका कुबेरवामपार्श्वत. ।
कुबेरपत्नी सा देवी सुन्दरीणा मनोरमा ॥४३॥

भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डब्रह्मराक्षसाः ।
वेताला विकृतास्तस्याविर्भूता गुह्यदेशतः ॥४४॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः ।
पीतवस्त्रपरीधानाः सर्वे श्यामचतुर्भुजाः ॥४५॥
किरीटिनः कुण्डलिनो रत्नभूषणभूषिताः ।
आविर्भूताः पार्श्वदाश्च कृष्णस्यमुखतो मुने ॥४६॥
चतुर्भुजान् पार्श्वदांश्च ददौ नारायणाय च ।
गुह्यकान्गुह्यकेशायभूतादीन्शङ्करायच ॥४७॥
द्विभजाः श्यामवर्णाश्च जपमालाकरा वराः ।
ध्यायन्तश्चरणाम्भोजंकृष्णस्यसन्ततं मुदा ॥४८॥
दास्ये नियुक्ता दासाश्चैवार्घ्यमादाय यत्नतः ।
आविर्भूता वैष्णवाश्च सर्वे कृष्णपरायणाः ॥४९॥

धनेश कुबेर के वाम पार्श्व से एक कन्या हुई थी । यह देवी कुबेर की पत्नी थी जो सुन्दरियों में परम मनोरम थी ॥४३॥ उस कुबेर के गुह्य भाग से भूत-प्रेत-पिशाच-कूष्माण्ड-ब्रह्मराक्षसवेताल विकृत स्वरूप वाले प्रकट हुए थे ॥४४॥ हे मुने ! श्री कृष्ण के मुख से पार्षद आविर्भूत हुए थे जो सब शंख-चक्र-गदा और पद्म के धारण करने वाले थे-वन माला पहिने हुए थे-जिनके पीत वस्त्र का परिधान था-वे सभी श्याम वर्ण वाले और चार भुजाओं से युक्त थे। जिनके मस्तक पर किरीट था और कानों में कुण्डल धारण किये हुए थे-सभी पार्षद रत्नों के भूषणों से अलङ्कृत थे ॥४५-४६॥ श्री कृष्ण ने चतुर्भुज पार्षदों को नारायण के लिये-गुह्यकों को धनेश के लिये और भूतादि को शङ्कर के लिये दे दिया था ॥४७॥ दो भुजा वाले और श्याम वर्ण से युक्त तथा करों मे जपमाला लिये हुए श्रेष्ठ सर्वदा आनन्द के साथ श्री कृष्ण के चरण कमलों का ध्यान करने वाले थे ॥४८॥ दास्य भाव में नियुक्त और दास का यत्न पूर्वक अर्घ्य लेकर सब कृष्ण परायण वैष्णव प्रकट हुए थे ॥४९॥

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः ।
आविर्भूताः पादपद्मात् पादपद्मैकमानसाः ॥५०॥
आविर्बभूवुः कृष्णस्य दक्षनेत्राद्भयंकराः ।
त्रिशूलपट्टिशधरास्त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ॥५१॥
दिगम्बरा महाकाया ज्वलदग्निशिखोपमाः ।
ते भैरवा महाभागाः शिवतुल्याश्च तेजसा ॥५२॥
रुरुसंहारकालाख्या असितक्रोधभीषणाः ।
महाभैरवखट्वाङ्गावित्यष्टौ भैरवाः स्मृताः ॥५३॥
आविर्बभूव कृष्णस्य वामनेत्राद्भयङ्करः ।
त्रिशूलपट्टिशव्याघ्रचर्माम्बरगदाधरः ॥५४॥
दिगम्बरो महाकायस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ।
स ईशानो महाभागो दिक्पालानामधीश्वरः ॥५५॥
डाकिन्यश्चैव योगिन्यः क्षेत्रपालाः सहस्रशः ।
आविर्बभूवुः कृष्णस्य नासिकाविवरोदरात् ॥५६॥
सुरास्त्रिकोटिसंख्याता दिव्यमूर्त्तिधरा वराः ।
आविर्बभूवुः सहसा पुंसश्च पृष्ठदेशतः ॥५७॥

श्री कृष्ण के पाद पद्म से चरण कमलों में एकनिष्ठ मन वाले भक्त आविर्भूत हुए थे जिनके नेत्र अश्रुओं से पूर्ण थे तथा गद्गद वाणी वाले और पुलकों से समस्त अङ्ग अङ्कित थे ॥५०॥ कृष्ण के दाहिने नेत्र से त्रिशूल और पट्टिश को धारण करने वाले महाभयङ्कर त्रिनेत्र चन्द्र शेखर प्रकट हुए थे ॥५१॥ ये सब दिगम्बर (नग्न)-महान शरीर वाले और जलती हुई अग्नि की शिखा के समान तेजस्वी थे। वे सब महाभाग भैरव थे जो तेज से शिव के तुल्य थे ॥५२॥ रुरु-संहार-काल-असित-क्रोध-भीषण-महाभैरव और खट्वाङ्ग ये आठ भैरव कहे गये हैं ॥५३॥ श्री कृष्ण के वाम नेत्र से एक भयङ्कर पुरुष प्रकट हुआ था जो त्रिशूल-पट्टिश-का व्याघ्रचर्म के अम्बर और गदा को धारण करने वाला था। वह दिगम्बर था, महान् शरीर से युक्त-तीन नेत्रों

वाला और मस्तक में चन्द्रमा को धारण करने वाला था। यह महाभाग ईशान था जो कि दिक्पालों का अधीश्वर है ॥५४-५५॥ कृष्ण के नाक के विवर से डाकिनी-योगिनी और सहस्रों क्षेत्रपाल प्रकट हुये थे ॥५६॥ परमपुरुष के पीठ के भाग से तीन करोड़ सुर सहसा आविर्भूत हुये थे जो अति श्रेष्ठ और दिव्यमूर्त्तियों वाले थे ॥५७॥

६—सृष्टिप्रकरणम् । (१)

तदा ब्रह्मा तपः कृत्वा सिद्धिं प्राप्य यथेप्सिताम् ।
ससृजे पृथिवीमादौ मधुकैटभमेदसा ॥१॥
ससृजे पर्वतानष्टौ प्रधानान् सुमनोहरान् ।
क्षुद्रानसंख्यान् किं ब्रूमः प्रधानाख्यां निशामय ॥२॥
सुमेरुञ्चैव कैलासं मलयञ्च हिमालयम् ।
उदयञ्च तथाऽस्तञ्च सुवेलं गन्धमादनम् ॥३॥
समुद्रान् ससृजे सप्त नदान् कतिविधा नदी
वृक्षांश्च ग्रामनगरं समुद्राख्यां निशामय ॥४॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान् ।
लक्षयोजनमानेन द्विगुणांश्च परात्परान् ॥५॥
सप्तद्वीपांश्च तद्भूमिमण्डले कमलाकृते ।
उपद्वीपांस्तथा सप्त सीमाशैलांश्च सप्त च ॥६॥
निबोध विप्र द्वीपाख्यां पुरा या विधिना कृता ।
जम्बुशाककुशप्लक्षक्रौञ्चन्यग्रोधपौष्करान् ॥७॥

इस अध्याय में सृष्टि के प्रकरण का वर्णन किया जाता है। सौति बोले—उस समय में ब्रह्मा ने तप करके सिद्धि जैसी भी वह चाहते थे प्राप्त

करली थी और फिर आदि में मधु-कैटभ के मेद से पृथिवी का सृजन किया था ॥१॥ ब्रह्मा ने प्रधान आठ पर्वतों का सृजन किया था जोकि अत्यन्त सुन्दर थे। ऐसे छोटे २ तो बहुत से थे जिनकी कोई संख्या नहीं है उन्हें कहाँ तक बतलावें। यहाँ तो जो प्रधान पर्वत थे उनके नामों का श्रवण करो ॥२॥ सुमेरु-कैलास-मलय-हिमालय उदय अस्त-सुवेल और गन्धमादन ये आठ उन प्रधान गिरियों के शुभ नाम हैं ॥३॥ फिर सात समुद्रों की सृष्टि की थी। कितने ही प्रकार के नद और नदियों का सृजन किया था-वृक्ष-ग्राम और नगरों की सृष्टि की थी। अब उन सातों समुद्रों के नामों का श्रवण करो ॥४॥ लवण समुद्र-इक्षु समुद्र-सुरा सागर-सार्पं (घृत) समुद्र-दधि सागर-दुग्ध समुद्र और जल समुद्र ये उन सातों के नाम हैं। एक लक्ष योजन का मान है और इनमें पर से भी पर जो हैं वह दुगुने मान वाला होता चला जाता है ॥५॥ उस भूमि मण्डल में जोकि कमल के समान आकृति वाला है, सात द्वीप सात उपद्वीप और सात सीमा शैलों का सृजन किया था ॥६॥ हे विप्र ! सबसे प्रथम द्वीपों के नामों को समझो जो कि विधि के द्वारा निर्मित किये गये हैं। जम्बु शाक कुश-प्लक्ष-क्रौञ्च न्यग्रोध और पौष्कर ये उन द्वीपों के नाम है ॥७॥

मेरोरष्टसु शृङ्गेषु ससृजेऽष्टौ पुरीः प्रभुः ।
अष्टानां लोकपालानां विहाराय मनोहराः ॥८॥
मूलेऽनन्तस्य नगरीं निर्माय जगतां पतिः ।
ऊर्द्ध्वं स्वर्गांश्च सप्तैव तेषामाख्यां निशामय ॥९॥
भूर्लोकञ्च भुवर्लोकं स्वर्लोकं सुमनोहरम् ।
जनलोकं तपोलोकं सत्यलोकञ्च शौनक ॥१०॥
शृङ्गमूर्द्धनि ब्रह्मलोकं जरादिपरिवर्जितम् ।
तदूर्द्ध्वं ध्रुवलोकञ्च सर्वतः सुमनोहरम् ॥११॥
तदधः सप्तपातालान्निर्ममे जगदीश्वरः ।
स्वर्गातिरिक्तभोगाढ्यानधोऽधः क्रमतो मुने ॥१२॥
अतलं वितलञ्चैव सुतलञ्च तलातलम् ।
महातलञ्च पातालं रसातलमधस्ततः ॥१३॥

सप्तद्वीपैः सप्तस्वर्गैः सप्तपातालसंज्ञकैः।
एभिर्लोकैश्च ब्राह्माण्डं ब्रह्माधिकारमेव च ॥१४॥

मेरु पर्वत के आठ शृङ्ग हैं। उन आठों शिखरों पर प्रभु ने आठ पुरियों की रचना की थी। ये पुरियां आठों लोकपालों के विहार करने के लिए अत्यन्त मनोहर बनाई थीं ॥८॥

मूल में जगतों के पति ने अनन्त की नगरी का निर्माण करके ऊर्ध्व भाग में सात स्वर्गों का सृजन किया था। अब उन सात स्वर्गों के नामों को श्रवण करो ॥९॥ हे शौनक! सर्व प्रथम भूर्लोक है फिर भुवर्लोक-सुमनोहर स्वर्लोक—जनलोक-तपो लोक और फिर अन्त में सत्य लोक है। ये सात स्वर्गों के नाम हैं जोकि ऊर्ध्व भाग में हैं ॥१०॥ शृङ्ग के मूर्धा में ब्रह्म लोक है जो जरा आदि सब से रहित होता है। उसके भी ऊपर-ध्रुव लोक है जो सब से अधिक सुन्दर है ॥११॥ इसके नीचे के भाग में जगत के ईश्वर ने सात पातालों का निर्माण किया था। हे मुने! ये क्रम से अधः अधः हैं जोकि स्वर्ग के अतिरिक्त भोगों से युक्त होते हैं ॥१२॥ अतल-वितल-सुतल-तलातल-महातल-पाताल और उसमें भी नीचे रसातल है ॥१३॥ ये इन सात नीचे के लोकों के नाम हैं। सातद्वीप-सात स्वर्ग-सात पाताल इन लोकों से एक ब्रह्माण्ड होता है जोकि ब्रह्मा के अधिकार का ही क्षेत्र होता है ॥१४॥

एवञ्चासंख्यब्रह्माण्डं सर्वं कृत्रिममेव च।
महाविष्णोश्च लोमाञ्चविवरेषु च शौनक! ॥१५॥
प्रतिविश्वेषु दिक्पाला ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
सुरा नरादयः सर्वे सन्ति कृष्णस्य मायया ॥१६॥
ब्रह्माण्डगणनां कर्तुं न क्षमो जगतां पतिः।
न शङ्करो न धर्मश्च न च विष्णुश्चके सुराः ॥१७॥
संख्यातुमीश्वरः शक्तो न संख्यातुं तथापि सः।
विश्वाकाशदिशाञ्चैवसर्वतोयद्यपिक्षमः ॥१८॥
कृत्रिमाणि च विश्वानि विश्वस्थानि च यानि च।
अनित्यानि च विप्रेन्द्र स्वप्नवन्नश्वराणि च ॥१९॥

वैकुण्ठः शिवलोकश्च तयोः परः ।
नित्यो विश्वबहिर्भूतश्चात्माकाशदिशोयथा ॥२०॥

इस प्रकार से असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। हे शौनक ! ये सब कृत्रिम ही होते हैं। ये सब महाविष्णु के लोमान्ज विवरों में स्थित रहा करते हैं ॥१५॥ प्रत्येक विश्वों में इसी प्रकार से दिक्पाल हैं और ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर होते हैं। देवगण और मनुष्य आदि सभी कृष्ण की माया से होते हैं ॥१६॥ ऐसे कितने ब्रह्माण्ड हैं—इनकी गिनती करने में जगत के स्वामी भी समर्थ नहीं हैं। इस गणना को शङ्कर-धर्म गुरु और विष्णु कोई भी न कर सके हैं ॥१७॥ इसकी संख्या करने के कार्य में ईश्वर ही समर्थ होता है किन्तु तोभी उसने कोई संख्या नहीं की है। विश्व आकाश और दिशाओं की सब प्रकार से यह गणना करने में समर्थ है ॥१८॥ ये समस्त विश्व कृत्रिम हैं और जो इन विश्वों में स्थित रहने वाले हैं वे भी सब कृत्रिम ही होते हैं। हे विप्रेन्द्र ! ये सभी अनित्य हैं और स्वप्न की भाँति नाशवान् भी होते हैं ॥१९॥ वैकुण्ठ लोक शिव लोक और इन दोनों के ऊपर जो गोलोक धाम है वह नित्य है और विश्वों में बहिर्भूत भी है जैसे यह आत्मा आकाश और दिशायें हैं ॥२०॥

७—सृष्टि प्रकरणम् (२)

ब्रह्मा विश्वं विनिर्माय सावित्र्यां वरयोषिति ।
चकार वीर्याधानञ्च कामुक्या कामुको यथा ॥१॥
सा दिव्यं शतवर्षञ्च धृत्वा गर्भं सुदुःसहम् ।
सुप्रसूता च सुषुवे चतुर्वेदान् मनोहरान् ॥२॥
विविधान् शास्त्रसङ्घांश्च तर्कव्याकरणादिकान् ।
षट्त्रिंशत्संख्यका दिव्या रागिणीः सुमनोहराः ॥३॥
षड्रागान् सुन्दरांश्चैव नानातालसमन्वितान् ।
सत्यत्रेताद्वापरांश्च कलिञ्च कलहप्रियम् ॥४॥

वर्षं मासमृतुञ्चैव तिथिं दण्डक्षणादिकम् ।
दिनं रात्रिञ्च वारांश्च सन्ध्यामुषसमेव च ॥५॥
पुष्टिञ्च देवसेनाञ्च मेधाञ्च विजयां जयाम् ।
षट्कृत्तिकाश्च योगांश्च करणांश्च तपोधन ! ॥६॥
देवसेनां महाषष्ठीं कार्त्तिकेयप्रियां सतीम् ।
मातृकासु प्रधाना सा बालानामिष्टदेवता ॥७॥

इस अध्याय में सृष्टि का निरूपण प्रकरण ही वर्णन किया जाता है। सौति ने कहा—ब्रह्मा ने इस विश्व का निर्माण करके परम श्रेष्ठ स्त्री सावित्री में उसने अपने वीर्य का आधान जैसे कोई कामुक किसी कामुकी में किया करता है उसी भाँति किया था ॥१॥ उस देवी ने दिव्य सौ वर्ष तक उस सुदुःसह गर्भको धारण करके फिर सुप्रसूता उसने परम मनोहर चार वेदों का प्रसव किया था ॥२॥ उस देवी ने बहुत से शास्त्रों के समूहों को और तर्क शास्त्र तथा व्याकरण शास्त्र आदि का और छत्तीस अति दिव्य रागिणियों का जो बहुत ही मनोहर थीं प्रसव किया था ॥३॥ नाना प्रकार के तालों से समन्वित अति सुन्दर छै रागों का और सत्य युग-त्रेता युग-द्वापर युग और कलह से प्यार करने वाले कलियुग का प्रसव किया था ॥४॥ उस सावित्री देवी ने इनके अतिरिक्त वर्ष—मास—ऋतु—तिथि—दण्ड—क्षण आदि एवं दिन—रात्रि वार—सन्ध्या और प्रातः समय का प्रसव किया था॥५॥ पुष्टि— देवों की सेना—मेधा—विजया—जया—छै कृत्तिका—योग और हे तपोधन ! करणों का भी प्रसव किया था ॥६॥ देवसेना महाषष्ठी और सती कार्त्तिकेय की प्रिया का प्रसव किया था जो समस्त मातृकाओं में प्रधान एवं बालों की इष्ट देवता है ॥७॥

ब्राह्मं पाद्मञ्च वाराहं कल्पत्रयमिदं स्मृतम् ।
नित्यं नैमित्तिकञ्चैव द्विपरार्द्धञ्च प्राकृतम् ॥८॥
चतुर्विधञ्च प्रलयं कालञ्च मृत्युकन्यकाम् ।
सर्वान् व्याधिगणांश्चैवसा प्रसूय स्तनं ददौ ॥९॥
अथ धातुः पृष्ठदेशादधर्मः समजायत ।

अलक्ष्मीस्तद्वामपार्श्वादि्बभूव तस्य कामिनी ॥१०॥
नाभिदेशाद्विश्वकर्मा बभूव शिल्पिना गुरु. ।
महान्तो वसवोऽष्टौ च महाबलपराक्रमाः ॥११॥
अथ धातुश्च मनसः आविर्भूताः कुमारकाः ।
चत्वारः पञ्चवर्षीया ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥१२॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातन ।
सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ज्ञानिना वर ॥१३॥
आविर्बभूव मुखत कुमार. कनकप्रभ. ।
दिव्यरूपधर. श्रीमान् सस्त्रीकः सुन्दरो युवा ॥१४॥
क्षत्रियाणा बीजरूपो नाम्ना स्वायम्भुवो मनु. ।
या स्त्रीः सा शतरूपा च रूपाढ्या कमलाकला ॥१५॥

ब्राह्म-पाद्म और वाराह ये तीन कल्प कहे गये हैं। नित्य और नैमित्तिक द्विपरार्द्ध और प्राकृत ये चार प्रकार के प्रलय को-कालको और मृत्यु नाम वाली कन्या को एव समस्त प्रकार की व्याधियों के समुदायों का प्रसव करके उस सावित्री देवी ने इन सब को अपना स्तन पिलाया था ॥८॥९॥ इसके पश्चात् धाता के पृष्ठ भाग से अधर्म की उत्पत्ति हुई थी। उसके वाम पार्श्व से उस अधर्म की कामिनी अलक्ष्मी उत्पन्न हुई थी ॥१०॥ उसके नाभि के भाग से शिल्पियों के गुरु विश्व कर्मा की उत्पत्ति हुई थी और महान आठ वसुओं का गण जो महान बल और पराक्रम वाला था ॥११॥ इसके उपरान्त धाता के मन से चार कुमारों की उत्पत्ति हुई थी। ये चारों पाँच वर्ष की अवस्था वाले थे और ब्रह्मतेज से दीप्यमान थे। १२॥ इनमें सनक सनन्द तीसरा सनातन और चौथा ज्ञानियों में परम श्रेष्ठ भगवान सनत्कुमार था ॥१३॥ इसके उपरान्त मुख से सुवर्ण के समान प्रभा वाला दिव्य रूप को धारण किये हुए कुमार ने अपना जन्म ग्रहण किया था जो परम सुन्दर - युवा और स्त्री के सहित समुत्पन्न हुआ था ॥१४॥ यह क्षत्रियों का बीजरूप था और इसका नाम स्वायम्भुव मनु था। जो इसकी स्त्री थी वह कमला की कला वाली रूप यौवन से युक्त शत रूपा नाम वाली थी ॥१५॥

तस्त्रीकश्च मनुस्तत्रौ धात्राज्ञापरिपालकः ।
स्वयं विधाता पुत्रांश्च तानुवाच प्रहर्षितान् ॥१६॥
सृष्टिं कर्त्तुं महाभागो महाभागवतान् द्विज ! ।
जग्मुस्ते च नहीत्युक्त्वा तप्तुं कृष्णपरायणाः ॥१७॥
कुकोप हेतुना तेन विधाता जगतां पतिः ।
कोपासक्तस्य च विधेर्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥१८॥
आविर्भूता ललाटाच्च रुद्रा एकादश प्रभो ।
कालाग्निरुद्रः संहर्त्ता तेषामेकः प्रकीर्त्तितः ॥१९॥
सर्वेषामेव विश्वानां स एवतामसः स्मृतः ।
राजसश्च स्वयं ब्रह्माशिवो विष्णुश्चसात्त्विकौ ॥२०॥
गोलोकनाथः कृष्णश्च निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
परमाज्ञानिनो मूर्खा वदन्ति तामसं शिवम् ॥२१॥

वह स्वायम्भुव मनु अपनी स्त्री के सहित ही धाता की आज्ञा का प्रतिपालन करने वाला वहाँ स्थित हो गया था। फिर विधाता ने स्वयं ही उन परम प्रसन्न पुत्रों से कहा था ॥१६॥ हे द्विज ! उस महा भाग ब्रह्मा ने अपने पुत्र चारों महाभागवतों से सृष्टि की रचना करने के लिये कहा तो वे सब हम सृष्टि नहीं करेंगे – ऐसा कहकर कृष्ण में परायण होते हुए तप करने के लिये चले गये थे ॥१७॥ इस कारण से विधाता को बहुत अधिक कोप हुआ था। उस जगतों के पति को जब कोपासक्ति हुई तो क्रोध में जलते हुए विधाता से ब्रह्मतेज प्रकट हुआ था ॥१८॥ उस ब्रह्मतेज से हे प्रभु ! ललाट के भाग से एकादश रुद्र प्रकट हुए थे। उन ग्यारह रुद्रों में संहार करने वाला एक कालाग्नि रुद्र था ॥१९॥ समस्त विश्वों में वह ही एक तामस कहा गया है। ब्रह्मा स्वयं राजस था और विष्णु तथा शिव सात्विक था ॥२०॥ गोलोक धाम के स्वामी जो श्री कृष्ण थे वह तो निर्गुण और प्रकृति से पर थे। वे लोग अत्यन्त अज्ञान वाले महामूर्ख हैं जो शिवको तामस कहा करते हैं ॥२१॥

शुद्धसत्त्वस्वरूपञ्च निर्मलं वैष्णवाग्रणीम् ।
शृणु नामानि रुद्राणां वेदोक्तानि च यानि च ॥२२॥

महान् महात्मा मतिमान् भीषणश्चभयङ्करः।
ऋतुध्वजश्चोर्द्ध्वकेशःपिङ्गलाक्षोरुचिःशुचिः ॥२३॥
पुलस्त्यो दक्षकर्णाच्च पुलहो वामकर्णतः।
दक्षनेत्रात्तथाऽत्रिश्च वामनेत्रात् क्रतुःस्वयम् ॥२४॥
अरणिर्नासिकारन्ध्रादङ्गिराश्च मुखाद्रुचिः।
भृगुश्च वामपार्श्वाच्च दक्षो दक्षिणपार्श्वतः ॥२५॥
छायायाः कर्दमो जातो नाभेः पञ्चशिखस्तथा।
वक्षसश्चैव वोढुश्च कण्ठदेशाच्च नारदः ॥२६॥
मरीचिः स्कन्धदेशाच्चैवापान्तरतमा गलात्।
वसिष्ठो रसनादेशात् प्रचेता अधरोष्ठतः ॥२७॥
हंसश्च वामकुक्षेश्च दक्षकुक्षेर्यतिः स्वयम्।
सृष्टिं विधातुं स विधिश्चकाराज्ञां सुतान्प्रति ॥२८॥

भगवान सदाशिव शुद्ध एवं सात्विक रूप वाले हैं और वैष्णवों के अग्रणी हैं। अब उन भागों का श्रवण करो जो रुद्रों के नाम वेदों में कहे गये हैं ॥२२॥ महान-महात्मा-मतिमान-भीषण-भयङ्कर-ऋतुध्वज-ऊर्ध्वकेश-पिङ्गलाक्ष-रुचि-शुचि ये उनके नाम हैं ॥२३॥ दाहिने कान से पुलस्त्य-बायें कान से पुलह दक्षिण नेत्र से अत्रि-वामनेत्र से स्वयं क्रतु-नासिका के छिद्र से अरणि-मुख से अङ्गिरा, रुचि और भृगु वाम पार्श्व से-दक्षिण पार्श्व से दक्ष-छाया से कर्दम मुनि और नाभि से पञ्चशिख-वक्षःस्थल से वोढु और कण्ठ देश से नारद-स्कन्धदेश से मरीचि तथा गले से अपान्तरतमा-रसनादेश से वसिष्ठ और अधरोष्ठ से प्रचेता-वामकुक्षि से हंस-दक्षिण कुक्षि से स्वयं यति समुत्पन्न हुए थे। उस विधाता ने समस्त अपने उपर्युक्त सुतों को सृष्टि की रचना करने के लिये आज्ञा दी थी ॥२५-२८॥

८—ब्रह्मपुत्रकृतसृष्टिप्रकरणम्।

अथ ब्रह्मा स्वपुत्रांस्तानादिदेश च सृष्टये।
सृष्टिं प्रचक्रुस्ते सर्वे विप्रेन्द्र नारदं विना ॥१॥

मरीचेर्मनसो जातः कश्यपश्च प्रजापतिः ।
अत्रेर्नेत्रमलाच्चन्द्रः क्षीरोदे च बभूव ह ॥२॥
प्रचेतसोऽपि मनसो गौतमश्च बभूव ह ।
पुलस्त्यमानसः पुत्रो मैत्रावरुण एव च ॥३॥
मनोश्च शतरूपायां तिस्रः कन्याः प्रजज्ञिरे ।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिस्ताः पतिव्रताः ॥४॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ द्वौ च पुत्रौ मनोहरौ ।
उत्तानपादतनयो ध्रुवः परमधार्मिकः ॥५॥
आकूतिं रुचये प्रादात् दक्षाय च प्रसूतिकाम् ।
देवहूतिं कर्दमाय यत्पुत्रः कपिलः स्वयम् ॥६॥
प्रसूत्यां दक्षबीजेन षष्टिकन्याः प्रजज्ञिरे ।
अष्टौ धर्माय प्रददौ रुद्रायैकादश स्मृताः ॥७॥

इस अध्याय में ब्रह्मा के पुत्रों द्वारा की हुई सृष्टि के प्रकरण का वर्णन किया जाता है। सौति ने कहा—इस के अनन्तर ब्रह्माजी ने अपने समुत्पन्न किये हुये उन पुत्रों को सृष्टि का सृजन करने की आज्ञा दी थी। हे विप्रेन्द्र ! केवल एक नारद को छोड़ कर उन सभी ने अपने परम पिता विधि की आज्ञा शिरसा स्वीकृत कर सृजन का कार्य किया था ॥१॥ महर्षि मरीचि के मन से प्रजापति कश्यप की उत्पत्ति हुई थी। अत्रि ऋषि प्रवर के आंखों के मल से चन्द्र देव का जन्म हुआ और वह क्षीर सागर से समुत्पन्न हुआ था ॥२॥ प्राचेतस के मन से गौतम ऋषि ने जन्म ग्रहण किया था। मैत्रावरुण ने पुलस्त्य के मन से अपना जन्म प्राप्त किया था ॥३॥ मनु से शतरूपा पत्नी में तीन कन्याओं ने जन्म धारण किया था। आकूति—देवहूति और प्रसूति इन तीनों कन्याओं के शुभ नाम थे। ये तीनों पूर्ण पति व्रताएं थी ॥४॥ मनु के प्रिय व्रत और उत्तान पाद ये तीनों कन्याओं के अतिरिक्त परम सुन्दर दो पुत्र हुये थे। उत्तान पाद का पुत्र ध्रुव हुआ था जो परम धार्मिक था ॥५॥ मनु ने अपनी कन्या आकूति को रुचि के लिये दान कर दिया था और प्रजापति दक्ष को

प्रसूतिका नाम वाली कन्या का दान दिया था तथा देवहूति कन्या को कर्दम ऋषि को दे दिया था जिसका पुत्र कपिल स्वयं हुआ था ॥६॥ प्रसूति नाम धारिणी मनु की कन्या मे दक्ष प्रजापति के वीर्य से साठ कन्यायें समुत्पन्न हुई थीं। उनमे से आठ को तो धर्म के लिये दे दिया था और ग्यारह कन्याओं का दान रुद्र के लिये कर दिया था ॥७॥

शिवायैका सती प्रादात् कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशतिकन्याश्च दक्षश्चन्द्राय दत्तवान् ॥८॥
नामानि धर्मपत्नीनां मत्तो विप्रनिशामय।
शान्तिः पुष्टिर्धृतिस्तुष्टिः क्षमाश्रद्धामतिः स्मृतिः ॥९॥
शान्तेः पुत्रश्च सन्तोषः पुष्टेः पुत्रो महानभूत्।
धृतेर्धैर्यञ्च तुष्टेश्च हर्षदर्पौ सुतौ स्मृतौ ॥१०॥
क्षमापुत्रः सहिष्णुश्च श्रद्धापुत्रश्च धार्मिकः।
मतेर्ज्ञानाभिधः पुत्रः स्मृतर्जातिस्मरोमहान् ॥११॥
पूर्वपत्न्याञ्च मूर्त्याञ्च नरनारायणवृषी।
बभूवुरेते धर्मिष्ठा धर्मपुत्राश्च शौनक ॥१२॥
नामानि रुद्रपत्नीनां सावधानं निबोध मे।
कला कलावती काष्ठा कालिका कलहप्रिया ॥१३॥
कन्दली भीषणा रास्ना प्रमोचा भूषणा शुकी।
एतासां बहवः पुत्रा बभूवुः शिवपार्षदाः ॥१४॥

भगवान सदा शिव के लिये एक सती नाम वाली कन्या का दान किया था तथा कश्यप महर्षि को तेरह कन्यायें दी थीं। दक्ष प्रजापति ने सत्ताइस कन्यायें चन्द्र देव को दान कर प्रदान कर दी थी ॥८॥ हे विप्र ! मुझसे अब आप उन धर्मपत्नियों के नामों का श्रवण करो। शान्ति—पुष्टि-धृति-तुष्टि क्षमा-श्रद्धा-मति-स्मृति ये नाम उनके थे ॥९॥ शान्ति के पुत्र का नाम सन्तोष हुआ था। पुष्टि के पुत्र का नाम महान था। धृति का पुत्र धैर्य हुआ था। तुष्टि के पुत्र हर्ष और दर्प ये सुत हुए थे ॥९।१०॥ क्षमा का पुत्र सहिष्णु था और श्रद्धा का पुत्र धार्मिक समुत्पन्न हुआ था। मति के पुत्र का नाम ज्ञान था

और स्मृति का पुत्र महान् स्मर उत्पन्न हुआ था ॥११॥ पूर्व पत्नी में और मूर्ति में ऋषि नर नारायण समुत्पन्न हुए थे। हे शौनक! ये धर्म पुत्र परम धार्मिक थे ॥१२॥ अब रुद्र की पत्नियों के नामों को मुझ से सावधानता के साथ जान लेना चाहिये। कला-कलावती-काष्ठा-कालिका-कलह प्रिया-कन्दली-भीषणा-रास्ना-प्रमोचा-भूषणा-शुकी ये रुद्र देव की पत्नियों के शुभ नाम थे। इन धर्मपत्नियों से बहुत से पुत्र समुत्पन्न हुए थे जोकि महाशिव के पार्षद हुये थे ॥१३-१४॥

सा सती स्वामिनिन्दायां तनुं तत्याज यज्ञतः ।
पुनर्भूत्वा शैलपुत्री लेभे च शङ्करं पतिम् ॥१५॥
कश्यपस्य प्रियाणाश्च नामानिश्रृणु धार्मिक ।
अदितिर्देवमाता या दैत्यमातादितिस्तथा ॥१६॥
सर्पमाता तथा कद्रुर्विनता पक्षिसूस्तथा ।
सुरभिश्च गवां माता महिषाणाञ्च निश्चितम् ॥१७॥
सारमेयादिजन्तूनां सरमा सूश्चतुष्पदाम् ।
दनुः प्रसूर्दानवानामन्याश्चेत्येवमादिकाः ॥१८॥
इन्द्रश्च द्वादशादित्या उपेन्द्राद्याः सुरा मुने ! ।
कथिताश्चादितेः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ॥१९॥
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च ब्रह्मन् शच्यामजायत ।
आदित्यस्य सवर्णायां कन्यायां विश्वकर्मणः ॥२०॥
शनैश्चरयमौ पुत्रौ कालिन्दी कन्यका तथा ।
उपेन्द्रवीर्य्यात् पृथ्व्यान्तु मङ्गलःसमजायत ॥२१॥

वह जो सती नाम वाली शिव की पत्नी थी उसने अपने स्वामी शिव की निन्दा होने पर अपने शरीर का त्याग कर दिया था और फिर यज्ञ से हिमाचल शैल के यहाँ पुत्री के रूप में जन्म ग्रहण करके शङ्कर को ही अपना पति वरण किया था ॥१५॥ हे धार्मिक! अब आप मुझसे महर्षि कश्यप की धर्म पत्नियों के शुभ नामों का श्रवण करो। एक अदिति नाम धारणी कश्यप की पत्नी थी जो देव गण की माता थी और दूसरी दिति

नाम वाली धर्मपत्नी हुई थी जिसने दैत्यों को अपने उदर से उत्पन्न कर दैत्य माता हुई थी ॥१६॥ नागों की माता एवं कश्यप की पत्नी कद्रू थी और पक्षियों को प्रसूत करने वाली विनता थी। गौओं की माता का नाम सुरभि था और वही महिषों की भी माता थी। सारमेय आदि जन्तुओं की माता सरमा नाम वाली कश्यप की पत्नी थी और वही समस्त चतुष्पदों की माता हुई थी। दानवों को उत्पन्न करने वाली दनु भार्या थी। इसी प्रकार से अन्य भी पत्नियाँ हुई थी। १७-१८॥ इन्द्र और बारह आदित्य तथा उपेन्द्र आदि सुर हे मुने! अदिति के पुत्र कहे गये हैं जोकि महान् बल और अतुल पराक्रम वाले थे ॥१९। इन्द्र के पुत्र का नाम जयन्त था। हे ब्रह्मन्! यह जयन्त सुरेन्द्र की पत्नी शची से समुत्पन्न हुआ था। विश्वकर्मा की कन्या गयर्णी में आदित्य (सूर्य) के शनैश्चर और यम ये दो पुत्र थे तथा कालिन्दी नाम वाली एक कन्या ने जन्म ग्रहण किया था। उपेन्द्र की पत्नी पृथ्वी से उपेन्द्र के वीर्य से मङ्गल नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२०-२१॥

९—ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनम्।

कतिकल्पान्तरेऽतीतेस्रष्टुः सृष्टिविधौपुनः ।
मरीचिमत्रिंमुनिभि सार्द्धं कण्ठात् वभूवस. ॥१॥
विधेर्नरदनाम्नश्च कण्ठदेशात् वभूव सा. ।
नारदश्चाति विख्यातो मुनीन्द्रस्तेन हेतुना ॥२॥
य पुनश्चेतनमाधातुर्वभूव मुनिपुङ्गव ।
तेन प्रचेता इति च नामचक्रे पितामह' । ३॥
वभूव धातुर्य. पुनः सहसा दक्षपार्श्वतः ।
सर्वकर्मणि दक्षश्च तेनदक्षः प्रकीर्त्तितः ॥४॥
वेदेषु कर्दमः शब्दश्छायाया वर्त्तते स्फुटः ।
वभूव कर्दमात् वालःकर्दमस्तेनकीर्त्तित ॥५॥
तेजोभेदे मरीचिश्चवेदेषु वर्त्तते स्फुटम् ।

जातः सद्योऽतितेजस्वीमरीचिस्तेनकीर्त्तितः ॥६॥
क्रतुसंघश्च वालेन कृतो जन्मान्तरेऽधुना ।
ब्रह्मपुत्रेऽपि तन्नाम क्रतुरित्यभिधीयत ॥७॥

इस अध्याय में ब्रह्मा के पुत्रों की व्युत्पत्ति के कथन का वर्णन किया जाता है। सौति ने कहा—कितने कल्पों के अन्तर व्यतीत होजाने पर पुनः उस स्रष्टा की सृष्टि की विधि में मरीचिमिश्र मुनियों के साथ वह कण्ठ से हुआ था ॥१॥ नारद नाम वाले विधि के कण्ठ भाग से वह हुआ था। इसी हेतु से मुनीन्द्र नारद इस नाम से विख्यात हुआ था ॥२॥ जो धाता का पुत्र चित्त से होने वाला मुनियों में परम श्रेष्ठ हुआ था। इसी हेतु के होने से पितामह ने उसका नाम प्रचेता यह रख दिया था ॥३॥ धाता का जो एक पुत्र सहसा दक्षिण पार्श्व से उत्पन्न हुआ था और वह समस्त कर्मों के करने में बहुत कुशल भी हुआ इसी लिय वह दक्ष इस शुभ नाम से कहा गया था ॥४॥ वेदों में कर्दम यह शब्द छाया में स्फुट वर्त्तमान है। कर्दम से वह बालक हुआ था इसी कारण से वह कर्दम नाम से कहा गया है ॥५॥ वेदों में मरीचि यह शब्द तेज के एक भेद में स्पष्ट तथा वर्तमान रहता है और वह सद्यः अत्यन्त तेज वाला उत्पन्न हुआ था, इसी कारण से उसका मरीचि—यह नाम कहा गया है ॥६॥ बालक ने दूसरे जन्म में पहिले बहुत से ऋतुओं का समूह किया था और अब जब वह ब्रह्मा के यहाँ पुत्ररूप में समुत्पन्न हुआ तो उस समय भी उसका क्रतु-यही नाम कहा गया था ॥७॥

प्रधानाङ्गं मुखं धातुस्ततो जातश्चबालकः ।
इरस्तेजस्विवचनोऽप्यङ्गिरास्तेनकीर्त्तितः ॥८॥
अतितेजास्विनि भृगुर्वर्त्तते नाम्नि शौनक ! ।
जातः सद्योऽतितेजस्वी भृगुस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥९॥
बालोऽप्यरुणवर्णश्चजातः सद्योऽतितेजसा ।
प्रज्वलन्नूर्द्ध्वतपसान्नारुणिस्तेनकीर्त्तितः ॥१०॥
हंसा आत्मवशायस्य योगेन योगिनीध्रुवम् ।
बालः परमयोगीन्द्रस्तेनहंसी प्रकीर्त्तितः ॥११॥

अपान्तरतमे देशे तपस्तेपेऽन्यजन्मनि ।
अपान्तरतमा नाम शिशोस्तेन प्रकीर्त्तितम् ॥१८॥
स्वयं तपः समाप्नोति वाहयेत् प्रापयेत्परान् ।
ऊढुं समर्थस्तपसि वोढुस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥१९॥
तपसस्तेजसा बालो दीप्तिमान् सततं मुने ।
तपःसु रोचतेचित्तं रुचिस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥२०॥
कोपकाले वभूवुर्ये त्वष्टुरेकादश स्मृताः ।
रोदनादेव रुद्राश्च कोपिनास्तेन हेतुना ॥२१॥

पूर्व जन्मों में पुञ्ज नाम तपों का समूह जिस बालक के था । वही तपों के समूह के स्वरूप वाला अब उत्पन्न हुआ था। अत एव यह बालक भी पुलस्त्य इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥१५॥ तीन गुणों वाली प्रकृति में तीन विष्णाव प्रवृत्त होता है । उन दोनों की समान रूप से जिस की भक्ति थी इसी कारण से यह बालक अत्रि — इस नाम से कहा गया था ॥१६॥ जिसके मस्तक में अग्नि की शिखा के तुल्य पाँच जटाएं थीं और जिसका तप से होने वाला तेज था वह पञ्चशिख—इस शुभ नाम से कहा गया है ॥१७॥ जिस ने पूर्व जन्म में अपान्तर तम देश में तपस्या की थी इसी कारण से शिशु का नाम अपान्तरतमा—यह कीर्त्तित हो गया था ॥१८॥ जो स्वंय तो अपने सम्पूर्ण तप को समाप्त कर लेता है और दूसरों को वाहित एवं प्रापित किया करता है और तपस्या में वहन करने को समर्थ होता है इसी कारण से वह वोढु—इस नाम से कहा गया है ॥१९॥ तप से और तेज से हे मुने ! बालक दीप्तिमान् था और तपों में जिसका चित्त रुचि रखता है इसीलिये उसका नाम रुचि—यह कहा गया है ॥२०॥ जो त्वष्टा के कोप करने के समय एकादश पुत्र उत्पन्न हुये थे वे कोपित और रोदन करने वाले थे इसी हेतु से उनका रुद्र—ये नाम पड़ गया था ॥२१॥

रुद्रेष्वेकतमो बालो महेशइति मे मतः ।
भवान् पुराणतत्त्वज्ञ सन्देहंछेत्तुमर्हति ।२२॥
विष्णुः सत्त्वगुणः पाताब्रह्मास्रष्टारजोगुणः ।
तमोगुणास्ते रुद्राश्च दुर्निवाराः भयङ्कराः ॥२३॥

कालाग्निरुद्र संहर्त्ता तेष्वेकः शङ्करांशकः ।
शुद्धसत्त्वस्वरूपश्च शिवश्च शिवदः सताम् ॥२४॥
अन्ये कृष्णस्य च कलास्तावंशौविष्णुशङ्करौ ।
समौतत्त्वस्वरूपौद्वौपरिपूर्णतमस्य च ॥२५॥
उक्तं रुद्रोद्भवकाले कथं विस्मरसि द्विज ।
मायया मोहिता सर्वे मुनीनाञ्च मतिभ्रमः ॥२६॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ।
सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ब्रह्मणः सुतः ॥२७॥
ब्रह्मासृष्टुं पूर्वपुत्रानुवाच ते न सेहिरे ।
तेनप्रकोपितोधाता रुद्राः कोपोद्भवा मुने ॥२८॥

शौनक जी ने कहा है—उन एकादश रुद्रों में एक बालक महेश था ऐसा मेरा भ्रम था । आप तो पुराणों के तत्त्वों के पूर्ण ज्ञाता विद्वान हैं अतएव यह मेरा सन्देह आप छेदन करने के योग्य होते हैं ॥२२॥ सौति बोले—विष्णु सत्त्वगुण से युक्त हैं और दाता अर्थात पालन एवं रक्षण करने वाले हैं । ब्रह्मा सृजन कर्म के करने वाले हैं और रजोगुण से युक्त होते हैं । वे रुद्र तमोगुण से समन्वित होते हैं और वे दुर्निवार एवं महा भयङ्कर हुआ करते हैं ॥२३॥ उनमें से एक शङ्कर के अंश स्वरूप से हार करने वाले कालाग्नि रुद्र हैं । जो शिव हैं वे तो शुद्ध सत्त्व रूप हैं और सदा मनुष्यों के लिए कल्याण के प्रदान करने वाले होते हैं ॥२४॥ अन्य कृष्ण की कला हैं वे विष्णु और शंकर अंश हैं । वे दोनों परिपूर्णतम के समान तत्त्वस्वरूप वाले हैं ॥२५॥ हे द्विज ! मैंने तो यह सभी रुद्र के उद्भव-वर्णन के समय में बता दिया है । उसे अब तुम कैसे विस्मृत कर रहे हो ? सभी लोग माया के द्वारा मोहित हो जाया करते हैं और बड़े २ मुनियों को भी मति भ्रम हो जाता है ॥२६॥ सनक—सनन्द और तीसरा सनातन एवं चतुर्थ भगवान सनत्कुमार ये ब्रह्मा के पुत्र हैं ॥२७॥ श्री ब्रह्मा जी ने अपने इन पहिले जन्म ग्रहण वाले पुत्रों को इस जगत् के सृजन करने की आज्ञा

दी थी किन्तु उन चारों पुत्रों ने इसे सहन नहीं किया था अर्थात् सृष्टि की रचना करने की पिता परमेश्वर के आदेश से सहमत नहीं हुये थे। इसका फल यह हुआ कि विधाता को क्रोध हो गया था और हे मुने! उसी कोप से इन एकादश रुद्रों का उद्भव हुआ था ॥२८॥

सनकश्चसनन्दश्च तौ द्वावानन्दवाचकौ।
आनन्दितौचवालौ द्वौ भक्तिपूर्णतमौसदा ॥२८॥
सनातनश्चश्रीकृष्णो नित्यः पूर्णतमःस्वयम्।
तद्भक्तस्तत्समः सत्यंतेन वालःसनातनः ॥२९॥
सनत्तु नित्यवचनः कुमारः शिशुवाचकः।
सनत्कुमारं तेनेममुवाच कमलोद्भवः ॥३०॥
ब्रह्मणो वालकानाञ्च व्युत्पत्तिः कथिता मुने।
साम्प्रतं नारदाख्यानं श्रूयताञ्च यथाक्रमम् ॥३१॥

सनक और सनन्द ये दोनों शब्द आनन्द के वाचक हैं। ये दोनों वालक सदा भक्ति भाव से पूर्णतम और आनन्दित रहने वाले थे। सनातन (सर्वज्ञ से चले आने वाला) श्री कृष्ण है जो नित्य और स्वयं पूर्णतम हैं। उनका भक्त भी उन्हीं के समान है और सत्य स्वरूप है। अतएव इस वालक का नाम भी सनातन हो गया था ॥२९॥ सनत् - इस शब्द का नित्य अर्थ होता है और कुमार यह शब्द शिशु का वाचक होता है। इसी कारण से इस वालक को कमल से उद्भव प्राप्त करने वाले ब्रह्मा सनत्कुमार - इस नाम से कहा करते थे ॥३०। हे मुने! मैंने समस्त ब्रह्मा के वालकों के नामों की व्युत्पत्ति कर दी है और तुमसे कह भी दी है। अब इसके आगे श्री नारद का आख्यान क्रम के अनुसार उद्भव करिये ॥३१॥

१०–शिवोक्ताह्निकाचारवर्णनम्।

हरेस्तोत्रञ्च कवचं मंत्रं पूजाविधिं परम्।
हरं ययाचे देवर्षिर्ध्यानञ्च ज्ञानमेव च ॥१॥

स्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रं ध्यानंपूजाविधानकम् ।
तत्प्राक्तनीयंज्ञानञ्चददौतस्मै महेश्वरः ॥२॥
सर्वं प्राप्य मुनिश्रेष्ठः परिपूर्णमनोरथः ।
उवाच प्रणतो भक्त्या गुरुं प्रणतवत्सलम् ॥३॥

नारद उवाच

आह्निकं ब्राह्मणानाञ्च वद वेदविदां वर ।
स्वधर्मपालनं नित्यं यतो भवति नित्यशः ॥४॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

उत्थाय ब्राह्मे मुहूर्त्ते ब्रह्मरन्ध्रस्थपङ्कजे ।
सूक्ष्मे सहस्रपद्मे च निर्मले क्लान्तिवर्जिते ॥५॥
रात्रिवासं परित्यज्य गुरुं तत्रैव चिन्तयेत् ।
व्याख्यामुद्राकरं प्रीतं सस्मितं शिष्यवत्सलम् ॥६॥
प्रसन्नवदनं शान्तं परितुष्टं निरन्तरम् ।
साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपं च शिष्याणां चिन्तयेत्सदा ॥७॥

इस अध्याय में शिवके द्वारा कहे हुये आह्निक आचार का वर्णन किया जाता है। सौति ने कहा—देवर्षि ने हर हरि के स्तोत्र-कवच-मन्त्र-परमपूजा की विधि—ध्यान और ज्ञान के विषय में याचना की थी ॥१॥ महेश्वर ने स्तोत्र-कवच-मन्त्र-ध्यान पूजा का विधान और प्राक्तन ज्ञान सब देवर्षि के लिये दे दिया था ॥२॥ मुनियों में श्रेष्ठ ने यह सब कुछ प्राप्त करके पूर्णमनोरथ वाले देवर्षि होकर प्रणतों पर कृपा करने वाले गुरुदेव को भक्ति भाव से पूर्णतया प्रणत होकर बोले—नारद ने कहा—हे वेदों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ! अब आप मुझे ब्राह्मणों के आह्निक के विषय में वर्णन कीजिए जिससे नित्य ही स्वधर्म का पूर्ण परिपालन होता रहे ॥३-४॥ श्री महेश्वर ने कहा—ब्रह्मरन्ध्र में स्थित पद्म वाले सूक्ष्म सहस्रदल वाले निर्मल और क्लान्ति से रहित ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर रात्रि-वास का त्याग करके वहाँ पर ही श्रीगुरुदेव का चिन्तन करना चाहिए। श्रीगुरुदेव का स्वरूप ध्यान में ऐसा होना चाहिए

कि वे गूढ विषय व्याख्या करने की मुद्रा में स्थित है—परम प्रसन्न हैं—मन्द मुस्कान से युक्त हैं और अपने शिष्यों पर परमानुग्रह करने वाले है ।।५-६।। ऐसे प्रसन्नमुख वाले-परमशान्त स्वरूप-निरन्तर पूर्णतया परितुष्ट और शिष्य वर्ग के लिये साक्षात् ब्रह्म के स्वरूप वाले गुरुदेव का सदा ध्यान करना चाहिए ।।७।।

ध्यात्वा त्वद्गुरुमादाय हृत्पद्मे निर्मले सिते ।
सहस्रपत्रेविस्तीर्णेदेवमिष्टं विचिन्तयेत् ।।८।।
यस्य देवस्य यद्ध्यानं यद्रूपं तद्विचिन्तयेत् ।
गृहीत्वातदनुज्ञाञ्चकर्त्तव्यं समयोचितम् ।।९।।
आदौध्यात्वागुरुंनत्वासंपूज्यविधिपूर्वकम् ।
पश्चात्तदाज्ञामादाय,ध्यायेदिष्टप्रपूजये ।।१०।।
गुरुप्रदर्शितो देवो मन्त्रपूजाविधिर्जपः ।
न देवेन गुरुर्दृष्टस्तस्मात् देवात् गुरुः परः ।।११।।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः प्रकृतिरीशाद्या गुरुश्चन्द्रोऽनलो रविः ।।१२।।
गुरुर्वायुश्च वरुणो गुरुर्माता पिता सुहृत् ।
गुरुरेव परं ब्रह्मनास्ति पूज्यो गुरोः परः ।।१३।।
अभीष्टदेवरुष्टे च समर्थो रक्षणे गुरुः ।
न समर्था गुरौ रुष्टे रक्षणे सर्वदेवताः ।।१४।।

श्री गुरुदेव का ध्यान करके अपने श्वेत-निर्मल हृदय रूपी पद्म पर उन्हें स्थित करना चाहिये । फिर परम विस्तीर्ण सहस्र पत्र पर विराजमान अपने इष्ट देव का चिन्तन करना चाहिये ।।८।। जिस देवता का जैसा भी ध्यान होता है और जो भी उसका रूप वैसा ही विचिन्तन करना चाहिये । फिर उसकी अनुज्ञा को ग्रहण करके जो भी समयानुसार उचित हो उसे करना चाहिये ।।९।। सर्वप्रथम आदि में गुरुदेव का ध्यान करे—उनको प्रणाम करे और विधिपूर्वक गुरु का पूजन करे । फिर उनकी आज्ञा प्राप्त करे और फिर अपने इष्टदेव का गुरु की आज्ञा प्राप्त कर अर्चा करनी चाहिये ।।१०।।

श्री गुरुदेव ने ही देव को प्रदर्शित किया है और मन्त्र पूजा की विधि और जप भी श्री गुरुदेव ने ही सब बताया है। देवता ने गुरु को नहीं दिखाया है। गुरु ने ही देव को दिखाया है। इसीलिये देव से भी परतर श्री गुरुदेव ही होते हैं ॥११॥ गुरुदेव ही ब्रह्म हैं, गुरु ही विष्णु के स्वरूप वाले हैं और गुरुदेव ही साक्षात् महेश्वर हैं। ईश की आद्य प्रकृति भी गुरुदेव ही हैं। गुरु ही चन्द्र-अनल और रवि हैं। गुरुदेव ही बन्धु-वरुण-माता-पिता-सुहृत् हैं। श्री गुरुदेव ही परब्रह्म का स्वरूप हैं। अतएव गुरु से पर अन्य कोई भी पूजा के योग्य नहीं है। एक ही गुरुदेव में सबका निवास है। अतः ये परम पूज्य होते हैं ॥१२ १३॥ यदि किसी भी अपराध के कारण बन जाने पर अभीष्ट उपास्य देव रुष्ट भी हो जावे तो उनके रोष का मान करने वाले तथा उस रोष के परिणाम से रक्षा करने में समर्थ गुरुदेव होते हैं। तात्पर्य गुरु का अनुग्रह के पात्र शिष्य का और भी अनिष्ट कभी नहीं होता है और किसी भी अपराध से गुरुदेव रुष्ट हो जावे तो सब ने देवता भी मिलकर उस अपराध के भाजन की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥१४॥

यस्य तुष्टो गुरुः शश्वज्जयस्तस्य पदे पदे।
यस्य रुष्टो गुरुस्तस्य सर्वनाशश्च सर्वदा ॥१५॥
न सम्पूज्य गुरुं देवं यो मूढः पूजयेद् भ्रमात्।
ब्रह्महत्याशतं पापं लभते नात्र संशयः ॥१६॥
सामवेदे च भगवानिन्दुवाच हरिः स्वयम्।
तस्मादभीष्टदेवाच्च गुरुः पूज्यतमः परः ॥१७॥
वेदोक्तं स्थलमासाद्य ध्यात्वा स्तुत्वा च माधवम्।
जलं जलसमीपञ्च सरन्ध्रं प्राणिसन्निधिम्।
देवालयसमीपञ्च वृक्षमूलञ्च वर्त्म च ॥१९॥
हलोत्कृष्टस्थलञ्चैव शस्यक्षेत्रञ्च गोष्ठकम्।
नदीकन्दरगर्तञ्च पुष्पोद्यानञ्च पङ्किलम् ॥२०॥

ग्रामाद्यभ्यन्तरञ्चैव नृणां गृहसमीपकम् ।
शङ्कुं सेतुं शरवनं श्मशानं वह्निसन्निधिम् ॥२१॥

जिस भाग्यशाली साधक के गुरु देव परम प्रसन्न एवं शिष्य से पूर्ण सन्तुष्ट हैं और निरन्तर उनका अनुग्रह रहता है तो उसका पद-पद में सर्वत्र विजय ही होती है और जिसके गुरुदेव शिष्य पर रोषान्वित हैं उस व्यक्ति का सर्वदा के लिये ही सर्वनाश हो जाता है ॥१५॥ जो कोई मूढ मनुष्य अपने श्री गुरुदेव की अर्चना प्रथम न करके देव का पूजन भ्रम से किया करता है, वह एक शतब्रह्म हत्या के समान महापाप का भागी अवश्य ही हो जाता है इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१६॥ सामवेद में भगवान् हरि ने स्वयं ही यह कहा था, इसलिये अपने उपास्य एवं अभीष्ट देव से भी अधिक गुरुदेव ही पूज्यतम होते हैं ॥१७॥ हे मुने ! अतएव इष्ट श्री गुरु चरण का स्वयं ध्यान करके और साधना करने वाले व्यक्ति को उनका स्तवन करके फिर वेद में बताया हुआ स्थल प्राप्त करके सानन्द मलमूत्रादि का उत्सर्ग करना चाहिये ॥१८॥ अब मल-मूत्र के उत्सर्ग करने के विषय में पूर्ण विवरण दिया जाता है कि किस स्थान पर इसके करने में करना चाहिये—जल के समीप का स्थल-रन्ध्र (छिद्र) से युक्त स्थान प्राणियों की सन्निधि वाला स्थल-देवालय के समीप का स्थान-वृक्ष का मूल प्रदेश और मार्ग का स्थान मल-मूत्र के त्याग करने में त्याग कर देना चाहिये ॥१९॥ हल से उत्कर्षण जिस भूमि का हो चुका हो उस स्थान को-खड़ी हुई फसल वाले क्षेत्र को-गोष्ठ (गायों के रहने-बैठने का स्थल) को नदी और कन्दरा के मध्य भाग को—पुष्पों वाले उद्यान को और पङ्किल (कीच या दलदल वाले) स्थान को मलमूत्रोत्सर्जन के काम में त्याग कर देना चाहिये ॥२०॥ ग्राम आदि जना-वासों के भीतरी भाग को-मनुष्यों के निवास करने वालों ग्रहों के समीप का स्थल को-शङ्कु को-सेतु को-शरों के वन को-श्मशान भूमि के स्थान को और अग्नि के समीप में रहने वाले स्थान को भी मलादि के त्याग करने में अवश्य ही वर्जित कर देना चाहिये ॥२१॥

क्रीडास्थल महारण्य मध्यकाय स्थलतथा।
वृक्षच्छायायुतस्थानमन्न प्राण्यवपर्णकम् ॥२२॥
दूर्वास्थान कुशस्थान वल्मीकस्थानमेव च।
वृक्षारोपणभूमिञ्चकार्य्यार्थञ्चपरिष्कृतम् ॥२३॥
एतत् सर्व परित्यज्य सूर्य्यतापविवर्जितम्।
कृत्वा गर्त्त पुरीषञ्च मूत्रञ्च परिवर्जयेत् ॥२४॥
पुरीषमूत्रोत्सर्गञ्चदिवाकुर्य्यादुदङ्मुख।
पश्चिमाभिमुखोरात्रौसन्ध्यायादक्षिणामुख ॥२५॥
मौनी भूत्वा च नि श्वास यथा गन्धो न सञ्चरेत्।
स्थपत्वा मृदा नमाच्छाद्य शौच कुर्य्याद्विचक्षण ॥२६॥
कृत्वा तु लो ष्टशौचञ्च जलशौच तत परम्।
मृद्युक्त तज्जलञ्चैव तत्प्रमाणनिशामय ॥२७॥
एका लिङ्गे मृद दद्याद् वामहस्ते चतुष्टयम्।
उभयोर्हस्तयोर्द्वेतुमूत्रशौचप्रकीर्तितम ॥२८॥

क्रीडा करने का स्थल और महान आरण्य —मध्यकाय के नीचे का भाग-वृक्षों की छाया से युक्त स्थल अन्न प्राणियों का अवपर्ण—दूवा का स्थान-कुशा जहाँ पर लगे हुए हों वह स्थल सर्पों की बांबी जहाँ पर हो वह स्थान-वृक्षों के आरोपण करने की भूमि का स्थल और जो भूमि का स्थान किसी भी कार्य सम्पादन करने के लिए परिष्कृत किया गया हो—इन समस्त उपर्युक्त स्थलों का परित्याग मलादि के त्याग करने में कर देना चाहिए और सूर्य के ताप से वर्जित स्थान को भी त्याग देवे। गर्त्त करके पुरीष (मल) और मूत्र को परिवर्जित करना चाहिए ॥२२।२३॥२४॥ दिन के समय में सर्वदा मल मूत्र का त्याग उत्तर की ओर मुख करके करना चाहिए रात्रि के समय में पश्चिम दिशा की ओर मुख करने वाला होकर त्याग करे तथा सन्ध्या के समय में दक्षिणाभिमुख होकर त्याग करे ॥२५॥ मौनी होकर त्याग करे और नि श्वास ऐसा रखे जिससे गन्ध का सञ्चारण न होवे। मलादि का त्याग करके मिट्टी से उसे आच्छादित कर देवे और फिर

विचक्षण पुरुष को शुद्धि करनी चाहिए ।।२६।। पहिले लोष्ठ शौच करके फिर जल से शौच अर्थात् शुद्धि करे और वह जल भी मृत्तिका से युक्त होना चाहिये। अब उसका प्रमाण बताता हूँ। उसका श्रवण करो ।।२७।। लिङ्ग में एक बार मिट्टी लगाकर उसकी शुद्धि करे—वाम हस्त से चार बार मिट्टी से मले। दोनों हाथों को दो बार मिट्टी लगाकर मले। यह तो मूत्रोत्सर्ग करने का शौच होता है ।।२८।।

मूत्रशौचञ्च द्विगुणं मैथुनानन्तरं यदि ।
मैथुनानन्तरे शौचं मूत्रशौचं चतुर्गुणम् ।।२९।।
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश ।
उभयो सप्त दातव्याः पादः पञ्चेन शुध्यति ।।३०।।
पुरापशौचंविप्राणांगृहिणामिदमेवच ।
विधवानाञ्च द्विगुणं शौचमेवं प्रकीर्त्तितम् ।।३१।।
यतीनां वष्णवानाञ्च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मचारिणाम् ।
चतुर्गुणञ्च गृहिणां तेषां शौचंप्रकीर्त्तितम् ।।३२।।
नो यावदुपनीयत द्विजः शूद्रस्तथाङ्गना ।
गन्धलेपक्षयकरं तेषां शौच प्रकीर्त्तितम् ।।३३।।
शौचं क्षत्रविशोश्चैव द्विजानांगृहिणांसमम् ।
द्विगुणंवैष्णवादीनांमुनीनांपरिकीर्त्तितम् ।।३४।।
न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं शौचं शुद्धिमभीप्सता ।
प्रायश्चित्तं प्रयुज्येत विहितातिक्रमेकृते ।।३५।।

यदि मैथुन के पश्चात् मूत्रोत्सर्ग करे तो मूत्र की शुद्धि उक्त विधि से दुगुनी करनी चाहिये। मैथुन के अनन्तर शौच और मूत्र शौच चतुर्गुण हो जाता है ।।२९।। अब मलके त्याग में शुद्धि का विधान बताया जाता है—एक बार लिङ्ग को मिट्टी से मले। गुदा में तीन बार मृत्तिका लेपन कर उसकी शुद्धि करे—बायें हाथ से दशवार मिट्टी लगाकर मले—दोनों हाथों को मिलाकर सातवार मृत्तिका लेपन कर शुद्धि करनी चाहिये। छटे से पाद शुद्ध होता है। यह मलत्याग की शुद्धि विप्रों की और गृहाश्रमियों की

होती है। विधवाओं का दुगुना शौच बताया गया है ॥२०-३१॥ हे ब्रह्मर्षे! वानप्रस्थ—वैष्णवों का और ब्रह्मचारियों का शौच जो गृहियों का बताया गया है, उससे चौगुना होना चाहिये ॥३२॥ जब तक द्विज का उपनयन संस्कार नहीं होता है वह शूद्र के समान ही होता है और उसी प्रकार स्त्रियाँ होती हैं। उनका शौच गन्धलेप के क्षय का करने वाला ही होता है ॥३३॥ क्षत्रिय वर्ण वाले और वैश्यों का शौच गृहाश्रमी द्विजों के तुल्य ही होना चाहिये। अर्थात् गृहस्थ विप्रों का बताया गया है। वैसा ही इनका भी होता है। वैष्णव आदि का और मुनियों का इनसे दुगुना शौच बताया गया है ॥३४॥ जो शुद्धि करने की इच्छा रखता है कि वास्तविक शुद्धि होनी चाहिये उसे इससे न्यून और अधिक कभी नहीं करना चाहिये। यदि इसका अतिक्रमण किया जावे तो उसका प्रायश्चित अवश्य ही करना चाहिये ॥३५॥

शौचं तन्नियमं मत्तः सावधानं निशामय।
मृत्शौचेचशुचिर्विप्रोऽप्यशुचिश्चव्यतिक्रमे ॥३६॥
वल्मीकमूषिकोत्खाता मृदमन्तर्जला तथा।
शौचावशिष्टागेहाच्चनदद्यात्लेपसम्भवाम् ॥३७॥
अन्तः प्राण्यवपर्णाञ्चहलोत्खाताविशेषतः।
कुशमलोत्थिताञ्चैवदूर्वामूलोत्थितान्तथा ॥३८॥
अश्वत्थमलान्नीताञ्च तथैवशयनात्थिताम्।
चतुष्पथाच्च गोष्ठाना गोष्पदानातथैव च।
शम्यस्थलाना क्षेत्राणामुद्यानानामृदत्यजेत् ॥३९॥
स्नातो वाप्ययवास्नातोविप्र शौचेनशुध्यति।
शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥४०॥
कृत्वाशौचमिदं विप्रो मुखं प्रक्षालयेत् सुधी ॥४१॥
आदौ षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धि विधाय च।
दन्तकाष्ठेन दन्तञ्च तत्पश्चात् परिमार्जयेत् ॥४२॥

अब शौच और उसका नियम मुझसे तुम सावधान होकर श्रवण करो—मृतशौच में शुचि भी विप्र व्यतिक्रम होजाने पर अशुचि हो जाता है ॥३६॥

सर्पों की वल्मीक की तथा चूहों के द्वारा खोदी हुई मृत्तिका को और जो जलके अन्दर में रहने वाली मिट्टी होती है उसको—शौच से अवशिष्ट मिट्टी को और लेप से उत्पन्न मिट्टी को नहीं देना चाहिये ॥३७॥ अन्तः प्राण्यन-वपर्ण और विशेष करके हल से उत्खात मिट्टी को तथा कुशा के मूल से निकली हुई तथा दूभ की जड़ से उठी हुई मिट्टी को—पीपल वृक्ष की मूल से उखड़ी हुई एवं शयन से उठी हुई मृत्तिका को भी नहीं लेना चाहिये ॥३८॥ चौराहे की—गोष्टों की और गौओं के खुरों की—शस्यों के स्थलों की—खेतों की और उद्यानों की मृत्तिका का त्याग कर देना चाहिये ॥३९॥ स्नान किया हुआ हो अथवा स्नान न किया हुआ हो विप्र शौच से शुद्ध हो जाता है। जो शौच से हीन है वह नित्य ही अशुचि रहा करता है और समस्त कर्मों के सम्पादन करने के अयोग्य होता है ॥४०॥ इस प्रकार के शौच को करके जो उक्त विधि से बताया गया है उसे करके सुधी ब्राह्मण को अपने मुख का प्रक्षालन करना चाहिये ॥४१॥ आदि में सोलह कुल्लों के द्वारा मुख की पहले शुद्धि करे फिर दन्त काष्ठ (दाँतुन) से दाँतों का भली भाँति परिमार्जन करना चाहिये ॥४२॥

पुनः षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ।
दन्तमार्जनकाष्ठानां नियमं शृणु नारद ! ॥४३॥
निरूपितं सामवेदे हरिणा चाह्निकक्रमे ।
अपामार्गं सिन्धुवारमाम्रञ्च करवीरकम् ॥४४॥
खदिरञ्च शिरीषञ्च जातिपुन्नागशालकम् ।
अशोकमर्जुनञ्चैव क्षीरीवृक्षं कदम्बकम् ॥४५॥
जम्बूकं वकुलं चोड़ं पलाशञ्च प्रशस्तकम् ।
वदरीं पारिभद्रञ्चमन्दारंशाल्मलितथा ॥४६॥
वृक्षं कण्टकयुक्तञ्च लतादिपरिवर्जितम् ॥४७॥
पिप्पलञ्च पियालञ्च तिन्तिड़ीकञ्च ताड़कम् ।
खर्जूरं नारिकेलञ्च तालञ्च परिवर्जितम् ॥४८॥

दन्तशौचविहीनश्च सर्वशौचविहीनकः ।
शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥४६॥

इस दन्त धावन के द्वारा परिमार्जन करने के पश्चात् पुनः सोलह कुल्लियों के द्वारा मुख की शुद्धि करनी चाहिये । हे नारद ! अब दन्त काष्ठों के विषय में जो नियम है उनका श्रवण करो ॥४३॥

साम वेद में आह्निक के क्रम में हरि ने स्वयं निरूपण किया है—अपामार्ग - सिन्धुवार - आम्र - करवीरक - खादिर - शिरीष - जाति - पुन्नाग - शालक - अशोक अर्जुन - क्षीरी वृक्ष - कदम्बक जम्बूक - वकुल-चोडू-पलाश ये वृक्ष दाँतुन करने में प्रशस्त कहे गये हैं । बदरी (बेर)-पारिभद्र-मन्दार तथा शाल्मलि और काँटों से युक्त वृक्ष जो कि लता आदि से रहित दाँतुन होनी चाहिये ॥४४-४७॥ पीपल पियाल-निम्नदीक-ताडक खर्जूर-नारि बेल-ताल ये वृक्ष भी दाँतुन के लिये वर्जित कहे गये हैं ॥४८॥ जो व्यक्ति दाँतों के शौच से विहीन होता है वह-सब प्रकार के शौच से विहीन होता है । जो शौच (शुद्धि) से रहित अशुचि होता है, वह नित्य ही समस्त प्रकार के कर्मों में अयोग्य होता है ॥४९॥

कृत्वा शौचं शुचिर्विप्रो धृत्वा धौते च वाससी ।
प्रक्षाल्य पादमाचम्य प्रातः सन्ध्यां समाचरेत् ॥५०॥
एवं त्रिसन्ध्यं सन्ध्यां च कुरुतेकुलजो द्विजः ।
सस्नातः सर्वतीर्थेषु त्रिसन्ध्यं यः समाचरेत् ॥५१॥
त्रिसन्ध्यहीनोऽप्यशुचिरनर्हः सर्वकर्मसु ।
यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत् ॥५२॥
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहि कार्य्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥५३॥
पूर्वां सन्ध्यां परित्यज्य मध्यमां पश्चिमां तथा ।
ब्रह्महत्यामात्महत्यां प्रत्यहं लभते द्विजः ॥५४॥
एकादशीविहीनो यः सन्ध्याहीनश्च यो द्विजः ।
कल्पं व्रजेत् कालसूत्रं यथा हि वृषलीपतिः ॥५५॥

इस विधि शौच करके शुचि हो जाने वाला विप्र धुले हुये दो वस्त्रों को धारण करे अर्थात् पहिनने और ओढ़ने वाले दो वस्त्र होने चाहिये। फिर पैरों को धोकर आचमन करे और इसके अनन्तर प्रातः काल की सन्ध्या की उपासना करनी चाहिये ॥५०॥ इसी प्रकार से कुलीन विप्र को तीनों सन्धियों के काल में सन्ध्या करनी चाहिये। वह सर्व तीर्थों में स्नान किया हुआ होता है जो त्रिकाल सन्ध्या की उपासना किया करता है ॥५१॥ त्रिसन्ध्या से जो हीन होता है वह अशुचि और समस्त कर्मों में अयोग्य होता है। ऐसा व्यक्ति दिन में जो भी कर्म करता है उसके फल का भागी वह नहीं हुआ करता है अर्थात् उसका सबकुछ दिन में किया हुआ विफल होता है ॥५२॥ जो पूर्व सन्ध्या अर्थात् प्रातः कालिक की सन्ध्या उपासना नहीं करता है और जो पश्चिम सन्ध्या अर्थात् सायकाल की सन्ध्या की उपासना नहीं करता है वह शूद्र की भाँति समस्त ब्राह्मणों के कर्म से बहिष्कृत कर देने के योग्य होता है ॥५३॥ पूर्व सन्ध्या का तथा मध्यमा सन्ध्या का और पश्चिमा सन्ध्या का त्याग कर देता है वह द्विज प्रति दिन ब्रह्महत्या और आत्महत्या के पाप को प्राप्त किया करता है ॥५४॥ जो द्विज एकादशी से हीन होता है और सन्ध्योपासना से विहीन होता है वह एक वृषलीपति की भाँति कल्प पर्यन्त कालसूत्र नामक नरक में जाकर पतित होता है ॥५५॥

विधायप्रातः सन्ध्याञ्चगुरुमिष्टं सुरं रविम् ।
ब्रह्माणं शिवं विष्णुञ्चमायाञ्चनत्वासरस्वतीम् ॥५६॥
प्रणम्य तुलसीञ्च दर्पणं मधुकाञ्चनम् ।
स्पृष्ट्वा स्नानादिकं काले कुर्य्यात्स्नानकमत्तमः ॥५७॥
पुष्करिण्यान्तुवाप्यान्तु यदास्नानंसमाचरेत् ।
समुद्धृत्य पञ्चपिण्डान्पाठोदर्भो विचक्षणः ॥५८॥
नद्यांनदे कन्दरे वा तीर्थे वा स्नानमाचरेत् ।
कुर्य्यात् स्नात्वा तु सङ्कल्पं ततः स्नानं मुने ॥५९॥
श्रीकृष्णप्रीतिकामश्च वैष्णवानां महात्मनाम् ।
सङ्कल्पो गृहीणञ्चैवकृतपातकनाशनम् ॥६०॥

विप्रः कृत्वा तु सङ्कल्पमृद गात्रे प्रलेपयेत् ।
वेदोक्तमन्त्रेणानेन देहशुद्धि कृतन च ॥६१॥
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्तेवसुन्धरे ।
मृत्तिके हर मे पाप यन्मया दुष्कृत कृतम ॥६२॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
आरुह्य मम गात्राणि सर्व पाप प्रमोचय ॥६३॥

जो प्रात काल मे सन्ध्योपासना करके फिर-गुरु इष्टदेव-सुरगण-सूर्य-ब्रह्मा-ईश-विष्णु-माया-पद्मा-और सरस्वती को प्रणाम करके तथा गुरु की वन्दना करके फिर घृत-दर्पण-मधु काञ्चन का स्पर्श करके समय पर स्नान आदि की क्रिया करता है वह साधको म परम श्रेष्ठ होता है । ५६-५७॥ पुष्करिणी मे-वापी मे जब स्नान करे तो विचक्षण पुरुष को आदि म जोकि धर्म करने वाला है पाँच पिण्डो का समुद्धरण करना चाहिये ॥५८॥ नदी मे-नद मे अथवा कन्दर म या तीर्थ मे स्नान करना चाहिये । हे मुन ! पहले स्नान करन का सङ्कल्प करे और फिर स्नान करना चाहिये ॥५९॥ महान् आत्मा वाले वैष्णवो का और गृहाश्रमियो का सकल्प ही श्री कृष्ण की प्रीति की कामना वाला होता है और किये हुय पातको का नाशक हुआ करता है ॥६०॥ ब्राह्मण को सङ्कल्प करके फिर मृत्तिका को शरीर मे लेपन करना चाहिये । निम्न लिखित वद मे कहे हुये मन्त्र से मृत्युलेपन करे जोकि देह की शुद्धि करने वाला होता है ॥६१॥ मन्त्र—'अश्व क्रान्ते रथ क्रान्ते विष्णु क्रान्ते वसुन्धरे । मृत्तिके हरम पाप यन्मया दुष्कृत कृतम् । अर्थात् हे अश्वो के द्वारा क्रान्त होने वाली ! हे रथो से क्रान्त होने वाली ! हे विष्णु के द्वारा क्रान्त रूप वाली ! हे धनो को धारण करने वाली ! हे मृत्तिके ! मेरे पापो का हरण करो जो भी कुछ मैने दुष्कृत किया हो।॥६२॥ वराह के द्वारा आपको उठाया गया है। अब आप मेरे शरीर पर आरोहण करके मेरे समस्त पापो से मुझे प्रमुक्त कर दो ॥६३॥'

पुण्यदेहिमहाभागे स्नानानुज्ञां कुरुष्व माम् ।
इत्युक्तवाच जले नाभिप्रमाणे मन्त्रपूर्वकम् ॥६४॥

चतुर्हस्तप्रमाणाञ्च कृत्वा मण्डलिकां शुभाम् ।
तीर्थान्यावाहयेत्तत्र हस्तंदत्वा तपोधन ॥६५॥
यानि यानि च तीर्थानि सर्वाणि कथयामि ते ॥६६॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिंकुरु ॥६७॥
नलिनीनन्दिनी सीतामालिनी च महापथा ।
विष्णुपादार्घ्यसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥६८॥
पद्मवतीभोगवती स्वर्णरेखाच कौशिकी ।
दक्षापृथ्वीचसुभगा विश्वकाया शिवामृता ॥६९॥
विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसाविनी ।
क्षेमा च वैष्णवी शान्ता शान्तिदा गोमती सती ॥७०॥
सावित्रीतुलसीदुर्गा महालक्ष्मीः सरस्वती ।
कृष्णप्राणाधिकाराधा लोपामुद्रादितीरतिः ॥७१॥
अहल्या चादितीः संज्ञास्वधा स्वाहाप्यरुन्धती ।
शतरुपा देवहूतीत्येवमाद्या स्मरेत्सुधीः ॥७२॥

हे महा भागे ! मुझे पुण्य का प्रदान करो और स्नान करने की मुझे अनुज्ञा प्रदान करो। इतना कह कर नाभि प्रमाण जल में मन्त्रों के साथ चार हाथ प्रमाण वाली शुभ मण्डलिका करके हे तपोधन ! वहाँ पर तीर्थों का आवाहन करना चाहिये ॥६४॥ जो-जो भी तीर्थ है उन सब को मैं तुमसे कहता हूँ। प्रत्येक आवाहन किये जाने वाले तीर्थ के नाम को सम्बोधित करके प्रार्थना करनी चाहिये यथा—हे गङ्गे ! हे यमुने ! हे गोदावरि ! हे सरस्वती ! हे नर्मदे हे सिन्धु ! हे कावेरि ! आप सब यहाँ आकर इस जल में अपना सन्निधान करो ॥६५-६७॥ विद्वान् पुरुषों को निम्न देवी देवों का—उस समय स्मरण करना चाहिये यथा-नलिनी नन्दिनी-सीता मालिनी-महापथा-विष्णु के चरणों की अर्घ्यभूता-गङ्गा-त्रिपथगामिनी-पद्मावती-भोगवती-स्वर्णरेखा-कौशिकी दक्षा-पृथ्वी-सुभगा-विश्व काया-शिवा-अमृता-विद्याधरी-सुप्रसन्ना-लोक प्रसाविनी-क्षेमा-

वैष्णवी-शान्ता शान्तिदा-गोमती सती-सावित्री -तुलसी दुर्गा-महालक्ष्मी-सरस्वती कृष्ण प्राणाधिका राधा-लोपा मुद्रा अदिति-रति अहल्या-अदिति-संज्ञा-स्वधा-स्वाहा-अरुन्धती-शतरूपा और देवहूति इत्यादि के नामों का स्मरण उस स्नान के समय में करना शुभ होता है ॥६८-७२॥

स्नात्वास्नात्वा महापूतं कुर्य्यात्तु तिलकं बुधः ।
बाह्वोर्मूले ललाटे च कण्ठदेशे च वक्षसि ॥७३॥
स्नानदानं तपो होमं देवञ्च पितृकर्मसु ।
तत् सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना ॥७४॥
ब्राह्मणस्तिलकं कृत्वा कुर्य्यात् सन्ध्याञ्च तर्पणम् ।
नमस्कृत्य सुरान् भक्त्या गृहं गच्छेन्मुदान्वितः ॥७५॥
प्रक्षाल्य पादं यत्नेन धृत्वा धौते च वाससी ।
मन्दिरं प्रविशेत् प्राज्ञ इत्याह हरिरेव च ॥७६॥
स्नात्वा पादौ च प्रक्षाल्य स्नात्वा विशति मन्दिरम् ।
तस्य स्नानादिकं नष्टं जपहोमञ्च पञ्चमम् ॥७७॥

बार-बार स्नान करके अर्थात् पुर्वक्रियों से गावर अपने आपको महा पूत करे और फिर बुधका चाहिये कि स्नान करके तिलक करे। तिलक किन ७ स्थानों में शरीराङ्गों पर करे, इसे बताया जाता है कि बाहुओं के मूल में-ललाट में कण्ठदेश में और वक्ष स्थल में तिलक लगाना चाहिये ॥७३॥ स्नान-दान-तप-होम-देव कर्म और पितृ कर्म यह सब ललाट में तिलक के बिना निष्फल हो जाते हैं ॥७४॥ ब्राह्मण को निर्दिष्ट शरीराङ्गों पर तिलक करके फिर सन्ध्या और तर्पण करना चाहिये। इसके उपरान्त भक्तिभाव से देवों को नमस्कार करके आनन्द से युक्त होकर घर को आना चाहिये ॥७५॥ वहाँ घर पर पैरों को धोकर और धौत (धुले हुए) वस्त्रद्वय धारण करके प्राज्ञ पुरुष को मन्दिर में प्रवेश करना चाहिये—यह हरि ने ही कहा है ॥७६॥ स्नान स्नान किये और अपने पैरों को धोये जो कोई हरिमन्दिर में या देवालय में प्रवेश किया करता है उसका स्नान आदिक जप और पञ्चम होम सभी नष्ट हो जाता है ॥७७॥

परिधायस्निग्धवस्त्रंगृहञ्चप्रविशेद् गृही ।
रुष्टालक्ष्मीगृंहाद्याति शापंदत्त्वासुदारुणम् ॥७८॥
ऊर्द्ध्वजङ्घे चयोविप्रः पादौ प्रक्षालयेत् यदि ।
तावद्भवतिचाण्डलो यावद् गङ्गान पश्यति ॥७९॥
उपविश्यासनेब्रह्मन्नाचम्य साधकःशुचि ।
पूजांकुर्य्यात्तु वेदोक्तं भक्तियुक्तोहि संयतः ॥८०॥
शालग्रामे मणौ मन्त्रे प्रतिमायां जले स्थले ।
गोपृष्ठेवा गुरौ विप्रे प्रशस्तमर्चनं हरेः ॥८१॥
सर्वप्रशस्ता पूजा च शालग्रामे च नारद ।
सुराणामेव सर्वेषां यत्राधिष्ठानमेव च ॥८२॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वज्ञेषु दीक्षितः ।
शालग्रामोदकेनैव योऽभिषेकं समाचरेत् ॥८३॥
शालग्रामेजलं भक्तया नित्यमश्नातियो नरः ।
जीवन्मुक्तःसच भवेद् यात्तयन्ते कृष्णमन्दिरम् ॥८४॥

स्निग्ध वस्त्र का परिधान करके गृही को घर में प्रवेश करना चाहिये । यदि ऐसा नहीं करता है तो लक्ष्मी रुष्टा होकर घर से सुदारुण शाप देकर चली जाया करती है। जो विप्र ऊर्ध्व जङ्घ मे पैरों का यदि प्रक्षालन करता है तो वह तबतक चाण्डाल हो जाता है जब तक वह गंगा दर्शन नहीं किया करता है ॥७८-७९॥ हे ब्रह्मन ! इसके अनन्तर वहाँ आसनपर उपविष्ट होकर शुचि साधना करने वाले साधक को आचमन करना चाहिये। फिर भक्तिभाव से समन्वित होकर संयत होते हुये वेदोक्त विधि से देव की पूजा करनी चाहिये ॥८०॥ शालग्राम में—मणि में-मन्त्र मे-प्रतिमा में जल में-स्थल में-अथवा गोपृष्ठ में-गुरु में और विप्र में हरि का अर्चन करना प्रशस्त होता है ॥८१॥ हे नारद ! सब पूजा प्रशस्त है और शालग्राम में अत्यधिक प्रशस्त है क्योंकि वहाँ पर समस्त सुरों का अधिष्ठान होता है ॥८२॥ जो कोई शालग्राम के उदक से अभिषेक किया करता है वह समस्त तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त कर लेता है तथा सम्पूर्ण यज्ञों में दीक्षित हुआ सा जाया करता है

शालग्राम में जो भक्तिभाव से जल को अर्थात् शालग्राम के स्नान किये हुये तीर्थ को नित्य पीता है वह पुरुष जीवित ही मुक्त हो जाता है और अन्त में कृष्ण मन्दिर को प्राप्त हो जाता है ॥८३-८४॥

शालग्रामशिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद ।
सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चितम् ।८५॥
तत्र यो हि मृतो देही ज्ञानाज्ञानेन दैवतः ।
रत्ननिर्माणयानेन स याति श्रीहरेः पदम् ।८६॥
शालग्रामं विनान्यत्र कः साधुः पूजयेद्धरिम् ।
कृत्वा तत्र हरेः पूजां परिपूर्णं फलं लभेत् ॥८७॥
पूजाधारश्च कथितः श्रूयतां पूजनक्रमः ।
हरेः पूजा बहुमता कथयामि यथागमम् ॥८८॥
कश्चिद् ददाति हरये चोपचारांश्च षोडश ।
सुन्दराणि पवित्राणि नित्यं भक्तया च वैष्णवः ॥८९॥
कश्चिद् द्वादश द्रव्याणि पञ्चवस्तूनि कश्चन ।
गेयामेव यथाशक्तिर्भक्तिर्मूलञ्च पूजने ॥९०॥
आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
पुष्पं चन्दनधूपञ्च दीपनैवेद्यमुत्तमम् ॥९१॥
गन्धं माल्यञ्च शय्याञ्च ललितां सुविलक्षणाम् ।
जलमन्नञ्च ताम्बूलं साधारं देयमेव च ॥९२॥

हे नारद ! शालग्राम का शिलाचक्र जिस स्थान पर स्थित रहता है वहीं पर सुदर्शन चक्र के सहित साक्षात् भगवान् ही स्थित रहा करते हैं और निश्चित रूप से समस्त तीर्थ निवास किया करते हैं ।८५। वहाँ पर जो कोई भी देहधारी मृत होता है चाहे वह ज्ञान पूर्वक रहता हो या अज्ञान वश ही दैवात् निवास करता हो, वह रत्नों द्वारा निर्मित यान के द्वारा श्री हरि के पद (स्थान) को प्राप्त हो जाता है ।८६। शालग्राम शिला के बिना अन्यत्र कौन साधु हरि की पूजा करता है ? अर्थात् कोई नहीं । वहाँ अर्थात्

शालग्राम शिलामें हरि की पूजा करके परिपूर्ण फल का लाभ प्राप्त होता है ॥८७॥ अब तक मैंने पूजा के आधार को बता दिया है। अब आगे पूजा के क्रम का आप लोग श्रवण करें। बहुमत अर्थात् अधिक शास्त्रों—मुनियों और देवों तथा विद्वानों के द्वारा मानी हुई हरि की पूजा को जैसा कि आगम बताता है, अब मैं कहता हूँ ॥८८॥ कोई वैष्णव परम भक्ति की भावना से नित्य ही हरि के लिये षोडश उपचारों को समर्पित किया करता है जो कि परम सुन्दर और पवित्र हुआ करते है ॥८९॥ कोई बारह ही उपचारों के द्वारा पूजन किया करता है और कोई तो केवल पाँच ही प्रमुख पूजनोपचारों के द्वारा हरि का भजन करता है। जिनकी जो भी शक्ति होती है उसी के अनुसार अर्चन के उपचारों से यजन करते हैं किन्तु वस्तुतः हरि के पूजन में मूल वस्तु भक्ति की सुदृढ़ भावना ही होनी है ॥९०॥ आसन-वस्त्र-पाद्य-अर्घ्य-आचमनीय-पुष्प-चन्दन-धूप-दीप-नैवेद्य जोकि अत्युत्तम हो—गन्ध-माल्य-सुविलक्षण ललित शय्या-जल-अन्न-ताम्बूल हो सब साधार समर्पित करने चाहिये ॥९१-९२॥

गन्धान्नतल्पताम्बूलं विनाद्रव्याणि द्वादश।
पाद्यार्घ्यजल नैवेद्य पुष्पाण्येतानि पञ्च च ॥९३॥
सर्वाण्येतानि मूलेन दद्यात् साधकसत्तमः।
गुरूपदिष्टं मूलञ्च प्रशस्तं सर्वकर्मसु ॥९४॥
आदौ कृत्वा भूतशुद्धिं प्राणायामं ततः परम्।
अङ्गप्रत्यङ्गन्यासञ्च मन्त्रन्यासमतः परम् ॥९५॥
वर्णन्यासं विनिर्वर्त्य चार्घ्यपात्रं विनिर्दिशेत्।
त्रिकोणमण्डलंकृत्वा तत्रकूर्मंप्रपूजयेत् ॥९६॥
जलनापूर्य शङ्खञ्च तत्रसंस्थापयेद् द्विजः।
जलं संपूज्यविधिवत्तीर्थान्यावाहयेत्ततः ॥९७॥
पूजोपकरणं तेन जलेन क्षालयेत् पुनः।
ततोगृहीत्वा पुष्पञ्च कृत्वायोगासनं शुचिः ॥९८॥

गन्ध-अन्न-तल्प (शय्या) और ताम्बूल के बिना कुल बारह ही उपचार होते हैं। पाद्य-अर्घ्य-जल-पुष्प नैवेद्य ये पाँच उपचार प्रजन के हुआ करते है ॥९३॥ साधना करने वाले श्रेष्ठ पुरुष को ये समस्त पूजनोपचार मूल-मन्त्र से ही देव को समर्पित करने चाहिये। गुरु के द्वारा जो मन्त्र का उपदेश किया हो, वही मूल मन्त्र होता है और यह समस्त कर्मों में परम प्रशस्त होता है ॥९४॥

सबके आदि में भूत शुद्धि करे और इसके पश्चात् प्राणायाम करना चाहिये। फिर मन्त्र के द्वारा अङ्ग-प्रत्यङ्ग में न्यास करे और फिर मन्त्र का न्यास करना चाहिये ॥९५॥ फिर वर्ण न्यास की विनिवृत्ति करे। इसके पश्चात् अर्घ्यपात्र को विनिर्दिष्ट करना चाहिये। त्रिकोण एवं मण्डल की रचना करके वहाँ पर कूर्म की पूजा करे ॥९६॥ द्विज को चाहिए कि जल में शङ्ख को पूरित करके वहाँ पर संस्थापित करे। जल की विधि-विधान के साथ पूजा करके फिर समस्त तीर्थों का उस जल में आवाहन करना चाहिए ॥९७।
इ [illegible] हाँ उपकरण हों, उनको उस जल से क्षालन
म [illegible] गासन में स्थित होवे और पुष्प ग्रहण करे
।

[illegible]त् कृत्वागमनन्यधी ।
[illegible]द्यान्मूलेन साधकः ॥९९॥
[illegible]ाक्तः पूजयद्धरिम् ।
[illegible]वमन्त्र विसर्जयेत् ॥१००॥
[illegible]वा च कवच पठेत् ।
[illegible]र्णां च प्रणमेद्भुवि ॥१०१॥
[illegible]कुर्याद्विचक्षणः ।
[illegible]लिदद्यात्ततो मुने ॥१०२॥
[illegible]र्न वित्तानुरूपकम् ।
[illegible] क्रमाद्पश्चुतोयुत ॥१०३॥

इति ते कथितं सर्वं वेदोक्तं सूत्रमुत्तमम् ।
आह्निकस्य च विप्राणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०४॥

श्री गुरु चरण के द्वारा उपदेश किये हुये ध्यान के द्वारा अनन्य बुद्धि वाले को श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिये और फिर साधना करने वाले साधक भक्त पूजक को मूल मन्त्र के द्वारा ध्यान करके समस्त अर्घ्य-पाद्य-आचमन-स्नान-वस्त्र-माल्य-धूप-दीप नैवेद्य-गन्ध-अञ्जन आदि उपचारों को क्रमशः समर्पित करना चाहिये ॥६६॥ तन्त्रोक्त देव के अङ्ग और प्रत्यङ्ग की पूजा करे। यथाशक्ति मूल मन्त्र का जप करके देव मन्त्र का विसर्जन करना चाहिये ॥१००॥ विविध भाँति के उपचारों को समर्पण कर के हरि की स्तुति करे और फिर कवच का पाठ करना चाहिये। इसके उपरान्त परीहार करके मस्तक से भूतल में देव को प्रणाम करे ॥१०१॥ इस तरह देव की पूजा का पूर्णतया साङ्ग सम्पादन करके विचक्षण पुरुष को यज्ञ कर्म करना चाहिये। हे मुने ! श्रौत-स्मार्त्त अग्नि से युक्त यज्ञ करे और फिर बलि देनी चाहिये ॥१०२॥ इसके अनन्तर नित्य श्राद्ध करे और फिर यथाशक्ति अपने अपने वित्त के अनुसार दान करना चाहिये। यह सब पूर्ण करके कृती पुरुष को विहार करना चाहिये। यह क्रम श्रुति में श्रुत होता है ॥१०३॥ हे विप्र ! इस प्रकार से यह सब हमने तुमको बता दिया है। यही वेद में कहा हुआ उत्तम सूत्र है जोकि विप्रों का आह्निक हुआ करता है। अब आप लोग मुझे यह बताओ—अब आगे क्या श्रवण करना चाहते हैं ? ॥१०४॥

—— —

११—ब्रह्मनिरूपणम् ।

श्रुतं सर्वं जगन्नाथ त्वत्प्रसादज्जगद्गुरो ।
भवान् ब्रह्मस्वरूपञ्च वद ब्रह्मनिरूपणम् ॥१॥
प्रभो किं ब्रह्म साकारं किं निराकारमीश्वरम् ।
किं तद्विशेषणं किं वाप्यविशेषणमेव च ॥२॥

किं वा दृश्यमदृश्यं वा लिप्तं देहिषु किं न वा ।
किं वा तल्लक्षणं शस्तं वेदे वा किं निरूपणम् ॥३॥
ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिः किं वा ब्रह्मस्वरूपिणी ।
प्रकृतिर्लक्षणं किं वा सारभूतश्रुतौ श्रुतम् ॥४॥
कस्य सृष्टौ च प्राधान्यं द्वयोर्मध्ये वरं परम् ।
विचार्य्यं मनसा सर्वं सर्वज्ञ वद मां ध्रुवम् ॥५॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा पञ्चवक्त्रः प्रहस्य च ।
भगवान् वक्तुमारेभे परं ब्रह्मनिरूपणम् ॥६॥

इस अध्याय में ब्रह्म का निरूपण किया जाता है । देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! हे जगत गुरो ! आपके प्रसाद से मैंने यह सब भली भाँति श्रवण किया है । आप तो ब्रह्म स्वरूप है अतएव अब ब्रह्म का निरूपण करके बताने का अनुग्रह कीजिये ॥१॥ हे प्रभो ! क्या ब्रह्म आकार वाला है अथवा क्या वह ईश्वर निराकार है ? उस ब्रह्म का विशेषण क्या है ? अथवा उसकी अविशेषता क्या है ? ॥२॥ क्या वह ब्रह्म देखने के योग्य है अथवा अदृश्य है अथवा वह देहियों से लिप्त है ? या उसका प्रशस्त लक्षण क्या होता है किम्वा वेद में उसका निरूपण किस प्रकार का किया गया है ? ॥३॥ उस ब्रह्म से अतिरिक्त जो प्रकृति है वह क्या ब्रह्म के स्वरूप वाली है ? उस प्रकृति का लक्षण क्या होता है ? जोकि सारभूत श्रुति में श्रुत होता है ? ॥४॥ इन दोनों में सृष्टि के सृजन में किस की प्रधानता होती है ? इन दोनों के मध्य में परम श्रेष्ठ कौन है ? हे सर्वज्ञ ! यह सब मन में भली भाँति विचार करके मुझे सब ध्रुव जो हो वह बताने की कृपा करें ॥५॥ देवर्षि नारद के इस वचनावली का श्रवण करके पञ्चवक्त्र प्रहसित हुए और हँसकर फिर भगवान् शिव ने पर ब्रह्म का निरूपण करना आरम्भ किया था अर्थात् बतलाना शुरू किया ॥६॥

यद् यत् पृष्टं त्वया वत्स निगूढं ज्ञानमुत्तमम् ।
सुदुर्लभञ्च वेदेषु पुराणेषु च नारद ॥७॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शेषो धर्मो महान् विराट् ।
सर्वं निरूपितं ब्रह्मन्नस्माभिः श्रुतिभिर्न वा ॥८॥

यद्विशेषणयुक्तञ्च दृश्यं प्रत्यक्षमेव च ।
तन्निरूपितमस्माभिर्वेदे वेदविदां वर ॥९॥
वैकुण्ठे च पुरा पृष्टे धर्मेण ब्रह्मणा मया ।
यदुवाच हरिः किञ्चिन्निबोध कथयामि ते ॥१०॥
सारभूतञ्च तत्त्वानामज्ञानान्धकलोचनम् ।
द्वैधभ्रमतमोध्वंससुप्रकृष्टप्रदीपकम् ॥११॥
परमात्मस्वरूपञ्च परं ब्रह्म सनातनम् ।
सर्वदेहस्थितं साक्षिस्वरूपं देहिकर्मणाम् ॥१२॥
प्राणाः पञ्च स्वयं विष्णुर्मनो ब्रह्माप्रजापतिः ।
सर्वज्ञानस्वरूपोऽहंशक्तिःप्रकृतिरीश्वरी ॥१३॥
आत्माधीना वयं सर्वे स्थिते तस्मिंश्च संस्थिताः ।
गते गताश्च परमे नारदैवमिवानुगाः ॥१४॥

श्री महादेव ने कहा—हे वत्स ! तुमने जो भी प्रश्नो के द्वारा पूछा है वह अति निगूढ उत्तम ज्ञान का विषय है। हे नारद ! यह विषय वेदो में और पुराणों में अत्यन्त दुर्लभ है ॥७॥ मैं-ब्रह्मा-विष्णु-शेष धर्म और महान् विराट् यह सब हे ब्रह्मन् ! हमने निरूपित किया है, श्रुतियों ने नहीं किया है ॥८॥ हे वेदों के वेत्ताओं में वर ! जिस विशेषण से वह युक्त होता है—वह दृश्य है और प्रत्यक्ष है, यह हमने वेद में भली भाँति निरूपित कर दिया ॥९॥ पहिले वैकुण्ठ लोक मे धर्म के द्वारा ब्रह्मा के द्वारा और मेरे द्वारा [illegible] पर भगवान् हरि ने जो कुछ कहा था, उसे आप समझिये—मैं वही सब [illegible]को कहता हूँ ॥१०॥ तत्त्वों का सार भूत अज्ञान के अन्धकार का नेत्र है। [illegible] के भ्रम के तम का ध्वंस करने वाला प्रकृष्ट प्रदीप है ॥११॥ परमात्मा स्वरूप सनातन परम ब्रह्म है ! जोकि सबके देहों मे स्थित रहता है और [illegible]रियों के कर्मो का साक्षि स्वरूप वाला है ॥१२॥ पाँच प्राण स्वयं विष्णु [illegible]न स्वयं प्रजापति ब्रह्मा हैं—सर्व ज्ञान स्वरूप मैं हूँ और शक्ति ईश्वरी [illegible]ति है ॥१३॥ हम सब आत्मा के अधीन होते हैं। उसके स्थित होने पर ही [illegible]म सब संस्थित रहा करते हैं। उसके परम में चले जाने पर हम सब भी गत

हो जाया करते हैं जैसे कोई नर देव के साथ उसके अनुगामी भी चले जाया करते हैं ॥१०॥

जीवस्तत्प्रतिविम्बश्च स च भोगी च कर्मणाम् ।
यथार्कचन्द्रयोर्विम्बो जलपूर्णघटेषु च ॥१५॥
बिम्बो घटेषु भग्नेषु प्रलीनश्चन्द्रसूर्ययो ।
तथा सृष्टौ च भग्नायाजीवो ब्रह्मणि लीयते ॥१६॥
एकमेव पर ब्रह्म शेषे वत्स भवक्षये ।
वय प्रलीनास्तत्रैव जगदेतच्चराचरम् ॥१७॥
तच्च ज्योति स्वरूपञ्च मण्डलाकारमेव च ।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डकोटिकोटिसमप्रभम् ॥१८॥
आकाशमिव विस्तीर्णं सर्वव्यापकमव्ययम् ।
सुखदृश्य यथा चन्द्रविम्ब योगिभिरेव च ॥१९॥
वदन्ति योगिनस्तत्तु पर ब्रह्म सनातनम् ।
दिवानिशञ्च ध्यायन्ते सत्य तत् सर्वमङ्गलम् ॥२०॥
निरीहञ्च निराकार परमात्मनमीश्वरम् ।
स्वेच्छामय स्वतन्त्रञ्च सर्वकारणकारणम् ।२१॥
परमानन्दरूपञ्च परमानन्दकारणम् ।
पर प्रधान पुरुष निर्गुण प्रकृते परम् ।
तत्रैव लीना प्रकृति सर्वबीजस्वरूपिणी ॥२२॥

यह जीवात्मा उसका ही एक प्रतिबिम्ब होता है और कर्मों के भोगने वाला हुआ करता है। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा का बिम्ब जल से पूर्ण घटो मे दिखाई दिया करता है ॥१५॥ घटो का जब भग हो जाता है तो वह बिम्ब जो उनमें भरे हुये जल में दिखाई देता था, चन्द्र और सूर्य मे ही जाकर प्रलीन हो जाया करता है। उसी प्रकार से इस सृष्टि के भग्न हो जाने पर यह जीवात्मा ब्रह्म मे जाकर लीन हो जाया करता है ॥१६॥ हे वत्स ! यह ब्रह्म एक ही होता है जबकि भव का क्षय शेष हो जाता है। हम सब भी उसी मे प्रलीन हो जाया करते हैं और यह चराचर सम्पूर्ण जगत् भी उसमे प्रलीन हो

जाता है ॥१७॥ वह ज्योति स्वरूप होता है और एक मण्डल के आकार वाला ही है। उसका महा प्रकाश ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न समय के सूर्य के कितने ही करोड़ों - प्रभा के समान वाला है ॥१८॥ वह इस आकाश के समान महान् विस्तार वाला है—सब में व्यापक है और अवश्य है। योगियों के द्वारा ही चन्द्र के बिम्ब की भाँति यह सुखद पूर्व के देखने योग्य होता है ॥१९॥ योगी लोग उसे सनातन परम ब्रह्म कहते हैं और वे रातदिन उस सत्य सर्व मङ्गल का ध्यान किया करते हैं ॥२०॥ वह निरीह है अर्थात् चेष्टा या इच्छा से रहित है—निराकार है अर्थात् आकृति से रहित है—परमात्मा - ईश्वर - स्वेच्छा से परिपूर्ण - स्वतन्त्र है और सबके कारणों का भी कारण है। परम आनन्द के रूप वाला-परम आनन्द का कारण-पर-प्रधान पुरुष-निर्गुण-प्रकृति से पर वह ब्रह्म है। वहाँ पर ही यह सबके बीज स्वरूप वाली प्रकृति लीन होती है ॥२१-२२॥

यथाग्नौ दाहिका शक्तिः प्रभा सूर्य्ये यथा मुने।
यथा दुग्धे च धावल्यं जलेशैत्यंयथैव च ॥२३॥
यथा शब्दश्च गगने यथा गन्धः क्षितौ सदा।
तथाहि निर्गुणं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिस्तथा ॥२४॥
सृष्ट्युन्मुखे न तद्ब्रह्माचांशेन पुरुषः स्मृतः।
स एव सगुणो वत्स ! प्राकृतोविषयीस्मृतः ॥२५॥
सा च तत्रैव त्रिगुणा परा छायामयी स्मृता ॥२६॥
यथा मृदा कुलालश्च घटं कर्त्तुं क्षमः सदा।
तथाप्रकृत्या तद्ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं क्षमोमुने ॥२७॥
स्वर्णेन कुण्डलं कर्त्तुं स्वर्णकारः क्षमो यथा।
तथा ब्रह्म तयासार्द्धं सृष्टिं कर्त्तुमिहेश्वरः २८॥
कुलालसृष्टा न च मृन्नित्या एव सनातनी।
न स्वर्णकारसृष्टं तत्स्वर्णञ्च नित्यमेव च ॥२९॥
नित्यं तत् परमं ब्रह्म नित्या च प्रकृतिः स्मृता।
द्वयोः समञ्च प्राधान्यमिति केचिद्वदन्ति हि ॥३०॥

हे मुने ! जिस प्रकार से अग्नि में दाह करने वाली शक्ति और सूर्य में प्रभा एवं दूध में धवलता तथा जल में शीतलता, गगन में शब्द-पृथ्वी में गन्ध सदा ही रहा करते हैं और ये सब इन गुणों से कभी हीन नहीं होते हैं वैसे ही वह निर्गुण ब्रह्म है तथा प्रकृति भी निर्गुण है ॥२३-२४॥ वही ब्रह्म जब सृष्टि की रचना करने को उन्मुख होता है तो वह अंश से पुरुष हो जाता है और ऐसा ही कहा गया है। हे वत्स ! वह ही सगुण होता है एवं प्राकृत तीन (सत्व-रज-तम) गुणों वाली त्रिगुणा परा छायामयी कही गई है ॥२५-२६॥ जिस तरह कुलाल (कुम्हार) घट की रचना करने में सदा ही समर्थ होता है, हे मुने ! उसी प्रकार से वह ब्रह्म प्रकृति से सृष्टि की रचना करने में समर्थ होता है ॥२७॥ जिस प्रकार से स्वर्णकार सुवर्ण से कुण्डलों की रचना करने में समर्थ होता है ठीक उसी भाँति से प्रकृति के साथ ईश्वर भी यहाँ पर सृष्टि का निर्माण करने की क्षमता रखा करता है ॥२८॥ कुम्हार के द्वारा बनाई हुई मृत्तिका नित्य एवं सनातनी नहीं होती है और न स्वर्णकार के द्वारा सृष्ट वह स्वर्ण ही नित्य होता है ॥२९॥ नित्य तो वह परम ब्रह्म है और यह प्रकृति भी सनातनी है—ऐसा बताया गया है। कुछ मनीषी गण कहते हैं कि उन दोनों की समान ही प्रधानता होती है ॥३०॥

मृदं स्वर्णं समाहर्त्तुं कुलालस्वर्णकारकौ ।
न समर्थौ च मृत्स्वर्णं तयोराहरणे क्षमम् ॥३१॥

तस्मात्तदब्रह्म प्रकृतेः परमेव च नारद !
इति केचिद्वदन्त्येव द्वयोश्च नित्यता ध्रुवम् ॥३२॥

केचिद् वदन्ति तद्ब्रह्म स्वयञ्च प्रकृतिः पुमान् ।
ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिर्वदन्तीति च केचन ॥३३॥

तदब्रह्म परमं धाम सर्वकारणकारणम् ।
तद्ब्रह्मणाद्यरूपं ब्रह्मविद किञ्चित् श्रुतोश्रुतम् ॥३४॥

ब्रह्मनात्मा च सर्वेषां निर्लिप्तः साक्षिरूपिणम् ।
सर्वव्यापी च सर्वादिर्यथाऽऽरण्ये श्रुतोश्रुतम् ॥३५॥

तद्ब्रह्मशक्तिः प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी ।
यतस्तच्छक्तिमद्ब्रह्म चेदं प्रकृतिलक्षणम् ॥
तेजोरूपञ्च तद्ब्रह्म ध्यायन्ते योगिनः सदा ॥३६॥

कुलाल और स्वर्णकार मृत्तिका और सुवर्ण का समाहरण करने में समर्थ नहीं होते हैं और मृत्तिका तथा स्वर्ण उन दोनों के आहरण में समर्थ हैं ॥३१॥ हे नारद ! इससे वह ब्रह्म प्रकृति से परे ही होता है—ऐसा कुछ विद्वान् कहा करते हैं, किन्तु इन दोनों की नित्यता निश्चत ही है कुछ विद्वान ऐसा कहते है कि वह ब्रह्म स्वयं प्रकृति और पुमान् है। कुछ मनीषी प्रकृति को ब्रह्म से अतिरिक्त कहा करते हैं ॥३३॥ वह ब्रह्म परम धाम है और समस्त कारणों का भी कारण स्वरूप होता है। हे ब्रह्मन् ! उस ब्रह्म का लक्षण कुछ यह श्रुति में श्रुत होता है ॥३४॥ ब्रह्म और आत्मा सबका निर्लिप्त सब साक्षि स्वरूप वाला होता है यह सर्वव्यापी है और सबका आदि लक्षण है—ऐसा श्रुति (वेद) में श्रुत होता है ॥३५॥ यह प्रकृति उस ब्रह्म की शक्ति है, जो समस्त बीजो के स्वरूप वाली होती है क्योंकि यह ब्रह्म उसकी शक्ति वाला होता है यही प्रकृति का लक्षण है। वह ब्रह्म तेजो रूप वाला है जिसका योगीगण सदा ध्यान किया करते हैं ॥३६॥

वैष्णवास्तन्न मन्यन्ते मद्भक्ताः सूक्ष्मबुद्धयः ।
तत्तेजः कस्य वाश्चर्य्यं ध्यायन्ते पुरुषं विना ॥३७॥
कारणेन विना कार्यकुतो वा प्रभवेद्ध्रुवे ।
ध्यायन्ते वैष्णवास्तस्मात्तत्र रूपं मनोहरम् ॥३८॥
स्वेच्छामयस्य पुंसश्च साकारस्यात्मनः सदा ।
तत्तेजो मण्डलाकारेसूर्य्यकोटिसमप्रभे ॥३९॥
नित्यं स्थूलञ्च प्रच्छन्नं गोलोकाभिधमेव च ।
लक्षकोटियोजनञ्च चतुरस्रं मनोहरम् ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्गोपीनामावृतं सदा ॥४०॥
सुदृश्यं वर्त्तुलाकारं यथैव चन्द्रमण्डलम् ।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणं निराधारञ्च स्वेच्छया ॥४१॥

ऊर्ध्वंञ्चनित्यवैकुण्ठात् पञ्चाशत्कोटियोजनम् ।
गोगोपगोपीसंयुक्तं कल्पवृक्षसमन्वितम् ॥४२॥

सूक्ष्म बुद्धि वाले मेरे भक्त वैष्णव इसको नहीं मानते हैं। पुरुष के बिना किसका वह तेज है जिसका योगीगण ध्यान किया करते हैं यह परमाश्चर्य का विषय है ॥३७॥ कारण के बिना प्रभवोद्भव में कार्य कैसे होता है ? इसमें वैष्णव लोग वहीं पर परम मनोहर स्वरूप का ध्यान किया करते हैं ॥३८॥ स्वेच्छामय साकार पुरुष की आत्मा का सदा यह तेज कोटि सूर्यों के समान प्रभाव वालेमण्डलाकार में होता है ॥३९॥ नित्य-स्थूल और प्रच्छन्न वह गोलोक इस नाम वाला है। वह एक लाख करोड़ योजन के विस्तार वाला चौकोर अति मनोहर है और उत्तम रत्नों के सारों के द्वारा निर्माण किया हुआ एवं सदा गोपियों से आकुल रहता है ॥४०॥ वह सुदृश्य अर्थात् सुख से दर्शन करने के योग्य है और (चन्द्रमण्डल की भाँति वर्तुल (गोल) आकार वाला है। उसकी रचना रत्नों में जो परमोत्तम श्रेष्ठतम रत्न हैं उनसे हुई है-वह बिना आधार वाला है और अपनी ही इच्छा से संस्थित रहता है। वह वैकुण्ठ से ऊपर है – नित्य है और पचास करोड़ योजन के विस्तार से युक्त है। वह गो-गोपी और गोपों से समन्वित है तथा कल्प वृक्षों से संयुक्त है ॥४१-४२॥

कामधेनुभिराकीर्णं रासमण्डलमण्डितम् ।
वृन्दावनवनाच्छन्नं विरजावेष्टितं मुने ॥४३॥
शतशृङ्गं शतशृङ्गैः सुदीप्तं दीप्तमीप्सितम् ।
लक्षकोटिपरिमितंराश्रमं सुमनोहरं ॥४४॥
शतमन्दिरसंयुक्तमाश्रमं सुमनोहरम् । ४५॥
प्राकारपरिखायुक्तं पारिजातवनान्वितम् ।
कौस्तुभेन्द्रेण मणिना निर्माणकलशोज्ज्वलं ॥४६॥
हीरासारविनिर्माणसोपानसदसुन्दरं ।
मणीन्द्रसारनिर्माणं कपाटदर्पणान्वितं ॥४७॥

नानाचित्रविचित्राढ्यं राश्रमञ्च सुसंस्कृतम् ।
षोडशद्वारसंयुक्तं सुदीप्त रत्नदीपकैः ॥४८॥
रत्नसिंहासने रम्ये चामूल्यरत्ननिर्मिते ।
नानाचित्रविचित्राढ्ये वसन्तमीश्वरं वरम् ॥४९॥

वह गोलोक धाम अनेक कामधेनुओं से समाकीर्ण होता है और रास मण्डल से मण्डित है। हे मुने ! यह तो लोक वृन्दावन के वनों से आच्छन्न रहता है तथा विरजायमुना से वेष्टित है ॥४३॥ शतशृङ्गों से शत शृङ्ग दीप्त है सुदीप्त और ईप्सित हैं जोकि एक लाख करोड़ परिगित मनोहर आश्रमों से देदीप्यमान है ॥४४॥ शत् मन्दिरों से संयुक्त बहुत ही सुन्दर आश्रम है ॥४५॥ वह प्राकार (चारदिवारी) - परिखा (खाई) से युक्त है और पारिजात नामक देववृक्षों के वन से अन्वित है। कौस्तुभेन्द्रमणि से उज्ज्वल निर्मित किये हुये कनशों से—उक्त हीरों के सार से विनिर्मित सुन्दर सोपान (सीढ़ी) के संघ से—श्रेष्ठ मणियों से विरचित कपाट और दर्पणों से तथा अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र पदार्थो से युक्त सुसस्कृत आश्रम वाला वह गोलोक धाम है जहाँ रत्नों के दीपों से युक्त-सुदीप्त सोलह द्वार हैं ॥४६-४८॥ वहाँ पर अनेक प्रकार के अमूल्य सर्व श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित परम रम्य सिंहासन पर जोकि विविध चित्र - विचित्र उत्तम पदार्थों से युक्त है सर्वेश्वर विराजमान हैं ॥४९।

नवीननीरदश्यामं किशोरवयसं शिशुम् ।
शरन्मध्याह्नमार्त्तण्डप्रभामोचनलोचनम् ॥५०॥
शरत्पार्वणपूर्णेन्दुशोभाच्छादनमाननम् ।
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितसुन्दरम ॥५१॥
कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् ।
सस्मित मुरलीहस्तं सुप्रशस्तं सुमङ्गलम् ॥५२॥
वह्निसंस्कार पीतांशुयुगलेन समुज्ज्वलम् ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम् ॥५३॥
आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् ।
त्रिभङ्गभङ्गिमायुक्तं मणिमाणिक्यभूषितम ॥५४।

मयूरपुच्छचूडञ्च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ।
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् ॥५५॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसुशोभितम् ।
मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदशनसमनोहरम् ॥५६॥

वे नूतन मेघ के तुल्य श्याम वर्ण वाले हैं। किशोर अवस्था से युक्त हैं। शिशु स्वरूप वाले हैं। शरद्-काल के मध्याह्न के सूर्य प्रचण्डतम प्रभा का मोचन करने वाले नेत्र हैं ॥५०॥ शरत्काल के पार्वण पूर्ण चन्द्र की शोभा का छादन करने वाला मुख है। करोड़ों काम देवों की लावण्य की लीला को निन्दित करने वाली सुन्दरता से युक्त है। कोटि चन्द्रों की प्रभा से आपुष्ट एवं पुष्ट श्री से युक्त विग्रह वाले हैं। मन्द मुस्कान से अन्वित-मुरली हाथ में धारण करने वाले हैं—सुप्रशस्त और सुमङ्गल हैं ॥५१-५७॥ अग्नि के सत्कार की भाँति पीत वस्त्र युगल से समुज्ज्वल हैं। चन्दन से सुरक्षित समस्त अङ्गों वाले हैं। कौस्तुभ से विभूषित हैं। जानु पर्यन्त मालती की माला एवं वन माला से विभूषित हैं। त्रिभङ्ग की भङ्गिमा से युक्त हैं। मणि और माणिक्य के समूह से विभूषित हैं। मयूर की पुच्छ चूडायें रखने वाले हैं। श्रेष्ठ रत्नपूर्ण मुकुट से समुज्ज्वल हैं। रत्नों द्वारा निर्मित केयूर तथा रत्न जटित वलय और रत्नपूर्ण मञ्जीर से रञ्जित हैं ॥५३-५५॥ रत्न जटित कुण्डलों के युग्म से सुशोभित गण्डस्थल वाले और मोतियों की पङ्क्ति को निन्दित करने वाले दशन-पङ्क्ति से युक्त एवं श्रुति मनोहर हैं ॥५६॥

पक्वबिम्बाधरोष्ठञ्च नासिकोन्नतशोभनम् ।
वीक्षितं गोपिकाभिश्च वेष्टिताभिश्च सन्ततम् ॥५७॥
स्थिरयौवनयुक्ताभिः सस्मिताभिश्च सादरम् ।
भूषिताभिश्च सद्रत्ननिर्माणभूषणेन च ॥५८॥
सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिभिर्मानवेन्द्रकैः ।
ब्रह्माविष्णुशिवानन्तधर्माद्यैर्वन्दितं मुदा ॥५९॥
भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकातरम् ।
रासेश्वरं सुरसिकं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥६०॥

एवंरुपमरूपं तं ध्यायन्ते वैष्णवा मुने।
सततं ध्येयमस्माकं परमात्मानमीश्वरम् ॥६१॥
अक्षरं परम ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्।
स्वेच्छामयं निगुणञ्च निरीहं प्रकृतेः परमं ॥६२॥
सर्वाधारं सर्ववीजं सर्वज्ञं सर्वमेव च।
सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वसिद्धिकरप्रदम् ॥६३॥

गोलोक धाम निवासी सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के मुख के ओष्ठ पके हुये विम्ब के समान सुन्दर हैं तथा ऊँची नासिका से शोभायुक्त हैं। श्रीकृष्ण चारों ओर निरन्तर वेष्ठित गोपिकाओं से निरन्तर वीक्षित है ॥५७॥ वे गोपिकायें स्थिर यौवन से युक्त हैं और आदर के सहित मन्द मुस्कान से युक्त तथा सुन्दर श्रेष्ठ-तम रत्नों के द्वारा निर्मित भूषणों से समलङ्कृत हैं ॥५८॥ गोलोकेश्वर के द्वारा-मुनीन्द्रों से-मुनियों स-मानवेन्द्रों से और प्रसन्नता के साथ ब्रह्मा-विष्णु-शिव-शेष और धर्म आदि के द्वारा वन्दित है ॥५९॥ गोलोक धाम के प्रभु भक्तों के परम प्रिय अपनी भक्ति करने वालों के स्वामी और भक्तजनों के ऊपर अनुग्रह करने को अत्यन्त कातर रहने वाले है। रास लीला के अधीश्वर-बड़े ही रसिक और श्री राधा के वक्षस्थल में स्थित रहने वाले हैं ॥६०॥ हे मुने! इस प्रकार के रूप वाले और विना रूप वाले उन गोलोक के स्वामी श्रीकृष्ण चन्द्र का वैष्णव लोग ध्यान किया करते हैं। वह हमारे निरन्तर ध्यान करने के योग्य हैं। वह परमात्मा और ईश्वर है ॥६१॥ अक्षर-परम ब्रह्म-भगवान-सनातन-स्वेच्छयामय-निर्गुण-निरीह-प्रकृति से पर - सबके आधार-सबका बीज स्वरूप-सर्वज्ञ-सर्व सबके ईश्वर-सबके पूजा करने के योग्य और वह समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं ॥६२-६३॥

स एव भगवानादिर्गोलोके द्विभुजः स्वयम्।
गोपवेशश्च गोपालैः पार्षदैः परिवेष्टितः ॥६४॥
परिपूर्णतमः श्रीमान् श्रीकृष्णोराधिकेश्वरः।
सर्वान्तरात्मा सर्वत्रप्रत्यक्षः सर्वगः स्मृतः ॥६५॥
कृषिश्च सर्ववचनोनकारश्चात्मवाचकः।
सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेन कृष्णः प्रकीर्त्तितः ।६६॥

कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चादिवाचक ।
सर्वादिपुरुषो व्यापी तेन कृष्ण प्रकीर्तित ॥६७॥
स एवांशेन भगवान् वैकुण्ठे च चतुर्भुज ।
चतुर्भुजं पार्षदस्तैरावृत कमलापति ॥६८॥
स एव चसथा विष्णु पाता च जगता प्रभु ।
श्वेतद्वीपेसिन्धुकन्यापतिश्च चतुर्भुज ॥६९॥
एतत्ते कथित सर्व पर ब्रह्मनिरूपणम ।
अस्माक चिन्तनीयञ्च सेव्यवन्दितमीप्सितम् ॥७०॥

यह ही उपर्युक्त स्वरूप एव शक्ति से सम्पन्न भगवान आदि रूप है जोकि गोलोक धाम मे दो भुजा वाले स्वय गोप के वेश वाले अपने पार्षद गोपालो के द्वारा परिवेष्टित होते हुये विराजमान रहते हैं ॥६४॥ श्रीराधिका के साथ श्रीकृष्ण श्रीमान् और परिपूर्ण तम प्रभु हैं । यह सबके अन्तरात्मा-स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले और सर्वत्र गमन करने वाले कहे गये हैं ॥६५॥ कृषि पद शब्द सबका वाचक है और नकार आदि के अर्थ को बताने वाला है । इसीलिये कृष्ण शब्द का अर्थ सर्वात्मा होता है । यही परब्रह्म है । इससे कृष्ण इस नाम से यह कीर्तित होते हैं ॥६६॥ वह ही श्रीकृष्ण जो परिपूर्ण प्रभु हैं अपने अंश से वैकुण्ठ लोक में चार भुजा वाले भगवान होकर विराजमान रहा करते हैं । वह कमला के स्वामी चारभुजा वाले पार्षदों से चारों ओर आवृत रहते हैं ॥६७ ६८॥ वह ही एक कला से जगत् के प्रभु विष्णु पालन करने वाले हैं और श्वेत द्वीप में सिन्धु कन्या (महालक्ष्मी) के पति चार भुजाओं वाले हैं ॥६९॥ यह सब तुमको हमने बता दिया है जोकि परब्रह्म का पूर्ण और सत्य निरूपण है । वही हम सबका सेव्य वन्दित इच्छित और चिन्तन करने के योग्य हैं । ७०॥

इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च शौनक ।
गन्धर्वराजस्तोत्रेण तुष्टाव तञ्च नारद ॥७१॥
मुनिस्तोत्रेण सन्तुष्टो भगवानादिरच्युतः ।
ज्ञानं मृत्युञ्जयस्तस्मै प्रददौ च स्मीप्सितम् ॥७२॥

तं प्रणम्य मुनीन्द्रश्च प्रहृष्टवदनेक्षणः ।
तदाज्ञया पुण्यरूपं ययौ नारायणाश्रमम् ॥७३॥

हे शौनक ! शङ्कर इतना कहकर विराम को प्राप्त हो गये थे अर्थात् चुप हो गये । फिर देवर्षि नारद ने गन्धर्व राज स्तोत्र के द्वारा उनकी स्तुति की ॥७१॥ उस मुनि ने स्तोत्र के द्वारा स्तुति होने पर भगवान आदि स्वरूप अच्युत बहुत ही सन्तुष्ट हो गये थे और उस समय मृत्युञ्जय भगवान ने उन देवर्षि नारद को ज्ञान तथा ईप्सित वरदान प्रदान किया था ॥७२॥ मुनीन्द्र नारद ने उनको प्रणाम किया और उनका मुख तथा नेत्र परम प्रहृष्ट हो गये थे । इसके उपरान्त उनकी आज्ञा से वह परम पुण्यमय नारायणाश्रम को चले गये थे ॥७३॥

प्रकृतिखण्डम्

१२—प्रकृतिचरितसूत्रम् ।

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ॥१॥
आविर्बभूव सा केन कावा सा ज्ञानिनां वर ।
किं वा तल्लक्षणं वत्स ! को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ॥२॥
किञ्चित्तथापि वक्ष्यामि यत् श्रुतं रुद्रवक्त्रतः ॥३॥
प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः ।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्त्तिता ॥४॥
गुणे प्रकृष्टसत्त्वे च प्रशब्दो वर्त्तते श्रुतौ ।
मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः ॥५॥
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता ।
प्रधानसृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥६॥
प्रथमे वर्त्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः ।
सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्त्तिता ॥७॥

इस अध्याय में प्रकृति के चरित्र के सूत्र का निरूपण किया जाता है । नारायण ने कहा—गणेश को जन्म प्रदान करने वाली जननी दुर्गा-राधा-लक्ष्मी-सरस्वती और सावित्री और सृष्टि के सृजन करने की विधि में प्रकृति पाँच प्रकार की कही गई है ॥१॥ ज्ञानियों में वर वह किस से आविर्भूत हुई थी

और कहाँ वास करने वाली है ? उसका लक्षण क्या है ? हे वत्स ! अथवा कौन है जो उसको कहने के लिये समर्थ होता है ? ॥२॥ मैं उसको कुछ थोड़ा बहुत कहता हूँ जोकि मैंने श्री रुद्रदेव के मुख से इसका श्रवण किया है ॥३॥ प्रकृति-इस शब्द में जो 'प्र' है वह प्रकृष्ट का वाचक होता है। जो कृति—यह शब्द है वह सृष्टि का वाचक है। सृष्टि में जो प्रकृष्ट देवी है वही प्रकृति-इस शुभ नाम से कही गई है ॥४॥ श्रुति में प्रकृष्ट सत्त्व वाले गुण में "प्र" शब्द होता है। मध्यम रज में "कृ" शब्द और "ति" शब्द तम में कहा ॥५॥ जो यह त्रिगुणात्म स्वरूप वाली है वह सर्व प्रकार की शक्ति से समन्वित होती है। प्रधान सृष्टि के प्रकरण में यह परम शक्ति शालिनी है। इसी से प्रकृति इस नाम से कही जाती है ॥६॥ 'प्र' शब्द प्रथम में आता है और 'कृति'—यह शब्द सृष्टि का वाचक है। सृष्टि के आदि में जो देवी है वह प्रकृति कही गई है ॥७॥

योगेनात्मासृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः।
पुमांश्च दक्षिणार्द्धाङ्गो वामाङ्गःप्रकृतिःस्मृतः ॥८॥
सा च ब्रह्मस्वरूपा च माया नित्यसनातनी।
यथात्मा च यथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्मृता ॥९॥
अतएव हि योगीन्द्र स्त्रीपुंभेदं न मन्यते।
सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वत् पश्यति नारद ॥१०॥
स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया।
साविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥११॥
तदाज्ञया पञ्चविधा सृष्टिकर्मणि भेदतः।
अथ भक्तानुरोधाद् वा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥१२॥
गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया।
नारायणी विष्णुमाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥१३॥
ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पूजिता सदा।
सर्वाधिष्ठातृदेवी सा ब्रह्मरूपसनातनी ॥१४॥

वह आत्मा सृष्टि की विधि में योग से दो प्रकार का हो गया था। दक्षिण भाग का जो आधा अंग था वह पुमान हो गया और वाम भाग का उसका आधा अंग प्रकृति हो गई थी—ऐसा बताया गया है ॥८॥ वह नित्य स्वरूप वाली 'सनातनी मायाब्रह्म स्वरूपा है। जिस प्रकार से आत्मा है वैसी ही शक्ति है जिस तरह अग्नि में दाहिका शक्ति होती है ॥९॥ इसीलिये योगीन्द्र स्त्री और पुरुष का कोई भेद नहीं मानता है। ब्रह्मन्! हे नारद! वह सबको सदा ब्रह्ममय ही देखता है ॥१०॥ स्वेच्छामय श्रीकृष्ण की सृजन करने की इच्छा से वह ईश्वरी मूल प्रकृति सहसा आविर्भूत हो गई थी ॥११॥ उस परम पुरुष की आज्ञा से भेद से सृष्टि के कर्म में पांच प्रकार की हो गई थी। इसके अनन्तर भक्तों के अनुरोध से अथवा अपने भक्तों के लिये अनुग्रह करके शरीर धारण करने वाली हुई थी ॥१२॥ जो गणेश की माता दुर्गा-शिव की प्रिया शिवरूप वाली-नारायणी विष्णु माया पूर्णब्रह्म स्वरूप वाली है ॥१३॥ यह ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा-मुनियों के द्वारा और मनुष्यों के द्वारा पूजित होती है, वह सबकी अधिष्ठातृ देवी ब्रह्मरूपा सनातनी है ॥१४॥

धर्मसत्यपुण्यकीर्तियशोमङ्गलदायिनी।
सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्तिदुःखनाशिनी ॥१५॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा।
तेजःस्वरूपा परमा तदधिष्ठातृदेवता ॥१६॥
सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य सन्ततम्।
सिद्धेश्वरी सिद्धरूपा सिद्धिदा सिद्धिदेश्वरी ॥१७॥
बुद्धिर्निद्रा क्षुत् पिपासा छाया तन्द्रा दया स्मृतिः।
जातिः क्षान्तिश्च शान्तिश्च कान्तिर्भ्रान्तिश्च चेतना ॥१८॥
तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिर्माता तथैव च।
सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥१९॥
उक्तः श्रुतौ श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथागमम्।
गुणोऽस्त्यनन्तोऽनन्ताया अपरां च निशामय ॥२०॥

शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा च परमात्मनः ।
सर्वसम्पत्स्वरूपा या सा तदधिष्ठातृदेवता ॥२१॥

वह धर्म-सत्य-पुण्य-कीर्ति-यश और मंगल के देने वाली, सुख, मोक्ष और हर्ष की देने वाली, शोक के दुःख और आर्त्ति का नाश करने वाली है ॥१५॥ वह शरण में आये हुओं दीनों और आर्त्तों के परित्राण करने में परायण थी। वह तेज के स्वरूप वाली और परमा उसके अधिष्ठातृ देवता थी ॥१६॥ वह सदा ईश की सर्व शक्तियों के स्वरूप वाली शक्ति थी—वह सिद्धेश्वरी-सिद्धिरूपा-सिद्धि देने वाली-सिद्धि देने वाली ईश्वरी थी ।१७॥ बुद्धि-निद्रा-क्षुत्-पिपासा-छाया-तन्द्रा-दया-स्मृति-जाति-क्षान्ति-शान्ति - कान्ति-भ्रान्ति-चेतना-तुष्टि-पुष्टि-लक्ष्मी-वृत्ति तथा माता वह परमात्मा कृष्ण की सर्व शक्ति स्वरूपा है ॥१८-१९॥ श्रुति में कहा हुआ-श्रुतगुण और आगम के अनुसार अति स्वल्प अनन्ता का अनन्त गुण है। और अपरा का श्रवण करो ॥२०॥ परमात्मा की जो पद्मा है वह शुद्ध सत्त्व स्वरूप वाली है। जो सर्व सम्पत् के स्वरूप वाली है वह उसकी अधिष्ठातृ देवता है ॥२१॥

कान्ता दान्तातिशान्ता च सुशीला सर्वमङ्गला ।
लोभमोहकामरोषाहङ्कारपरिवर्जिता ॥२२॥
भक्तानुरक्तपायूश्च सर्वाद्या च पतिव्रता ।
प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्री प्रियंवदा ॥२३॥
सर्वशस्यात्मिका सर्वजीवनोपायरूपिणी ।
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पतिसेव व्रती सदा ॥२४॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्चराजलक्ष्मीश्च राजसु ।
गृहे च गृहलक्ष्मीश्च .मर्त्यानां गृहिणांतथा ॥२५॥
सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा ।
प्रीतिरूपा पुण्यवता प्रभारूपा नृपेषु च ॥२६॥
वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहङ्करा ।
दयामयी भक्तमाता भक्तानुग्रहकातरा ॥२७॥

चपले चपला भक्तसम्पदो रक्षणाय च ।
जगज्जीवन्मृतं सर्वं यया देव्या विना मुने ॥२८॥

कान्ता-हान्ता अर्थात् सुन्दरी और दमनयुक्ता-अत्यन्त शान्ता-सुशीला-सर्वमङ्गला-लोभ, मोह, काम, रोष, और अहङ्कार से परिवर्जित रहने वाली-भक्तो पर अनुरक्त रहने वाली सबके आदि मे होने वाली-पतिव्रता-भगवान के प्राणो के तुल्या-प्रेमपात्री और प्रिय बोलने वाली-सर्व शस्यो के रूप वाली-सब के उपायो के स्वरूप वाली, महालक्ष्मी वैकुण्ठ मे सदा ही पति की सेवा मे रहने वाली है ॥२३-२४॥वह स्वर्ग मे स्वर्ग लक्ष्मी तथा राजाओ मे राज लक्ष्मी और गृह मे गृह लक्ष्मी गृहाश्रमी मनुष्यो के यहाँ होती है ॥२५॥ समस्त प्राणियो मे और द्रव्यो मे वह शोभा रूप वाली मनोहरा है। पुण्य वालो मे प्रीति के रूप वाली है और नृपो मे प्रभा के रूप वाली है ॥२६॥ वैश्यो की वह वाणिज्य के स्वरूप वाली है और पापियो की कलह करने वाली है। वह भक्तो की माता और भक्तो के ऊपर अनुग्रह करने के लिए कातर होने वाली है। भक्तो की सम्पत्ति की रक्षा करने के लिये चपल मे वह चपला है। हे मुने ! जिस देवी के बिना यह जगत् का जीवन सब मृत है ॥२७-२८॥

शक्तिर्द्वितीया कथिता वेदोक्ता सर्वसम्मता ।
सर्वपूज्या सर्ववन्द्या चान्यां मत्तो निशामय ॥२९॥
वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिदेवता परमात्मनः ।
सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती ॥३०॥
सुबुद्धिः कविता मेधा प्रतिभा स्मृतिदा सताम् ।
नानाप्रकारसिद्धान्तभेदार्थकल्पनाप्रदा ॥३१॥
व्याख्याबोधस्वरूपा च सर्वसन्देहभञ्जिनी ।
विचारकारिणी ग्रन्थकारिणी शक्तिरूपिणी ॥३२॥
स्वरसङ्गीतसन्धानतालकारणरूपिणी ।
विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वेषु जीविनाम् ॥३३॥
व्याख्यामुद्राकरा शान्ता वीणापुस्तकधारिणी ।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या सुशीला श्रीहरिप्रिया ॥३४॥

द्वितीया शक्ति कही गई है जो वेदोक्त है और सर्व सम्मत है तथा सबके द्वारा पूज्य एवं सबकी वन्दना करने के योग्य है। अब अन्यों का मुझसे श्रवण करो। वाणी-बुद्धि-विद्या और ज्ञान की अधिदेवता परमात्मा की समस्त विद्याओं के स्वरूप वाली जो है वह सरस्वती देवी है ॥२९-३०॥ सत्पुरुषों को सुबुद्धि-कविता-मेधा-प्रतिभा और स्मृति के प्रदान करने वाली है। अनेक प्रकार के सिद्धान्त-भेदार्थ कल्पनाओं के प्रदान करने वाली है ॥११॥ व्याख्या-बोध के स्वरूप वाली-और समस्त सन्देहों को भञ्जन करने वाली-विचारों को करने वाली - ग्रन्थ रचना करने वाली रूपिणी सरस्वती है ॥३२॥ सम्पूर्ण सङ्गीत के सन्धान और तालों के कारण रूपवाली विषय ज्ञान के वाग् रूप वाली प्रत्येक विश्वों में जीव धारियों की यह सरस्वती देवी होती है ॥३३॥ इसका स्वरूप व्याख्या करने की मुद्रा को धारण वाला है—यह परम शान्त स्वरूप वाली है—हाथों में वीणा और पुस्तक को धारण करने वाली है। शुद्धि सत्व के स्वरूप वाली, सुशीला और श्री हरि की प्रिया है ॥३४॥

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा।
जपन्ती परमात्मानं श्री कृष्णं रत्नमालया ॥३५॥
तपस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी।
सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा ॥३६॥
देवीतृतीया गदिता श्रीयुक्ता जगदम्बिका।
यथागमं यथाकिञ्चिदपरां संनिबोधमे ॥३७॥
माता चतुर्णां वेदानां वेदाङ्गानाञ्च छन्दसाम्।
सन्ध्यावन्दनमन्त्राणां तन्त्राणाञ्च विचक्षणा ॥३८॥
द्विजातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी।
ब्राह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥३९॥
यत्पादरजसां पूतं जगत् सर्वञ्च नारद।
देवी चतुर्थी कथिता पञ्चमीं दर्णयामि ते ॥४०॥
प्रेमप्राणाधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी।
प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाद्यासुन्दरी वरा ॥४१॥

सर्वसौभाग्ययुक्ता च मानिनी गौरवान्विता।
वामाद्धाङ्गस्वरूपा च गुणेन तेजसा मया ॥४२॥

हिम - चन्दन - कुन्दपुष्प - कुमुद - इन्दु - अम्भोज, के सदृश शुक्ल वर्ण वाली और रत्नों की माला से परमात्मा श्रीकृष्ण का जप करने वाली - तप के स्वरूप से समन्वित - तप के फलों को प्रदान करने वाली - तपस्विनी - सिद्धि और विद्या के स्वरूप वाली और सदा समस्त सिद्धियों का प्रदान करने वाली तीसरी देवी श्री युक्ता जगदम्बिका कही गई है। अब जैसा आगम कहता है उसके अनुसार यथाकिञ्चित् अपरा देवी का ज्ञान मुझसे प्राप्त करो ॥३५-३७॥ चारों वेदों की माता और वेदों के समस्त अंगों-छन्दों-सन्ध्यावन्दना के मन्त्रों और तन्त्रों की परम विदुषी अपरा देवी है ॥३८॥ यह द्विजातियों की जाति के रूप वाली—जप के स्वरूप युक्त-तपस्विनी-ब्राह्म तेज से परिपूर्ण रहित हैं और उनकी अधिष्ठात्री देवता हैं। हे नारद ! जिसके चरण की रज से यह समस्त जगत् पूत हो गया है वह सावित्री देवी है। अब तक चार प्रकार की देवियों का वर्णन किया गया है इससे आगे हम पाँचवीं देवी का वर्णन करते हैं ॥३९-४०॥ जो प्रेम प्राण की अधिदेवी हैं और पञ्च प्राणों के स्वरूप वाली है तथा प्राणों से भी अधिक प्रियतमा हैं और सब में आद्य श्रेष्ठ सुन्दरी है ॥४१॥ यह देवी सब प्रकार के सौभाग्य से समन्वित मानिनी और गौरव शालिनी है। गुण और तेज से मेरे द्वारा वाम अर्द्ध अंग के स्वरूप वाली है ॥४२॥

परावरा सर्वभूता परमाद्या सनातनी।
परमानन्दरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥४३॥
रासक्रीडाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः।
रासमण्डलसम्भूता रासमण्डलमण्डिता ॥४४॥
रासेश्वरीसुरसिका रासवासनिवासिनी।
गोलोकवासिनी देवी गोपीवेशविधायिका ॥४५॥
परमाह्लादरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी।
निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी ॥४६॥

निरीहा निरहङ्कारा भक्तानुग्रहविग्रहा ।
वेदानुसारध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः ।।४७।।
दृष्टिदृष्टा सहस्रेषु सुरेन्द्रैर्मुनिपुङ्गवैः ।
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नालङ्कार भूषिता ।।४८।।
कोटिचन्द्रप्रभामुष्टश्रीयुक्तभक्तविग्रहा ।
श्रीकृष्णभक्तदास्यैकदात्रिका सर्वसम्पदाम् ।।४९।।

यह परावरा सत्यव्रत वाली-परमाद्या-सनातनी-परम आनन्द के रूप से युक्त-वन्य-मान्य और पूजित हैं ।।४३।। रासलीला की जो क्रीड़ा है उसकी अधिष्ठात्री देवी है जोकि परमात्मा कृष्ण की रासलीला होती है । रासमण्डल में रहने वाली और रास मण्डल से मण्डित है । यह रासलीला की स्वामिनी-सुरसिका-रास वास के निवास करने वाली, गोलोक के निवास करने वाली तथा गोपी वेश के करने वाली देवी है । इनका स्वरूप परम आह्लादमय है । यह सन्तोष और हर्ष के रूप वाली हैं । निर्गुण-निराकार-निर्लिप्त और आत्म स्वरूप वाली है ।।४३-४६।। यह निरीह-विना अहङ्कार वाली-भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये ही शरीर धारण करने वाली है । वेदों के अनुसार ध्यान करने पर ही विचक्षण पुरुषों के द्वारा यह ज्ञात की गई हैं अन्य इनका ज्ञान नहीं होता है ।४७।। सहस्रों में सुरेन्द्र और मुनि पुङ्गवों के द्वारा दृष्टि से देखी हुई है । अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र का परिधान करने वाली तथा रत्न जटित आभरणों से समलङ्कृत है ।।४८।। करोड़ों चन्द्रों की प्रभा को मुष्ट करने वाली श्री से समन्वित भक्तों के हितार्थ विग्रह धारण करने वाली हैं और श्रीकृष्ण की परम भक्त एक दासी है तथा समस्त सम्पत्तियों के प्रदान करने वाली हैं ।।४९।।

अवतारे च वाराहे वृकभानुसुता च या ।
यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुन्धरा ।।५०।।
ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वदृष्टा च भारते ।
स्त्रीरत्नसारसंभूता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।।
तथा घने नवघने लोला सौदामिनी मुने ।।५१।।

षष्टि वर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा ।
यत्पादपद्मनखराग्र दृष्टये चात्मशुद्धये ॥
न च दृष्टञ्च स्वप्नेऽपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा ॥५२॥
तेनैव तपसा दृष्टा भुवि वृन्दावने वने ।
कथिता पञ्चमी देवी सा राधा परिकीर्तिता ॥५३॥
अंशरूपा कलारूपा कलांशांशसमुद्भवा ।
प्रकृतेः प्रतिविश्वेषु देवी च सर्वयोषितः ॥५४॥
परिपूर्णतमाः पञ्चविधा देव्यश्च कीर्तिताः ।
या या प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय ॥५५॥

नारद अवतार के समय में जो राजा वृषभानु की सुता थी जिसके चरण कमल के सस्पर्श होने से यह समस्त वसुन्धरा पवित्र हो गई थी ॥५०॥ जो यह ब्रह्मा आदि के द्वारा अदृष्ट थी और इस भारतवर्ष में सबके द्वारा देखी हुई थी । रत्न के समान परम श्रेष्ठ स्त्रियों में यह सार समूत थी और श्री कृष्ण के वक्ष स्थल में सस्थिति रखने वाली थी । हे मुने ! यह इस प्रकार की थी जैसे गहरे नवीन मेघ में चञ्चल सौदामिनी होती है ॥५१॥ पहिले ब्रह्मा ने साठ हजार वर्ष तक तप किया था कि उसे इनके चरण कमल के नख का दर्शन हो जाय और वह अपनी आत्म शुद्धि कर लेवें किन्तु ब्रह्मा को स्वप्न में भी उसका दर्शन नहीं हो सकता था प्रत्यक्ष होने की तो बात ही क्या है ॥५२॥ उसी ब्रह्मा ने फिर वृन्दावन के वन में तप से दर्शन प्राप्त किया था । यह पाँचवी देवी को बता दिया है जो कि राधा—इस नाम से कही गई है ॥५३॥ अंश रूप वाली-कला के रूप वाली-और कला के अंश के अंश से समुद्भव प्राप्त करने वाली प्रतिविश्वों में सर्व योषित प्रकृति की देवी है। ये पाँचों प्रकार की देवियाँ परिपूर्ण म कही गई हैं । इनमें जो जो प्रधान अंश के रूप वाली है उनका वर्णन मैं करता हूँ, उसको तुम अब श्रवण करो ॥५४-५५॥

प्रधानांशस्वरूपा च गङ्गा भुवनपावनी ।
विष्णुविग्रहसंभूता द्रवरूपा सनातनी ॥५६॥

पापिपापेन्धदाहाय ज्वलदिन्धनरूपिणी ।
दर्शस्पर्शस्नानपानं निर्वाणपददायिनी ॥५७॥
गोलोकस्थानप्रस्थानसुसोपानस्वरूपिणी ।
पवित्ररूपा तीर्थानां सरिताञ्च परावरा ॥
शम्भुमौलिजटामेरुमुक्तापंक्तिस्वरूपिणी ॥५८॥
तपः सम्पादनी सद्यो भारते च तपस्विनाम् ।
शङ्खपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥
निर्मला निरहङ्कारा साध्वी नारायणप्रिया ॥५९॥
प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी ।
विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती ॥६०॥
तपः सङ्कल्पपूजादिसद्यः सम्पादनी मुने ।
सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा ॥६१॥
दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्च सद्योनिर्वाणदायिनी ।
कलौ कलुषशुष्केध्मादाहनायाग्निरूपिणी ॥६२॥
यत्पादपद्मसंस्पर्शात् सद्यःपूतावसुन्धरा ।
यत्स्पर्शदर्शवाञ्छन्तितीर्थानि चात्मशुद्धये ॥६३॥
यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्मातिनिष्फलम् ।
मोक्षदा य मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदा ॥६४॥

इन देवियों में प्रधान अंश के स्वरूप वाली, भवनों को पावन बनाने वाली गंगा हैं । यह विष्णु के विग्रह से उत्पन्न होने वाली सनातनी द्रव के स्वरूप में रहती हैं ॥५६॥ महान् पापियों के पाप रूपी ईंधन के दाह करने के लिये जलते हुये ईंधन के स्वरूप वाली हैं । इसके केवल दर्शन से—स्पर्श करने से—स्नान से और पान करने से यह मोक्षपद को देने वाली है ॥५७॥ यह देवी गोलोक धाम के स्थान को प्रस्थान करने के लिये सोपान (सीढ़ी) के स्वरूप वाली है जिसके द्वारा अत्युच्च और अतिदूरस्थ वहाँ गोलोक में पहुँच सकता है । यह तीर्थों में पवित्र रूप वाली है और नदियों में परावरा है । यह देवी शम्भु के मस्तक की जटा रूपी मेरु की मोतियों की पंक्ति (लड़ी) के

स्वरूप वाली है ॥५८॥ भारत देश मे तपस्वियो के तप को तुरन्त सम्पादन करने वाली है। यह शङ्ख-पद्म और क्षीर के समान श्वेत वर्ण वाली है और शुद्ध सत्व स्वरूप से युक्त है। यह निर्मल-निरहङ्कार-साध्वी और नारायण की प्रिया है ॥५९॥ प्रधान अंश के स्वरूप वाली विष्णु की कामिनी तुलसी भी है। यह विष्णु के भूषण रूप वाली है और परम सती सदा विष्णु के चरणों मे सस्थित रहा करती है। ६०॥ हे मुने! यह तप और मङ्गल-पूजा आदि का तुरन्त सम्पादन करने वाली देवी है। यह तुलसी देवी पुष्पो की सार भूत-अति पवित्र और सदा पुण्य की देने वाली है ॥६१॥ इसके दर्शन तथा स्पर्श करने से ही तुरन्त निर्वाण पद को प्रदान करने वाली है। इस कलियुग मे पाप रूपी शुष्क ईंधन के दाह करने के लिये अग्नि के रूप वाली है ॥६२॥ जिस तुलसिका देवी के पाद पद्म के सस्पर्श होने से यह पृथ्वी तुरन्त ही पूत हो गई था। समस्त तीर्थों के समूह जिसके दर्शन और स्पर्श करके आत्म शुद्धि के करने की इच्छा किया करते है ॥६३॥ जिस तुलसी देवी के बिना विश्वो मे समस्त कर्म निष्फल हो जाते है। यह मुमुक्षु जनो को मोक्ष प्रदान करने वाली है और जो कामना रखने वाले लोग है उनकी समस्त कामनाओ को प्रदान करने वाली है ॥६४॥

कल्पवृक्षरूपा च भारते विश्वरूपिणी ।
त्राणाय भारतानाञ्च पूजाना परदेवता ॥६५॥
प्रधानांशांशस्वरूपा च मनसा कश्यपात्मजा ।
शङ्करप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा ॥६६॥
नागेश्वरस्यानन्तस्य भगिनी नागपूजिता ।
नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी ॥६७॥
नागेन्द्रगणयुक्ता सा नागभूषणभूषिता ।
नागेन्द्रवन्दिता सिद्धयोगिनी नागवासिनी ॥६८॥
विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णुपूजापरायणा ।
तपः स्वरूपा तपसा फलदात्री तपस्विनी ॥६९॥

दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च तपस्तप्तं यया हरेः।
तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते ॥७०॥

यह भारत में कल्प वृक्ष के स्वरूप वाली है और विश्व रूपिणी है। यह भारत के जनों का त्राण करने के लिये पूजाओं की पर देवता है ॥६५॥ प्रधान अंश के स्वरूप वाली मन से कश्यप ऋषि की आत्मजा है। यह शङ्कर की प्रिया शिष्या है और महान् ज्ञान की विदुषी है ॥६६॥ नागेश्वर अनन्त की भगिनी-नागों द्वारा पूजित नागेश्वरी-नागों की माता-सुन्दरी और नाग वाहिनी है ॥६७॥ यह नागेन्द्रों गण से समन्वित और नागों के भूषणों से विभूषित है। नागेन्द्रों से वन्दित-सिद्धि योगिनी और नागों में वास करने वाली है ॥६८॥ विष्णु की भक्त-विष्णु के रूप वाली और विष्णु की पूजा में परायण रहने वाली है। तप के स्वरूप वाली-तपों के फलों को प्रदान करने वाली और स्वयं तपस्विनी है ॥६९॥ जिसने तीन लाख दिव्य वर्षों तक हरि का तप किया था। भारत में तपस्वी और तपस्विनियों में यह पूजा के योग्य हैं ॥७०॥

सर्पमन्त्राधिदेवी च ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा।
ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्माभावनतत्परा ॥७१॥
जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णांशम्भुपतिव्रता।
आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् ॥७२॥
प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद।
मातृकासु पूज्यतमा साचषष्ठी प्रकीर्त्तिता ॥७३॥
शिशूनांप्रतिविश्वेषु प्रतिपालनकारिणी।
तपस्विनी विष्णुभक्ता कार्त्तिकेयस्यकामिनी ॥७४॥
षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्टी प्रकीर्त्तिता।
पुत्रपौत्रप्रदात्री च धात्री च जगतां सदा ॥७५॥
सुन्दरी युवती रम्या सततं भर्त्तुरन्तिके।
स्थाने शिशूनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी ॥७६॥
पूजा द्वादशमासेषु यस्याः षष्ट्यास्तुसन्ततम्।
पूजाच सूतिकागारे परषष्ठदिने शिशोः ॥७७॥

सर्पों के मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवी है और ब्रह्म तेज से जाज्वल्य मान है। यह परम ब्रह्म के स्वरूप वाली तथा ब्रह्म की भावना करने में परायण रहने वाली है ॥७१॥ यह देवी जरत्कारु मुनि की पत्नी कृष्ण शम्भुपति व्रता है। तपस्वियों में परम प्रवर आस्तीक की यह माता है। हे नारद ! जो देव सेना है वह भी प्रधान अंश के स्वरूप वाली है। यह समस्त मातृकाओं में अधिक पूज्य है और वह षष्ठी देवी कही गई है ॥७२-७३॥ प्रत्येक विश्वों में यह शिशुओं के प्रति पालन करने वाली है। यह अत्यन्त तपस्विनी है—विष्णु की भक्त है और स्वामी कार्त्तिकेय की कामिनी है ॥७४॥ यह प्रकृति देवी के छटे अंश के स्वरूप वाली है। इसी लिये षष्ठी इस शुभ नाम के द्वारा कही गई है। यह पुत्रों और पौत्रों के प्रदान करने वाली तथा सदा जगतों की धात्री है ॥७५॥ यह अति सुन्दरी-युवती-रम्य और निरन्तर स्वामी के समीप में रहने वाला—शिशुओं के स्थान में परम वृद्ध रूप वाली योगिनी है ॥७६॥ जिस षष्ठी देवी की पूजा बारहमासों में निरन्तर होती है और सूतिकागार में शिशु के जन्म के षष्ठ दिन में होती है ॥७७॥

एकविंशतिमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी।
शश्वन्नियमिता चषा नित्या काम्याप्यत परा ॥७८॥
मातृरूपा दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी।
जले स्थले चान्तरीक्षे शिशूनां स्वप्नगोचरा ॥७९॥
प्रधानांशस्वरूपा या देवी मङ्गलचण्डिका।
प्रकृतेर्मुखसम्भूता सर्वमङ्गलदा सदा ॥८०॥
सृष्टौ मंगलरूपा च संहारे कोपरूपिणी।
तेन मंगलचण्डी सा पण्डितैः परिकीर्तिता ॥८१॥
प्रतिमंगलवारेषु प्रतिविश्वेषु पूजिता।
पञ्चोपचारैर्भक्त्याच योषिद्भिः परिपूजिता ॥८२॥
पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययशोमंगलदायिनी।
शोकसन्तापपापार्तिदुःखदारिद्र्यनाशिनी ॥८३॥
परितुष्टा सर्ववाञ्छाप्रदात्री सर्वयोषिताम्।
रुष्टाक्षणेन संहर्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी ॥८४॥

इक्कीसवें दिन में कल्याण हेतु की पूजा होती है। यह निरन्तर नियमित-नित्य और इससे परा काम्यायी है ॥७८॥ यह मातृरूपा-दयारूपा और सतत रक्षण कारिणी है। जल में-स्थल में और अन्तरिक्ष में शिशुओं के स्वप्नों में गोचर होती है। ७९॥ जो देवी मङ्गल चण्डिका है वह भी प्रधानांश स्वरूप वाली है। यह प्रकृति की मुख से उत्पन्न होने वाली सदा समस्त मङ्गलों के प्रदान करने वाली होती है ॥८०॥ यह सृजन काल में तो मङ्गल रूपा होती है और संहार के समय में कोप रूपिणी हुआ करती है। इसी कारण से वह विद्वानों के द्वारा मङ्गल चण्डी कही गई है ॥८१॥ यह देवी प्रत्येक मङ्गल वारों में प्रत्येक विश्व में पूजी हुई होती है। इसका पूजन पांच उपचारों से स्त्रियों के द्वारा बड़ी भक्ति की भावना से किया जाता है।८२॥ यह पुत्र-पौत्र-धन-ऐश्वर्य-यश और मङ्गल के प्रदान करने वाली देवी है। शोक-सन्ताप-पापों की यातना-दुःख और दरिद्रता के नाश करने वाली है ॥८३॥ जब यह पूर्ण परितुष्ट हो जाती है तो समस्त स्त्रियों को सम्पूर्ण वांच्छा को प्रदान करने वाली होती है। और किसी कारण या व्यतिक्रम से यह रुष्ट हो जाती है तो महेश्वरी विश्व का संहार करने में समर्थ होती है ॥८४॥

प्रधानांशस्वरूपा च कालीकमललोचना ।
दुर्गाललाटसंभूता रणे शुम्भनिशुम्भनिशुम्भयोः ॥८५॥
दुर्गार्द्धांशस्वरूपा च गुणेन तेजसा सभा ।
कोटिसूर्य्यप्रभामुष्टपुष्टजाज्वल्यविग्रहा ॥८६॥
प्रधाना सर्वशक्तीनां वरा बलवती परा ।
सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा सिद्धियोगिनी ॥८७॥
कृष्णभक्ताकृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः ।
कृष्णभावनयाशश्वत् कृष्णवर्णासनातनी ॥८८॥
संहर्त्तुं सर्वब्राण्डं शक्तानिश्वासमात्रतः ।
रणंदैत्यैः समंतस्याः क्रीड़यालोकरक्षया ॥८९॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्चदातुं शक्ता च पूजिता ।
ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ॥९०॥

कमल के समान नेत्रो वाली काली प्रधानांश से समुत्पन्न होने वाली है। यह काली शुम्भ और निशुम्भ के युद्ध में दुर्गा के ललाट में जन्म ग्रहण करने वाली है ॥८५॥ यह काली दुर्गा के अर्द्धांश रूप वाली है और गुण तथा तेज से उसी के समान है। करोड़ सूर्यों की प्रभा को पुष्ट करने वाले परम पुष्ट जाज्वल्यमान और शरीर को धारण करने वाली होती है ॥८६॥ यह समस्त अन्य शक्तियों में प्रधान-वर और अधिकतम बलवती परा देवी है ॥८७॥ यह काली देवी कृष्ण की भक्त और तेज-गुण और विक्रम में कृष्ण के ही तुल्य होती है। कृष्ण की निरन्तर भावना करने से यह काली देवी भी सनातनी कृष्णा होती है ॥८८॥ यह अपने निःश्वास मात्र से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संहार करने के लिये समर्थ होती है। क्रीड़ा से तथा लोकों की रक्षा के लिये इसका दैत्यों के साथ युद्ध होता था। जब यह समर्चित होती है तो पूर्ण परितुष्ट होकर धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को देने के लिए समर्थ हो जाती है। काली ब्रह्मा आदि के द्वारा मुनि से-मनुगण और नरों के द्वारा स्तूयमान होती है ॥८९-९०॥

प्रधानांशस्वरूपा च प्रकृतेश्च वसुन्धरा।
आधारभूता सर्वेषां सर्वशस्यप्रसूतिका ॥९१॥
रत्नाकारा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया।
प्रजादिभिः प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा ॥९२॥
सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसम्पद्विधायिनी।
यया विना जगत् सर्वं निराधारं चराचरम् ॥९३॥
प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर।
यस्य यस्य च या पत्न्यस्ता सर्वा वर्णयामि ते ॥९४॥
स्वाहादेवी वह्निपत्नी त्रिषु लोकेषु पूजिता।
यया विना हविर्दत्तं न ग्रहीतुं सुरा क्षमा ॥९५॥
दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता।
यया विना विश्वेषु सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥९६॥

स्वधा पितृणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ।
पूजिता पितृदानञ्च निष्फलञ्च यया विना ॥६७॥
स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता ।
आदानञ्च प्रदानञ्च निष्फलञ्च यया विना ॥६८॥

वसुन्धरा देवी भी प्रकृति की प्रधानांश स्वरूप वाली होती है। यह सबकी आधार भूता है और समस्त प्रकार के सस्यों के प्रसव करने वाली है ॥६१॥ वसुन्धरा रत्नों की आकर (खान)—रत्न अपने हृदय में रखने वाली और सब प्रकार के रत्नों के खानों का आश्रय वाली है। यह प्रजा आदि से—प्रजा के ईशों के द्वारा सर्वदा पूजित एवं वन्दित होती है ॥६२॥ यह सबके उपजीव्य रूप वाली है और समस्त सम्पत्तियों के प्रदान करने वाली है। जिसके बिना यह सम्पूर्ण चराचर जगत् निराधार और बिना आश्रय वाला रहता है ॥६३॥ हे मुनीन्द्र ! इस प्रकृति देवी की जो-जो कलायें हैं उनको तुम भली भाँति से समझ लो। जिन-जिन की जो पत्नियाँ हैं उन सबका मैं तुम्हारे आगे अब वर्णन करता हूँ ॥६४॥ स्वाहा देवी जो है वह अग्नि देवकी पत्नी है और तीनों लोकों में पूजित होती है जिसके बिना अग्नि में दी हुई हवि को ग्रहण करने देवगण समर्थ नहीं होते हैं ॥६५॥ दक्षिणा देवी यज्ञ देवकी पत्नी है। जोकि सर्वत्र समर्चित हुआ करती है जिसके अभाव में विश्वो में सम्पूर्ण किया हुआ कर्म बिना फल वाला हुआ करता है ॥६६॥ स्वधा देवी पितृगण की पत्नी है। यह मुनि-मनु और नरों के द्वारा समर्चित होती है जिसके पितृगण को समर्पित किया हुआ सम्पूर्ण दान निष्फल हो जाता है अर्थात् इसके बिना ग्रहण ही नहीं किया करते हैं। स्वस्ति देवी वायुदेव की पत्नी है तथा प्रत्येक विश्व में इसकी पूजा होती है। जिसके बिना आदान अर्थात् दान का ग्रहण करना और प्रदान अर्थात् दान का देना सब फल से शून्य व्यर्थ हो जाता है ॥६७-६८॥

पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले ।
यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च ॥६९॥
अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजिताबन्दितासदा ।
यया विना न सन्तुष्टा सर्वेलोकाश्च सर्वतः ॥१००॥

ईशानपत्नी सम्पत्ति पूजिता च सुरैर्नरैः ।
सर्वे लोकादरिद्राश्च निरवपु च यया विना ॥१०१॥
धृति कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्रपूजिता ।
सर्वेतोत्रा अर्धैर्य्याश्च जगत्सु च ययाविना ॥१०२।
यमपत्नीक्षमा साध्वी सुशीला नदपूजिता ।
समुन्मत्ताश्चरुष्टाश्च सर्वेलोका यदाविना ।१०३।
क्रीडाधिष्ठातृदवी सा कामपत्नीरति सती ।
कलिकौतुकहीनाश्च सर्वे गारा ययाविना ॥१०४॥
सत्यपत्नी सती मुक्ति पूजिता जगताप्रिया ।
ययाविना भवल्लोको बन्धुना रहित सदा ।१०५॥
मोहपत्नीदयासाध्वीपूजिता च जगतप्रिया ।
सवलोकाश्च सवत्र निष्फुलाश्च ययाविना ॥१०६॥

पुष्टि दवी गण पति की पत्नी है यह जगती तल म पूजित होती है। इसक भूतल म पुमान लोग तथा स्त्रियाँ सभी परि क्षीण रहते हैं ॥६६॥ तुष्टि दवी अनन्त दव की पत्नी है। यह सदा पूजित और सवत्र वदित होती है। जिसक विना समस्त लोक मना प्रकार सन्तुष्ट नहीं होते हैं ॥१००॥ सम्पत्ति ईशान की पत्नी है जो सुर और नरा क द्वारा पूजित होती है जिसके अभाव म विश्व म सब लोक दरिद्र हीन हैं ॥१०१॥ धृति कपिल देवकी पत्नी है जिसका सबक द्वारा सवत्र यजनाचन किया जाता है इसक न होन पर ---ना म सभी लोग धैय ---र हो जाया करत है जिस धैय की जीवन म परम आवश्यकता है ॥१०२॥ क्षमा यमराज की प्रिय पत्नी है। यह बड़ी साध्वी और सुशील होती है और इसकी सभी लोग अच --या करते हैं। सारी सत्ता भी जगती तल म न हो तो सभी लोग समुन्मत्त और रोष म भरे हुए रहा करते हैं ॥१०३॥ सती रति कामदेव की प्राण प्रिया महान अनुरागिणी ---ता है जो केलि क्रीडा की अधिष्ठात्री दवी होती है। इसका अस्तित्व ससार म न ---ता फिर सभी लोग कामकलि व कौतुक से रहित होकर व्यथ हो जावें ॥१०४॥ सती मुक्ति सत्य दव की प्रिय पत्नी है जो

स्वधा पितृणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ।
पूजिता पितृदानञ्च निष्फलञ्च यया विना ॥९७॥
स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता ।
आदानञ्च प्रदानञ्च निष्फलञ्च यया विना ॥९८॥

वसुन्धरा देवी भी प्रकृति की प्रधानांश स्वरूप वाली होती है। यह सबकी आधार भूता है और समस्त प्रकार के शस्यों के प्रसव करने वाली है ॥९१॥ वसुन्धरा रत्नों की आकर (खान)—रत्न अपने मध्य में रखने वाली और सब प्रकार के रत्नों के खानों का आश्रय वाली है। यह प्रजा आदि से--प्रजा के ईशों के द्वारा सर्वदा पूजित एवं वन्दित होती है ॥९२॥ यह सबके उपजीव्य रूप वाली है और समस्त सम्पत्तियों के प्रदान करने वाली है। जिसके बिना यह सम्पूर्ण चराचर जगत निराधार और बिना आश्रय वाला रहता है ॥९३॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकृति देवी की जो-जो कलायें है उनको तुम भली भाँति से समझ लो। जिस-जिस की जो पत्नियाँ हैं उन सबका मैं तुम्हारे आगे अब वर्णन करता हूँ ॥९४॥ स्वाहा देवी जो है वह अग्नि देवकी पत्नी है और तीनों लोकों में पूजित होती है जिसके बिना अग्नि में दी हुई हवि को ग्रहण करने देवगण समर्थ नहीं होते हैं ॥९५॥ दक्षिणा देवी यज्ञ देवकी पत्नी है। दीक्षा सर्वत्र समर्चित हुआ करती है जिसके अभाव में विश्वों में सम्पूर्ण किया हुआ कर्म बिना फल वाला हुआ करता है ॥९६॥ स्वधा देवी पितृगण की पत्नी है। यह मुनि-मनु और नरों के द्वारा समर्चित होती है जिसके पितृगण को समर्पित किया हुआ सम्पूर्ण दान निष्फल हो जाता है अर्थात् इसके बिना ग्रहण ही नहीं किया करते हैं। स्वस्ति देवी वायुदेव की पत्नी है तथा प्रत्येक विश्व में इसकी पूजा होती है। जिसके बिना आदान अर्थात् दान का ग्रहण करना और प्रदान अर्थात दान का देना सब फल से शून्य व्यर्थ हो जाता है ॥९७॥९८॥

पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले ।
यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च ॥९९॥
अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजितावन्दितासदा ।
यया विना न सन्तुष्टा सर्वलोकाश्च सर्वतः ॥१००॥

ईशानपत्नी सम्पत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः ।
सर्वे लोकादरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना ॥१०१॥
धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्रपूजिता ।
सर्वेलोका अधैर्याश्च जगत्सु च यया विना ॥१०२।
यमपत्नीक्षमा साध्वी सुशीला सर्वपूजिता ।
समुन्मत्ताश्चरुष्टाश्च सर्वेलोका ययाविना ॥१०३।
क्रीडाधिष्टातृदेवी सा कामपत्नीरति सती ।
केलिकौतुकहीनाश्च सर्वेलोका ययाविना ॥१०४॥
सत्यपत्नी सती मुक्तिः पूजिता जगतांप्रिया ।
ययाविना भवेल्लोको बन्धुता रहितः सदा ॥१०५॥
मोहपत्नीदयासाध्वीपूजिता च जगत्प्रिया ।
सर्वलोकाश्च सर्वत्र निष्फलाश्च ययाविना ॥१०६॥

पुष्टि देवी गण पति की पत्नी है यह जगती तल मे पूजित होती है। इसके भूतल मे पुमान लोग तथा स्त्रियाँ सभी परि क्षीण रहते हैं ॥९९॥ तुष्टि देवी अनन्त देव की पत्नी है। यह सदा पूजित और सर्वत्र वन्दित होती है। जिसके बिना समस्त लोक सभी प्रकार सन्तुष्ट नहीं होते हैं ॥१००॥ सम्पत्ति ईशान की पत्नी है जो सुर और नरों के द्वारा पूजित होती है जिसके अभाव मे विश्वो मे सब लोक दरिद्र होते हैं ॥१०१॥ धृति कपिल देवकी पत्नी है जिसका सबके द्वारा सर्वत्र यजनार्चन किया जाता है। इसके न होने पर जगतो मे सभी लोग धैर्य शून्य हो जाया करते हैं जिस धैर्य की जीवन मे परम आवश्यकता है ॥१०२॥ क्षमा यमराज की प्रिय पत्नी है। यह बड़ी साध्वी और सुशील होती है और इसकी सभी लोग अर्चना किया करते हैं। इसकी सत्ता यदि जगती तल मे न हो तो सभी लोग समुन्मत्त और रोष मे भरे हुए रहा करते हैं ॥१०३॥ सती रति कामदेव की प्राण प्रिया अतिशय अनुरागिणी पत्नी है जो केलि क्रीडा की अधिष्ठात्री देवी होती है। इसका अस्तित्व संसार मे न हो तो फिर सभी लोग कामकेलि के कौतुक से रहित होकर व्यर्थ हो जावें ॥१०४॥ सती मुक्ति सत्य देव की प्रिय पत्नी है जो

जगतों की अत्यन्त प्रिय एवं परम पूजित होती है इसके न होने पर लोक सह बन्धुता के भाव से रहित हो जाता है ॥१०५॥ दया मोह महाराज की अति वल्लभा पत्नी है। यह भी परम साधु वृत्ति वाली संसार की प्यारी और समर्चित है। इसके बिना तो समस्त लोक बहुत ही सर्वत्र निष्ठुर और क्रूर हो जाया करते हैं। इसकी संसार में महती आवश्यकता है ॥१०६॥

पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पुण्यरूपा च पूजिता।
यया विना जगत् सर्वं जीवन्मृतसमं मुने ॥१०७॥
सुकर्मपत्नी कीर्त्तिश्चधन्यामान्या च पूजिता।
ययाविना जगत् सर्व यशोहीनंमृतंयथा ॥१०८॥
क्रिया उद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसङ्मता।
ययविना जगत् सर्व मुच्छन्नमिव नारद ॥१०९॥
अधर्मपत्नी मिथ्यासा सर्वधूर्त्तैश्चपूजिता।
ययाविनाजगत् सर्वमुच्छन्नंविधिनिर्मितम् ॥११०॥
सत्ये अदर्शनाया च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी।
अर्द्धावयवरूपा च द्वापरे संवृता हि या ॥१११॥
कलौमहाप्रगल्भा च सर्वत्र व्यापिकारणात्।
कपटेन समं भ्राता भ्रमत्येव गृहे गृहे ॥११२॥

प्रतिष्ठा पुण्य देव की प्राण प्रिया पत्नी है। यह भी पुण्य रूप वाली और पूजित होती है। हे मुने! इसके अभाव में तो यह सारा जगत जीवित रहता हुआ भी मृत के समान ही होता है ॥१०७॥ कीर्त्ति देवी सुकर्म की पत्नी है। यह परम धन्य-मान्य और अत्यन्त पूजित होती है। इसके बिना सम्पूर्ण जगती तल यश से हीन एक मृत की भाँति ही रहा करता है। जिसकी संसार में कीर्त्ति ही कुछ नहीं है उसका जीवन कुछ भी नहीं। उससे मृत हो जाना ही अच्छा है ॥१०८॥ क्रिया उद्योग की प्राण वल्लभा है। यह भी पूजित और सर्वसङ्मता होती है। हे नारद! इसके अभाव में तो यह सम्पूर्ण जगत उच्छिन्न की भाँति ही रहा करता है। जब कोई क्रिया ही नहीं होती है तो फिर कुछ भी नहीं हो सकता है। सभी कुछ क्रिया के द्वारा ही होता है ॥१०९॥

मिथ्या अधर्म की पत्नी है। यह सभी धूर्त मानवों के द्वारा समादृत एवं पूजित होती है। इसके बिना सारा विधि के द्वारा विनिर्मित भी समुच्छिन्न सा रहता है ॥११०॥ यह मिथ्या देवी सत्य युग में तो दर्शन रहित थी अर्थात् कहीं भी इसका दर्शन नहीं होता था। त्रेता युग में यह देवी बहुत ही सूक्ष्म रूप में कहीं-कहीं दिखलाई देने लगी थी। द्वापर युग में अर्धअवयवों वाली अर्थात् विकलाङ्ग रूप वाली सवृता होकर दिखाई दिया करती थी। इस कलियुग में तो इसका रूप महान् प्रगल्भ हो गया है और सर्वत्र व्यापक सी है। यह अपने भाई कपट को साथ लेकर घर-घर में खूब स्वच्छन्दता पूर्वक भ्रमण करती है ॥१११-११२॥

शान्तिर्लज्जा च भार्य्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते।
याभ्यां विना जगत् सर्वमुन्मत्तमिव नारद ॥११३॥
ज्ञानस्य तिस्रो भार्य्याश्च बुद्धिर्मेधा स्मृतिस्तथा।
याभिर्विना जगत् सर्वं मूढ मृतसमं सदा ॥११४॥
मूर्तिश्चधर्मपत्नी सा कान्तिरूपा मनोहरा।
परमात्मा च विश्वौघोनिराधारोययाविना ॥११५॥
सर्वत्रशोभारूपा च लक्ष्मीमूर्तिमतीसती।
श्रीरूपामूर्तिरूपा च मान्या धन्या च पूजिता ॥११६॥
कालाग्निरुद्रपत्नीचनिद्रासासिद्धयोगिनाम्।
सर्वलोकाः समाच्छन्ना मायायोगेनरात्रिषु ॥११७॥
कालस्य तिस्रो भार्य्याश्च सन्ध्या रात्रिर्दिनानि च।
याभिर्विना विधाता च संख्यां कर्त्तुं न शक्यते ॥११८॥
क्षुत्पिपासेलोभभार्य्येधन्येमान्येचपूजिते।
याभ्यांव्याप्तंजगत् क्षोभयुक्तचिन्तितमेवच ॥११९॥
प्रभाचदाहिकाचैव द्वे भार्य्येतेजसस्तथा।
याभ्यांविनाजगत्स्रष्टुं विधाता च न हीश्वरः ॥१२०॥
कालकन्येमृत्युजरेप्रज्वरस्य प्रिये प्रिये।
याभ्यांजगत् समुच्छिन्नं विधात्रानिर्मितेविधौ ॥१२१॥

सुशील की दो पत्नियाँ हैं जिनका शुभ नाम शान्ति और लज्जा है। यह दोनों ही पूजित होती हैं। हे नारद ! इन दोनों के अभाव मे यह समस्त जगतीतल उन्मत्त की भाँति हो जाता है ।।११३।। ज्ञान की तीन भार्या है जिनका नाम बुद्धि-मेधा और स्मृद्धि है। इन तीनों के बिना यह जगत् सदा महामूढ़ और मृत के तुल्य ही हो जाता है।११४। मूर्त्ति धर्म की पत्नी है, वह कान्ति रूप वाली परम मनोहर है जिसके बिना परमात्मा और ये विश्वों के समूह सब निराधार ही हो जाते हैं ।।११५।। मूर्तिमती सतीलक्ष्मी सर्वत्र शोभा के रूप वाली है, यह श्री रूपा और मूर्त्तिरूपा महा मान्य एवं परम धन्य और पूजित है ।।११६।। निद्रा कालाग्नि नाम वाले रुद्रदेव की पत्नी है जोकि सिद्धयोगियों को होती है। माया योग से समस्त लोक रात्रियों में समाच्छन्न होते हैं ।।११७।। काल की तीन भार्या हैं जिनके नाम सन्ध्या-रात्रि और दिन हैं जिनके बिना विधाता के द्वारा सन्ध्या नहीं की जा सकती है ।।११८।। क्षुत् (भूख) और पिपास (प्यास) ये दोनों लोभ महाराज की पत्नियाँ हैं। ये दोनों धन्य और मान्य तथा पूजित हैं। इनके द्वारा यह जगत् व्याप्त है—क्षोभ से युक्त है और चिन्तित भी रहता है ।।११९।। तेज की भी प्रभा और दाहिका ये दो पत्नियाँ हैं, इन दोनों के अभाव में विधाता भी इस जगत् का सृजन करने मे समर्थ नही होता है ।।१२०।। काल कन्या और मृत्यु जटा ये प्रज्वर की परम प्रिय पत्नियाँ हैं जिनसे यह जगत् समुच्छिन्न हो रहा है जोकि विधाता के द्वारा निर्मित विधि में है ।।१२१।।

निद्रा कन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिये।
याभ्यां व्याप्तं जगत् सर्वं विधिपुत्रविधेर्विभो ।।१२२।।
वैराग्यस्य च द्वे भार्य्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते।
याभ्यां शश्वत् जगत सर्वं जीवन्मुक्तमिदं मुने ।।१२३।।
अदितिर्देवमाता च सुरभिश्च गवां प्रसूः।
दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः ।।१२४।।

उपयुक्ताः सृष्टिविधौएताश्चप्रकृतेः कला ।
कलाश्चान्या सन्तिबह्वयस्तासुकाश्चिन्निबोधमे ॥१२५॥
रोहिणीचन्द्रपत्नीच संज्ञा सूर्य्यस्यकामिनी ।
शतरूपा मनोर्भार्य्या शचीन्द्रस्यच गेहिनी ॥१२६॥

निद्रा कन्या तन्द्रा और अन्या प्रीति ये दोनों सुख की प्रियायें हैं जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है क्योंकि विधि पुत्र विधाता की विधि में हैं।१२२। वैराग्य की भी दो भार्यायें हैं जिनके नाम श्रद्धा और भक्ति है। ये दोनों जगत् में परम पूजित हैं। हे मुने! इन दोनों के द्वारा यह सम्पूर्ण जगती तल जीवनमुक्त होता है ॥१२३॥ अदिति देवगण की माता है और गौओं की जननी सुरभि है। दिति नाम धारिणी दैत्यों की माता है तथा कद्रू और विनितादनु हैं ॥१२४॥ इस सृष्टि की विधि में ये सब प्रकृति की कलायें उपयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त भी अन्य प्रकृति की बहुत सी कलायें हैं, उनको भी मुझसे तुम समझ लो ॥१२५॥ रोहिणीचन्द्र देव की पत्नी है और संज्ञा सूर्यदेव की कामिनी है। शतरूपा मनु की भार्या है तथा इन्द्र की गेहिनी शची हैं ॥१२६॥

ताराबृहस्पतेर्भार्य्या वशिष्टस्याप्यरुन्धती ।
अहल्या गौतमस्त्री साप्यनसूयात्रिकामिनी ॥१२७॥
देवहूती कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी ।
पितृणां मानसी कन्या मेनका साम्बिकाप्रसू ॥१२८॥
लोपामुद्रा तथाहूती कुबेरकामिनी तथा ।
वरुणानी यमस्त्री चबलेर्विन्ध्यावलीति च ॥१२६॥
कुन्तीचदमयन्तीच यशोदादेवकीसती ।
गान्धारीद्रौपदीशैव्या सावित्रीसत्यवत्प्रिया ॥१३०॥
वृषभानुप्रियासाध्वी राधा माता कलावती ।
मन्दोदरीच कौशल्या सुभद्राकैटभीतथा ॥१३१॥
रेवती सत्यभामाच कालिन्दी लक्ष्मणातथा ।
जाम्बवती नाग्नजिती मित्रविन्दातथारता ॥१३२॥

लक्ष्मणारुक्मिणीसीतास्वयंलक्ष्मीःप्रकीर्त्तिता ।
कलायोजनगन्धाचव्यासमातामहासती ॥१३३॥

सुर गुरु वृहस्पति की भार्या का नाम तारा देवी है। वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती है। गौतम ऋषि की पत्नी का नाम अहल्या है। अत्रि की पत्नी अनुसूया नाम वाली है ॥१२७॥ देवहूति नाम वाली कर्दम की पत्नी है तथा दक्ष की पत्नी प्रसूति नाम धारिणी है, पितृगण की मानसी कन्या मेनका अम्बिका प्रसू है॥१२८॥ लोपामुद्रा तथा आहूति कुवेर की कामिनी है। यम की वरुणानी है और राजा वली की पत्नी विन्ध्यावली है ॥१२९॥ कुन्ती-दमयन्ती - यशोदा-सती देवकी-गान्धारी-द्रौपदी - शैव्या-सत्यवान की प्रिया सावित्री-वृषभानु की साध्वी प्रिया कलावती जो राधा की माता हैं-मन्दोदरी - कौशल्या - सुभद्रा - कैटभी-रेवती-सत्यभामा-कालिन्दी-लक्ष्मणा-जाम्बवती-नाग्नजिती तथा अपरामित्रविन्दा-लक्ष्मणा-सुक्तिणी-सीता और स्वयं लक्ष्मी - योजनगन्धा-और महासती - व्यास की माता-ये सब कलायें प्रकीर्त्तित की गई हैं ॥१३०-१३३॥

वाणपुत्री तथोषाच चित्ररेखाच तत्सखी ।
प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती ॥१३४॥
रेणुकाच भृगोर्माता हलिमाताच रोहिणी ।
एकानंशाचदुर्गांशा श्रीकृष्णभगिनी सती ॥१३५॥
वह्वयः सन्ति कलाश्चैवं प्रकृतेरेव भारते ।
यायाश्च ग्रावदेव्यस्ताः सर्वाश्च प्रकृतेःकला ॥१३६॥
कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः ।
योषितामपमानेन प्रकृतेश्चपराभवः ॥१३७॥
ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती ।
प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालङ्कारचन्दनैः ॥१३८॥
कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालङ्कारचन्दनैः ।
पूजितायेन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता ॥१३९॥

सर्वा प्रकृतिसम्भूता उत्तमाधममध्यमा ।
सत्वांशाश्चोत्तमा ज्ञेया सुशीलाश्च पतिव्रता ॥१४०॥

बाण की पुत्री उषा, उसकी सखी चित्ररेखा-प्रभावती-भानुमती-सती माया वती-भृगु की की माता रेणुका और हलधर की जननी रोहिणी और एकानशा की दुर्गा सती श्रीकृष्ण की भगिनी हैं। इस प्रकार से भारत मे प्रकृति देवी की बहुत-सी कलाएँ हैं। जो-जो ग्राव देवियाँ हैं वे सब प्रकृति की कलाएँ भारत मे हैं ॥१३४-१३६॥ इस तरह प्रति विश्वों मे कला के अंशांश से समद्भूत योषित हैं। इन योषितो का अपमान करने से प्रकृतिदेवी का ही पराभव होता है।१३७। जिसने सती पति और पुत्र वाली ब्राह्मणी की पूजा की है, उसने वस्त्र-अलङ्कार और चन्दन से प्रकृति देवी की पूजा करली है।१३८। जिस किसी ने आठ वर्ष की अवस्था वाली कुमारी का वस्त्रालङ्कार और चन्दन के द्वारा अर्चन किया है जोकि कुमारी किसी विप्र की हो उसने निश्चय ही प्रकृति देवी की पूजा करली है ॥१३९॥ यह सब प्रकृति से समुत्पन्न होने वाली है और उत्तम-मध्यम तथा अधम तीन प्रकार की श्रेणियों वाली है। जो प्रकृति के सत्व के अंश से समुत्पन्न हैं वे उत्तम हैं। वे सुशील और पतिव्रता जानने के योग्य होती हैं ॥१४०॥

मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्या प्रकीर्त्तिता ।
सुखसम्भोगवश्यश्च स्वकार्य्यतत्परा सदा ॥१४१॥
अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसम्भवा ।
दुर्मुखा कुलटा धूर्त्ता स्वतन्त्रा कलहप्रिया ॥१४२॥
पृथिव्या कुलटायाश्च स्वर्गे चाप्सरसागणा ।
प्रकृतेस्तमसश्चांशा पुंश्चल्य परिकीर्त्तिताः ॥१४३॥
एवं निगदितं सर्वं प्रकृतेः परिकीर्त्तनम् ।
ता सर्वा पूजिता पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रेचभारते ॥१४४॥
पूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ।
द्वितीये रामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना ॥१४५॥

तत्पश्चात् जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता ।
जातादौ दक्षपत्न्याश्च निहन्तुं दैत्यदानवान् ॥१४६॥

जो मध्यम श्रेणी की हैं वे रजके अंश से उत्पन्न होने वाली प्रकृति की कलाएं हैं। ये भोगने के योग्य कही गई हैं। ये सब सुख से सम्भोग करने वाली हैं और सर्वदा अपने कार्य में तत्पर रहने वाली होती हैं ॥१४१॥ जो अधम श्रेणी की प्रकृति की कला हैं, वे उसके तम के अंश से समुत्पन्न होने वाली होती हैं। इनका कुल और जन्म अज्ञात होता है। ये दुर्मुखा-कुलटा-धूर्त्ता-कलह के साथ प्यार करने वाली और स्वतन्त्र होती हैं ॥१४२॥ पृथिवी में कुलटा और स्वर्ग में अप्सराओं का समूह ये सब प्रकृति देवी के तम के अंश से समुद्भूत होने वाली हैं जो प्राय: पुंश्चली कही गई हैं। इस प्रकार से सम्पूर्ण प्रकृतिदेवी का परिकीर्त्तन किया गया है। ये सभी पुण्य क्षेत्र भारत में पृथ्वी में पूजित होती हैं ॥१४३-१४४॥ आदि में सुरथ के द्वारा दुर्गों के नाश करने वाली दुर्गा पूजी गई थी। दूसरे में रावण के वध करने की इच्छा वाले श्री रामचन्द्र के द्वारा इसकी पूजा की गई थी ॥१४५॥ इसके पश्चात् यह समस्त जगत् की माता फिर तीनों लोकों में पूजित हुई है। आदि में यह दैत्य और दानवों का निहनन करने के लिये प्रजापति दक्ष की पत्नी में समुत्पन्न हुई थी ॥१४६॥

ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्त्तुश्च निन्दया ।
जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम् ॥१४७॥
गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः ।
बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्चनारदः ॥१४८॥
लक्ष्मीर्मङ्गलभूपेन प्रथमे परिपूजिता ।
त्रिषुलोकेषु तत्पश्चात् देवतामुनिमानवैः ॥१४९॥
सावित्री चापि प्रथमे भक्त्या च परिपूजिता ।
तत्पश्चात् त्रिषुलोकेषु देवतामुनिमानवैः ॥१५०॥
आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता ।
तत्पश्चात् त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः ॥१५१॥

प्रथमे पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले ।
पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेनपरमात्मना ॥१५२॥
गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः ।
[illegible] ॥१५३॥
[illegible] ।
पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वन्दिता सदा ॥१५४॥

इसके अनन्तर फिर इसने अपने देह का त्याग कर दिया था जो कि अपने स्वामी की निन्दा के कारण से दक्ष के यज्ञ में ही किया था। फिर इसने हिमवान के यहाँ उसकी पत्नी में अपना जन्म ग्रहण किया था और पशुपति शिव को अपना पति बनाया था ॥१४७॥ और गणेश स्वयं कृष्ण थे और स्कन्द विष्णु की कला से जन्म लेने वाले थे। ये दोनों हे नारद! पीछे उसके पुत्र हुये थे ॥१४८॥ लक्ष्मी का सबसे प्रथम मङ्गल भूप ने पूजन किया था। इसके अनन्तर फिर तीनों लोकों में देव-मुनि और मानवों के द्वारा लक्ष्मी का अर्चन किया जाता है ॥१४९॥ सावित्री भी प्रथम में भक्ति भाव के साथ पूजी गई थी। इसके अनन्तर देव-मुनि-मानवों के द्वारा तीनों लोकों में इसका पूजन किया जाता है ॥१५०॥ आदि में सरस्वती देवी की अर्चना ब्रह्मा के द्वारा की गई थी। इसके पश्चात् फिर सभी देव मुनि और मानवों के द्वारा सरस्वती देवी की तीनों भुवनों में पूजा की जाती है ॥१५१॥ प्रथम काल में श्री राधा का अर्चन गोलोक धाम के रास मण्डल में परमात्मा श्रीकृष्ण के द्वारा कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन किया गया था। इसके पश्चात् गोपिका-गोप-बालिका बालक-गौओं के गण गुणों का समुदाय तथा हरि की माया से ब्रह्मा आदि देव-मुनि मण्डल और मनुगण के द्वारा पुष्प धूप आदि पूजन के उपचारों से भक्ति भाव पूर्वक श्री राधा सर्वदा पूजित एवं वन्दित हुई है ॥१५२-१५४॥

पृथिव्यां प्रथमे देवी सुयज्ञेन च पूजिता ।
शङ्करेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥१५५॥

त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञा परमात्मनः ।
पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सुरैः ॥१५६॥
कला या याः सुसंभूता पूजितास्ताश्च भारते ।
पूजिताग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने ॥१५७॥
एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम् ।
यथागमं लक्षणञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१५८॥

पृथ्वी में यह देवी प्रथम काल में सुयज्ञ के द्वारा पूजित हुई है और शङ्कर के उपदेश से पुण्य क्षेत्र भारत में पूजा की गई है ॥१५५॥ इसके अनन्तर तीनों लोकों में परमात्मा की आज्ञा से मुनिगण और देवों के द्वारा भक्तिभाव पूर्वक इसकी पूजा की गई। इसके अर्चन के लिये पुष्प धूप आदि सभी उपचार काम में लिये गये थे ॥१५६॥ जो-जो भी प्रकृति की कलाएँ समुत्पन्न हुई हैं वे सभी भारत में पूजित हुई हैं। हे मुने! नगर और ग्राम में ग्राम देवियां पूजित हुई हैं ॥१५७॥ इस प्रकार से मैंने यह सम्पूर्ण प्रकृति का चरित विस्तार पूर्वक तुमको बता दिया है, जोकि परम शुभ है। जैसा कि आगम में कहा गया है इन सब का लक्षण और स्वरूप सभी वर्णित कर दिया गया है। अब आगे तुम मुझसे क्या श्रवण करने की इच्छा रखते हो? ॥१५८॥

१२—देवदेव्युत्पत्ति ।

समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं विभो !
विबोधनाय बोधस्य व्यासेन वक्तुमर्हसि ॥१॥
सृष्टिराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह ।
कथं वा पञ्चधा भूता वद वेदविदांवर ॥२।
भूता या याश्च कलया तया त्रिगुणया भवे ।
व्यासेन तासां चरितं श्रोतमिच्छामि साम्प्रतम् ॥३॥

तासां जन्मानुकथनं ध्यानं पूजाविधिं परम् ।
स्तोत्र कवचमैश्वर्यं शौर्यं वर्णय मङ्गलम् ॥४॥
नित्यात्मा च नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा ।
विश्वेषां गोकुलं नित्य नित्यो गोलोक एव च ॥५॥
तदेकदेशो वैकुण्ठो लम्बभाग स नित्यकः ।
यथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीना सनातनी ॥६॥
यथाग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभाप्रभारवौ ।
शश्वद्युक्ता नभिन्नासा तथाप्रकृतिरात्मनि ॥७॥

इस अध्याय में देव-देवी की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है। नारद जी ने कहा—हे विभो ! संक्षेप से मैंने देवियों का शुभ चरित सम्पूर्ण सुना लिया है। व्यास देव बोध के विशेष बोधन के लिये जो कहा है अब उसे कहने के योग्य होते हैं ॥१॥ इस सृष्टि की विधि में सब से प्रथम होने वाली माया सृष्टि कैसे हुई थी। हे वेदों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ ! वह सृष्टि पाँच प्रकार की फिर कैसे हो गई थी—यह सब वर्णन करने की कृपा कीजिये। इस संसार में तीन गुणों वाली उस कला के द्वारा जो-जो हुई थी वह सब कहिये। व्यास देव ने उनका चरित सब वर्णन किया है। मैं अब उसे श्रवण करना चाहता हूँ ॥२-३॥ उन सबका जन्मानुकथन-ध्यान और परम समर्चनकी विधि स्तोत्र-कवच-ऐश्वर्य और मङ्गल शौर्य सब का वर्णन करने का अनुग्रह करियेगा ॥४॥ श्री नारायण ने कहा—देखो—यह आत्मा नित्य है, आकाश नित्य है, काल नित्य है और ये दिशायें भी नित्य हैं। विश्वों में गोलोक धाम नित्य है ॥५॥ उसका एक भाग लम्बभाग वाला वैकुण्ठ नित्य है। उसी भाँति ब्रह्म में लीन हो जाने वाली यह सनातनी प्रकृति भी नित्य है ॥६॥ जिस प्रकार से अग्नि में दग्ध कर देने वाली दाहिका शक्ति है तथा चन्द्र-रवि और पद्म में प्रभा और शोभा है जोकि शाश्वत् युक्त ही रहती है, उसी भाँति से उसी के समान यह प्रकृति है जोकि आत्मा में रहती है ॥७॥

विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्त्तुमक्षमः ।
विनामृदा कुलालोहि घटंकर्त्तु न हीश्वरः ॥८॥
न हि क्षमस्तथा ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं तया विना ।
सर्वशक्तिस्वरूपासातयाचशक्तिमान्सदा ॥९॥
ऐश्वर्य्यवचनःशक च तिः पराक्रमवाचकः ।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्रीयासाशक्तिः प्रकीर्तिता ॥१०॥
समृद्धिवुद्धिसम्पत्तियशसां वचनो भगः ।
तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ॥११॥
तया युक्तः सदात्मा च भगवांस्तेन कथ्यते ।
स च स्वेच्छामयः कृष्णः साकारश्च निराकृतिः ॥१२॥
तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा ।
वदन्ति ते परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥१३॥
अदृष्टं सर्वपट्कारं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ।
सर्वदं सर्वरूपान्तमरूपं सर्वपोषकम् ॥१४॥

स्वर्ण के अभाव में कितना ही निर्माण की कला में कुशल क्यों हों स्वर्णकार उसका कुण्डल बनाने में असमर्थ रहता है और कुम्हार मिट्टी के बिना घट की रचना करने के कार्य में सर्वदा असमर्थ होता है। इसी तरह से उस प्रकृति के बिना ब्रह्म इस जगतीतल की रचना करने के कार्य में सामर्थ्यहीन होता है। वह प्रकृति देवी सम्पूर्ण प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न स्वरूप वाली है और उसी के साथ सर्वदा ब्रह्म परमात्मा शक्तिवान होता है ॥८-९॥ "शक्" यह वर्ण ऐश्वर्य का वाचक होता है और 'ति'—यह वर्णपराक्रम के अर्थ को प्रकट करने वाला है। इन दोनों ऐश्वर्य और पराक्रम के स्वरूप वाली तथा इन दोनों को प्रदान करने वाली जो है वही 'शक्ति'—इस शुभ नाम से कही गई है ॥१०॥ समृद्धि-वृद्धि-सम्पति और यश इन चार अर्थों का प्रकट करने वाला 'भग' यह शब्द होता है। इससे युक्त शक्ति भगवती है और वह स्वयं सदा भग रूप वाली है ॥११॥

उस से समन्वित रहने वाले सदात्मा भगवान् इस शुभ एवं सुन्दर नाम से कहे जाया करते हैं। वह स्वेच्छामय श्रीकृष्ण हैं जो सुन्दर आकार से युक्त हैं और बिना आकार वाले निराकार भी हैं ॥१२॥ जो तेज के स्वरूप वाले हैं वह निराकार हैं अर्थात् तेजमय तो हैं किन्तु उनके कोई अन्य पुरुष देह के भाँति अङ्ग-प्रत्यङ्ग नहीं होते हैं। ऐसे निराकार का योगी जन सर्वदा ध्यान किया करते हैं। वे लोग उसी को परब्रह्म-परमात्मा और ईश्वर कहा करते हैं। वह अदृष्ट-सर्वद्रष्टा-सर्वज्ञ और सभी का कारण है, सब कुछ का प्रदान करने वाला है—रूपरहित है और इस जगत् के समस्त पदार्थों के ही रूप वाला है अर्थात् यह चराचरमय समस्त जगत् ही उसका ही एक रूप है। सब का पोषण करने वाला है ॥१३-१४॥

वैष्णवास्तं न मन्यन्ते तद्भक्ताः सूक्ष्मदर्शिनः।
वदन्तीति कस्य तेजस्तेचतेजस्विनं विना ॥१५॥
तेजोमण्डलमध्यस्थं ब्रह्मतेजस्विनं परम्।
स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम् ॥१६॥
अतीवसुन्दरं रम्यं बिभ्रतं सुमनोहरम्।
किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम् ॥१७॥
नवीननीरदाभासं रासैकश्याममुन्दरम्।
शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचनलोचनम् ॥१८॥
मुक्तासारविनिन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम्।
मयूरपुच्छचूडञ्च मालतीमाल्यमण्डितम् ॥१९॥
सुनसं सस्मितं शश्वद्भक्तानुग्रहकातरम्।
ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम् ॥२०॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्।
सर्वाधारञ्च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम् ॥२१॥
सर्वैश्वर्य्यप्रदं सर्वं स्वतन्त्रं सर्वमंगलम्।
परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धिदं सिद्धिकारणम् ॥२२॥

वैष्णव गण सूक्ष्म दर्शी उसके परमभक्त उसका ऐसा स्वरूप नहीं माना करते हैं। उनका कथन सयुक्तिक है कि जो निराकारवादी परब्रह्म परमात्मा को आकार से रहित तेजोमय मानते हैं तो यह भी उन्हें बताना चाहिये कि वह किसी तेजस्वी महापुरुष के विना यह किसका तेज है क्योंकि तेज ही है तो उसका आधार कोई तेजस्वी भी अवश्य ही होना चाहिये। गुण तो गुणी के बिना होता ही नहीं है ॥१५॥ इनका कथन इस प्रकार से है कि माना वह एक तेज का मण्डल है किन्तु उस मण्डल के मध्य में स्थित परब्रह्म जोकि तेजस्वी है वह स्थित है। वही स्वेच्छामय-सर्वरूप-सबके कारणों का भी कारण है ॥१६॥ वह तेजस्वी अत्यन्त अनुपम सौन्दर्य वाला-परम रम्य वपु को धारण करने वाला-मनोहर-किशोर अवस्था से युक्त-अतिशान्त रूप वाला-सबका स्वामी-और पर से भी परतम है ॥१७॥ वह वैष्णवों का पर ब्रह्म नवीन नीरद (मेघ) के समान श्याम वर्ण वाला तथा रासलीलानुरागी एक श्याम सुन्दर है। उसके नेत्र शरत्काल के मध्याह्न में पद्मों के समुदाय की शोभा को मोचन करने वाले परम सुन्दर हैं ॥१८॥ अति सुरम्य मोतियों के सार को भी उसकी दाँतों की मञ्जुल पङ्क्ति हेचकर देने वाली है। वह मोर की पंख को चूड़ा में रखने वाला और मालती लता के पुष्पों की मालाओं से मण्डित है ॥१९॥ इस वैष्णवों के श्री कृष्ण रूपी परब्रह्म की बड़ी सुन्दर नासिका है और सर्व हासन्द मुस्कान से समन्वित रहने वाला है। सदा वह अपने भक्त जनों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये कातर (उतावला) रहा करते हैं। जलती हुई अग्नि के समान परम विशुद्ध वस्त्र अर्थात् पीताम्बर की शोभा से सम्पन्न है ॥२०॥ वह दो भुजाओं वाला है—मुरली हाथ में धारण करने वाला और रत्न जटित आभरणों से विभूषित-सबका आधार-सब का ईश-सम्पूर्ण शक्ति समुदाय से समन्वित और व्यापक है ॥२१॥ वह समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों का दाता-सर्व-परम स्वतन्त्र- सर्व मङ्गल रूप - परिपूर्णतम-स्वयं सिद्ध-सिद्धियों के प्रदान करने वाले और सिद्धियों के कारण स्वरूप हैं ॥२२॥

ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वदवरूप सनातनम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहर परम् ॥२३॥
ब्रह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्य्यते
स चात्मा परम ब्रह्म कृष्ण इत्याभिधीयते ॥२४॥
कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचक ।
भक्तिदास्यप्रदाता य.सकृष्ण परिकीर्तिताः ॥२५॥
कृषिश्च सर्ववचनो नकारो बीजवाचक ।
सर्व बीज पर ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥२६॥
असख्यब्रह्मणा पातेकालेऽतीतेऽपिनारद ।
यद्गुणनांनास्तिनाशस्ततनमानोगुणेनच ॥२७
स कृष्ण सर्वसृष्ट्यादौ सिसृक्षुरेक एव च ।
सृष्टयोन्मुखस्तदशेन कालेनप्रेरित प्रभु ॥२८॥

वैष्णव गण निरन्तर इस प्रकार के स्वरूप वाले जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि शोक-भय सबके हरण करने वाले परम सनातन का ध्यान किया करते हैं ॥२३॥ ब्रह्मा की परम अवस्था उसका एक निमेष समय होता है। वह आत्मा परब्रह्म कृष्ण-इस शुभ नाम से कहे जाते हैं ॥२४॥ 'कृषि'—यह शब्दांश उसकी भक्ति के अर्थ का वाचक होता है और न'—यह वर्ण उसके दास्य अर्थ का प्रकट करने वाला है। जो भक्ति और दास्य भाव के प्रदान करने वाला है, वह 'कृष्ण'—इस शुभ नाम से कहा गया है ॥२५॥ 'कृषि'—यह सबका वाचक है और नकार बीज के अर्थ का वाचक होता है। जो सबका बीज स्वरूप परब्रह्म है वह 'कृष्ण'—इस नाम से कहा जाता है ॥२६॥ हे नारद! असंख्य ब्रह्माओं के पात का समय व्यतीत हो जाने पर भी जिसके गुण गणों का कभी नाश नहीं होता है और गुणगण में वह उन्हीं के समान होता है ॥२७॥ वह कृष्ण समस्त की सृष्टि के आदि में एक ही सृजन करने की इच्छा वाला है। उसके अंश स्वरूप काल के के द्वारा प्रेरित प्रभु सृष्टि का सृजन करने के लिये उन्मुख होते हैं ॥२८॥

स्वेच्छामय.स्वेच्छयाचद्विधारूपोवभूवह ।
स्त्रीरूपावामभागांशादक्षिणांशःपुम न्स्मृतः ॥२६॥
अतीवसुन्दरींशान्तांसस्मितांवक्रलोचनाम् ।
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूपण भूषिताम्॥३०॥
शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यांपिवन्तींसन्ततंमुदा ।
कृष्णस्यमुखचन्द्रश्चचन्द्रकोटिविनिन्दितम् ॥३१॥
दृष्टिमात्रं तथा सार्द्धं रासेशो रासमण्डले ।
रासोल्लासेपु रहसि रासक्रीड़ां चकार ह ॥३२॥
स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो वभूव ह ।
निःश्वासवायुःसर्वेषांजीविनाञ्चभवेपुच ॥३३॥
वभूवमूर्त्तिमद्वायोर्वामाङ्गात्प्राणवल्लभा ।
तत्पत्नी साचतत्पुत्राः प्राणा.पञ्चचजीविनाम् ॥३४॥
प्राणोऽपानः समानश्चैवोदानो व्यान एव च ।
वभूवुरेवतत्पुत्राश्चघःप्राणाश्च पञ्च च ॥३५॥

वह स्वेच्छामय है इसी लिये अपनी इच्छा से ही दो प्रकार के रूप वाला हो गया था। वाम भाग का अंग स्त्रीरूप वाला हो गया और दक्षिण भाग का अंश पुमान् हो गया था॥२६॥ जो स्त्री रूपा अंश था वह अत्यन्त ही सुन्दरी-शान्ता स्मित से युक्त और वक्र नेत्रों वाली थी। अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र का परिधान करने वाली और रत्न जटित भूपणों से विभूपित थी ॥३०॥ वह निरन्तर नेत्ररूपी चकोरों से करोड़ों चन्द्रों को पराजित करने वाले कृष्ण के मुख रूपी चन्द्र का पान प्रसन्नता से करने वाली थी ॥३१॥ ऐसी उस परम सुन्दरी के साथ रास मण्डल में रासेश्वर ने रासोल्लास के समय सृष्टिभाव से एकान्त में रास क्रीड़ा की थी ॥३२॥ और उसकी निःश्वास की जो वायु थी वही सवका आधार हुई थी। भव में समस्त जीवधारियों की वह निःश्वास वायु हुई थी। उस मूर्त्तिमान् वायु के वाम अङ्क से उसके प्राणों की वल्लभा पत्नी हुई थी और उसके पुत्र प्राण हुये थे जोकि जीवियों के पांच प्राण हैं ॥३३-३५॥

धर्मतोयाधिदेवश्च बभूव वरुणो महान् ।
तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी बभूव सा ॥३६॥
अथ सा कृष्णशक्तिश्च कृष्णाद्गर्भं दधार ह ।
शतमन्वन्तरं यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥३७॥
कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया ।
कृष्णस्य सङ्गिनी शश्वत् कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥३८॥
शतमन्वन्तरातीतकालेऽतीतेऽपि सुन्दरी ।
सुषाव डिम्बं स्वर्णाभं विश्वाधारालयं परम् ॥३९॥
दृष्ट्वा डिम्बञ्च सा देवी हृदयेन विदूयिता ।
उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्ड गोलके जले ॥४०॥
दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह ।
शशाप देवीं देवेशस्तत्क्षणञ्च यथोचितम् ॥४१॥
यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले सुनिष्ठुरे ।
भव त्वमनपत्यापि चाद्यप्रभृति निश्चितम् ॥४२॥

धर्म और तोय (जल) का अधिदेव महान् वरुण देवता हुआ था। उसके वाम अङ्ग से उसकी पत्नी वरुणानी प्रकट हुई थी ॥३६॥ इसके अनन्तर उस कृष्ण की शक्ति ने कृष्ण से गर्भ को धारण किया था और सौ मन्वन्तर के समय तक वह ब्रह्मतेज से दीप्तिमती रही थी ॥३७॥ यह कृष्ण की प्राणाधि देवी और कृष्ण की प्राणों से भी अधिक प्रिया थी। यह कृष्ण की निरन्तर सङ्गिनी थी अर्थात् सर्वदा उनके ही साथ रहने वाली थी तथा कृष्ण के वक्षःस्थल में सदा संस्थित रहा करती थी ॥३८॥ एक सौ मन्वन्तर के काल के अतीत हो जाने पर उस सुन्दरी ने स्वर्ण की आभा के समान आभा वाले—विश्व के आधार का स्थान परम डिम्ब (शिशु) का प्रसव किया ॥३९॥ उस देवी ने हृदय से विदूयिता होकर उस शिशु को देखा और गोलोक जल में उस ब्रह्माण्ड का कोप से उत्सर्ग कर दिया था ॥४०॥ कृष्ण ने उसके इस प्रकार से त्याग कर देने के कर्म को देखकर हाहाकार किया था और उस देवी के ईश कृष्ण ने उसी समय

यथोचित रूप से उस देवी को शाप दे दिया था ॥४१॥ हे कोपशीले ! हे सुनिष्ठुरे ! चूंकि तूने इस सन्तति को त्याग दिया है इस लिये आज से लेकर तू सन्तान हीना हो जावेगी और निश्चित रूप से अब तेरे कोई भी सन्तति नहीं होगी ॥४२॥

या यास्तदंशरूपा चभविष्यन्तिसुरस्त्रीयः ।
अनपत्याश्चताःसर्वास्तत्समानित्ययौवनाः ॥४३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाग्रात् सहसा ततः ।
आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा ॥४४॥
पीतवस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी ।
रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥४५॥
अथ कालान्तरे सा च द्विधारूपाबभूव ह ।
वामार्द्धाङ्गाचकमलादक्षिणार्द्धाचराधिका ॥४६॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव ह ।
दक्षिणार्द्धश्चद्विभुजो वामार्द्धश्च चतुर्भुजः ॥४७
उवाच वाणीं श्रीकृष्णस्त्वमस्य कामिनी भव ।
अत्रैवमानिनीराधानैवभद्रं भविष्यति ॥४८॥
एवं लक्ष्मीञ्च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च ।
स जगामचवैकुण्ठंताभ्यांसार्द्धजगत्पतिः ॥४९॥

जो-जो भी सुरों की स्त्रियाँ उसके अंश से होने वाली या अंश रूप धारण करने वाली होंगी वे भी सब सन्तान हीना नित्य यौवन वाली उसी के समान होंगी ॥४३॥ इसी अन्तर में फिर सहसा वह देवी जिह्वा के अग्रभाग से एक परम मनोहरा शुक्ल वर्ण वाली कन्या के रूप में प्रकट हुई थी ॥४४॥ यह पीत वस्त्रों के धारण करने वाली तथा वीणा और पुस्तक हाथों में लिये हुये रत्नों से जटित भूषणों से समलङ्कृत और समस्त शास्त्रों की अधि देवता थी ॥४५॥ इसके अनन्तर कालान्तर में वह दो रूप वाली हो गई थी । उसका जो दक्षिण भाग का आधा अंग था वह दो भुजाओं वाला हो गया था और वामांग का आधा भाग चार भुजाओं वाला हो

गया था ॥४६॥ उस समय श्रीकृष्ण रुक्मणी से बोले—तू इसकी कामिनी अर्थात् पत्नी होजा। यहाँ पर ही मानिनी राधा थी, यह नहीं होगा। इस प्रकार से तुष्ट होकर लक्ष्मी को नारायण को दे दिया था। फिर वह जगती तल का स्वामी उन दोनों के साथ वैकुण्ठ लोक को चले गये थे ॥४७-४६॥

अनपत्ये च ते द्वे च यतो राधांशसम्भवा।
भूता नारायणाङ्गाच्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥५०॥
तेजसा वयसा रूपगुणाभ्यां च समा हरेः।
बभूवुः कमलाङ्गाच्च दासीकोट्यश्च तत्समाः ॥५१॥
अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतोमुने।
भूताश्चासत्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः ॥५२॥
रूपेण च गुणैर्नैव वेशेन विक्रमेण च।
प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदा विभो. ॥५३॥
राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः।
राधातुल्याश्च सर्वास्ता राधातुल्याःप्रियंवदाः ॥५४॥
रत्नभूषणभूषाढ्या शश्वत्सुस्थिरयौवनाः।
अनन्त्याश्चना सर्वा. पुंस शापेन सन्ततम् ॥५५॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेहतः।
आविर्बभूव सा दुर्गा विष्णुमाया सनातनी ॥५६॥

क्योंकि ये दोनों सन्तान हीन थीं इस लिये राधा के अंश से जन्म लेने वाले नारायण के अङ्ग से चार भुजाओं वाले पार्षद हुये थे। ये पार्षद तेज और गुण में तथा वय (अवस्था) में तथा रूप-लावण्य और गुण-गण से हरि के ही समान हुये थे। कमला के अंग से उसी के समान करोड़ों दासियाँ हुई थीं ॥५०-५१॥ हे मुने! इसके अनन्तर गोलोक धाम के स्वामी के रोम विवरों से असत्य गोप समुत्पन्न हुये थे जो अवस्था और तेज से उन्हीं के सदृश थे ॥५२॥ रूप-लावण्य से-गुण-गण से-वेश भूषा से और पराक्रम से सब विभु के प्राणों के समान प्यारे पार्षद हुये थे ॥५३॥ इसी

प्रकार से राधा के लोमों के छिद्रों से राधा के ही सदृश गोर कन्यकायें हुई थीं। ये सब पूर्णरूप से राधा के ही सब समान प्रिय बोलने वाली समुत्पन्न हुई हुई थीं ॥५४॥ ये सभी रत्नों के विविध सर्वोत्तम आभरणों से समलङ्कृत थीं और निरन्तर सुस्थिर यौवन वाली थीं। परम पुरुष के शाप से वे सभी सन्तानहीन थीं ॥५५॥ हे विप्र ! इसी अन्तर में सहसा कृष्ण के शरीर से विष्णुमाया सनातनी दुर्गा प्रकट हुई थीं ॥५६॥

देवी नारायणीशानी सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
बुद्ध्यधिष्टातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥५७॥
देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी।
परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥५८॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्य्यकोटिसमप्रभा।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता ।५९॥
नानाशास्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना।
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥६०॥
यस्याश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः।
सर्वविश्वस्थिता लोका मोहितामाययायया ॥६१॥
सर्वैश्वर्य्यप्रदात्री च कामिनां गृहवासिनाम्।
कृष्णभक्तिप्रदात्रीचवष्णवानाञ्च वैष्णवी ॥६२॥
मुमुक्षूणां मोक्षदात्रीसुखिनांसुखदायिनी।
स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीः सागृहलक्ष्मीर्गृहेष्वसौ ॥६३॥
तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपासा नृपेषु च।
या चाग्नोदाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे ॥६४॥
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मेषु च सुशोभना।
सर्वशक्तिस्वरूपा या कृष्णे परमात्मनि ॥६५॥

यह नारायणी देवी ईशानी और समस्त शक्तियों के स्वरूप वाली थी। वह परमात्मा कृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी थीं ॥५७॥ वह

देवियों की बीजरूप वाली थी और मूलप्रकृति-ईश्वरी परिपूर्णतमा तेज के स्वरूप से समन्वित तथा त्रिगुणात्मिका थी ।।५८।। यह तपे हुये सुवर्ण के वर्ण के समान आभा वाली और करोड़ सूर्य की प्रभा के समप्रभा वाली थी। अल्प हास्य से युक्त प्रसन्न मुख वाली और एक सहस्र भुजाओं से युक्त थी ।।५९।। वह तीन नेत्रों वाली देवी अनेक भाँति के शस्त्र और अस्त्रों के समूह को धारण करने वाली थी। वह्नि के समान विशुद्ध वस्त्र के परिधान से युक्त और रत्नों के भूषणों से विभूषित थी ।।६०।। जिसके अंशांशकला से संसार की समस्त स्त्रियाँ हुई थी। ये सर्वत्र सम्पूर्ण विश्व मे स्त्रियाँ संस्थित हैं जिनकी माया से सभी लोग मोहित रहा करते हैं ।।६१।। गृह मे निवास करने वाले गृहस्थों को जोकि कामी हैं अर्थात् काम वासना रखते हैं उनको सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली है। जो वैष्णवी देवी है वह वैष्णवों को कृष्ण भक्ति को प्रदान करने वाली होती है ।।६२। जो मोक्षपद को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले मुमुक्षुओं को यह मोक्ष के प्रदान करने वाली है और सुखोपभोग करने की इच्छा रखने वालों को यह देवी सुख का प्रदान भी उसी भाँति करने वाली है। स्वर्ग मे यही स्वर्ग लक्ष्मी है और घरों में यह गृह लक्ष्मी है। ६३।। तप करने वाले तपस्वियों मे वह तपस्या रूप वाली है और राजाओं में श्री का रूप धारण करने वाली है और जो अग्नि मे दाहिका रूप वाली तथा भास्कर मे प्रभा के रूप वाली थी ।।६४।। चन्द्र में शोभा के स्वरूप धारण करने वाली और वही पद्मों में सुन्दर शोभा के रूप वाली है तथा परमात्मा श्री कृष्ण में वही सब प्रकार की शक्ति के स्वरूप धारण करने वाली थी ।।६५।।

यया च शक्तिमानात्मा यया च शक्तिमज्जगत् ।
यया विना जगत् सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम् ।।६६।।
या च संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी ।
स्थितिरूपा बुद्धिरूपा फलरूपा च नारद ।।६७।।
क्षुत्पिपासा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमा धृतिः ।
शान्तिलज्जा तुष्टिपुष्टिभ्रान्तिकान्त्यादिरूपिणी ।।६८।।

सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुवास ह ।
रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः ॥६९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः ।
पद्मनाभो नाभिपद्मान्निः ससार पुमान् मुने ॥७०॥

जिसके द्वारा यह आत्मा शक्ति वाला है और जिसके द्वारा यह समस्त जगत् शक्तिमान् होता है। इस बिना तो यह सम्पूर्ण जगत् एक मृतक की भाँति ही स्थित होता है ॥६६॥ हे नारद ! जो इस वृद्ध संसार की बीज रूप वाली है और सनातनी है, स्थिति रूपा बुद्धिरूपा और फलों के के रूप वाली है ॥६७॥ वह क्षुधा-पिपासा-दयाश्रद्धा-निद्रा-तन्द्रा-क्षमा-धृति-शान्ति-लज्जा-तुष्टि-पुष्टि-भ्रान्ति और कान्ति आदि के रूप वाली है ॥६८॥ उसने सर्वेश्वर की स्तुति करके वह फिर उन्हीं के आगे संस्थित हो गई थी। राधिका के ईश्वर ने उसके लिय संस्थित होने को रत्नों का सिंहासन दिया था। इसी अन्तर में वहाँ पर अपनी स्त्री के साथ पद्मनाभ चतुर्मुख हे मुने ! भगवान की नाभि में स्थित पद्म नाल के पद्म से पुमान् निकला था ॥६९-७०॥

कमण्डलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः ।
चतुर्मुखस्तं तुष्टाव प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥७१॥
सुन्दरी सुन्दरीश्रेष्ठा शतचन्द्रसमप्रभा ।
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥७२॥
रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम् ।
उवास स्वामिना सार्द्धं कृष्णस्य पुरतोमुदा ॥७३॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः ।
वामार्द्धाङ्गोमहादेवोदक्षिणोगोपिकापतिः ॥७४॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशः शतकोटिरविप्रभः ।
त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मधरो हरः ॥७५॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरः परः ।
भस्मभूषणगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥७६॥

दिगम्बरो नीलकण्ठः सर्पभूषणभूषित ।
बिभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमाला सुसंस्कृताम् ॥७७॥
प्रजपन् पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योति सनातनम् ।
सत्यस्वरूप श्रीकृष्ण परमात्मानमीश्वरम् ॥७८॥
कारण कारणानाञ्च सर्वमङ्गलमङ्गलम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरपरम् ॥७९॥
सस्तूय मृत्योर्मृत्यु त जातो-मृत्युञ्जयाभिध ।
रत्नसिंहासने रम्य समुवास हरे पुर ॥८०॥

यह श्रीमान हाथ मे कमण्डलु लिये हुये थे, तपस्वी और ज्ञानियो मे परम श्रेष्ठ थे। चतुर्मुख ने ब्रह्मतेज मे प्रज्वलित होते हुये उसकी स्तुति की थी ॥७१॥ सुन्दरियो म परम श्रेष्ठ सुन्दरी जिसकी शरत्काल के चन्द्रमा के समान प्रभा थी। अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र का परिधान धारण करने वाली, रत्नो के निर्मित भूषणो से समलङ्कृत होने वाली थी ॥७२॥ सबके कारण स्वरूप की उसने स्तुति की और फिर वह अत्यन्त सुरम्य रत्नो से जटित सिंहासन पर कृष्ण के आगे परम प्रसन्नता से अपने स्वामी के साथ संस्थित हो गई थी ॥७३॥ इसी अन्तर म वह कृष्ण दो रूप वाले थे। उसका वामार्द्ध भाग जो था उसमे वह महादेव हो गये थे और जो दक्षिण अङ्ग का अर्ध भाग था उससे गोपिकाओ के पति हो गये थे ॥७४॥ महादेव का वर्ण विशुद्ध स्फटिक मणि के समान था और वह सौ करोड सूर्य की प्रभा के समान प्रभा से युक्त थे। त्रिशूल और पट्टिश आयुधो को हाथो मे धारण करने वाले थे और हर शरीर पर व्याघ्र के चर्म को ओढे थे ॥७५॥ तपे हुये सुवर्ण के वर्ण के सदृश आभा वाली सुनहली जटाओ के भार को धारण करने वाले - पर और भस्म के शरीर पर मले हुए थे तथा स्मित से युक्त और मस्तक पर चन्द्रमा को धारण किये हुये थे। ॥७६॥ शिव दिगम्बर (नग्न) स्वरूप वाले थे। इनके कण्ठ मे महाविष का कालकूट के चिह्न होने से नीलापन था। यह सर्पो के भूषणो से अपने आपको भूषित करने वाले थे। इनके दाहिने हाथ म सुसंस्कृत रत्नो की माला थी ॥७७॥ महादेव अपने पाँच मुखो के मण्डल से सनातन ब्रह्मज्योति-

का जप कर रहे थे जोकि उनका उपास्य देव सत्य स्वरूप वाला - परमात्मा ईश्वर श्री कृष्ण ही थे । इन्हीं का जाप यह करते थे ।।७८।। यह श्रीकृष्ण कारणों के भी कारण स्वरूप और सम्पूर्ण मङ्गलों के भी मङ्गल थे । जन्म-मरण-शोक-जरा-व्याधि और भय के हरण करने वाले परात्पर थे ।।७९।। ऐसे अपने उपास्य देव को जो मृत्यु के भी मृत्यु रूप थे उनका संस्तवन करके जन्मग्रहण करने वाले मृत्युज्जय नामक हर हरि के आगे सुन्दर सिंहासन पर संस्थित हो गये थे ।।८०।।

———

१४—विश्वनिर्णयवर्णनम् ।

अथ डिम्बोजले तिष्ठन् यावद्वै ब्रह्मणो वयः ।
ततःस्वकालेसहसाद्विधारूपो बभूव सः ।।१।।
तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः ।
क्षणं रोरूयमाणश्च स्तनान्धः पीड़ितः क्षुधा ।।२।।
पितृमातृपरित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः ।
ब्रह्माण्डासंख्यनाथो यो ददर्शोद्र्ध्वमनाथवत् ।।३।।
स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपिनाम्नादेवोमहाविराट् ।
परमाणुर्यथासूक्ष्मात्परः स्थूलात्तथाप्यसौ ।।४।।
तेजसांषोड़शांशोऽयंकृष्णस्यपरमात्मनः ।
आधारोऽसंख्यविश्वानांमहाविष्णुश्चप्राकृतः ।।५।।
प्रत्येकं रोमकूपेषु विश्वानि निखिलानिच ।
अद्यापितेषांसंख्याञ्चकृष्णोवक्तुंनहिक्षमः ।।६।।
संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानां नकदाचन ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनांतथासंख्यानविद्यते ।।७।।

इस अध्याय में विश्व के निर्णय का वर्णन किया जाता है । श्री नारायण ने कहा—इसके अनन्तर जितनी ब्रह्मा की अवस्था होती है उतने

समय तक वह डिम्भ जल में स्थित रहकर फिर अपना समय आने पर सहसा वह दो रूप वाला हो गया था ॥१॥ उसके मध्य में एक छोटा सा शिशु था जो शतकोटि सूर्यों के समान प्रभा वाला था। क्षण भर के वह स्तनान्ध क्षुधा से पीडित होता हुआ रुदन करने वाला हो गया था ॥२॥ वह उस समय माता और पिता के द्वारा परित्याग किया हुआ जल के मध्य में आश्रय से हीन था। जो वह ब्रह्माण्ड का नाथ था उस समय एक अनाथ की भांति ऊपर की ओर देखने लगा था ॥३॥ वह भी स्थूल से भी स्थूल तम और नाम से महा विराट् देव था। जिस तरह सूक्ष्म से परमाणु होता है है वैसे ही यह तथापि स्थूल से पर था ॥४॥ परमात्मा कृष्ण के तेज का यह सोलहवाँ अंश था। यह प्राकृत महा विष्णु असख्य विश्वो का आधार था ॥५॥ इसके प्रत्येक रोम छिद्रों में समस्त विश्व हैं अथापि उनकी सख्या का बताने के लिये कृष्ण भी समर्थ नहीं होते हैं ॥६॥ रज के कण समूह की यदि कोई सख्या की जावे तो कदाचित् वह हो सके किन्तु विश्वो की सख्या तो किसी भी प्रकार से कभी नहीं की जा सकती है। जिस तरह विश्वों की सख्या नही की जा सकती है उसी भांति ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि की सख्या नही की कही या बताई जा सकती है। इन सबकी असख्यता इतनी विशाल है ॥७॥

प्रतिविश्वेपुसन्त्येवब्रह्मविष्णुशिवादय ।
पातालाद्ब्रह्मलोकान्तब्रह्माण्डापरिकीर्त्तितम् ॥८॥
तत ऊर्ध्वं च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद् बहिरेव स ।
सचसत्यस्वरूपश्चशश्वन्नारायणोयथा ॥९॥
तदूर्ध्वं चैव गोलोक. पञ्चाशत् कोटियोजनात् ।
नित्य सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाप्ययम् ॥१०॥
सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसयुता ।
ऊनपञ्चाशदुपद्वीपासख्यशैलवनान्विता ॥११॥
ऊर्ध्वं सप्त चस्वर्लोकाब्रह्मलोकसमन्विता: ।
पातालानिचसप्तायश्चैवब्रह्माण्डमेवच ॥१२॥

ऊर्द्ध्वं धरायाभूर्लोकोभुवर्लोकस्ततः परः ।
स्वर्लोकस्तुततःपश्चान्महर्लोकस्ततोजनः ॥१३॥
ततः परस्तपोलोकः सत्यलोकस्ततः परः ।
ततः परोब्रह्मलोकस्तप्तकाञ्चननिर्मितः ॥१४॥

विश्व असंख्य हैं और उन असंख्य विश्वों में प्रत्येक विश्व में इसी प्रकार से ब्रह्मा - विष्णु और शिव आदि भी होते हैं। पाताल से ब्रह्म लोक के अन्त तक ब्रह्माण्ड बताया गया है ॥८॥ उसके ऊपर के भाग में वैकुण्ठ लोक है जोकि इस ब्रह्माण्ड से वाहिर ही होता है। और वह सत्य स्वरूप वाला है जिस प्रकार से निरन्तर नारायण होते है ॥९॥ इस वैकुण्ठ लोक से भी ऊपर के भाग में गोलोक धाम स्थित है जिसका विस्तार पचास करोड़ योजन है। यह गोलोक धाम नित्य-सत्य स्वरूप वाला है जिस प्रकार से कृष्ण का स्वरूप होता है ठीक उसी प्रकार से उनके गोलोक धाम का भी होता है ॥१०॥ यह पृथ्वीतल का मण्डल सात द्वीपों में सीमित है और यह सात महा सागरों से संयुता है। इस पर उनचास उपद्वीप होते हैं और यह असंख्य पर्वतों से समन्वित है ॥११॥ ऊपर के भाग में ब्रह्मलोक से युक्त सात स्वरलोक होते हैं। और नीचे के भाग में पाताल भी सात हैं। इस प्रकार से यह पूरा ब्रह्माण्ड है जिसमें नीचे और ऊपर वाले चौदह भुवन होते हैं ॥१२॥ इस धरा से ऊपर पहिले भूर्लोक है। इसके पश्चात् भुवर्लोक है और उससे आगे स्वर्लोक है। उसके पीछे महर्लोक है और उससे ऊपर जनलोक है ॥१३॥ जनलोक से ऊपर तपोलोक है और उस से ऊपर के भाग में सत्य लोक स्थित है। इन सातों लोकों के ऊपर ब्रह्म लोक स्थित होता है जोकि तपे हुये सुवर्ण के समान निर्मित है ॥१४॥

एवं सर्वं कृत्रिमञ्च धराभ्यन्तर एव च ।
तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव नारद ॥१५॥
जलवुद्बुदवत्सर्वं विश्वसंघमनित्यकम् ।
नित्यौगोलोकवैकुण्ठौसत्यौशश्वदकृत्रिमौ ॥१६॥

लामकूपेचब्रह्माण्डप्रत्येकमस्यनिश्चितम् ।
एषासंख्यानजानातिकृष्णोऽन्यस्यापिकाकथा । १७॥
प्रत्येक प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
तिस्र कोट्य सुराणाञ्चसंख्यासर्वत्रपुत्रक: ॥१८॥
दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ग्रहादयः ।
भुविवर्णाश्चचत्वारोऽधोनागाश्चराचरा: ॥१९॥
अथ कालेन स विराडूर्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः ।
डिम्भान्तरञ्च शून्यञ्च न द्वितीयं कथञ्चन ॥२०॥
चिन्तामवाप क्षद्युक्तो रुरोद च पुन: पुनः ।
ज्ञान प्राप्य तदादध्यौकृष्ण. परमपूरुषम् ॥२१॥

इस प्रकार से यह सब कृत्रिम है और धरा के अभ्यन्तर मे ही है। हे नारद ! इस धरा के विनाश होने पर सभी का विनाश हो जाता है ॥१५॥ जल के बुद्बुदो के समान ही समस्त विश्वो के समुदाय अनित्य है। वैकुण्ठ और गोलोक ये दोनो नित्य हैं—सत्य हैं और निरन्तर अकृत्रिम हैं ॥१६॥ इस के लोमो के छिद्रो मे प्रत्येक मे निश्चित रूप से ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं। ऐसे ये कितने ब्रह्माण्ड हैं—इनकी संख्या साक्षात् कृष्ण नही जानते हैं अन्य तो कोई इसे जान ही क्या सकता है ? इसकी तो चर्चा ही करना व्यर्थ है ॥१७॥ प्रत्येक ब्राह्माण्ड मे ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि सब हुआ करते है। हे पुत्र ! देवो की तीन करोड संख्या है जोकि सर्वत्र रहा करते है अर्थात् प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे इतने ही देवगण रहते हैं ॥१८। ईशाओ के स्वामी-दिशाओ के पालक-नक्षत्र और ग्रह आदि ये सब भी समस्त विश्वो मे होते है और प्रत्येक मे पृथक् पृथक् रहा करते है। इस भूमण्डल मे चार वर्ण हैं और अधोभाग मे चराचर नाग रहा करते है ॥१९॥ इसके उपरान्त समय आनेपर यह विराट बार-बार ऊपर की ओर देखता है। वहा पर अन्य डिम्भ और शून्य द्वितीय कही भी कोई नही है ॥२०॥ फिर यह क्षुधा से युक्त होकर चिन्ता को प्राप्त हो गया था और बार-बार रुदन करने लगा था। फिर इसे ज्ञान की प्राप्ति हुई और ज्ञान का

लाभ करके उस समय में कृष्ण परम पुरुष का ध्यान करने लगा था ।।२१।।

ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ।।२२।।
सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकारकम् ।
जहास बालस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमोश्वरम् ।।२३।।
वरं तस्मै ददौ तुष्टो वरेशः समयोचितम् ।
मत्समो ज्ञानयुक्तश्चक्षत्पिपासाविवर्जितः ।।२४।।
ब्रह्माण्डासख्यनिलयो भव वत्स लयावधि ।।
निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदोवरः ।
जरामृत्युरोगशोकपीड़ादिपरिवर्जितः ।।२५।।
इत्युक्तवा तद्दक्षकर्णे महामन्त्रमं षड़क्षरम् ।
त्रिः कृत्वा प्रजजापादौवेदागमवर परम् ।।२६।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ।
वह्निज्वालान्तमिष्टञ्च सर्वविघ्नहरं परम् ।।२७।।
मन्त्रंदत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वैप्रभुः ।
श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निबोधकथायामि ते ।।२८।।

इसके उपरान्त वहीं पर इसने सनातन ब्रह्म ज्योति का दर्शन प्राप्त किया था जो नवीन मेघ के समान श्याम वर्ण वाले—दो भुजाओं से समन्वित-पीतवस्त्र धारण करने वाले मन्द मुस्कान से युक्त-मुरली हाथ में धारण करने वाले तथा भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने वाले थे। अपने जनक ईश्वर का दर्शन प्राप्त करके वह बालक प्रसन्न हुआ और हँस उठा था ।।२२-२३।। उस वरों के स्मामी ने परम सन्तुष्ट होकर उसको समय पर उचित वरदान प्रदान किया था। उन्होंने कहा—हे वत्स ! तू अब मेरे ही समान ज्ञान वाला और भूख-प्यास से रहित होजा। और जब तक इसका तप हो तब तक इस ब्रह्माण्ड में असंख्य निलयों वाला होजा ।।२४।। मैं तुझे

वरदान देता हूँ कि तू कामना से रहित, भय से रहित, सब को वर देने वालों में परम श्रेष्ठ-जरा, मृत्यु, रोग, शोक, पीड़ा आदि से वर्जित होजा ॥२५॥ यह कहकर उसके दाहिने कान में छै अक्षरों वाला महामन्त्र तीन बार कहकर प्रजपित कर दिया था जोकि आदि में परम वेदागम का एक श्रेष्ठतम था ॥२६॥ इस मन्त्र के आदि में प्रणव (ओम्) था और चतुर्थी विभक्ति जिसके अन्त में थी ऐसे कृष्ण ये दो अक्षर थे। वह्नि ज्वाला अन्त वाला और इष्ट था। यह समस्त विघ्नों को हरण करने में सर्वोपरि था ॥२७॥ यह मन्त्र देकर फिर उस समय प्रभु ने उसके आहार की कल्पना की थी। हे ब्रह्मपुत्र ! तुम श्रवण करो और समझ लो, मैं तुमसे कहता हूँ ॥२८॥

प्रतिविश्वे यन्नैवेद्य ददाति वैष्णवो जनः।
षोडशांशविषयिणोविष्णो पञ्चदशास्यवै ॥२९॥
निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च।
नैवेद्यन च कृष्णस्य नहिकिञ्चित्प्रयोजनम् ॥३०॥
यद् ददाति च नवेद्य यस्म देवाय यो जन।
सचखादतितत्सवलक्ष्माहष्ट्या पुनर्भवेत् ॥३१॥
तञ्च मन्त्र वर दत्त्व तमुवाच पुनर्विभुः।
वरमन्य किमिष्टन्ते तन्मे ब्रूहि ददामिते ॥३२॥
कृष्णस्य वचन श्रुत्वा तमुवाच महाविराट्।
अदन्तो बालकस्तत्र वचन समयोचितम् ॥३३॥
वर मे त्वत्पदाम्भोजे भक्तिर्भवतु निश्चला।
सन्तत यावदायुर्मे क्षण वा सुचिरञ्चवा ॥३४॥
त्वद्भक्तियुक्तायोलोकजीवन्मुक्त.ससन्ततम्।
त्वद्भक्तिहीनोमूर्खश्चजीवन्नपिमृतोहि सः ॥३५॥

वैष्णव जन प्रत्येक विश्व में जो नैवेद्य है उसको समर्पित करते हैं। षोडशांश विषय वाले पञ्चदशास्य विष्णु का निर्गुण आत्मा का और परिपूर्णतम कृष्ण का नैवेद्य से कुछ भी प्रयोजन नहीं है ॥२९-३०॥ जो

जन जिस देव के लिये जो भी नैवेद्य समर्पित करता है वह देवता उस सब को खा जाता है किन्तु लक्ष्मी की दृष्टि से वह फिर वैसा ही हो जाया करता है ।।३१।। विभु ने उस श्रेष्ठ मन्त्र को देकर महा विराट् ने उससे कहा था। तुझे अन्य क्या अभीष्ट वर चाहिए, उसे मुझे बतला दो सो उसे भी मैं तुझको दे देता हूँ। वहाँ पर दांत हीन बालक था उसको समय के लायक वचन था। महा विराट् ने कहा—मेरा यही वर है कि आपके चरण कमल में निश्चल भक्ति होवे। यह निरन्तर रहे जब तक मेरी आयु दो अथवा क्षण भर के लिये अथवा अधिक समय तक रहे ।।३४।। आपकी भक्ति से हीन जो पुरुष है वह महामूर्ख है और वह जीता हुआ भी मृत ही होता है ।।३५।।

किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन पूजनेन च ।
व्रतेनैवोपवासेन पुण्येन तीर्थसेवया ।।३६।।
कृष्णभक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा ।
येनात्मना जीवितश्च तमेवनहि मन्यते ।।३७।।
यावदात्माशरीरेऽस्तितावत्सशक्तिसंयतः ।
पश्चाद्यान्तिगतेतस्मिन्नस्वतन्त्राश्चाशक्तयः ।।३७।।
स च त्वञ्चमहाभागसर्वात्माप्रकृतेःपरः ।
स्वेच्छामयश्चसर्वाद्योब्रह्मज्योतिः सनातनः ।।३९।।
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद ।
उवाच कृष्णःप्रत्युक्तिमधुरां श्रुतिसुन्दरीम् ।।४०।।
सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाहं त्वं भव ।
ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्तेनभविष्यति ।।४१।।
अंशेन प्रतिब्रह्माण्डे त्वञ्च पुत्र विराट् भव ।
त्वन्नाभिपद्मेब्रह्माचविश्वस्रष्टाभविष्यति ।।४२।।

उस जप-तप-यज्ञ-पूजन-व्रत-उपवास-पुण्य-तीर्थों के सेवन से क्या लाभ है जिससे कृष्ण की भक्ति का भाव न हो वह चाहे उपर्युक्त कर्म कुछ भी

क्यों न करने वाला हो ऐसे कृष्ण की भक्ति से विहीन मूर्ख का तो समस्त जीवन ही व्यर्थ होता है। जिसने जीवित रहते हुये अपनी आत्मा के द्वारा उसका जो नहीं माना है उसका जीवित रहना निष्फल है ॥३६-३७॥ जब तक इस नश्वर शरीर में इस आत्मा का निवास विद्यमान रहता है तभी तक यह शक्ति से सयत होता है। इसके अन्दर में आत्मा के निकल जाने पर शक्तियाँ स्वतन्त्र नहीं रहा करती हैं ॥३८॥ हे महा भाग ! वह और तू सर्वात्मा प्रकृति से पर वस्तु है। वह स्वेच्छामय और सबका आद्य सनातन ब्रह्म ज्योति है ॥३६॥ हे नारद ! वह बालक इतना कहकर विराम को प्राप्त हो गया था। फिर कृष्ण परम मधुर और कानों को प्रिय लगने वाली प्रत्युक्ति बोले थे। श्रीकृष्ण ने कहा—तुम सुचिर और सुस्थिर रहो। जैसा मैं हूँ वैसा ही तू होजा। ब्रह्म के असत्यगत होने पर तेरा पात नहीं होगा ॥४०-४१॥ प्रति ब्रह्माण्ड में हे पुत्र ! तू विराट् होगा। तेरे नाभिस्थित कमल नाल से समुत्पन्न पद्म से विश्व का सृजन करने वाला ब्रह्मा होगा ॥४२॥

> ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्राश्चैकादशैव तु।
> शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसञ्चरणाय वै ॥४३॥
> कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः।
> पाता विष्णुश्च विषयी क्षुद्रांशेन भविष्यति ॥४४॥
> मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे।
> ध्यानेन कमनीयं मां नित्यं द्रक्ष्यसि निश्चितम् ॥४५॥
> मातरं कमनीयाञ्च ममवक्षःस्थलस्थिताम्।
> यामि लोकं तिष्ठवत्सेत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत ॥४६॥
> गत्वा स्वलोकं ब्रह्माणं शङ्करं स उवाच ह।
> स्रष्टारं स्रष्टुमीशञ्च संहर्त्तारञ्च तत्क्षणम् ॥४७॥
> सृष्टिं स्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवो भव।
> महाविराड्लोमकूपे क्षुद्रस्य च विधे शृणु ॥४८॥

गच्छ वत्स महादेवं ब्रह्मभालोद्भवो भव ।
अंशेन च महाभाग स्वयञ्च सुचिरं तपः ॥४९॥

ब्रह्मा के ललाट में शिव के अंश से एकादश रुद्र सृष्टि के सञ्चरण करने के लिये होंगे ॥४३॥ उन एकादश रुद्रों में ही एक कालाग्नि नामक रुद्र भी होगा जो इस सृष्टि के संहार का करने वाला होगा। क्षुद्रांश से विषयी विष्णु पालन करने वाला होगा ॥४४॥ वह मेरी शक्ति से सतत युक्त मेरे वर से होवेगा और वह ध्यान से कमनीय (सुरम्य) मुझको निश्चित रूप से नित्य ही देखेगा ॥४५॥ और वक्ष स्थल के नीचे स्थित कमनीय माता का भी दर्शन करेगा। हे वत्स ! तू यहाँ स्थित रह—मैं अपने लोक को जाता हूँ—इतना कहकर वह अन्तर्हित हो गये थे ॥४६॥ फिर स्वर्लोक में जाकर ब्रह्मा और शङ्कर से बोला जो सृष्टा थे और सृजन करने के कार्य के ईश थे तथा उसी क्षण में संहार के करने वाले थे ॥४७॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे वत्स ! इस सृष्टि का सृजन करने के लिये जाओ तुम अब नाभि पद्म के उद्भव वाले बनो। महा विराट् के लोम कूप मे अर्थात् रोम के छिद्र में क्षुद्र विधि का श्रवण करो। फिर महा देव से से कहा—हे वत्स ! ब्रह्मा के भाल से उद्भव वाला बनो। हे महा भाग ! अश से स्वयं बहुत अधिक समय तक तप करो ॥४८-४९॥

इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुतः ।
जगामनत्वातब्रह्माशिवश्चशिवदायकः ॥५०॥
महाविराट्लोमकूपे ब्रह्माण्डगोलके जले ।
स बभूव विराट् क्षुद्रोविराड़ंशेनसाम्प्रतम् ॥५१॥
श्यामो युवा पीतवासाःशयानो जलतल्पके ।
ईषद्धास्यः प्रसन्नास्योविश्वरूपीजनार्दनः ॥५२॥
तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः ।
संभूय पद्मदण्डञ्च बभ्राम युगलक्षकः ॥५३॥
नान्त जगाम दण्डस्य पद्मनाभस्य पद्मजः ।
नाभिजस्य च पद्मस्यचिन्तामापपितामहः ॥५४॥

स्वस्थान पुनरागत्य दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम् ।
ततो ददर्श क्षुद्र त ध्यानेन दिव्यचक्षुषा ॥५५॥
श्यान जलतल्पे च ब्रह्माण्डगोलकावृते ।
यल्लोमकूपे ब्रह्माण्ड तञ्च तत् परमीश्वरम् ॥५६॥
श्रीकृष्णञ्चापि गोलोक गोपगोपीसमन्वितम् ।
त सस्तूय वरप्रापतत सृष्टिचकारम ॥५७॥

विधि का सुत जगतो का नाथ यह कहकर विरत हो गये थे । फिर ब्रह्मा और शिव के देने वाले शिव उनको प्रणाम करके चले गये थे ॥५०॥ महा विराट के लोम के छिद्र मे ब्रह्माण्ड गोलाक जल मे महा विराट् के अश मे वह क्षुद्र विराट् हुआ था ॥५१॥ श्याम वर्ण वाला पीत वस्त्र धारी, जल की शय्या पर शयन करता हुआ था जिनके मुख पर थोडी सी हास्य की रेखा थी और वह प्रसन्न मुख एव विश्व रूपी जनार्दन थे ॥५२॥ उनके नाभिस्थित कमल मे कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा हुये थे । ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण करके युग का लक्ष करने वाला होता हुआ वह उस पद्म के दण्ड पर भ्रमण कर रहा था ॥५३॥ वह पद्म म जन्म पाने वाला पद्म नाभ क दण्ड का अन्त तक नही गया था । नाभि म उत्पन्न पद्म का भी अन्त नही मिला तो वह पिता यह परम चिन्ता को प्राप्त हुए थे ॥५४॥ वह फिर अपने स्थान पर आ गया और वह श्रीकृष्ण क चरण कमल का ध्यान करने लगा था । इसके पश्चात् ध्यान क द्वारा दिव्य चक्षु से उनने उस क्षुद्र का दर्शन किया था ॥५५॥ वह जल की शय्या पर शयन कर रहे थे और ब्रह्माण्ड गोलक म आवृत जिसके लोम छिद्र मे ब्रह्माण्ड को और पर ईश्वर उसको देखा था ॥५६॥ फिर उसने श्रीकृष्ण का भी दर्शन किया था और गोप गोपियो से समन्वित गोलोक को भी देखा । फिर उसने उनका स्तवन किया और वर प्राप्त किया था । इसके अनन्तर उसने सृष्टि की थी ॥५७॥

बभवुर्ब्रह्मण पुत्रा मानसा सनकादय. ।
ततो रुद्रा कपालाच्च शिवाशैकादशस्मृता ॥५८॥

बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः ।
चतुर्भुजश्च भगवान्श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥५९॥
क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्म विश्वं ससर्ज सः ।
स्वर्गमर्त्यञ्चपातालंत्रिलोकंसचराचरम् ॥६०॥
एवंसर्वलोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च ।
प्रतिविश्वे क्षुद्रविराट् ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६१॥
इत्येवं कथितं वत्स कृष्णसङ्कीर्त्तनं शुभम् ।
सुखदंमोक्षदंसारं किंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६२॥

फिर सृजन करने के समय ब्रह्मा के मानस पुत्र सनकादि हुए थे। इसके पश्चात् कपाल से रुद्र हुये थे जो शिव के अंश स्वरूप और एकादश कहे गये हैं ॥५८॥ क्षुद्र के वाम पार्श्व से पाता अर्थात् पालन करने वाले विष्णु हुये थे जो चार भुजाओं वाले श्वेत द्वीप के निवास करने वाले भगवान् थे ॥५९॥ क्षुद्र के नाभिपद्म में उसने ब्रह्मविश्व का सृजन किया था। स्वर्ग-मर्त्य-पाताल चराचर से युक्त तीनों लोकों का सृजन किया था ॥६०॥ इस प्रकार से प्रत्येक लोम कूप में विश्व है और प्रत्येक विश्व में क्षुद्र विराट् है तथा ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि हैं ॥६१॥ हे वत्स ! यह इस प्रकार से मैंने परम शुभ श्रीकृष्ण का संकीर्त्तन करके तुमको बता दिया है जोकि अति सुख का प्रदान करने वाला और मोक्ष का दाता सार रूप है। अब आगे तुम मुझ से और क्या सुनना चाहते हो ? सो मुझसे कहो ॥६२॥

———

१५—सरस्वतीपूजाविधानं मन्त्रश्च ।

गणेशजननीदुर्गाराधा लक्ष्मीःसरस्वती ।
सावित्रीचसृष्टिविधौ प्रकृतिःपञ्चधास्मृता ॥१॥
आसीत् पूजा प्रसिद्धाच्च प्रभावःपरमाद्भुतः ।
सुधोपमञ्च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥२॥

प्रकृत्यंशा कलायाश्च तासाञ्च चरितं शुभम् ।
सर्वं वदामि ते ब्रह्मन् सावधानं निशामय ॥३॥
वाणी वसुन्धरा गङ्गा षष्ठी मङ्गलचण्डिका ।
तुलसी मनसा निद्रा स्वाहा स्वधा च दक्षिणा ॥४॥
तेजसा मत्समास्ताश्च रूपेण च गुणेन च ॥५॥
संक्षेपमासां चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम् ।
जीवकर्मविपाकञ्च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥६॥
आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता ।
यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः ॥७॥

इस अध्याय में सरस्वती की पूजा का विधान और मन्त्र का निरूपण किया गया है । नारायण ने कहा — गणेश की माता दुर्गा—राधा-लक्ष्मी-सरस्वती और सावित्री ये इस सृष्टि की विधि में पाँच प्रकार की प्रकृति बनाई गई हैं ॥१॥ उनकी पूजा प्रसिद्ध थी और उसका प्रभाव परम अद्भुत था और इनका चरित तो सुधा के समान परम मधुर एवं समस्त मङ्गलों का कारण स्वरूप था ॥२॥ ये प्रकृति के अंश और कला के अंश थे और उनका चरित अत्यन्त शुभ है । हे ब्रह्मन् ! मैं यह सब तुमको बताऊँगा । अब अति सावधान होकर इसका श्रवण करो ॥३॥ वाणी-वसुन्धरा गङ्गा षष्ठी मङ्गल चण्डिका-तुलसी-मनसा निद्रा-स्वाहा स्वधा-दक्षिणा ये सब तेज रूप लावण्य में और गुणगण में मेरे ही समान हैं ॥४ ५॥ संक्षेप से इनके चरित को सुनो जो पुण्य प्रदान करने वाला और श्रवण करने में सुन्दर है । जीवों के कर्मों के विपाक को भी बताता हूँ जो परम सुन्दर है और जानने के योग्य है ॥६॥ सबके आदि में सरस्वती की पूजा श्रीकृष्ण ने विशेष रूप से निर्मित की है । हे मुनि श्रेष्ठ ! जिस सरस्वती के प्रसाद से मूर्ख मनुष्य भी महा पण्डित हो जाया करता है ॥७॥

शृणु नारद वक्ष्यामि काण्वशाखोक्तपद्धतिम् ।
जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम् ॥८॥
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च ।
पूर्वेऽह्नि संयमं कृत्वा तत्राह्नि संयतः शुचिः ॥९॥

बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः ।
चतुर्भुजश्च भगवान्श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥५९॥
क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्म विश्वं ससर्ज सः ।
स्वर्गमर्त्यञ्चपातालंत्रिलोकंसचराचरम् ॥६०॥
एवंसर्वलोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च ।
प्रतिविश्वे क्षुद्रविराट् ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६१॥
इत्येवं कथितं वत्स कृष्णसङ्कीर्त्तनं शुभम् ।
सुखदंमोक्षदंसारं किंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६२॥

फिर सृजन करने के समय ब्रह्मा के मानस पुत्र सनकादि हुए थे। इसके पश्चात् कपाल से रुद्र हुये थे जो शिव के अंश स्वरूप और एकादश कहे गये हैं ॥५८॥ क्षुद्र के वाम पार्श्व से पाता अर्थात् पालन करने वाले विष्णु हुये थे जो चार भुजाओं वाले श्वेत द्वीप के निवास करने वाले भगवान् थे ॥५९॥ क्षुद्र के नाभिपद्म में उसने ब्रह्मविश्व का सृजन किया था। स्वर्ग-मर्त्य-पाताल चराचर से युक्त तीनों लोकों का सृजन किया था ॥६०॥ इस प्रकार से प्रत्येक लोम कूप में विश्व है और प्रत्येक विश्व में क्षुद्र विराट् है तथा ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि हैं ॥६१॥ हे वत्स ! यह इस प्रकार से मैंने परम शुभ श्रीकृष्ण का संकीर्त्तन करके तुमको बता दिया है जोकि अति सुख का प्रदान करने वाला और मोक्ष का दाता सार रूप है। अब आगे तुम मुझ से और क्या सुनना चाहते हो ? सो मुझसे कहो ॥६२॥

१५—सरस्वतीपूजाविधानं मन्त्रश्च ।

गणेशजननीदुर्गाराधा लक्ष्मीःसरस्वती ।
सावित्रीचसृष्टिविधौ प्रकृतिःपञ्चधास्मृता ॥१॥
आसीत् पूजा प्रसिद्धाच प्रभावःपरमाद्भुतः ।
सुधोपमञ्च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥२॥

प्रकृत्यंशा कलायाश्च तासाञ्च चरितंशुभम् ।
सर्वंवक्ष्यामिते ब्रह्मन् सावधान निशामय ॥३॥
वाणी वसुन्धरागङ्गा षष्ठी मङ्गलचण्डिका ।
तुलसीमनसा निद्रास्वाहास्वधाच दक्षिणा ॥४।
तेजसा मत्समास्ताश्च रूपेण च गुणेन च ॥५॥
सक्षपमासाञ्चरित पुण्यद श्रुतिसुन्दरम् ।
जीवकर्मविपाकञ्च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥६॥
आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता ।
यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डित ॥७॥

इस अध्याय मे सरस्वती की पूजा का विधान और मन्त्र का निरूपण किया गया है। नारायण ने कहा गणेश की माता दुर्गा—राधा-लक्ष्मी-सरस्वती और सावित्री ये इस सृष्टि की विधि मे पाँच प्रकार की प्रकृति बताई गई हैं ॥१॥ उनकी पूजा प्रसिद्ध थी और उसका प्रभावपरम अद्भुत था और इनका चरित तो सुधा के समान परम मधुर एव समस्त मङ्गलो का कारण स्वरूप था ॥२॥ ये प्रकृति के अश और कला के अश थे और उनका चरित अत्यन्त शुभ है। हे ब्रह्मन्! मैं यह सब तुमको बताऊँगा अब अति सावधान होकर इसका श्रवण करो ॥३॥ वाणी-वसुधरा गगा षष्ठी मगल चण्डिका-तुलसी-मनसा निद्रा-स्वाहा-स्वधा-दक्षिणा ये सब तेज से रूप लावण्य से और गुणगण से मेरे ही समान है ॥४-५॥ सक्षेप से इनके चरित को सुनो जो पुण्य प्रदान करने वाला और श्रवण करने मे सुन्दर है। जीवो के कर्मों के विपाक को भी बताता हूँ जो परम सुन्दर है और जानने के योग्य है ॥६॥ सबके आदि मे सरस्वती की पूजा श्रीकृष्ण ने विशेष रूप से निर्मित की है। हे मुनि श्रेष्ठ! जिस सरस्वती के प्रसाद से मूर्ख मनुष्य भी महा पण्डित हो जाया करता है ॥७॥

शृणु नारद वक्ष्यामि काण्वशाखोक्तपद्धतिम् ।
जगन्मातु सरस्वत्या पूजाविधिसमन्वितम् ॥८॥
माघस्यशुक्लपञ्चम्या विद्यारम्भदिनेऽपि च ।
पूर्वेऽह्नि सयमकृत्वातत्राह्नि सयत शुचि ॥९॥

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्व घटं संस्थाप्य भक्तितः ।
संपूज्य देवषट्कञ्च नैवेद्यादिभिरेवच ॥१०॥
गणेशञ्चदिनेशञ्चवह्निं विष्णुं शिवंशिवाम् ।
संपूज्य संयतोऽग्रेच ततोऽभीष्टं प्रपूजयेत् ॥११॥
ध्यानेनवक्ष्यमाणेन ध्यात्वावाह्यघटेबुधः ।
ध्यात्वा पुनः षोड़शोपचारेण पूजयेदव्रती ॥१२॥
पूजोपयुक्तं नैवेद्यं यद्यद्वेदे निरूपितम् ।
वक्ष्यामिसाम्प्रतं किञ्चिद्यथाधीतंयथागमम् ॥१३॥
नवनीतं दधिक्षीरं लाजाश्च तिललड्डुकम् ।
इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु ॥१४॥
स्वस्तिकंशर्करां शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम् ।
अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम् ॥१५॥
घृतसैन्धवसंस्कारैर्हविष्यान्नञ्च व्यञ्जनैः ।
यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंस्कृतम् ॥१६॥
पिष्टकं स्वस्तिकस्यापि पक्वरम्भाफलस्यच ।
परमान्नञ्च सघृतमिष्टान्नञ्च सुधोपमम् ॥१७॥
नारिकेलं तदुदकं केशरं मूलमार्द्रकम् ।
पक्वरम्भाफलं चारु श्रीफलं वदरीफलम् ॥
कालदेशोद्भव पक्वफल शुक्लं सुसंस्कृतम् ॥१८॥
सुगन्धि शुक्लपुष्पञ्च सुगन्धि शुक्लचन्दनम् ।
नवीनशुक्लवस्त्रञ्च शङ्खञ्च सुमनोहरम् ॥
माल्यञ्च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारञ्च भूषणम् ॥१९॥
यद् दृष्टञ्च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम् ।
तन्निबोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम् ॥२०॥

नारायण ने कहा—हे नारद ! काण्व शाखा में कही हुई पद्धति को तुमसे कहता हूँ, तुम उसका श्रवण करो जोकि जगत् की माता

सरस्वती देवी की पूजा की विधि से सयुक्त है ।८।। माघमास की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि के दिन मे और विद्या क प्रारम्भ होने वाले दिन मे भी दिन के पूर्वार्द्ध के समय म सयम करके उस दिन मे परम सयत एव पवित्र होवे ।।९।। स्नान विधि का सम्पादन करके तथा नित्य कर्म को समाप्त करके भक्ति भाव के साथ घट की सस्थापना करनी चाहिये । फिर छै देवो की अर्चा नैवेद्य आदि पूजोपचारो के द्वारा करे ।।१०।। वे छै देवो के नाम ये हैं—गणेश-दिन के स्वामी सूर्य अग्नि देव-विष्णु-शिव और शिव की प्रिया गौरी इन छै देवों की सर्व प्रथम समर्चा करनी चाहिये । इनका पूजन करके अत्यन्त सयत होते हुये फिर आगे अपने अभीष्ट देव की पूजा करे ।।११।। बुद्ध व्यक्ति का चाहिये कि आगे कहे जाने वाले देवता के ध्यान के द्वारा ध्यान करके घट मे देवता का आवाहन करे और फिर दुबारा ध्यान करके पुन यती को सोलह पूजा के उपचारो के द्वारा पूजा करनी चाहिये ।। १२ ।। नैवेद्य पूजा के उपयुक्त होना चाहिये जिसका वेद मे भली भाति निरूपण किया गया है । अब मैं बतलाता हूँ जो भी मैने आगम के अनुसार थोडा-बहुत अध्ययन किया है ।।१३।। नैवेद्यो मे नवनीत दधि-क्षीर-लाजा (खील)- तिल केलड्डू ईख का रस-शुक्ल वर्ण से युक्त अन्य पदार्थ जोकि मिष्ट हो पकाया हुआ-गुड-मधु-स्वास्तिक शर्करा-शुक्ल धान्य का अक्षत (नटूटे हुये) अक्षत-अस्विन्न शुक्ल धान्य का अथक शुक्ल मोदक-घृत और सैन्धव के ससकारो से हविठयान्न-व्यञ्जनो के द्वारा जो गेहूँ के चून का पिष्टक जोकि धृत के द्वारा सस्कार किया हुआ हो-स्वास्तिक का पिष्टक तथा पके हुये केला के फल का पिष्टक घृत के सहित परमान्न-सुधा के समान मिष्टान्न नारियल और उसका जल-कैशर-मूली-अदरख-पका हुआ केला का फल-सुन्दर श्री फल-बदरी फल (बेर)—काल और देश मे होने वाले पके हुये फल जो शुक्ल और भली भांति से सस्कार युक्त हो-इतने प्रकार के नैवेद्य बताये गये हैं । इनमे से यथाशक्ति और यथा साधन समर्पित करे ।।१४-१८।। सुगन्ध से युक्त शुक्ल वर्ण वाले पुष्प और सुन्दर गन्ध वाला शुक्ल चन्दन नवीन शुक्ल वस्त्र सुमनोहर शङ्ख - शुक्लवर्ण वाले पुष्पो की माला-शुक्ल हार-भूषण समर्पित करे ।।१९।। श्रुति मे जो ध्यान

देखा गया है वही ध्यान प्रशस्त है और कानों को श्रवण करने में प्रिय भी होता है। हे महाभाग ! उसे भली भाँति समझ लो जोकि भ्रम के भञ्जन करने का कारण होता है ॥२०।

सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहरम् ।
कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् ॥२१॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां सुमनोहराम् ।
रत्नसारेन्द्रनिर्माणवरभूषणभूषिताम् ॥२२॥
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ।
वन्दे भक्त्या वन्दितां तां मुनीन्द्रमनुमानवैः ॥२३॥
एवं ध्यात्वाचमूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः ।
संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ॥२४॥
येषाञ्चेयमिष्टदेवी तेषां नित्यक्रिया मुने ।
विद्यारम्भेच सर्वेषां वर्षान्ते पञ्चमीदिने ॥२५॥
सर्वोपयुक्तो मूलश्च वैदिकाष्टाक्षरःपरः ।
येषां येनोपदेशो वा तेषां च मूल एव च ॥
सरस्वतीचतुर्थ्यन्तो वह्निजायान्त एव च ॥२६॥
श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा ।
लक्ष्मीमायादिकश्चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ॥२७॥
पुरा नारायणश्चेमं वाल्मीकाय कृपानिधिः ।
प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥२८॥

सरस्वती देवी शुक्ल वर्ण वाली हैं --उनका रूप सुमनोहर है। वह मन्दस्मित से युक्त हैं। उनका शरीर-करोड़ों चन्द्रमाओं की प्रभा को भी हेच कर देने वाला और पुष्ट श्री से युक्त है ॥२१॥ सरस्वती देवी ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि सुरगणों के द्वारा सुपूजित होने वाली हैं ऐसा उनका ध्यान करके प्रार्थना करे कि मुनीन्द्र-मनु और मानवों के द्वारा वन्दित उस देवी को भक्ति के साथ मैं वन्दना करता हूं ॥२२-२३॥ इस से मूल मन्त्र के द्वारा ध्यान करके विचक्षण पूजक को समस्त पदार्थ उसको

समर्पित कर देना चाहिये। फिर कवच धारण कर अर्थात् कवच का पाठ करके भूमि मे दण्ड की भाँति साष्टाग प्रणाम करना चाहिये ॥२४॥ हे मुने ! जिनकी यह इष्ट देवी है उनकी तो यह नित्य क्रिया है। सबका यह विद्यारम्भ के दिन मे होनी चाहिये और वर्ष के अन्त मे पञ्चमी के दिन होनी चाहिये ॥२५॥ सबका उपयुक्त मूल मन्त्र वैदिक अष्टाक्षर पर है। अथवा जिनको जिस मन्त्र का उपदेश दिया गया हो उनका वही मूल मन्त्र होता है। चतुर्थ्यन्त सरस्वती शब्द होना चाहिये जिसके अन्त मे वह्नि जाया हो ॥२६॥ मन्त्र-"श्री ह्लीं सरस्वत्यै स्वाहा" यही होता है। लक्ष्मी मायादि का यही मन्त्र कल्पवृक्ष है। अर्थात् समस्त मन की इच्छाओ की पूर्ति करने वाला है ॥२७॥ पहिले नारायण ने जोकि कृपा की निधि हैं वाल्मीक के लिये पुण्य के क्षेत्र भारत मे गङ्गा के तट पर इस मन्त्र को दिया था ॥२८॥

भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्य्यपर्वणि।
चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा ॥२९॥
भृगवेच ददौ तुष्टो ब्रह्मा वदरिकाश्रमे।
आस्तिकाय जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसन्निधौ ॥३०॥
विभाण्डको ददौ मेरौ ऋष्यश्रृङ्गाय धीमते ॥३१॥
शिव कणादमुनये गौतमाय ददौ मुने।
सूर्य्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनायच ॥३२॥
शेषः पाणिनयेचैव भरद्वाजाय धीमते।
ददौ शाकटायनाय सतले वलिससदि ॥३३॥

दैत्य गुरु भृगु ने शुक्र के लिये सूय पर्व पर शुक्र के लिये दिया था और मारीच ने वाक्पति के लिये प्रसन्नता के साथ चन्द्र पर्व पर दिया था ॥२९॥ ब्रह्मा ने परम तुष्ट होकर वदरिकाश्रम मे इसी मन्त्र की दीक्षा भृगु को दी थी। जगत्कारु ने क्षीर सागर के समीप आस्तिक के लिये इस मन्त्र का उपदेश दिया था ॥३०॥ विभाण्डक ने मेरु पर्वत पर धीमान् ऋष्य श्रृङ्ग के लिये इसी मन्त्र का उपदेश प्रदान किया था ॥३१॥ हे मुने ! शिव ने कणाद मुनि गौतम के लिये इस मन्त्र का उपदेश दिया था और

सूर्य ने याज्ञवल्क्य और कात्यायन को यही मन्त्र प्रदान किया था ॥३२॥ भगवान् शेष ने धीमान् पाणिनि को और भरद्वाज को इसका उपदेश दिया था तथा बलि की संसद में सुतल लोक में शाकटायन को दिया था ॥३३॥

— — — —

१६—याज्ञवल्क्योक्तवाणीस्तवः ।

वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम् ।
महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा ॥१॥
गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह ।
तदा जगाम दुःखार्त्तो रविस्थानञ्च पुण्यदम् ॥२॥
सम्प्राप्य तपसा सूर्य्यं कोणार्के दृष्टिगोचरे ।
तुष्टाव सूर्य्यं शोकेन रुरोद च पुनः पुनः ॥३॥
सूर्य्यस्तं पाठयामास वेदवेदाङ्गमीश्वरः ।
उवाच स्तुहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे ॥४॥
तमित्युक्त्वा दीननाथोऽन्तर्द्धानंचकार सः ।
मुनिः स्नात्वा चतुष्टाव भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥५॥

इस अध्याय में याज्ञवाल्क्य के द्वारा कहा हुआ वाणी देवी के स्तव का निरूपण किया गया है। नारायण ने कहा—अब तुम वाग्देवता के कवच का श्रवण करो जोकि समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाला है। महा मुनि याज्ञवल्क्य ने इस मन्त्र के द्वारा पहिले उसकी स्तुति की थी ॥१॥ वह मुनि गुरु के शाप से हत विद्या वाला हो गया था। उस समय वह अत्यन्त दुःख से आर्त्त होकर पुण्य देने वाले सूर्य के स्थान को चला गया था ॥२॥ तपस्या के द्वारा भगवान् सूर्य देव के पास पहुँच कर कोणार्क के दृष्टि गोचर होने पर सूर्य देव का स्तवन किया था और शोक से वारम्बार रुदन किया था ॥३॥ ईश्वर सूर्य देव ने उसको वेद-वेदाङ्गों को को पढ़ाया था और कहा था कि स्मृति के हेतु के लिये अर्थात् स्मृति

वर्द्धन के वास्ते भक्ति से वाग्देवी का स्तवन करो ॥४॥ दीनों के स्वामी ने उससे यह कहकर वह फिर अन्तर्धान हो गये थे। और मुनि ने स्नान करके भक्ति - भाव से अपनी कन्धरा को नम्रकर के वागदेवी सरस्वती की स्तुति की थी ॥५॥

'कृपा कुरु जगन्मातर्मामेव हतचेतसम् ।
गुरुशापात् स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनञ्च दुःखितम् ॥६॥
ज्ञानं देहि स्मृतिदेहि विद्या विद्याधिदेवते ।
प्रतिष्ठाकवितादेहि शक्तिशिष्यप्रबोधिकाम् ॥७॥
ग्रन्थकर्तृं कशक्तिञ्च सत्शिष्य सुप्रतिष्ठितम् ।
प्रतिभासत्सभायाञ्चविचारक्षमता शुभाम् ॥८॥
लुप्तं सर्वं दैववशान्नवीभूतं पुनः कुरु ।
यथाङ्कुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः ॥९॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी ।
सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः ॥१०॥
यया विना जगत् सर्वं शश्वद्जीवन्मृतं सदा ।
ज्ञानाधिदेवीयातस्यैसरस्वत्यै नमोनमः ॥११॥
यया विना जगत्सर्वं मूकमुन्मत्तवत् सदा ।
वागधिष्ठातृदेवी या तस्यै वाण्यै नमोनमः ॥१२॥
हिमचन्दनकुन्दन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा ।
वर्णाधिदवी या तस्यै चाक्षरायै नमो नमः ॥१३॥
विसर्गविन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च ।
तदधिष्ठात्री या देवी भारत्यै ते नमो नमः ॥'४॥

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा—हे जगत् की माता ! हतचित्त वाले मेरे ऊपर कृपा करो। मेरी गुरु के शाप से स्मृति का भ्रंश हो गया है और मैं विद्या से हीन तथा अत्यन्त दुखित हूँ ॥६॥ हे विद्या की अधिदेवता ! आप मुझे ज्ञान प्रदान करो—स्मरण शक्ति दो और विद्या का

दान करो। प्रतिष्ठा दो—कवित्व शक्ति प्रदान करो जोकि शिष्यों की प्रबोधिका है ॥७॥ ग्रन्थ के रचना करने की शक्ति-सत् शिष्य जो कि सुप्रतिष्ठित हो, सत्पुरुषों की सभा में प्रतिभा और शुभ विचार करने की क्षमता को प्रदान करो ॥८॥ दैव वश से जो सब कुछ लुप्त हो गया है उसे पुनः जनीभूत करो जिस प्रकार से देवता भस्म में पुनः अंकुर कर देते हैं ॥९॥ जो ब्रह्म के स्वरूप वाली परमा ज्योति रूपिणी सनातनी है और समस्त विद्याओं की अधिष्ठात्री देवी है उस वाग्देवता सरस्वती के लिये मेरा बार बार नमस्कार है ॥१०॥ जिस देवी के बिना समस्त जगत् सदा जीवित रहता हुआ भी मृत के समान है। जो परम ज्ञान की अधिदेवी है उस सरस्वती देवी के लिये बार-बार मेरा प्रणाम है ॥११॥ जिस वाग्देवी के बिना यह समस्त जगत् सदा मूक और एक उन्मत्त प्राणी की भाँति रहा करता है और वाणी की अधिष्ठात्री देवी है उस वाणी देवी के लिये मेरा बार-बार प्रणाम है ॥१२॥ हिम (बर्फ) चन्दन-कुन्द (एक श्वेत सुन्दर पुष्प का नाम) इन्दु (चन्द्र) कुमुद कमल (श्वेत पद्म) के सदृश वर्णों की अधिदेवी जो सरस्वती देवी है उस अक्षरा के लिये मेरा बार-बार-प्रणाम है ॥१३॥ जिसका अधिष्ठान विसर्ग-बिन्दु और मात्राओं में होता है उसकी जो अधिष्ठात्री देवी है उस भारती तेरे लिये मेरा बार-बार प्रणाम है ॥१४॥

यया विनात्र संख्याकृत् संख्यां कर्त्तुं न शक्यते।
कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥१५॥
व्याख्यास्वरूपा या देवी व्याख्याधिष्ठातृदेवता।
भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यैदेव्यैनमोनमः ॥१६॥
स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी।
प्रतिभा कल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः ॥१७॥
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै।
बभूव जड़वत् सोऽपि सिद्धान्तकर्त्तुमक्षमः ॥१८॥
तदा जगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः।
उवाच सततं स्तोत्रं वाणीमितिप्रजापतिम् ॥१९॥

स च तुष्टाव त्वां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः ।
चकारत्वत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम् ॥२०॥

जिस देवी के बिना सख्या के करने वाला कोई भी सख्या करने को समर्थ नहीं होता है। जो काल सख्या के स्वरूप वाली है, उन देवी के लिये मेरा बार-बार प्रणाम है ॥१५॥ व्याख्या के स्वरूप वाली जो देवी व्याख्या की अधिष्ठात्री देवी है और जो भ्रमा के सिद्धान्त के रूप वाली है उस देवी के लिये मेरा बार-बार प्रणाम है ॥१६॥ जो स्मृति शक्ति-ज्ञान शक्ति और बुद्धि शक्ति के स्वरूप वाली है और जो प्रतिभा और कल्पना शक्ति के रूप वाली है, उस देवी के लिये मेरा बार-बार प्रणाम है ॥१७॥ जहाँ पर सनत्कुमार ने ब्रह्मा जी से ज्ञान पूछा था। वह भी सिद्धान्त करने में असमर्थ एक जड की भाँति हो गया था ॥१८॥ उस समय वह ब्रह्मा श्रीकृष्ण के पास गया था और भगवान आत्मा ईश्वर श्रीकृष्ण ने प्रजापति से वाणी देवी के स्तोत्र का पाठ सतत करने के लिये कहा था ॥१९॥ उस ब्रह्मा ने फिर परमात्मा की आज्ञा से आपका स्तवन किया था और फिर उस ब्रह्मा ने आपके प्रसाद से उत्तम सिद्धान्त करने का सम्पादन किया था ॥२०॥

यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा ।
बभूव मूकवत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्त्तुमक्षमः ॥२१॥
तदा त्वाञ्च स तुष्टाव सन्त्रस्तः कश्यपाज्ञया ।
ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम् ॥२२॥
व्यासः पुराणसूत्रञ्च पप्रच्छ वाल्मिकं यदा ।
मौनीभूतः स सस्मार त्वामेव जगदम्बिकाम् ॥२३॥
तदा चकार सिद्धान्तं त्वद्वरेण मुनीश्वरः ।
सम्प्राप निर्मलं ज्ञानं प्रमादध्वंसकारणम् ॥२४॥
पुराणसूत्रं श्रुत्वा स व्यासः कृष्णकुलोद्भवः ।
त्वां सिषेव दध्यौ च शतवर्षञ्च पुष्करे ॥
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य स कवीन्द्रो बभूव ह ॥२५॥

तदा वेदविभागञ्च पुराणानि चकार ह ।
यदा महेन्द्रो पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं शिवाशिवम् ।।२६।।
क्षणं त्वामेव संचिन्त्य तस्यैज्ञानं ददौ विभुः ।
पप्रच्छशब्दशास्त्रञ्च महेन्द्रश्चवृहस्पतिम् ।।२७।।
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च स त्वां दध्यौ च पुष्करे ।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यंवर्षसहस्रकम् ।।
उवाच शब्दशास्त्रञ्च तदर्थञ्च सुरेश्वरम् ।।२८।।

जिस समय वसुन्धरा ने अनन्त भगवान् से एक ज्ञान को पूछा था उस समय वह अनन्त भी कोई सिद्धान्त का निर्णय करने के कार्य में असमर्थ होकर एक मूक (गूँगा) की भाँति हो गया था ।।२१।। तब कश्यप मुनि की आज्ञा से अति से संत्रस्त होकर आपकी स्तुति की थी और फिर भ्रम के भङ्ग कर देने वाले निर्मल सिद्धान्त को किया था ।।२२।। जब व्यास महर्षि ने वाल्मीकि से पुराण सूत्र को पूछा था तब वह मौनी भूत हो गया था और जगत् की अम्बिका आपका ही उसने स्मरण किया था ।।२३।। फिर उस मुनीश्वर ने आपके वर से सिद्धान्त किया था और प्रमाद के ध्वंस का कारण निमल ज्ञान प्राप्त किया था ।।२४।। कृष्ण कुल में समुत्पन्न उस व्यास ने पुराण सूत्र को सुनकर आपकी सेवा की थी और पुष्कर में शत वर्ष तक आपका निरन्तर ध्यान किया था। फिर वह उस समय आप से वरदान प्राप्त करके एक महान् कवीन्द्र हो गये थे ।।२५।। फिर उस व्यास देव ने वेदों का विभाग किया था और पुराणों की रचना की थी। जब महेन्द्र ने शिवा के शिव से तत्त्व-ज्ञान को पूछा था तब उस विभु ने भी एक क्षण के लिये आपका ही संचिन्तन किया था और उसको विभु ने ज्ञान प्रदान किया था। महेन्द्र ने बृहस्पति से शब्द शास्त्र के विषय में पूछा था ।।२६-२७।। उसने एक सहस्र दिव्य वर्ष तक पुष्कर में आपका चिन्तन किया था। उस समय आप से वरदान एक सहस्र दिव्य वर्ष में प्राप्त करके उसने सुरेश्वर को शब्द शास्त्र और उसका समुचित अर्थ कहा था ।।२८।।

अध्यापिताश्च यै शिष्या यैरधीत मुनीश्वरै ॥
ते च त्वा परिसचिन्त्य प्रवर्त्तन्ते सुरेश्वरि ॥२६॥
त्व मस्तुना पूजिता च मुनीन्द्रमनुमानवै ।
दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभि ॥३०॥
जडीभूत सहस्रास्य पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुख ।
या स्तोतु किमह स्तौमितामेकास्येनमानव ।३१॥
इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकन्धर ।
प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहु ॥३२॥
तदा ज्योति स्वरूपामातेनादृष्टाप्युवाच तम ।
सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वावैकुण्ठञ्चजगामह ॥३३॥
याज्ञवल्क्यकृत वाणीस्तोत्रय सयत पठेत् ।
सकवीन्द्रोमहावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत ।३४॥
म ामूर्खश्च दुर्मेधो वर्षमेकञ्च य पठेन् ।
स पण्डितश्च मेधावी सुकविश्च भवेद्ध्रुवम ॥३५॥

हे सुरेश्वरि ! जिन्होने शिष्यो का अध्यापन किया था और जिन मुनीश्वरो न स्वय अध्ययन किया था उन्होने भली भाँति आपका परिचिन्तन करके ही कार्य मे प्रवृत्ति की थी ॥२६॥ हे देवि ! आप मुनीन्द्र और मानवो के द्वारा अच्छी तरह स्तुति की गई हो। देवो और दैत्यो के अधीश्वरो तथा ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि के द्वारा भी स्तुति हुई हो ॥३०॥ जडी भूत इन्द्र पञ्जवक्त्र (शिव) और चतुर्मुख (ब्रह्मा) ने जिसकी स्तुति की थी— फिर मैं एक मुख वाला एक मुख से आपकी क्या स्तुति कर सकता हूँ ॥३१॥ याज्ञवल्क्य ने इतना कहकर भक्ति के भाव से अपनी कन्धरा को झुका कर सरस्वती को प्रणाम किया था और निराहार होकर बार-बार रुदन किया था ॥३२॥ उस समय ज्योति के स्वरूप वाली वह उनके द्वारा न देखी गई होती हुई भी उनसे बोली—'तू अब बहुत अच्छा कवीन्द्र हो जा"— बस इतना कहकर वह फिर वैकुण्ठ लोक को चली गई थी ॥३३॥ इस याज्ञवल्क्य मुनि के द्वारा किये हुये स्तोत्र को जो कोई सयत

होकर पाठ किया करता है वह निश्चय ही बहुत अच्छा कवीन्द्र-महा वाग्मी (अच्छा बोलने की शक्ति वाला) वृहस्पति के ही समान हो जाया करता है ॥३४॥ जो कोई महान् मूर्ख हो और दुर्मेध (बुद्धि रहित) हो वह एक वर्ष पर्यन्त इसका पाठ करे तो वह महा पण्डित - मेधावी और सुकवि निश्चय ही हो जायेगा ॥३५॥

१७—पृथिव्युपाख्यानम् ।

हरेर्निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च ।
तस्य पाते प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः ॥१॥
प्रलये प्राकृते चोक्तं तत्रादृष्टा वसुन्धरा ।
जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीनाऽकराशिति ॥२॥
वसुन्धरा तिरोभूता कुत्र वा तत्र तिष्ठति ।
सृष्टेर्विधानसमये साविर्भूता कथं पुनः ॥३॥
कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रयाजया ।
तस्याश्च जन्मकथनंवदमङ्गलकारणम् ॥४॥
सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म कृष्णादिति श्रुतिः ।
आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥५॥
श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलमङ्गलम् ।
विघ्ननिघ्नकरं पापनाशनं पुण्यवर्द्धनम् ॥६॥
अहो केचिद्वदन्तीति मधुकैटभमेदसा ।
बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतं शृणु ॥७॥

इस अध्याय में पृथिवी का उपाख्यान निरूपित किया गया है। नारद जी ने कहा—हरि के एक निमेषमात्र समय में ही ब्रह्मा का पात हो जाता है अर्थात् उसकी सम्पूर्ण दिव्य आयु एवं कार्यकाल समाप्त हो जाता है। उसके पात होने पर ही प्राकृतिक प्रलय कहा गया है ॥१॥ प्राकृत प्रलय होने

पर कहा गया है कि यह वसुन्धरा प्रकट हो जाती है। समस्त विश्व जल से प्लुत (मग्न) हो जाते हैं और सभी हरि में लीन हो जाया करते हैं ॥२॥ यह वसुन्धरा (पृथ्वी) उस समय तिरोभूता होकर कहाँ रहती है अर्थात् जब यह भूमि अदृश्य हो जाती है तो उस समय कहाँ कहाँ जाकर स्थित रहती है ? फिर जब इस सृष्टि का विधान करने का अवसर आता है तो उस समय यह पृथ्वी कैसे अविर्भूत (प्रकट) हो जाया करती है ? ॥३॥ यह पृथ्वी फिर किस प्रकार से धन्या मान्या और यह समस्त समुदाय की आश्रय और जय वाली हो जाती है ? आप इसके जन्म का कथन जो कि मङ्गल का कारण है कृपा करके बताइये ॥४॥ श्री नारायण प्रभु ने कहा —सबकी आदि सृष्टि में सभी का जन्म आकृति से ही हुआ था—ऐसी श्रुति कहती है अर्थात् वेद यही बतलाता है। समस्त अवसरों में आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है—यह भी वेद का वचन है ॥५॥ अब समस्तमङ्गलों का मङ्गल जो इस वसुधा का जन्म है वह आप श्रवण करो। इसका श्रवण करना समस्त विघ्नों का नाश करने वाला—पापों का प्रनाशक और पुण्यों के वर्धन करने वाला होता है ॥६॥ अहो ! बड़े आश्चर्य की बात है कि कुछ विद्वान मधुकैटभ नाम वाले दैत्यों के मेद से इस पृथ्वी का स्वरूप हुआ था और यह इसी लिए धन्या है—ऐसा कहा करते हैं किन्तु अब आप लोग मुझसे इसके विपरीत मत का श्रवण करो ॥७॥

ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा ।
आवां जहि न यत्रोर्वीपयसासंवृतेति च ॥८॥
तयोर्जीवनकालेन प्रत्यक्षा च भवेत् स्फुटम् ।
ततो बभूव मेदश्च मरणानन्तरं तयोः ॥९॥
मेदिनीति च विख्यातेत्युक्त्वा येंस्तन्मतं शृणु ।
जलधौता कृता पूर्वंवर्द्धितामेदसा यतः ॥१०॥
कथयामि च तज्जन्म सार्थकं सर्वसम्मतम् ।
पुराश्रुतञ्च श्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे ॥११॥

महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम् ।
मलोवभूवकालेनसर्वाङ्गव्यापकोध्रुवम् ॥१२॥
स च प्रविष्टः सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च ।
कालेन महता तस्माद् वभूव वसुधा मुने ॥१३॥
प्रत्येकं प्रतिलोम्नाञ्च रूपेषु सा स्थितास्थिरा ।
आविर्भूता तिरोभूता सचलाचपुनःपुनः ॥१४॥

शुद्ध और तेज से सन्तुष्ट होने वाले वे दोनों विष्णु से बोले—आप दोनों का त्याग मत करो जहाँ यह पृथ्वी जल से संवृत है। उन दोनों जीवन काल में यह स्फुटतया प्रत्यक्ष हो जायगी। फिर इसके अनन्तर ० दोनों का मरण के पश्चात मेद हुआ था ॥८-९॥ इसी कारण से यह मे इस नाम से विख्यात हुई है—यह कहकर जिनके द्वारा यह मत हुआ, उ श्रवण करो। क्योंकि जो पहले भेद से वर्द्धित थी वह जल से धौत हो कृश हो गई थी ।१०। जब मैं उसका सार्थक और सर्व समस्त जन्म कहता जोकि मैंने पहिले श्रवण किया था—श्रुति (वेद) में जो कहा गया और धर्म के मुँह से पुष्कर में इसका श्रवण किया था ॥११॥ जल में यह महा विराट वहुत अधिक समय तक स्थित रहा तो कालविक्रय के का॰ से निश्चय समस्त अङ्ग मे व्यापक वहुत अधिक मल हो गया था ॥१२ वह मल उसके समस्त लामों के विवरों मे प्रवेश कर गया था। हे मुने जब वहुत अधिक काल हो गया तो उसी से यह वसुधा हो गई थी ॥१३ प्रति लोमों की प्रत्येक रूपों में स्थित वह स्थिर हो गई थी वह आवि (प्रकट) और तिरोभूत (छिपी हुई) और सचल वार-वार हो गई थी ॥१४

आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलात् पर्य्युपस्थिता ।
प्रलयेचतिरोभूताजलाभ्यन्तरवस्थिता ॥१५॥
प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता ।
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपमिता सती ॥१६॥
हिमाद्रिमरुसयुक्ता ग्रहचन्द्रार्कसंयुता ।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तथानया ॥१७॥

पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता ।
काञ्चनीभूमिसंयुक्ता सर्वदुर्गसमन्विता ॥१८॥
पातालाः सप्त तदधस्तदूर्ध्वं ब्रह्मलोककः ।
ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वविश्वञ्च तत्र वै ॥१९॥
एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि वै ।
ऊर्ध्वे गोलोकवैकुण्ठौ नित्यौ विश्वपरौ च तौ ॥२०॥
नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि च ।
प्रलये प्राकृते ब्रह्मन् ब्रह्मणश्च निपातने ॥२१॥

सृष्टि के समय में उस जल से आविर्भूत होकर पर्युपस्थित हुई थी और प्रलय के काल जल के अन्दर अवस्थित होकर यह पृथिवी तिरोभूत हो गई थी ॥१५॥ प्रत्येक विश्व में यह पृथ्वी पर्वतों और वनों से युक्त होती है और सात समुद्रों से समन्वित और सात द्वीपों के सहित सती होती है ॥१६॥ इस भूमि में हिमवान् और मेरु पर्वत हैं तथा चन्द्र सूर्य आदि ग्रहों से संयुत यह होती है। इसके साथ ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि सुरगण तथा लोक भी होते हैं ॥१७॥ यह वसुन्धरा पुण्य तीर्थों से समायुक्त थी और इसमें परम पवित्र भारत देश भी था। यह काञ्चनी भूमि से संयुक्त थी और समस्त दुर्गों से परिपूर्ण है ॥१८॥ इस भूमि के अधो भाग में सात पाताल हैं और ऊर्ध्व भाग में ब्रह्मलोक ध्रुवलोक और वहीं पर ही सर्व विश्व है ॥१९॥ इस प्रकार से सम्पूर्ण विश्व इस पृथ्वी में निर्मित हैं। ऊपर गोलोक और वैकुण्ठ लोक हैं जो नित्य हैं और वे दोनों विश्व पर हैं ॥२०॥ समस्त विश्व नश्वर (नाशवान्) और कृत्रिम होते हैं। हे ब्रह्मन्! जिस समय में ब्रह्मा का निपातन होता है और प्राकृत प्रलय होता है उस समय ये सभी विश्व भी नष्ट हो जाया करते हैं ॥२१॥

महाविराडादिसृष्टौ सृष्टा कृष्णेन चात्मना ।
नित्ये स्थिता च प्रलये काष्ठाकाशेश्वरैः सह ॥२२॥
क्षित्यधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजितासुरैः ।
मनुभिर्मुनिभिर्विप्रैर्गन्धर्वादिभिरेव च ॥२३॥

विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसम्मता ।
तत्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयः सुयशा मङ्गलात्मजः ।।२४।।
पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही ।
वाराहेण च वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती ।।२५।।
तस्याः पूजाविधानञ्चाप्यधश्चोद्धरणक्रमम् ।
मंगलं मङ्गलस्यापि जन्म व्यासं वद प्रभो ।।२६।।
वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा ।
उद्धार महीं हत्वा हिरण्याक्ष रसातलात् ।।२७।।
जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथार्णवे ।
तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा सर्वविश्वं मनोहरम् ।।२८।।

आदि सृष्टि में परमात्मा कृष्ण ने महा विराट् का सृजन किया था। जब प्रलय का समय होता है, उस समय नित्य वह दिशा-आकाश और ईश्वर के साथ स्थित रहता है ।।२२।। पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी सुरों के द्वारा वाराह में वह पूजित हुई थी और मनुओं के द्वारा-मुनियों से-विप्रों के द्वारा और गन्धर्व आदि के द्वारा भी पूजित होती है ।।२३।। वह वराहरूप वाले विष्णु की पत्नी है जोकि श्रुति से सम्मत है। उसका पुत्र सुयश वाला मङ्गल स्मन मंगल जानने के योग्य है ।।२४।। देवर्षि नारद ने ने कहा—वाराह कल्प में यह मही देवों के द्वारा किस रूप से पूजी गई है और वाराह के द्वारा सबके साथ वारा ही पूजी गई थी जो कि सती सबका आश्रय है ।।२५।। हे प्रभो ! उसकी पूजा का विधान और नीचे का उद्धरण क्रम तथा मंगल का मगल जन्म भी विस्तार पूर्वक कहिये ।।२६।। नारायण ने कहा—पहिले समय में ब्रह्मा के द्वारा वाराह में वराह का स्तवन किया गया था और उसने हिरण्याक्ष का वध करके रसातल से इस मही का उद्धार किया था ।।२७।। फिर उस पृथ्वी को पद्म पत्र की भाँति सागर पर स्थापित कर दिया था। वहाँ पर ही ब्रह्मा ने मनोहर सर्व विश्व का निर्माण किया था ।।२८।।

सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता शुभम् ।
मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च मानवादिभिः ॥३५॥
अम्बुवाचित्यागदिने गृहारम्भप्रवेशने ।
वापीतड़ागारम्भे च गृहे च कृपिकर्मणि ॥३६॥
तव पूजां करिष्यन्ति मद्वरेण सुरादयः ।
मूढ़ा ये न करिष्यन्ति यास्यन्ति नरकञ्च ते ॥३७॥
वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया ।
लीलामात्रेण भगवन् विश्वञ्च सचराचरम् ॥३८॥
मुक्तां शुक्तिं हरेरर्च्यां शिवलिङ्गं शिलान्तथा ।
शङ्खं प्रदीपं रत्नञ्च माणिक्यंहीरकंमणिम् ॥३९॥
यज्ञसूत्रञ्च पुष्पञ्च पुस्तकं तुलसीदलम् ।
जपमालां पुष्पमालां कर्पूरञ्च सुवर्णकम् ॥४०॥
गोरोचनां चन्दनञ्च शालग्रामजलन्तथा ।
एतान् वोढुमशक्ताहं क्लिष्टा च भगवन् शृणु ॥४१॥

हे शुभे ! सब मुनि-मनु-देव-सिद्ध और मानव आदि के द्वारा शुभ पूर्वक भली भाँति समर्चित की हुई तुम अब सबका आधार हो जाओ ॥३५॥ यहाँ से आगे सुर आदि सब अम्बुवाचि त्याग दिन में, गृहारम्भ में, गृह प्रवेश में, वापी और तड़ाग के आरम्भ में, गृह में और कृषि के काम में सर्वत्र मेरे वरदान से तेरी पूजा किया करेंगे । जो मूढ़ तेरी पूजा भ्रम-मद वश किसी भी कारण से नहीं करेंगे वे निश्चय ही नरक में जायेंगे ॥३६-३७॥ वसुधा ने कहा—मैं आपकी आज्ञा से वाराह रूप सब का वहन न करूँगी। हे भगवन् ! मैं लीला मात्र से ही सचराचर विश्व का वहन करूँगी ॥३८॥ मुक्ता-शुक्ति जोकि हरि की अर्चना के योग्य हैं, शिवलिंग-शिला-शङ्ख-प्रदीप-रत्न-माणिक्य-हीरा-मणि - यज्ञ सूत्र - पुष्प - पुस्तक - तुलसी दल-जयमाला-पुष्पमाला - कर्पूर-सुवर्ण - गोरोचना-चन्दन-शालग्राम जल इन सबके वहन करने में असमर्थ हूँ । हे भगवान ! मैं क्लेश से युक्त सबके वहन करने से होऊँगी । यह मेरी प्रार्थना आप श्रवण करें ॥३९-४१॥

द्रव्याण्येतानि ये मूढा अर्पयिष्यन्ति सुन्दरि।
ते यास्यन्तिकालसूत्रदिव्यंवर्षशत त्वयि ॥४२॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च नारद।
बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मङ्गलग्रहः ॥४३॥
पूजाञ्चक्रु. पृथिव्याश्च ते सर्वे चाज्ञया हरे ।
काण्वशाखोक्तध्यानेन तुष्टुवुः स्तवनेन च ॥४४॥
दद्युर्मूलेन मन्त्रेण नैवेद्यादिकमेव च।
सस्तुता त्रिपु लोकेपु पूजिता सा बभूव ह ॥४५॥
किं ध्यान स्तवन किं वा तस्य मूलञ्च किं वद ।
गूढ सर्वपुराणेपु श्रोतुं कौतूहल मम ॥४६॥
आदौ च पृथिवी देवी वराहेण च पूजिता।
ततो हि ब्रह्मणा पश्चात् ततश्च पृथुना पुरा ॥४७॥
तत. सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्नारदादिभिः।
ध्यानञ्च स्तवन मन्त्र शृणु वक्ष्यामि नारद ॥४८॥
ओं ह्रीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहा।
इत्यनेन मन्त्रेण पूजिता विष्णुना पुरा ॥४९॥

श्री भगवान् ने कहा—हे सुन्दरि ! जो मूढ इन द्रव्यो को तुझ मे अर्पित करेंगे, वे कालसूत्र नामक नरक में दिव्य सौ वर्ष तक जाकर पतित होगें ॥४२॥ हे नारद ! इस प्रकार से यह कह कर भगवान विराम को प्राप्त हो गये थे। उस गर्भ से तेजस्वी मगल नाम धारी गृह हुआ था ॥४३॥ हरि की आज्ञा से उन सब ने पृथिवी की पूजा की थी। कण्वशाखा मे कहे हुये ध्यान से और स्तव से स्तुति की थी ॥४४॥ मूल मन्त्र के द्वारा नैवेद्य आदि का समर्पण किया था। इस प्रकार से तीनों लोको मे वह संस्तुत और पूजित हुई थी ॥४५॥ नारद ऋषि ने कहा—उसका ध्यान क्या है और स्तवन तथा मूल मन्त्र क्या है ? यह समस्त पुराणो मे अत्यन्त गूढ है। इसलिये इसके श्रवण करने का मुझे हृदय मे कौतूहल हो रहा है। कृपाकर आप इसे बतलाइये ॥४६॥ नारायण ने कहा—आदि मे इस

पृथिवी देवी की वराह ने पूजा की थी। इसके पश्चात् ब्रह्मा के द्वारा पृथ्वी का पूजन किया गया था और उसके बाद पहिले पृथु ने इसका अर्चन किया था ।।४७।। इसके अनन्तर समस्त मुनीन्द्र-मनु-और नारद आदि के द्वारा पृथ्वी की अर्चना की गई थी। हे नारद ! उसका ध्यान-स्तवन और मन्त्र को मैं तुमसे कहता हूँ। तुम इसका श्रवण करो ।।४८।। पहिले विष्णु ने—"ॐ ह्रीं श्रीं वांव सुधायै स्वाहा"—इस मन्त्र से पृथ्वी का पूजन किया था ।।४९।।

श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् ।
चन्दनोक्षिप्तसर्वांगीं सर्वभूषणभूषिताम् ।।५०।।
रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम् ।
वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वन्दितां भजे ।।५१।।
ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैश्च पूजिता भवेत् ।
स्तवनं शृणु विप्रेन्द्र काण्वशाखोक्तमेवच ।।५२।।
यज्ञशूकरजाया च जयं देहि जयावहे ।
जये जये जयाधारे जयशीले जयप्रदे ।।५३।।
सर्वाधारे सर्वबीजे सर्वशक्तिसमन्विते ।
सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे ।।५४।।
सर्वशस्यालये सर्वशस्याढ्ये सर्वशस्यदे ।
सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यात्मिके भवे ।।५५।।
मंगले मंगलाधारे मंगल्यमंगलप्रदे ।
मंगलार्थे मंगलांशे मंगलं देहि मे भवे ।।५६।।
भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे ।।
भूमिप हङ्कारूपे भूमिं देहि च भूमिद ।।५७।।
इदं स्तोत्रंमहापुण्यं तां संपूज्यच यः पठेत् ।
कोटि कोटि जन्मजन्मसभवेद्भूमिपेश्वरः ।।५८।।
भूमिदानकृतं पुण्यं लभते पठनाज्जनः ।
भूमिदानहरात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः ।।५९।।

भूमौ वीर्य्यत्यागपापाद् भूमौ दीपादिस्थापनात् ।
पापेनमुच्यते प्राज्ञ.स्तोत्रस्य पठनान्मुने ॥६०॥
अश्वमेधशत पुण्य लभते नात्र सशयः ॥६१॥

पृथ्वी का ध्यान इस प्रकार से किया जाता है कि वह श्वेत चम्पक के पुष्प के वर्ण के समान आभा वाली है—सैकडो चन्द्रो की आभा के समान आभावाली हैं—चन्दन से उल्लिप्त समस्त अगो वाली है । समस्त भूषणो से भूषित है ॥५०॥ रत्नो के आधार वाली, गर्भ (मध्य) मे रत्न रखने वाली, रत्नो के आकर (समुद्र) से समन्वित, वह्नि के समान वस्त्र परिधान वाली, मन्द मुस्कान से युक्त और वन्दित का मैं भजन करता हूँ ॥५१॥ इस प्रकार के ध्यान से वह देवी सबके द्वारा पूजित होती है । हे विप्रेन्द्र ! अब कण्वशाखा मे कहे हुये पृथ्वी देवी के स्तवन का तुम श्रवण करो जिसे मैं तुम से कहता हूँ ॥ ५२ ॥ विष्णु ने कहा—यज्ञ सूकर की जाया तुम हो । हे जाया वहे ! आप जय प्रदान करो । हे जये ! हे जये ! हे जय के आधार रूप वाली ! हे जय के शील स्वभाव वाली ! हे जय के प्रदान करने वाली ! हे सब की आधार स्वरूप वाली ! हे वीज रूपिणि ! आप समस्त प्रकार की शक्तियो से समन्वित हैं । समस्त कामनाओ को देने वाली हैं । हे भवे ! हे देवि ! मेरा समस्त अभीष्ट मुझे प्रदान करो ॥५३-५४॥ आप समस्त शस्यो की आलय है और सब शस्यो से युक्त हैं तथा सम्पूर्ण शस्यो के प्रदान करने वाली हैं । काल मे सब शस्यों का हरण करने वाली है । हे भवे ! आप समस्त शस्यो के स्वरूप वाली हैं ॥५५॥ आप मगलमयी है, मगलो की आधार हैं और मगल तथा मगलो के प्रदान करने वाली हैं । मगलार्थ रूपिणी - मगलाश से युक्त हे भवे ! मुझे आप मगल दो । ५६॥ हे भूमे ! आप भूमि के पालन करने वालों की सर्वस्व हैं और भूमि पालो की परायणा हैं । आप भूमिप (नृपो) के अहङ्कार रूप वाली हैं । हे भूमिदे ! आप मुझे भूमि देवें ॥५७॥ यह स्तोत्र महान् पुण्य है । उस पृथ्वी देवी का पूजन करके जो इस स्तोत्र का पाठ करता है वह करोडो जन्मो मे भूमिपेश्वर होता है ॥५८॥ भूमिदान से जो पुण्य प्राप्त

होता है वैसा ही पुण्य मनुष्य इस स्तोत्र के पाठ से प्राप्त किया करता है। भूमि के दान का हरण करने से जो पाप होता है उससे वह इसके पाठ करने से मुक्त हो जाता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥५६॥ जो भूमि में वीर्य के त्याग करने से पाप होता है उससे भूमि में दीपादि के स्थापन से उस पाप से मुक्त होता है और हे मुने ! प्राज्ञ पुरुष इस स्तोत्र के पाठ करने से भी मुक्त हो जाता है ॥६०॥ इस स्तोत्र के पाठ करने से मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञ के पुण्य को प्राप्त करता है, इस में कुछ भी संशय नहीं है ॥६१॥

१८—गङ्गोपाख्यानम् ।

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानं अतीवसुमनोहरम् ।
गंगोपाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥१॥
भारतं भारतीशापाजगाम सुरेश्वरी ।
विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदीसती ॥२॥
कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा ।
तत्क्रमंश्रोतुमिच्छामिपापघ्नंपुण्यदंशुभम् ॥३॥
राजराजेश्वरः श्रीमान् सगरः सूर्य्यवंशजः ।
तस्य भार्य्या च वैदर्भीशैव्याचद्वेमनोहरे ॥४॥
सत्यस्वरूपः सत्येष्टः सत्यवाक् सत्यभावनः ।
सत्यधर्मविचारज्ञः परं सत्ययुगोद्भव ॥५॥
एककन्या चैकपुत्रो बभूव सुमनोहरः ।
असमञ्जा इति ख्यातः शैव्यायां कुलवर्द्धनः ॥६॥
अन्या चाराधयामास शङ्करं पुत्रकामुकी ।
बभूव गर्भस्तस्याश्च शिवस्य च वरेण च ॥७॥

इस अध्याय में गंगा भागीरथी के उपाख्यान का निरूपण किया जाता है। देवर्षि नारद ने कहा—मैंने पृथिवी का उपाख्यान भली भाँति से सुन लिया है जोकि अतीव सुमनोहर है। हे वेदों के वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ! अब आप गंगा का उपाख्यान मुझे बताइये ॥१॥ यह सुरेश्वरी देवी भारत में भारती के शाप से आई थी जोकि विष्णु के स्वरूप वाली स्वयं परमा और सती विष्णु पदी है ॥२॥ पहिले किस युग में किस प्रकार से किसके द्वारा इसकी प्रार्थना की गई थी और किससे इसने प्रेरणा प्राप्त की थी? मैं अब उसी क्रम को श्रवण करना चाहता हूँ जोकि पापों का नाशक और शुभ एवं पुण्य का प्रदान करने वाला है॥३॥ नारायण ने कहा—राजाओं का भी राजा सूर्य वंश में समुत्पन्न श्रीमान् सागर एक राजा थे। उसकी शैब्या और वैदर्भी नाम वाली दो परम सुन्दरी भार्यायें थीं ॥४॥ यह सत्य के स्वरूप वाला-सत्य के इष्ट वाला सत्य बोलने वाला-सत्य भावना से युक्त-सत्य धर्म के विचारों का ज्ञाता और सत्य युग में जन्म ग्रहण करने वाले थे ॥५॥ इसके एक कन्या और एक परम सुन्दर पुत्र हुआ था। यह कुल के वर्धन करने वाला शैब्या से उत्पन्न हुआ था और असमञ्जा इस नाम से प्रसिद्ध था ॥६॥ दूसरी जो भार्या थी वह पुत्र के प्राप्त करने की इच्छा वाली होकर शङ्कर की आराधना करने लगी थी। उसके शिव के वरदान से गर्भ हुआ था ॥७॥

गते शताब्दे पूर्णे च मासपिण्डं सुषाव सा।
तद्दृष्ट्वा च शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥८॥
शम्भुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह।
चकार स विभज्यैतत् पिण्डं षष्टिसहस्रधा ॥९॥
सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभायुष्टकलेवराः ॥१०॥
कपिलस्य कोपदृष्ट्या बभूवुर्भस्मसाच्च ते।
राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम मरणं शुचा ॥११॥

तपश्चकारासमञ्जा गङ्गानयनकारणम् ।
तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१२॥
दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणम् ।
तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययौ लोकान्तरं नृपः ॥१३॥
अंशुमांस्तस्य पुत्रश्च गङ्गानयनकारणम् ।
तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१४॥

एक सौ वर्ष पूरे समाप्त हो जाने पर इसने एक मांस के पिण्ड को प्रसूत किया था। उसे देख कर इसने शिव का ध्यान किया और यह बार-बार ऊँचे स्वर से रुदन करने लगी थी ॥८॥ उस समय भगवान शम्भु एक ब्राह्मण के रूप में उसके पास गये थे। उसने इस पिण्ड का संविभाजन कर साठ हजार खण्ड कर दिये थे ॥९॥ वे सब खण्ड महान बल और पराक्रम वाले पुत्र हो गये थे। जिनके शरीर ग्रीष्म काल के मध्याह्न समय के सूर्य के प्रभा से समान प्रभा से युक्त थे ॥१०॥ वे सभी पुत्र कपिल ऋषि की कोप की दृष्टि से भस्मसात हो गये थे। यह सुनकर राजा ने रुदन किया था और इनके शोक से मरण को प्राप्त हो गया था ॥११॥ फिर असमञ्जा ने गंगा के यहाँ लाने के कारण तपस्या की थी। उसने एक लाख वर्ष तक तप किया था और अन्त में काल के योग से वह मरण को प्राप्त हो गया था ॥१२॥ उसका पुत्र दिलीप हुआ था। उसने भी गङ्गा को लाने के निमित्त तपस्या एक लाख वर्ष तक की थी। वह भी राजा अन्त में विफल ही रहकर लोकान्तर में चला गया था ॥१३॥ फिर इसका पुत्र अंशुमान नाम वाला हुआ था। इसने भी गंगा के यहाँ लाने के लिये एक लाख वर्ष तक तप किया था और अन्त में काल के योग से वह मर गया था ॥१४॥

भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः ।
वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥१५॥
तपः कृत्वा लक्षवर्षं गंगानयनकारणम् ।
ददर्श कृष्णं हृष्टास्यं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥१६॥

द्विभुज मुरलीहस्त किशोरगोपवेशकम् ।
परमात्मानमीशञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१७॥
स्वेच्छामय पर ब्रह्म परिपूर्णतम विभुम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुत मुनिगणैर्युतम् ॥१८॥
निर्लिप्त साक्षिरूपञ्च निर्गुण प्रकृते परम् ।
ईषद्धास्य प्रसन्नास्य भक्तानुग्रहकारकम् ॥१९॥
वह्निशुद्धांशुकाधान रत्नभूषणभूषितम् ॥२०॥
तुष्टाव दृष्ट्वा नृपति प्रणम्य च पुन पुन ।
लीलया च वर प्राप्यवाञ्छितवशतारणम् ॥२१॥

इसका पुत्र फिर भगीरथ हुआ था । यह पुत्र महान भागवत और सुधी था । यह वैष्णव - विष्णु का भक्त गुणवान और अजरामर था ॥१५॥ इसने भी एक लाख वर्ष तक बडा उग्र तप किया था कि गगा को इस लोक म लाया जावे । इस ने परम प्रसन्न मुख वाले और करोड सूर्य क समान प्रभा से युक्त श्रीकृष्ण को देखा था ॥१६॥ श्रीकृष्ण का स्वरूप दो भुजाओं वाला—मुरली हाथ म धारण करने वाला, किशोर अवस्था से युक्त, गोप वेशधारी, परमात्मा, ईश, अपने भक्त जना पर अनुग्रह करने वाला था । उनके स्वच्छा मय पर ब्रह्म-परिपूर्णतम-विभु ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि के द्वारा स्तुत और मुनिगण से समन्वित स्वरूप का दर्शन किया था । सबसे निर्लिप्त - साक्षि रूप - निर्गुण - प्रकृति से पर-मन्द हास्य वाले-प्रसन्न मुख भक्तो पर अनुग्रह करने वाले, अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र का परिधान ग्रहण करने वाले और रत्नो के भूषणों से विभूषित श्रीकृष्ण का दर्शन कर के राजा ने उनको बार बार प्रणाम किया और उनकी स्तुति की थी । लीला से परम श्रेष्ठ को प्राप्त कर वश के तारण करने वाले उन अभीष्ट देव का दर्शन किया था ॥१६ २१॥

तत्राजगाम गगा सा स्मरणात् परमात्मन. ।
त प्रणम्यप्रतस्थौचतत् पुर मपुटाञ्जलि ॥२२॥

उवाच भगवांस्तत्र तां दृष्ट्वा सुमनोहराम् ।
कुर्वती स्तवनं दिव्यं पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥२३॥
भारतं भारतीशापात् गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि ।
सगरस्यसुतान्सर्वान्पूतान्कुरुममाज्ञया ॥२४॥
तत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्तिममन्दिरम् ।
विभ्रतो दिव्यमूर्त्तिन्तेदिव्यस्यन्दनगामिनः ॥२५॥
मत्पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः ।
समुच्छिद्यकर्म भोगंकृतंजन्मनि जन्मनि ॥२६॥
कोटिजन्मार्जितं पापं भारते यत् कृतं नृणाम् ।
गंगायाःस्पर्शवातेनतन्नश्यतिश्रुतौश्रुतम् ॥२७॥
स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः ।
मौषलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम् ।
शतकोटिजन्मपापं नश्यतीतिश्रुतौ श्रुतम् ॥२८॥

उस समय परमात्मा के स्मरण करने से गङ्गा वहाँ पर आ गई थीं और उसने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया था तथा उनके आगे करबद्ध होकर स्थित हो गई थी ॥२२॥ उस परम मनोहर स्वरूप वाली को देखकर भगवान ने उससे कहा था जो दिव्य पुरुष की स्तुति कर रही थी और पुलकों से अञ्चित शरीर वाली थीं ॥२३॥ श्रीकृष्ण बोले—हे सुरेश्वरि ! तुम भारती के शाप से शीघ्र ही भारत में चली जाओ। मेरी आज्ञा से समस्त राजा सगर के पुत्रों को पवित्र कर दो ॥२४॥ तेरे स्पर्श की हुई वायु से वे पवित्र होकर फिर मन्दिर में चले जायेंगे। वे तेरे स्पर्श मात्र से ही दिव्य मूर्त्ति धारण कर दिव्य स्पन्दन (रथ) के द्वारा गमन करने वाले होंगे ॥२५॥ इसके अनन्तर वे पार्षद होंगे जो सदा निरामय होकर रहेंगे। अपने जन्मों में किये हुये जो कर्मों के भोग हैं उनका सबका वे उच्छेदन कर देंगे ॥२६॥ भारत में करोड़ों जन्मों में जो पाप मनुष्यों के किये हुये हैं वे सम्पूर्ण गंगा के स्पर्श वाली वायू से ही नष्ट हो जाया करते हैं–ऐसा श्रुति (वेद) में सुना गया है। स्पर्शन और दर्शन से देवी का दश गुना पुण्य होता है ॥२७॥

साधारण दिन मे मनुष्यो के मौषल स्नान मात्र से ही सौ करोड जन्मो म किये हुये पाप नष्ट हो जाया करते हैं ऐसा श्रुति प्रतिपादित सुना गया है ॥२८॥

अन्न विष्टा जल मूत्र यद्विष्णोरनिवेदितम् ।
वष्णवाश्च न खादन्तिनैवद्यभाजिन सदा ॥२९॥
विष्णोर्निवेदितान्नञ्च नित्य ये भुञ्जते नरा ।
पूतानि सर्वतीर्थानि तेपाञ्च स्पर्शनादहो ॥३०॥
विष्णो पादोदक पुण्य नित्य ये भुञ्जत नरा ।
तपा सन्दर्शनमात्रण पूतञ्च भुवनत्रयम् ॥
विष्णो सुदर्शन चक्र शतत ताश्च रक्षति ॥३१॥
यामि चेद्भारत नाथ भारतीशापत पुरा ।
तवाज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव साम्प्रतम् ॥३२॥
दास्यन्ति पापिनो मह्य पापानि यानि कानि च ।
तानिमेकेननश्यन्तितदुपायवदप्रभो ॥३३॥
कतिकाल परिमित स्थितिमे तत्र भारते ।
कदा यास्यामि सर्वेश तद्विष्णो परमापदम ॥३४॥
ममान्यद्वाञ्छित यद् यत् सर्वजानासिसववित् ।
सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञतदुपायवदप्रभो ॥३५॥

जो अन्न और जल भगवान विष्णु को निवेदित नही किया गया है वह विष्ठा और मूत्र के समान होता है, उसे वैष्णव जन नही खाते हैं क्योकि वे तो सदा निवेदित किये हुये ही का भोजन करने वाले है ॥२९॥ जो मनुष्य नित्य ही विष्णु को निवेदित किय हुए अन्न को खाते है उनक स्पर्शन से ही समस्त तीथ पुत हो जाते हैं ॥३०॥ जो मनुष्य विष्णु कपादोदक को नित्य पीते हैं, उससे परम पुण्य होता है । उन पुरुषा के दर्शन मात्र से ही तीनो भुवन पवित्र हो जाया करते हैं ॥३१॥ गगा ने कहा—हे नाथ ! मैं यदि भारत मे जाती हूँ जोकि भारती का पहिले शाप था उसके कारण से मुझे जाना ही है । और इसम आपकी आज्ञा है उसका भी पालन करना

आवश्यक है और इस समय राजेन्द्र की तपस्या से भी वहां जाना है किन्तु वहाँ पर पापी लोग मुझे जो भी कोई पापों को देंगे वे पाप मेरे कैसे नष्ट होंगे ? हे प्रभो । इसका भी कृपाकर कोई उपाय मुझे बता दीजिये ॥३२-३३॥ मेरी भारत में कितने समय तक स्थिति रहेगी और फिर वहाँ से मैं किस समय पुनः विष्णु के परम पद को प्राप्त करूँगी ? ॥३४॥ मेरा जो भी कुछ अन्य इच्छित मनोरथ है उसे आप सर्वज्ञ सभी जानते हैं। आप तो सबके अन्तरात्मा में स्थित रहने वाले हैं और सर्वज्ञ हैं। हे प्रभो ! इस उपाय को भी बताने की कृपा करें ॥३५॥

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि ।
पतिस्ते रुद्ररूपोऽयं लवणोदो भविष्यति ॥३६॥
ममैवांशसमुद्रश्च त्वञ्च लक्ष्मीस्वरूपिणी :
विदग्धायाविदग्धेनसङ्गमो गुणवान् भुवि ॥३७॥
यावत्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते ।
सौभाग्यं तव तास्वेव लवणोदस्य सौरते ॥३८॥
अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम् ।
वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥३९॥
नित्यं वारिणिविना सार्द्धं करिष्यसिरहोरतिम् ।
त्वमेवरसिकादेवीरसिकेन्द्रेणसयुता ॥४०॥
त्वां स्तोष्यन्ति च स्तोत्रेणभगीरथकृतेन च ।
भारतस्थाजना.सर्वेपूजयिष्यन्तिभक्तितः ॥४१॥
कौथुमोक्तेनध्यानेनध्यात्वात्वांपूजयिष्यति ।
यःस्तौतिप्रणमेन्नित्यंसोऽश्वमेधफलंलभेत् ॥४२॥
गंगागंगेति यो ब्रूयात् योजनानांशतैरपि ।
मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकंसगच्छति ॥४३॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे गंगे ! हे सुरेश्वरि ! मैं तेरे समस्त वाञ्छित को जानता हूँ । यह तेरा पति रुद्र रूप लवणोद हो जायगा । यह समुद्र

भी मेरा ही अंश है और तू लक्ष्मी के स्वरूप वाली है। विदग्धा के साथ भूमितल में सप्तम गुण वाला होता है ।।३६-३७।। भारत में भारती आदि जितनी भी नदियाँ हैं उन सब में लवणोद के सौरत में तेरा ही सौभाग्य है ।।३८।। आज से लेकर हे देवर्षि ! कलि युग के पाँच हजार वर्ष तक भारती के शाप से भारत की भूमि में तेरी स्थिति है ।।३९।। वर्णी विधि के साथ नित्य ही एकान्त में रति करेगी। रसि केन्द्र से संयुत तू ही रसिका रानी है।४०।। भगीरथ के द्वारा किये हुए स्तोत्र से भारत में स्थित जन सब तेरी स्तुति करेंगे और भक्ति-भाव से तेरा पूजन करेंगे ।।४१।। कौथुमोक्त ध्यान से ध्यान करके जो तेरी पूजा करेगा और नित्य प्रणाम करेगा, वह अश्वमेध यज्ञ करने के पुण्य फल का भागी होगा ।।४२।। जो 'गंगा गंगा'—इस प्रकार से सौ योजन दूर में भी तेरे शुभ नाम का उच्चारण करता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है और विष्णु लोक को अन्त में प्राप्त होता है।४३।।

केन ध्यानेन स्तोत्रेण केन पूजाक्रमेण च ।
पूजाञ्चकार नृपतिर्वद वेदविदां वर ।।४४।।
स्नात्वानित्यक्रियांकृत्वाधृत्वाधौतेचवाससी ।
सम्पूज्यदेवषट्कञ्चसंयतोभक्तिपूर्वकम् ।।४५।।
गणेशञ्चदिनेशञ्च वह्निंविष्णुं शिवं शिवाम् ।
सम्पूज्य देवषट्कञ्च सोऽधिकारीचपूजने ।।४६।।
गणेशं विघ्ननाशाय निष्पापाय दिवाकरम् ।
वह्निं स्वशुद्धये विष्णुं मुक्तये पूजयेन्नरः ।।४७।।
शिवंज्ञानाय ज्ञानेशं शिवाञ्च बुद्धिवृद्धये ।
सम्पूज्य तल्लभेत् प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्यथा ।।४८।।
दध्यावनेन तद्ध्यानं शृणु नारद तत्त्वतः ।
ध्यानञ्च कौथुमोक्तञ्च सर्वपापप्रणाशनम् ।।४९।
स्तोत्रञ्च कौथुमोक्तञ्च सवादविष्णुब्रह्मणोः ।
शृणुनारद वक्ष्यामि पापघ्नञ्चसुपुण्यदम् ।।५०।।

देवर्षि नारद ने कहा—किस ध्यान से, किस स्तोत्र से और कौनसी पूजा के क्रम से राजा ने पूजा की थी, हे वेदों के ज्ञाता विद्वानों में परम श्रेष्ठ ! इसे बताने की कृपा कीजिये ॥४४॥ श्रीनारायण बोले—स्नान करके-नित्य कर्म सम्पादन करके और धुले हुये शुद्ध दो वस्त्र धारण करके, छै देवों का प्रति संयत हो भक्तिभाव के साथ भली भाँति पूजा करे। उन छै देवों में गणेश सूर्य देव-अग्नि-विष्णु-शिव और गौरी ये होते हैं। वही इसके पूजन करने का अधिकारी होता है ॥४६॥ गणेश का पूजन विघ्नों का विनाश करने के लिये, सूर्य का यजन निष्पाप होने के लिये, अग्नि का अर्चन अपनी शुद्धि के वास्ते और भगवान विष्णु की पूजा मुक्ति प्राप्त करने के लिये मनुष्य को अर्चना करनी चाहिये ॥४७॥ ज्ञान के ईश शिव का पूजन ज्ञान प्राप्त करने के लिये करे। प्राज्ञ पुरुष इन सब की प्राप्ति किया करता है। इसके विपरीत अन्यथा अर्थात् विरुद्ध फल मिलता है ॥४८॥ हे नारद ! कौथुम के द्वारा कथित ध्यान के द्वारा इसका ध्यान किया था। उसे तत्त्व से तुम श्रवण करो। कौथुमोक्त ध्यान समस्त पापों का नाश करने वाला होता है ॥४६॥ हे नारद ! और कौथुम के द्वारा कहा हुआ स्तोत्र जोकि ब्रह्मा और विष्णु का सम्वाद है मैं उसे बताऊँगा। यह परम पुण्य का प्रदान करने वाला तथा पापों का हनन करने वाला है ॥५०।

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्प्रभो।
विष्णोः विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥५१॥
शिवसंगीतसंमुग्धश्रीकृष्णाङ्गद्रवोद्भवाम्।
राधांगद्रवसम्भूतां तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥५२॥
यज्जन्मसृष्टेरादौच गोलोके रासमण्डले।
सन्निधाने शङ्करस्य तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥५३॥
गोपैर्गोपीभिराकीर्णेशुभे राधामहोत्सवे।
कार्त्तिकीपूर्णिमाजातां तांगंगांप्रणमाम्यहम् ॥५४॥

कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः ।
समावृता या गोलोक तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥५५॥
षष्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा ।
समावृता या वैकुण्ठं तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥५६॥

श्री ब्रह्मा ने कहा—हे देवेश ! हे लक्ष्मी के कान्त ! हे जगत् के प्रभो ! विष्णु का विष्णु पदी स्तोत्र पापों का हनन करने वाला और पुण्य का कारण स्वरूप है, उसे मैं श्रवण करना चाहता हूं ।५१।। श्री नारायण ने कहा—शिव के सङ्गीत से भली भांति मुग्ध हो जाने वाले श्रीकृष्ण के अङ्ग से जो द्रव हुआ उससे जन्म ग्रहण करने वाली और राधा के अङ्ग द्रव से उद्भूत उस गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूं ।५२। जो जन्म की सृष्टि के आदि मे गोलोक मे रासमण्डल म और शङ्कर के सन्निधान में स्थित थी उस गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ ।।५३।। गोपों गोपियों के द्वारा आकीर्ण एवं शुभ रास मण्डल म राधा के महोत्सव म कीर्ति की पूर्णिमा समुत्पन्न उस गङ्गा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ।।५४।। जो एक करोड़ योजन के विस्तार वाली है और दीर्घता मे एक लाख गुनी है और जो *गोलोक में समावृत है उस गङ्गा देवी को प्रणाम करता हूँ ।।५५।* जो साठ लाख योजन वाली है और इसके आगे दीर्घता मे चतुर्गुणा है तथा वैकुण्ठ में *समावृत है, उस गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ ।।५६।।*

त्रिंशल्लक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा ।
आवृता ब्रह्मलोक या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥५७॥
त्रिलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः ।
आवृता शिवलोक या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥५८॥
षड्योजनविस्तीर्णा या दैर्घ्ये दशगुणा ततः ।
मन्दाकिनी यैन्द्रलोकतां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥५९॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः ।
आवृता ध्रुवलोक या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥६०॥

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये षड्गुणा ततः ।
आवृता चन्द्रलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥६१॥
षष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः ।
आवृता सूर्यलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥६२॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्येचषड्गुणा ततः ।
आवृता सत्यलोकं या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥६३॥
दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः ।
आवृता या तपोलोकं तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥६४॥

जो फिर बीस लाख योजन के विस्तार वाली है और दीर्घता में उससे भी पचगुनी है तथा शिवलोक को समावृत किये हुये है, उस गंगा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥५७-५८॥ जो छै योजन वाली है और दीर्घता में दश गुनी है तथा इन्द्र लोक में मन्दाकिनी नाम वाली है, उस गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ ॥५९॥ जो एक लाख योजन विस्तार वाली और दीर्घता में सतगुनी है तथा ध्रुव लोक को आवृत करने वाली है, उस गंगा को मैं प्रणाम करता हूं ॥६०॥ जो एक लाख योजनों के विस्तार से युक्त है और दीर्घता में षड्गुणा है एवं चन्द्र लोक को आवृत करने वाली है उस गंगा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६१॥ जो देवी साठ हजार योजन के विस्तार से समन्वित है एवं दीर्घता में दशगुनी है तथा सूर्य लोक को आवृत करने वाली है, उस गंगा को प्रणाम करता हूँ ॥६२॥ जो एक लाख योजन के विस्तार से संयुत एवं दीर्घता में छै गुणी है और सत्य लोक को आवृत करने वाली है, उस गंगा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६३॥ जो देवी दश लाख योजन के विस्तार से विस्तीर्ण है और दीर्घता में पचगुनी है तथा तपोलोक को समावृत किये हुये है, उस गंगा को मैं प्रणाम करता हूं ॥६४॥

नित्यं यो हि पठेद् भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरीम् ।
अश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः ॥६५॥

अपुत्रो लभते पुत्र भार्य्याहीनोलभेत्प्रियाम् ।
रोगान्मुच्येतरोगीचबद्धोमुच्येतबन्धनात् ॥६६॥
अस्पष्टकीर्त्ति सुयशामूर्खोभवतिपण्डितः ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय गंगास्तोत्रमिदंशुभम् ॥६७॥
शुभ भवेत्त दुःस्वप्न गंगास्नानफलं लभेत् ॥६८॥
भगीरथोऽनयास्तुत्वा स्तुत्वा गंगाञ्चनारद ।
जगामतागृहीत्वाच्च यत्र नष्टाश्चसागराः ॥६९॥
वैकुण्ठे ययुस्तूर्णं गंगायाःस्पर्शवायुना ।
भगीरथेनसा नीता तेन भगीरथी स्मृता ॥७०॥

इस स्तोत्र का जो नित्य भक्ति पूर्वक सुरेश्वरी का पूजन करके पाठ किया करता है, वह नित्य ही अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥६५॥ जो पुत्र रहित है वह पुत्र की प्राप्ति करता है और भार्या से हीन पुरुष भार्या का लाभ करता है। रोग से ग्रस्त पुरुष रोग से छुटकारा पा जाया करता है और जो बन्धन बद्ध है वह उससे मुक्त हो जाता है। जिस की कीर्ति अस्पष्ट है वह सुन्दर यश वाला और मूर्ख पण्डित हो जाता है। जो प्रातः उठकर इस शुभ गंगा स्तोत्र का पाठ करता है उसका सर्व सर्वत्र शुभ ही होता है और गंगा के स्नान का फल प्राप्त कर लेता है ॥६७, ६८॥ यह गंगा स्तोत्र है जिसकी समाप्ति हो गई है। नारायण ने कहा—हे नारद ! राजा भगीरथ ने इसी स्तुति से गंगा की स्तुति की थी और उस देवी को अपने साथ लेकर वहाँ गया था जहाँ राजा सगर के साठ हजार पुत्र नष्ट हो गये थे ॥६९॥ वे सब सगर पुत्र गंगा स्पर्श से युक्त वायु के द्वारा तुरन्त ही वैकुण्ठ लोक को चले गये थे। वह देवी भगीरथ के द्वारा लाई गई थी अतएव भागीरथी—इस नाम से प्रसिद्ध हुई है ॥७०॥

१६—तुलस्युपाख्यानम् ।

नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह ।
तुलसी कुतसम्भूताकावासापर्वजन्मनि ॥१॥

कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्या तपस्विनी ।
केनवातपमासाद्यसप्रापप्रकृतेः परम् ॥२॥
मनुश्चदक्षसावर्णिःपुण्यवान्वैष्णवःशुचिः ।
यशस्वी कीर्त्तिमांश्चैवविष्णोरंशसमुद्भवः ।३॥
तत्पुत्रोधर्मसावर्णिर्धर्मिष्ठोवैष्णवःशुचिः ।
तत्पुत्रोविष्णुसावर्णिर्वैष्णवश्चजितेन्द्रियः ॥४॥
तत्पुत्रो देवसावर्णिः विष्णुव्रतपरायणः ।
तत्पुत्रोराजसावर्णिः महाविष्णुपरायणः ॥५॥
वृषध्वजश्च तत्पुत्रो वृषध्वजपरायणः ।
यस्याश्रमे स्वयं शम्भुरासीद्दैवयुगत्रयम् ॥६॥
पुत्रादपि परस्नेहो नृपे तस्मिन् शिवस्य च ।
न च नारायणम्मेनेनचलक्ष्मींसरस्वतीन् ॥७॥

इस अध्याय में तुलसी देवी के उपाख्यान का निरूपण किया जा है । देवर्षि नारद ने कहा— तुलसी साध्वी नारायण की [illegible] य कैसे ई थी यह कहाँ समुत्पन्न हुई थी और पूर्व जन्म में इसका निवास कहाँ पर था ॥१॥ यह तुलसी किसके कुल में उद्भूत हुई थी और परम तपस्विनी यह किसकी कन्या थी । इसने कौन सा ऐसा अद्भुत तप किया था जिसके प्रभाव से इसने प्रकृति से भी पर की प्राप्ति की थी ॥२॥ भगवान नारायण ने कहा——परम वैष्णव, महा पुण्य वाला और अति शुचि दक्ष सावर्णि मनु था जो बहुत ही यशस्वी-कीत्तिमान् तथा विष्णु के अंश से उत्पन्न होने वाला था ॥३॥ इस का पुत्र धर्म सावर्णि हुआ था जो परम धार्मिक-वैष्णव और शुचि था । इसका पुत्र परम वैष्णव एव जितेन्द्रिय विष्णु सावर्णि नाम वाला था ॥४॥ विष्णु सावर्णि का पुत्र विष्णु व्रत परायण देव सावर्णि हुआ था । इसका पुत्र राज सावर्णि हुआ था जो महान् विष्णु परायण हुआ था ।५। इसका पुत्र वृषध्वज हुआ । यह वृषध्वज विष्णु का परायण भक्त था जिसके आश्रम में साक्षात् स्वयं शम्भु तीन देवयुगों तक रहे थे ।६। भगवान शिव का उस राजा में पुत्र से भी अधिक स्नेह था , उस राजा ने भी नारायण-लक्ष्मी और सरस्वती किसी को भी नहीं माना था ॥७॥

पूजाञ्च सर्वदेवानां दूरीभूता चकार सः ।
भाद्रे मासि महालक्ष्मीपूजा मखोत्सवञ्च ह ॥८॥
माघे सरस्वतीपूजां दूरीभूता चकार स ।
यज्ञञ्च विष्णुपूजाञ्चनिनिन्द न चकार सः ॥९॥
न कोऽपि देवा भूपेन्द्र शशाप शिवकारणात् ।
भ्रष्टश्रीर्भव भूपेति शशाप त दिवाकर ॥१०॥
शूलं गृहीत्वा त सूर्यं दधार शङ्करः स्वयम् ।
पित्रा सार्द्धं दिनेशञ्चब्रह्माणशरणययौ ॥११॥
शिवस्त्रिशूलहस्तञ्च ब्रह्मलोक ययौ क्रुधा ।
ब्रह्मा सूर्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठञ्चययौ भिया ॥१२॥
शूल गृहीत्वा त सूर्यं दधारशङ्कर स्वयम् ।
ब्रह्मकश्यप मार्तण्डा सत्रस्ता शुष्कतालुकाः ॥१३॥
नारायणञ्च सर्वेश ते ययुः शरण भिया ।
मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवश्च पुन. पुन ॥
सर्व निवेदनञ्चक्रुर्भयस्य कारण हरे ॥१४॥

उस नृप ने समस्त देवो की पूजार्चना को दूर कर दिया था। वह यज्ञ और विष्णु की पूजा की निन्दा किया करता था और उसे कभी नही करता था ॥८-९॥ शिव के भक्त होने के कारण से किसी भी देवता ने उस राजा को शाप नही दिया था किन्तु दिवाकर (सूर्य) ने उसे शाप दे दिया था कि "हे भूप ! तू श्री से भ्रष्ट हो जा" ॥१०॥ तब तो शिव को महान् क्रोध हो गया और शूल धारण कर शङ्कर स्वय सूर्य को पकडने चल दिये थे। उस समय सूर्य पिता के साथ ब्रह्मा की शरण मे गया था ॥ ११ ॥ त्रिशूलधारी शिव क्रोध मे भरे हुये ब्रह्मलोक मे पहुँचे थे। तब ब्रह्मा ने सूर्य को आगे करके भय से वैकुण्ठ लोक को प्रस्थान किया ॥१२॥ उस समय शिव ने त्रिशूल लेकर स्वय सूर्य को पकड लिया था। ब्रह्मा-कश्यप मार्तण्ड सब सत्रस्त हो गये और सबके

तालु भाग शुष्क हो गये ॥१३॥ वे सब उस समय परम भयभीत होकर सर्वेश्वर नारायण की शरण में गये थे। उन सबने वहाँ पहुँच कर मस्तक से नारायण का प्रणाम किया था और वार-वार सब उनका स्तवन करने लगे थे और उस समय सबने भगवान् हरि से अपने भय का कारण निवेदन कर दिया था ॥१४॥

नारायणश्च कृपया तेभ्यो हि अभयं ददौ।
स्थिरा भवतहेभोताभयंकिवोमयि स्थिते। १५॥
स्मरन्ति येयत्रतत्रमांविपत्तौ भयान्विताः।
तांस्तत्रगत्वारक्षामिचक्रहस्तस्त्वरान्वितः। १६॥
पाताहं जगतां देवाः कर्त्ताहं सततं सदा।
स्रष्टाच ब्रह्मरूपेण संहर्ता शिवरूपतः ॥१७॥
शिवोऽहंत्वमहञ्चापि सूर्य्योऽहं त्रिगुणात्मकः।
विधायनानारूपञ्च करोमि सृष्टिपालनम्। १८॥
यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः।
अद्यप्रभृति वो नास्ति मद्वरात् शङ्कराद्भयम् ॥१९

भगवान नारायण ने कृपा करके उन सबको अभय प्रदान किया था। नारायण ने कहा—आप सब लोग स्थिर हो जाइये। मेरे स्थित होने पर आपको क्यों भय हो रहा है ॥१५॥ जो भी जहाँ कही पर मेरा स्मरण किया करते हैं जबकि किसी विपत्ति ने ग्रस्त होकर भय समन्वित हो जाया करते हैं तो मैं हाथ में चक्र धारण कर बड़ी शीघ्रता से युक्त हो वहीं पर जाकर उनकी रक्षा किया करता हूँ ॥१६॥ हे देवो ! मैं जगतों का सदा पालन करने वाला हूँ और ब्रह्मा के रूप में सृजन करने वाला तथा शिव के रूप में संहार करने वाला हूँ ॥१७॥ मैं शिव हूँ, मैं तू हूँ और मैं सूर्य हूँ, इस तरह त्रिगुणात्मक हूँ। मैं नाम रूपों को धारण करके सृष्टि पालन करता हूँ ॥१८॥ तुम लोग सब जाओ। आपको अब कहीं से भी भय नहीं होगा। आज से लेकर मेरे वरदान से शङ्कर से कोई भय नहीं है ॥१९॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्राजगाम शङ्करः स्वयं ।
शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपङ्कजलोचनः ॥२०॥
अवरुह्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकन्धरः
ननामभक्त्या तं शान्तं लक्ष्मीकान्तं परात्परम् ॥२१॥
रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नालङ्कारभूषितम् ।
किरीटिनं कुण्डलिनं चक्रिणं वनमालिनम् ॥२२॥
नवीननीरदश्यामं सुन्दरञ्च चतुर्भुजम् ।
चतुर्भुजैः सेवितञ्च श्वेतचामरवायुना ॥२३॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससा ।
लक्ष्मीप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तञ्च नारद ॥२४॥
विद्याधरीनृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं मुदा ।
ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥२५॥
तं ननाम महादेवो ब्रह्माणञ्च ननाम सः ।
ननाम सूर्यो भक्त्याच सन्त्रस्तश्चन्द्रशेखरम् ॥२६॥
कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव च ननाम च ।
शिवं संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने ॥२७॥

इसी बीच में वहां शङ्कर स्वयं आ गये थे जोकि त्रिशूल हाथ में लिये हुये थे, वृष पर आरूढ थे और रक्त कमल के समान नेत्र वाले थे ।२०। वृष से नीचे उतर कर भक्ति भाव से नत मस्तक हो शीघ्र ही नारायण को प्रणाम किया था जो शान्त स्वरूप, परात्पर लक्ष्मी के कान्त थे ॥२१॥ नारायण रत्नों के सिंहासन पर संस्थित थे, रत्नो के अलङ्कारो से विभूषित, किरीट धारी, कुण्डल धारण करने वाले, चक्र लिये हुये, वनमाला धारी, नूतन मेघ के समान श्याम, सुन्दर, चार भुजाओ से युक्त थे और चतुर्भुज पार्षदो के द्वारा सेवित थे जोकि श्वेत चामरो की वायु से सेवा की जारही थी ॥२२-२३॥ भगवान के शरीराङ्ग चन्दन से चर्चित थे, पीत वस्त्र से भूषित-लक्ष्मी के द्वारा दिये हुये ताम्बूल को ग्रहण करने वाले और उसे भोग करने वाले थे । हे नारद ! नारायण विद्या धारियो के द्वारा किये

हुये नृत्य एवं गान को देखने वाले-प्रसन्नता मन्द मुस्कान वाले, परमात्मा, ईश्वर और भक्तों के ऊपर अनुग्रह से युक्त विग्रह वाले थे ॥२४-२५॥ ऐसे सुन्दर स्वरूप वाले नारायण को महादेव ने प्रणाम किया और ब्रह्मा को भी प्रणाम किया था। भय से परम भीत सूर्य ने भक्ति से चन्द्र शेखर को प्रणाम किया था ॥२६॥ कश्यप ऋषि ने परम भक्ति भाव से उनको प्रणाम किया था तथा उनका स्तवन किया था। फिर शिव ने नारायण की स्तुति करके सुखासन पर अपनी स्थिति की थी ॥२७॥

सुखासनेसुखासीनं विश्रान्तं चन्द्रशेखरम् ।
श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः ॥२८॥
अक्रोधसत्त्वसंसर्गात् प्रसन्नं सस्मितंमुदा ।
स्तूयमानं पञ्चवक्त्रैः परं नारायणं विभुम् ॥२९॥
तमुवाच प्रसन्नात्मा प्रसन्नं सुरसंसदि ।
पीयूषतुल्यं मधुरं वचनं सुमनोहरम् ॥३०॥
अत्यन्तमुपहास्यञ्चशिवप्रश्नं शिवेशिवम् ।
लौकिकंवैदिकंप्रश्नं त्वांपृच्छामितथापिशम् ॥३१॥
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
सम्पत्प्रश्नं तपःप्रश्नमयोग्यं त्वाञ्च साम्प्रतम् ॥३२॥
ज्ञानाधिदेवे सर्वज्ञे ज्ञानं पृच्छामि किं वृथा ।
निरापदि विपत्प्रश्नमलं मृत्युञ्जये हरे ॥३३॥
त्वामेव वाग्धनं प्रश्नमलं स्वाश्रयमागमे ।
आगतोऽसिकथं अस्त इत्येवं वद कारणम् ॥३४॥

उस समय सुखप्रद आसन पर सुख पूर्वक संस्थित-विश्रान्त-विष्णु पार्षदों के द्वारा श्वेत चमरों की वायु से सेवित सत्व के संसर्ग से क्रोध रहित-प्रसन्न और आनन्द से मन्द मुस्कान वाले पाँच मुखों से विभु, पर नारायण की स्तुति करने वाले चन्द्र शेखर से सुरों के संसद में प्रसन्न आत्मा वाले भगवान अमृत के तुल्य मधुर-मनोहर वचन बोले थे ॥२८-३०॥ श्री भगवान् ने कहा—यह अत्यन्त ही उपहास के योग्य है कि शिव में भी शिव

शिव (कल्याण तथा मङ्गल) का प्रश्न किया जावे। तथापि आप लौकिक और वैदिक प्रश्न पूछता हूँ जो शिव है। आप तो तपो के क देने वाले और सम्पूर्ण सम्पत्तियों को प्रदान करने वाले हैं। आप समस्त सम्पत्ति का प्रश्न भी इस समय योग्य नहीं होता है ।।३१-३२।। प त ज्ञान के अधिष्ठाता देव और सर्वज्ञ हैं। अतः ज्ञान के विषय मे न भी व्यर्थ ही है। आप सदा-सर्वदा निरापद हैं अतएव मृत्यु पर जय प्त करने वाले हर के विषय म विपत् के सम्बन्ध मे प्रश्न अलभ अर्थात् । है। आप आगम मे अपना आश्रय रखने वाले हैं अतएव वागधन आप ऐसा प्रश्न भी व्यर्थ ही है। अब आप कृपया यह तो बताइये कि त्रस्त हुये कैसे यहाँ आये हैं ? इसका क्या कारण है ? ।।३३-३४।।

वृषध्वजश्च मद्भक्त मम प्राणाधिकप्रियम् ।
सूर्य्यः शशाप इतिमे कारण त्रासकोपयो ।।३५।।
पुत्रवात् ल्यशोकेन सूर्य्यं हन्तुं समुद्यत ।
स ब्रह्माण प्रपन्नश्च सनूर्य्यश्च विधिस्त्वयि ।।३६।।
त्वयि ये शरणापन्ना ध्यानेन वचसापि वा ।
निरापदस्ते निःशङ्का जरामृत्युश्च तर्जित. ।।३७।।
साक्षाद् ये शरणापन्नास्तत्फल किं वदामि भोः ।
हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदा सदा ।।३८।।
किं मे भक्तस्य भविता तन्मे ब्रूहि जगत्प्रभो ।
श्रीहतस्यास्य मूढस्य सूर्य्यशापेनहेतुना ।।३९।।

श्री महादेव ने कहा—वृषध्वज राजा मेरा परम भक्त है और वह प्राण से भी अधिक प्रिय है। उसको इस सूर्य ने शाप दे दिया है, मेरे भय और कोप का कारण है ।।३५।। पुनः वत् मेरे भक्त के वात्सल्य कारण शोक से मैं सूर्य को मारने के लिये समुद्यत हो गया हूँ। वह ब्रह्मा शरण मे आ गया है ।।३६।। आपके चरणों की जो शरण ग्रहण

कर लेते है, चाहे वाणी से या ध्यान से किसी तरह से शरणापन्न हो गये वे तो फिर निरापद हो जाया करते है और उनके द्वारा तो निश्चङ्क रूप से जरा एवं मृत्यु जीत लिये जाते हैं ॥३७॥ जो आपके चरण कमल मे साक्षात् रूप से शरणापन्न हो जावें उनके विषय में तो मै क्या कहूँ, वे तो निश्चित रूप से पूर्णतया निर्भय हो ही जाते हैं। हरि की तो स्मृति ही अभय देने वाली और सदा समस्त मंगलों की दात्री हुआ करती है ॥३८॥ अब मेरे भक्त का क्या हाल होगा। हे जगत के प्रभो! मुझे यही बता देने की कृपा करें क्योंकि इस समय सूर्य के शाप के कारण यह तो विचारा श्री हत एवं मूढ हो गया है। इसका कल्याण कैसे होगा ? ॥३९॥

कालोऽतियातो दैवेन युगानामेकविंशतिः।
वैकुण्ठे घटिकार्द्धेन शीघ्रं ययौ नृपालयम् ॥४०॥
वृषध्वजो मृतः कालाद् दुर्निवार्य्यात्।
हंसध्वजश्च तत् पुत्रो मृतःसोऽपि श्रिया हृतः ॥४१॥
तत् पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ।
हृतश्रियौ सूर्य्यशापात्तौ च परमवैष्णवौ ॥४२॥
राज्यभ्रष्टौश्रियाभ्रष्टौ कमलातापसावुभौ।
तयोश्चभार्य्ययोर्लक्ष्मीः कलयाचजनिष्यति ॥४३॥
सम्पद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः।
मृतस्ते सेवकःशम्भो गच्छयूयञ्च गच्छत ॥४४॥
इत्युक्त्वाच सलक्ष्मीकः सभातोऽभ्यन्तरं गतः।
देवाजग्मुश्च संहृष्टाः स्वाश्रमं परमंमुदा।
शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमं ययौ ॥४५॥

श्री भगवान् ने कहा—दैव के द्वारा इक्कीस युगों का काल निकल चुका है। वैकुण्ठ में आधी घड़ी से नृपालय को शीघ्र चला गया था ॥४०॥ राजा वृषध्वज काल से मर गया था क्योंकि यह काल तो दुर्निवार्य और सुदारुण होता है। उसका पुत्र हंसध्वज हुआ था वह भी श्री से हत होकर मृत हो गया था ॥४१॥ उसके दो पुत्र हुये थे जिनका नाम धर्मध्वज

प्रौर कुशध्वज था, ये महाभाग थे किन्तु ये भी शाप वश दोनो परम वैष्णव हृतश्री हो गये थे ॥४२॥ ये दोनो राज्यभ्रष्ट और श्री भ्रष्ट होकर कमला के तप करने वाले थे। उन दोनो की भार्याम्रो मे लक्ष्मी कला से जन्म लेगी ॥४३॥ उस समय वे दोनो सम्पत्ति समन्वित नृपो श्रेष्ठ होंगे। हे शम्भो ! आपका सेवक तो अब मर चुका है अतएव आप लोग चले जाइये ॥४४॥ यह कहकर लक्ष्मी पत्नी के सहित भगवान सभा से अन्दर चले गये थे। देवगण आनन्द से युक्त परम प्रसन्न होते हुये अपने आश्रमो को चले गये थे। शिव भी तप करने के लिये शीघ्र ही परिपूर्ण तप करने को चले गये थे और परिपूर्णतम को प्राप्त हो गये थे ॥४५॥

२०—वेदवत्याश्चरित्रम् ।

लक्ष्मी तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने।
वरमिष्टञ्च प्रत्येक सम्प्रापतुरभीप्सितम् ॥१॥
महालक्ष्म्या वरेणैव तौ पृथ्वीशौ बभूवतुः।
धनवन्तौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ ॥२॥
कुशध्वजस्यपत्नी च देवी मालावतीमती
सासुपावच कालेन कमलाशासुतासतीम् ॥३।
साच भूमिष्ठमात्रेण ज्ञानयुक्ता बभूव ह।
कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहे ॥४॥
वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका।
तस्मात्ताञ्च वेदवती प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५॥
जातमात्रेण सुज्ञाना जगाम तपसे वनम्।
सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा ॥६॥
एकमन्वन्तरञ्चैव पुष्करेच तपस्विनी।
अत्युग्राञ्च तपस्याञ्च लीलया च चकार सा ॥७॥

इस अध्याय मे वेदवती के चरित्र का निरूपण किया जाता है। नारायण ने कहा—हे मुने ! उन दोनो ने अत्यन्त उग्र तपस्या से लक्ष्मी की समाराधना की थी और इनमे से प्रत्येक ने अपना अभीप्सित इष्ट वरदान

प्राप्त कर लिया था ॥ १ ॥ श्री महालक्ष्मी के वरदान से उन दोनों ने पृथ्वीश के पद प्राप्त कर लिये थे। वे दोनों धन-सम्पत्ति वाले और पुत्र-पौत्र आदि वाले हो गये थे ॥२॥ कुशध्वज की पत्नी सती मालावती देवी थी। उसने समय पर कमला के अंश स्वरूपिणी सती का प्रसव किया था और वह भूमि में स्थित होने मात्र से ही ज्ञान से युक्त हो गई थी और उसने स्पष्ट वेद ध्वनि की थी और फिर सूतिका गृह में खड़ी हो गई थी ॥३-४॥ उत्पन्न होते ही जिस कन्या ने वेदों की ध्वनि की थी इसी कारण से मनीषी गण उसको वेदवती-इस नाम से कहते हैं। ५ जन्म ग्रहण करते ही वह तपस्या करने के लिये वन में चली गई थी। सबने उसका वन में जाने के लिये बड़े यत्न से निषेध किया था किन्तु वह नारायण परायण हो गई थी ॥६॥ इस प्रकार से एक मन्वन्तर पर्यन्त पुष्कर में उसने तपस्विनी रहकर तप किया था। वह तपस्या यद्यपि अत्यन्त उग्र थी किन्तु उसने लीला से ही पूर्ण की थी ॥७॥

तथापि पुष्टा न क्लिष्टा नवयौवनसंयुता।
शुश्राव खे च सहसा सा वाचमशरीरिणीम् ॥८॥
जन्मान्तरे तेभर्त्ता च भविष्यतिहरिःस्वयम्।
ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसिसुन्दरि ॥९॥
इति श्रुत्वा तु सा रुष्टा चकार चपुनस्तपः।
अतीवनिर्जनस्थाने पर्वते गन्धमादने ॥१०॥
तत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वास्य समुवाससा।
ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम् ॥११॥
दृष्ट्वा सातिथिभक्त्या चपाद्यं तस्मै ददौकिल।
सुस्वादुफलमूलञ्च जलञ्चापि सुशीतलम् ॥१२॥
तच्च भुक्त्वासपापिष्ठश्चोवास तत्समीपतः।
चकारप्रश्नमितितांकात्वं कल्याणि चेति च ॥१३॥

ऐसी उग्र तपस्या करने पर भी वह परिपुष्ट रही थी और किसी प्रकार से क्लेश युक्त नहीं हुई। नवीन यौवन से समन्वित उसने आकाश

ा सह सात्विना शरीर वाली वाणी का श्रवण किया था ॥८॥ आकाश वाणी ने कहा था कि जन्मान्तर मे हरि स्वय तेरे स्वामी होंगे । हे सुन्दरि ! तू ब्रह्मा आदि के द्वारा भी दुराराध्य पति की प्राप्ति करेगी ॥९॥ इस प्रकार की आकाश वाणी का श्रवण करके वह अत्यन्त हृष्ट हुई और उसने पुन. तप किया था। अत्यन्त निर्जन स्थान गन्धमादन पर्वत पर उसने बहुत समय तक तपस्या की थी और वहा पर ही विश्वास करके वह वास करने लगी थी । उस समय दुर्निवारण रावण को वहाँ देखा था ॥१०-११॥ उसने उसको देखकर भक्ति पूर्वक उसको पाद्य दिया था और स्वादु युक्त फल मूल तथा शीतल जल समर्पित किये थे ॥१२॥ उन्हें खाकर वह महा पापी उसके पास ही वहाँ पर रह गया था । उसने उस तपस्विनी से प्रश्न किया । हे कल्याणी ! तुम कौन हो ॥१३॥

ताम्वदृष्ट्वा वरारोहा पीनोन्नतपयोधराम् ।
शरत्पद्मोत्सवास्याञ्च सस्मितासुदतीमतीम् ॥१४॥
मूर्च्छामवाप कृपण• कामवाणप्रपीडित• ।
ता करेण समाकृष्य शृगार कर्तुमुद्यत ॥१५॥
सा सती कोपदृष्ट्या च स्तम्भित तञ्चकार ह ।
शशाप च मदर्थं त्व विलङ्क्षसि सवान्धव. ॥१६॥
स्पृष्टाहञ्च त्वया कामाद्विसृजाम्यवलोकय ।
स जडो हस्तपादैश्च किञ्चिद्वक्तु च क्षम ॥१७॥
तुष्टाव मनसा देवी पद्माशा पद्मलोचनाम् ।
सा ततस्तवेन सन्तुष्टा प्रकृत तञ्चकार ह ॥१८॥
इत्युक्त्वा मा च योगेन देहत्याग चकार ह ।
गगाया ता च सन्यस्य स्वगृह रावणोययौ ॥१९॥
अहो किमद्भुत दृष्ट कि कृत वा मयाधुना ।
इति सचिन्त्य सस्मृत्य विललाप पुन पुन• ॥२०॥
सा च कालान्तरे साध्वी वभवजनकात्मजा ।
सीतादेवीति विख्याता यदर्थं रावणोहत• ॥२१॥

उस वरा रोहा, पीत एवं उन्नत पयोधर वाली, शरत्काल के विकसित पद्म के समान मुख वाली, स्मित से युक्त, सुन्दर दाँतों वाली सती उसको देखकर वह कृपण काम बाण से पीड़ित हो गया था और मूर्च्छा को प्राप्त हो गया था। फिर उसने हाथ से उसे खींचकर उसके साथ श्रृंगार करने को वह उद्यत हो गया ॥१४-१५॥ उस समय उस सती ने कोप पूर्ण अपनी दृष्टि से उसे स्तम्भित कर दिया था और उस सती ने शाप दिया था। सवान्धव तू मेरे प्राप्त करने को विलङ्घन कर रहा है और तू ने मेरा स्पर्श किया है। काम वासना से तू ने मुझे छू लिया है। मैं विसर्जन करती हूँ, अब तू देख! वह रावण उस समय ऐसा जड़ हाथ-पैरों से हो गया था कि कुछ भी बोलने में समर्थ नहीं था ॥१६-१७॥ उस काल में केवल मन से ही उसने उस समय पद्ममुखी पद्म लोचना देवी की स्तुति की थी। वह देवी उसकी स्तुति से प्रसन्न हो गई और फिर उसने उसको प्रकृत रूप वाली कर दिया था ॥१८॥ पर यह कहकर उसने योग से देह का त्याग कर दिया था। रावण ने उसको गंगा में विसर्जित करके फिर वह अपने गृह को चला गया था ॥१९॥ रावण ने मन में सोचा-हो हो! यह क्या अद्भुत दृश्य मैंने देखा है और मैंने इस समय क्या कुकृत्य कर डाला है, ऐसा चिन्तन एवं स्मरण करके वह रावण वार बार रुदन करने लगा ॥२०॥ कुछ काल के बाद वह साध्वी राजा जनक की पुत्री हुई थी और उसका शुभ नाम सीता देवी विख्यात हुआ था जिसके लिये रावण मारा गया था ॥२१॥

महातपस्विनी साच तपसा पूर्वजन्मनः।
लेभे रामञ्च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम् ॥२२॥
संप्राप्य तपसाराध्य स्वामिनञ्च जगत्पतिम्।
सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुन्दरी ॥२३॥
जातिस्मरा न स्मरति तपसश्च क्रमं पुरा।
सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखञ्चापि सुखं लभेत् ॥२४॥
नानाप्रकारविभवञ्चकार सुचिरं सती।
सम्प्राप्य सुकुमारन्तमतीवनवयौवनम् ॥२५

गुणिन रसिक शान्त कान्तवेशमनुत्तमम् ।
स्त्रीणा मनोज्ञ सुचिर तथा लेभेयथेप्सितम ॥२६॥
पितृमत्यपालनार्थं सत्यसन्धो रघूत्तमः ।
जगाम कानन पश्चात् कालेन च बलीयसा ॥२७॥
तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च ।
ददर्श तत्र वह्निञ्च विप्ररूपधर हरि. ॥२८॥

वह महा तपस्विनी थी और उसने पूर्व जन्म के तप के प्रभाव से परिपूर्ण नाम हरि श्रीराम को अपना स्वामी प्राप्त किया था ॥२२॥ तपो बल से उसको प्राप्त कर जगत् के पति स्वामी की आराधना की थी और उस रमा ने जोकि परम सुन्दरी थी श्रीराम के साथ बहुत अधिक समय तक रमण किया था ॥ २३ ॥ जातिस्मरा वह पहिले तप के क्रम का स्मरण करती है, सुख से उसने उसका त्याग किया था और दुःख को भी वह सुख का लाभ करती है ॥२४। उस सती ने बहुत समय तक अनेक प्रकार का वैभव किया था और अतीव सुकुमार एवं नव यौवन वाले को प्राप्त किया था ॥२५॥ गुणी रसिक-शान्त-कान्त वेश वाले-सर्वोत्तम स्त्रियों के लिये मनोज्ञ तथा जैसा भी वह चाहती थी वैसा ही स्वामी उसने प्राप्त किया था ॥२६॥ अपने पिता के वचन की सत्यता का पालन करने के लिये सत्य प्रतिज्ञा करने वाले राघवेन्द्र वन को चले गये थे और पीछे बलवान काल से वहाँ स्थित रहे थे ॥२७॥ वह समुद्र के तट पर सीता और लक्ष्मण के साथ संस्थित हुये थे। फिर वहाँ पर हरि ने विप्र के रूप को धारण करने वाले अग्नि को देखा था ॥२८॥

त राम दुःखित दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह ।
उवाच किञ्चित् सत्येष्ट सत्य सत्यपारायण ॥२९॥
भगवन् श्रूयता वाक्य कालेन यदुपस्थितम् ।
सीताहरणकालोऽयतवैव समुपस्थित ॥३०॥
दैवञ्च दुर्निवार्य्यञ्च न च दैवातपर बलम्,
मत्प्रसू मयि सन्न्यस्य छायारक्षान्तिकेऽधुना ॥३१॥

दास्यामि सीतां तुभ्यञ्च परीक्षासमये पुनः ।
देवैःप्रस्थापितोऽहञ्च नच विप्रो हुताशनः ।।३२।।
रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम् ।
स्वीचकार च स्वच्छन्दं हृदयेन विदूयता ।।३३।।
वह्नियोगेन सीताया मायासीताञ्चकार ह ।
तत्तुल्यगुणरूपां तां ददौ रामाय नारद ।।३४।।
सीतांगृहीत्वा स ययौगोप्यं वक्तुंनिषेध्य च ।
लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा ।।३५।।

श्रीराम को दुखित देखकर वह भी बहुत दुःखित हुआ था। सत्य परायण वह कुछ सत्य सत्येष्ट बोला ।।२९।। अग्नि ने कहा—हे भगवन् ! मेरा वचन श्रवण कीजिये जो कि काल के वश से इस समय उपस्थित हो गया है । यह आपकी सती सीता के अपहरण का समय समुपस्थित हो रहा है ? यह दैव तो दुःख से निवारण करने के योग्य होता है और दैव से अधिक कोई भी बल नहीं होता है अर्थात् यह सबसे प्रबल तम होता है। अब आप इस मुझसे समुत्पन्न जानकी को मुझ में रखकर अपने समीप में इसकी छाया मूर्तिवाली सीता को रखिये तथा उसी की रक्षा करो ।।३०-३१।। मैं इस सीता को परीक्षा करने के समय तुमको फिर दे दूँगा । मुझे आपकी सेवा में देवों ने भेजा है। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ प्रत्युत साक्षात् अग्नि हूँ ।।३२।। श्रीराम ने उसके वचन को श्रवण कर लक्ष्मण से भी प्रकाशित नहीं किया था और विदूयमान हृदय से स्वतन्त्रता पूर्वक स्वीकार कर लिया था ।।३३।। अग्नि ने योग के द्वारा सीता से एक माया की सीता बना दी थी। हे नारद ! वह उसी के समान गुण गण और रूप लावण्य वाली थी। उस को श्रीराम को दिया था ।।३४।। उस वास्तविक सती सीता को ग्रहण कर वह अग्नि देव चला गया था और इस रहस्य की बात को गोप्य रखने के लिये एवं किसी से कहने का निषेध करने को कह कर गया था । इस घटना को लक्ष्मण भी नहीं जानते थे अन्य की तो बात ही क्या है ।।३५।।

एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श कनक मृगम ।
सीता त प्रेरयामास तदर्थे यत्नपूर्वकम् । ३६॥
सन्यस्य लक्ष्मणं रामोजानक्या रक्षणे वने ।
स्वय जगामहन्तु त विव्याधसायकेन च ॥३७।
लक्ष्मणेति च शब्दञ्च कृत्वा च मायया मृगः ।
प्राणास्तत्याज सहसा पुरोदृष्ट्वाहरिस्मरन् ॥३८॥
मृगरूप परित्यज्य दिव्यरूप विधाय च ।
रत्ननिर्माणयानेन वैकुण्ठ स जगाम ह ॥३९।
वैकुण्ठद्वारे द्वार्य्यासीत् किङ्करो द्वारपालयो. ।
जयाविजययोश्चैव बलवाश्चजिताभिध ॥४०॥
शापेन सनकादीना सम्प्राप्य राक्षसी तनुम् ।
पुनर्जगाम तद्द्वामादौ स द्वारपालयो ।४१।
अथ शब्दञ्चसा श्रुत्वा लक्ष्मणेति च विक्लवम् ।
सीता त प्रेरयामास लक्ष्मणरामसन्निधौ ॥४२॥

इसी अन्तर मे राम ने सुवर्ण का मृग देखा था। सीता ने उसको प्राप्त करने के लिये यत्न करने को प्रेरित किया था ॥३६॥ उस वन मे जानकी की रक्षा के लिये लक्ष्मण को नियुक्त करके अर्थात् वहाँ छोडकर स्वय व्याध सायक के द्वारा उसे मारने को उसके पीछे २ चले गय थे ।३७॥ 'हा लक्ष्मण !'—इस प्रकार का शब्द मृग ने माया से किया था, अर्थात् मुख से उच्चारण किया । फिर उसने अपने आगे हरि को देखकर उनका अपने मृग के रूप का त्याग करके दिव्य रूप धारण किया और रत्नो के निर्मित यान से वैकुण्ठ लोक को चला गया था ॥३८-३९॥ वैकुण्ठ के द्वार-द्वार पर जय-विजय नाम वाले द्वारपालो का यह किङ्कर था जोकि बडा बलवान् और जितनाम वाला था ॥४०॥ सनक आदि के शाप से राक्षस का शरीर प्राप्त करके फिर आदि मे उन द्वारपालो के उस द्वार पर गया था ॥४१॥ इधर उस सीता देवी ने हा लक्ष्मण'—इस विक्लव वचन को सुन करके उस लक्ष्मण को राम की सन्निधि मे जाने के लिये सीता ने प्रेरित किया था ॥४२॥

गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः ।
सीतां गृहीत्वा प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया ॥४३।
विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम् ।
तूर्णञ्च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नव ददर्श सः ॥४४॥
मूर्च्छां सम्प्राप्य सुचिरं विललाप भृशं पुनः ।
पुनर्बभ्राम गहने तदन्वेषणपूर्वकम् ॥४५॥
काले संप्राप्य तद्वार्त्तां पक्षिद्वारा नदीतटे ।
सहायं वानरं कृत्वा बबन्ध सागरं हरिः ॥४६॥
लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च ।
सबान्धवं रावणञ्च सीतां सम्प्रापदुःखिताम् ॥४७॥
ताञ्च वह्निपरीक्षाञ्च कारयामास सत्वरम् ।
हुताशनस्तत्रकाले वास्तवीं जानकीं ददौ ॥४८॥
उवाच छाया वह्निञ्च रामञ्च विनयान्विता ।
करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे ॥४९॥

लक्ष्मण के राम के निकट चले जाने पर दुर्निवारण रावण सीता का अपहरण करके अपनी लीला से लङ्का में चला गया था ॥४३॥ और राम ने वन में लक्ष्मण को आया हुआ देखकर बड़ा विषाद किया था। और वह फिर शीघ्र ही आश्रम में गये और वहाँ उन्होंने सीता को नहीं देखा था ॥४४॥ बहुत समय तक मूर्च्छा को प्राप्त करके फिर अत्यन्त श्रीराम ने विलाप किया था इसके पश्चात् उस गहन वन में सीता के अन्वेषण के लिये इधर-उधर खूब भ्रमण किया था ॥४५॥ उसी अवसर पर नदी तट पर एक पक्षी (जटायु) के द्वारा उसकी बात अर्थात् रावण के द्वारा सीता को लंका में ले जाने का समाचार प्राप्त करके वानरों की सहायता लेकर हरि ने सागर में सेतु बाँध दिया था ॥४६॥ रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम ने लंका में पहुँचकर अपने सायक के द्वारा बन्धु-बान्धवों के सहित रावण का वध किया था और फिर परम दुःखित सीता की प्राप्ति की थी ॥४७॥ फिर उसकी शीघ्र ही अग्नि-परीक्षा कराई थी। अग्नि ने उसी समय में वास्तविक जानकी को श्रीराम के लिये दे दिया

था ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त वह छाया अग्नि और श्री राम से बोली—मैं उसका उपाय क्या करूँगी-यह मुझे बताइये ॥४९॥

त्वं गच्छ तपसे देवि ! पुष्करञ्च सुपुण्यदम् ।
कृत्वातपस्यात्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यति ॥५०॥
सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रतप्य पुष्करे तपः ।
दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च स्वर्गे लक्ष्मीर्बभूव ह ॥५१॥
सा च कालेन तपसा यज्ञकुण्डसमुद्भवा ।
कामिनी पाण्डवानाञ्च द्रौपदी द्रुपदात्मजा ॥५२॥
कृते युगे वेदवती कुशध्वजसुता शुभा ।
त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा ॥५३॥
तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा ।
त्रिहायणीति सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये ॥५४॥
प्रिया पञ्च कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुङ्गव ।
इति मे चित्तसन्देहं भञ्ज सन्देहभञ्जन ॥५५॥

अग्नि ने कहा—हे देवि ! तुम तपस्या करने के लिये सपुण्य देने वाले पुष्कर में चली जाओ । वहाँ पर तपस्या करके वहाँ पर ही स्वर्ग लक्ष्मी हो जाओगी ॥ ५० ॥ उस जानकी की छाया ने अग्नि के उस वचन का श्रवण कर पुष्कर में जाकर तीन लाख दिव्य वर्ष तक उग्र तपस्या की थी और फिर वह स्वर्ग लक्ष्मी हो गई थी ॥ ५१ ॥ और वह काल में तप के द्वारा यज्ञकुण्ड से समुत्पन्न होने वाली पाण्डवों की कामिनी राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी हुई थी ॥ ५२ ॥ सत्ययुग में वह वेदवती कुशध्वज की शुभ पुत्री थी—त्रेता में जनक राजा की पुत्री श्रीराम की पत्नी सीता इस नाम वाली थी । द्वापर में उस जानकी की छाया द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी देवी हुई थी । इस तरह से तीनों युगों में विद्यमान वह त्रिहायणी इस नाम से कही गई थी ॥ ५३-५४ ॥ नारद ने कहा । उनको पाँच कैसे प्रिया हुई थी ? हे मुनि पुङ्गव यह मेरे चित्त में सन्देह है, हे सन्देहों के भञ्जन करने वाले ! आप इसका भञ्जन करने की कृपा करें ॥ ५५ ॥

लङ्कायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद ।
रूपयौवनसम्पन्ना छाया च वहुचिन्तिता ॥५६॥
रामाग्न्योराज्ञया तप्त्वा ययाचे शङ्करं वरम् ।
कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुनःपुनः ॥५७॥
पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन ।
पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारञ्चकार सा ॥५८॥
शिवस्तत्प्रार्थनं श्रुत्वा सस्मितो रसिकेश्वरः ।
प्रिये तव प्रियाः पञ्च भवन्तीति वरंददौ ॥५९॥
तेन सा पाण्डवानाञ्च वभूव कामिनी प्रिया ।
इत्येवं कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तवंश्रृणु ॥६०॥
अथ संप्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम् ।
विभीषणाय तां लकां दत्त्वाऽयोध्यां ययौ पुनः ॥६१॥
एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यञ्च भारते ।
जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्द्धं वैकुण्ठमेव च ॥६२॥
कमलांशा वेदवती कमलायां विवेश सा ।
कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम् ॥६३॥
सततं मूर्त्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च ।
सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती स्मृता ॥६४॥
कुशध्वजसुताख्यानमुक्तं संक्षेपतस्तव ।
धर्मध्वजसुताख्यानं निवोध कथयामि ते ॥६५॥

नारायण ने कहा—हे नारद ! लङ्का में वास्तवी सीता ने राम को प्राप्त किया था। उस समय रूप यौवन से सम्पन्न छाया बहुत चिन्तित हो गई थी ॥ ५६ ॥ राम और अग्नि की आज्ञा से तप करके उसने शङ्कर को वर की याचना की थी। वह बहुत ही काम से आतुर हो गई थी और बार-बार पति के लिये व्यग्र होकर प्रार्थना कर रही थी ॥ ५७ ॥ उसने शङ्कर से प्राथना की—हे त्रिलोचन ! मुझे पति दो—पति को प्रदान करो—मुझे मेरा पति देने की कृपा करो। इस तरह से पाँचवार 'पति दो'

-रंम वाक्य को कहा था ॥ ५८ ॥ रसिकों के ईश्वर शिव उसकी प्रार्थना को सुन कर सस्मित (मन्द मुस्कान से युक्त) हो गये थे और उन्होंने कहा—हे प्रिये ! तेरे पांच प्रिये होंगे—यह शिव ने उसे वरदान दे दिया था ।५६। इससे वह पाण्डवों की प्रिया कामिनी हुई थी। मैंने यह सब तुमको बतला दिया है। अब वास्तविक समस्त प्रस्ताव का श्रवण करो। ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर श्री राम ने अति मनोहर सीता को लङ्का में प्राप्त करके उस लङ्का को विभीषण को देकर फिर वह अयोध्या को चले गये थे।६१। ग्यारह सहस्र वर्ष तक भारत में राज्य का शासन किया था और फिर समस्त लोगों के साथ श्री राम वैकुण्ठ लोक को चले गये थे।६२। कमला के अंश वाली जो वेदवती थी वह कमला में जाकर प्रवेश कर गई थी। यह परम पुण्य द आख्यान जो अत्यन्त पवित्र है और पापों का नाश करने वाला है मैंने कह दिया है। निरन्तर मूर्तिमान चारों वेद जिसके ब्रह्मा के अग्र भाग पर रहते हैं वह वेदवती कही गई है। मैंने तुम से कुशध्वज का आख्यान अशेष से कह दिया है। अब हम तुमको धर्मध्वज का आख्यान कहते हैं उसे भली भांति समझना ।६३ ६५।

२१—धर्मध्वजपत्न्यां माधव्यां तुलस्या जन्म ।

धर्मध्वजस्य पत्नी च माधवीति च विश्रुता ।
नृपेण सार्द्धं सा रामा रेमे च गन्धमादने ॥१॥
दधार गर्भं सा सद्यो देवाब्दशतकं सती ।
श्रीगर्भा श्रीयुता सा च सर्वतूत्त्व दिने दिने ॥२॥
शुभक्षणे शुभदिने शुभयोगेन संयुते ।
शुभलग्ने शुभांशे च शुभस्वामिग्रहान्विते ॥३॥
कार्त्तिकीपूर्णिमायाञ्च सितवारे च पद्मजे ।
सुषाव सा च पद्मांशा पद्मिनी सुमनोहराम् ॥४॥

नरानार्य्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनांदातुनक्षमाः ।
तेन नाम्ना च तुलसीं तां वदन्तिपुराविदः ॥५॥
सा च भूमिष्टमात्रेण योग्यास्त्रीप्रकृतिर्यथा ।
सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम् ॥६॥
तत्र दैवाब्दलक्षञ्च चकार परमन्तपः ।
मम नारायणस्स्वामी भवितेति च निश्चिता ॥७॥

इस अध्याय में धर्मध्वज की पत्नी माधवी से तुलसी के जन्म का निरूपण किया जाता है। नारायण ने कहा—राजा धर्मध्वज की पत्नी माधवी–इस शुभ नाम से विश्रुत हुई थी। उस रामा ने गन्ध मादन पर्वत पर नृप के साथ रमण किया था ॥१॥ उस सती ने तुरन्त ही गर्भ कर लिया था और सती ने दिव्य सौ वर्ष तक उसे उदर में रखा था। वह दिनों दिन श्री गर्भा और श्री युता हो गई थी।२। शुभ क्षण में-शुभ दिन में-शुभ योग से समन्वित परम शुभ लग्न में-शुभता में-शुभ स्वामी ग्रह से युक्त होने पर कार्त्तिकी पूर्णिमा में और पद्म असितवार के दिन में उसके पद्मा (लक्ष्मी) के अंश रूपा सुमनोहर पद्मिनी का प्रसव किया था ॥ ३-४ ॥ नर और नारी उसको देख कर उसकी तुलना देने में असमर्थ हो गये थे। इस लिये पुरावेत्ता लोग उसको तुलसी इस नाम से कहते हैं ॥ ५ ॥ और वह जैसे ही भूमि में स्थित हुई थी वैसे ही प्रकृति के समान योग्य स्त्री हो गई थी। इसको सबने निषेध किया था तो भी यह तप करने के लिये बदरी वन को चली गई थी ॥६॥ वहाँ पर इसने दिव्य एक लाख वर्ष तक परम तप किया था। उसने यह निश्चय कर लिया था कि मेरे साक्षात नारायण पति होवेंगे ॥ ७ ॥

ग्रीष्मे पञ्चतपाः शीते तोयावस्था च प्रावृषि ।
श्मशानस्था वृष्टिधारां सहन्तीति दिवानिशम् ॥८॥
विंशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा ।
त्रिंशत्युगसहस्राब्दं पत्राहारा तपस्विनी ॥९॥

चत्वारिंशत्सहस्राब्दं वायुहारा कृशोदरी ।
ततो दशसहस्राब्दं निराहारा बभूव सा ॥१०॥
निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भव ।
समं ययौ वरं दातुं परं बदरिकाश्रमम् ॥११॥
चतुर्मुखञ्च सा दृष्ट्वा ननाम हंसवाहनम् ।
तामुवाच जगत्कर्त्ता विधाता जगतामपि ॥१२॥
वरं वृणुष्व तुलसि यत्ते मनसि वाञ्छितम् ।
हरिभक्तिञ्च मुक्तिं वाप्यजरामरतामपि ॥१३॥
शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वाञ्छितम् ।
सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम साम्प्रतम् ॥१४॥

ग्रीष्म काल मे पञ्चाग्नि तपने की तपस्या की थी–शीतऋतु मे जल मे स्थित होकर तप किया और वर्षा के मौसम मे श्मशान मे संस्थित होकर रातदिन जल की धारा को सहन करते हुए तप किया था ॥८॥ बीस हजार वर्ष तक तो वह फल और जल पर भोजन करने वाली रही थी और तीस सौ हजार वर्ष तक तपस्विना वनस्पतियो के पत्तो के आहार पर तपस्या करती रही थी॥९। चालीस हजार वर्ष तक केवल वायु का आहार ही लेकर कृशोदरी ने तपस्या की थी फिर इसके अनन्तर दश सहस्र वर्ष पर्यन्त वह बिल्कुल निराहार होकर रही थी ॥ १० ॥ बिना लक्ष्य वाली एक पाद से स्थित उसको देखकर कमलोद्भव (ब्रह्मा) उस बदरिकाश्रम मे उसे वरदान देने को आये थे ॥ ११ ॥ हंस के वाहन वाले चतुर्मुख (ब्रह्मा) को देखकर उस देवी ने उन्हे प्रणाम किया था। जगतो के विधाता और जगत की रचना करने वाले ब्रह्मा ने उससे कहा। १२। ब्रह्माजी बोले—हे तुलसी ! वरदान माँग ले जो भी तेरे मनमे तेरा इच्छित मनोरथ हो। हरि की भक्ति–मुक्ति और अजर अमर कुछ भी वर चाहे सो माँग ले। ॥१३। तुलसी ने कहा—हे तात ! सुनिये मैं अपने मन के इच्छित मनोरथ को कहूँगी और सबके आगे ही उसे कहती हूँ। मुझे इस समय क्या लज्जा है ॥ १४ ॥

अहं च तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा ।
कृष्णप्रिया किङ्करी च तदंशा तत्सखी प्रिया ॥१५॥
गोविन्देन सहासक्तामतृप्तां माञ्च मूर्च्छिताम् ।
रासेश्वरीसमागत्य ददर्श रासमण्डले ॥१६॥
गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशाप रुपान्विता ।
याहि त्वं मानवीं योनिमित्येवञ्च पितामह ॥१७॥
मामुवाच स गोविन्दो मदंशं त्वं चतुर्भुजम् ।
लभिष्यसि तपस्तप्त्वा भारते ब्रह्मणो वरात् ॥१८॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशोऽप्यन्तर्धानं चकार सः ।
देव्या भिया तनुं त्यक्त्वा लब्धं जन्म मया भुवि ॥१९॥
अहं नारायणं कान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् ।
साम्प्रतं लब्धुमिच्छामि वरमेवञ्च देहि मे ॥२०॥

मैं तुलसी नाम वाली गोपिका हूँ। पहिले मैं गोलोक-धाम में स्थित रहा करती थी । मैं कृष्ण की प्रिया-उनकी सेविका दासी-उन्हीं की अंश वाली और उनकी प्यारी सखी थी ॥ १५ ॥ मैं गोविन्द के साथ आसक्त थी । मुझको अतृप्त और मूर्च्छित दशा वाली रास मण्डल में रासेश्वरी ने आकर देखा था ॥१६॥ उस रासेश्वरी देवी ने गोविन्द को भर्त्सित किया था अर्थात् डांट दिया था और रोष मे भरकर मुझे शाप दिया था । हे पितामह ! उस देवी ने मुझे यह शाप दिया था कि तू मानवी योनि में चली जा, फिर गोविन्द ने मुझसे कहा कि तू मेरे अंश चतुर्भुज को प्राप्त करेगी । भारत में तप करके ब्रह्मा के वरदान से ऐसा सुअवसर तुझे प्राप्त होगा ।१७-१८। इतना कहकर वह देवेश अन्तर्हित हो गये थे । मैंने इस के उपरान्त देवी श्री रासेश्वरी के भय से उस शरीर का त्याग कर दिया था और इस भूमण्डल में जन्म ग्रहण किया था ॥ १९ ॥ अब मैं परम सुन्दर विग्रह वाले अति शान्त स्वरूप नारायण को अपना कान्त बनाना चाहती हूँ। इसी प्रकार का वरदान आप कृपा करके मुझे देवें ॥ २० ॥

सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवः ।
तदंशश्चातितेजस्वी ललाभ जन्म भारते ॥२१॥

साम्प्रत राधिकाशापद्दनुवंशसमुद्भव ।
शङ्खचूड इति ख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्पर ॥२२॥
गोलोकेत्वा पुराद्दष्ट्वा कामोन्मथितमानस ।
विलङ्घितु न शशाकराधिकाया प्रभावत ॥२३॥
सचजातिस्मरस्नप्त्वा त्वालब्धाभवरेणच ।
जातिस्मरापितत्वमपिसर्व जानासिसुन्दरी ॥२४।
अधुनातस्यपत्नी च भव भाविनिशोभने ।
पश्चान्नारायण कान्त न त्तमेव लभिष्यसि ॥२५॥
शापान्नारायणस्यैव कलया दवयोगत ।
भविष्यसि वृक्षरूपा त्व पूता विश्वपावनी ॥२६॥
प्रधानासर्वपुष्पाणाविष्णुप्राणाधिकाभवेत् ।
त्वयाविनाचसर्वेषापूजाचविफलाभवेत् ॥२७॥
वृन्दावनेवृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीतिच ।
तत्पत्रर्गोपिकागोपा पूजयिष्यन्तिमाधवम् ॥२८॥
वृक्षाधिदेवीरूपेण सार्द्ध कृष्णेन सन्ततम ।
विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छन्दमद्दरेण च ॥२९॥
इत्येव वचन श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा ।
प्रणनाम च ब्रह्माण तश्च किञ्चिदुवाच ह ॥३०॥

ब्रह्मा जी ने कहा-सुदामा नाम वाला एक गोप है जो श्री कृष्ण के अङ्गसे उद्भव (जन्म) प्राप्त करने वाला है। वह उसका अंश अत्यन्त तेजस्वी है और उसने भारत जन्म का लाभ प्राप्त किया था ॥ २१ ॥ इस समय वह भी श्री राधिका के शाप से दनु के वंश में उत्पन्न हुआ है और शंख चूड इस नाम से प्रसिद्ध है। इस समय त्रिलोकी में उससे पर कोई भी नहीं है ॥२२॥ पहले गोलोक मे तुझे देखकर वह काम से उन्मथित हृदय वाला हो गया था कि रासेश्वरी राधिका के प्रभाव से विलघन न कर सका था। ॥ २३ ॥ उस जाति स्मर ने तप करके वर के द्वारा तुझे प्राप्त किया था और तू भी जाती स्मरा है। हे सुन्दरी! तू सभी कुछ जानती है ॥ २४ ॥ अब तू हे होनतार हे शोभने ! उसकी पत्नी होजा।

इनके पीछे परम शान्त नारायण को अपने कान्त के रूप में प्राप्त करेगी ॥ २५ ॥ नारायण के शाप से ही दैवयोग से कला के द्वारा तू विश्व पावनी परम पवित्र वृक्ष के स्वरूप वाली होगी ॥२६॥ उस दशा में भी तू समस्त पुष्पों में प्रधान और विष्णु की प्राण से भी अधिक प्रिया होवेगी। तेरे बिना सबकी पूजा विफल रहा करेगी ॥ २७ ॥ वृन्दावन में तू वृक्ष रूप वाली होवेगी, इस लिये नाम से वृन्दावनी यह भी कही जायगी। तेरे पत्रों से अर्थात तुलसी के पत्र या दलों के द्वारा गोप और गोपिका माधव की पूजा करेंगे ॥ २८ ॥ वृक्षों की आद्यदेवी के रूप से निरन्तर कृष्ण के साथ जोकि गोप वेश में होंगे, स्वच्छन्दता विहार किया करेगी—यह मेरा वरदान है। इसके प्रभाव से ऐसा ही होगा ॥२९॥ इस प्रकार के ब्रह्मा जी के वचन को श्रवण करके वह तुलसी देवी बहुत प्रसन्न हुई थी और मुस्कान युक्त हो गई। फिर उसने ब्रह्मा को प्रणाम किया और उनसे कुछ बोली थी ॥३०॥

यथा मे द्विभुजे कृष्णे वाञ्छा च श्यामसुन्दरे।
सत्यंब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे ॥३१॥
अतृप्ताहञ्च गोविन्दे दैवात् शृङ्गारभङ्गतः।
गोविन्दस्यैव वचनात् प्रार्थयामिचतुर्भुजम् ॥३२॥
तत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम्।
ध्रुवमेवं लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय ॥३३॥
गृहाण राधिकामन्त्रं ददामि षोड़शाक्षरम्।
तस्याश्च प्राणतुल्यात्वं मद्वरेणभविष्यसि ॥३४॥
शृङ्गारंयुवयोर्गोप्यमाज्ञास्यतिचराधिका।
राधासमात्वं सुभगागोविन्दस्यभविष्यसि ॥३५॥

तुलसी देवी ने कहा— हे तात ! जैसी मेरी इच्छा दो भुजाओं वाले श्याम सुन्दर कृष्ण के लिये है वैसी चार भुजाओं वाले में नहीं है। यह मैं आप से पूर्ण सत्य कहती हूँ ॥३१॥ दैववश शृङ्गार के भङ्ग हो जाने के कारण मैं गोविन्द में तृप्त न हो सकी थी। अब मैं गोविन्द के ही वचनों

की आज्ञा से चतुर्भुज की प्रार्थना कर रही हूँ ।।३२।। उसके ही प्रसाद से मैं उस सुदुर्लभ गोविन्द को इस प्रकार से निश्चय ही प्राप्त करूंगी । अब आप श्री राधा का जो बड़ा भय हो रहा है उससे मुझे मुक्त कराने की कृपा करें । ३३।। ब्रह्मा ने कहा--अच्छा, ऐसा ही है तो मैं षोडशाक्षर राधिका के मन्त्र को मुझ से ग्रहण करले जिसको कि मैं तुझे ही देता हूँ। इसके प्रभाव से मेरे वरदान के द्वारा तू उसकी प्राण तुल्य प्रिया हो जायगी । फिर तुम दोनों का जो शृंगार है जो कि अत्यन्त गोप्य है, उसे राधिका नहीं जान पावेंगी । फिर राधा के ही समान तू गोविन्द की सुभगा हो जायगी ।।३४-३५।।

इत्येवमुक्त्वादत्वाच देव्याश्च षोडशाक्षरम् ।
मन्त्रतस्यै जगद्धाता स्तोत्रञ्चकवचपरम् ।।३६।।
सर्वपूजाविधानञ्च पुरश्चर्याविधिक्रमम् ।
परं शुभाशिषं कृत्वा सोऽन्तर्द्धानञ्चकारह ।।३७।।
साच ब्रह्मोपदेशेन पुण्ये वदरिकाश्रमे ।
गजाप परमं मन्त्रं यदिष्टं पूर्वजन्मन. ।।३८।।
दिव्यं द्वादशवर्षञ्च पूजाञ्चैव चकार सा ।
वभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रन्यादशमाप च ।।३९।।
सिद्धे तपसि मन्त्रेच वरं प्राप्य यथेप्सितम् ।
बुभुजे च महाभागं यद्विश्वेषु सुदुर्लभम् ।।४०।।
प्रसन्नमानसादेवी तत्याज तपसः क्लमम् ।
सिद्धे फले नराणाञ्च दु.खञ्च सुखमुत्तमम् ।।४१।।
भुक्त्वा पीत्वा च सन्तुष्टा शयनञ्च चकार सा ।
तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचन्दनचर्चिते ।।४२।।

ब्रह्मा जी ने इस प्रकार से कहकर और देवी का सोलह अक्षरों वाले मन्त्र की दीक्षा देकर जगत के धाता ने उसके लिये राधिका स्तोत्र और राधा कवच जो कि पर है दिया था ।।३६।। इसके अतिरिक्त समस्त पूजार्चन करने के विधान तथा पुरश्चरण करने की विधि के क्रम का भी उपदेश

किया था और अन्त में परम शुभ आशीर्वाद देकर वह अन्तर्धान हो गये थे ॥३७॥ इसके अनन्तर उस तुलसी देवी ने परम पुण्यतम क्षेत्र वदरिकाश्रम में उस ब्रह्मा के द्वारा उपदिष्ट परम मन्त्र का जाप किया था जो कि पूर्व जन्म का इष्ट था ॥३८। उस तुलसी देवी ने दिव्य बारह वर्ष पर्यन्त वहाँ पूजार्चना की थी। वह इसके अनुपम प्रभाव से देवी पूर्ण सिद्ध हो गई थी और उसके प्रत्यादेश को प्राप्त किया था। ॥३९॥ अपनी उग्र तपस्या के सिद्ध हो जाने पर तथा मन्त्र के सुसिद्ध होने पर, जैसा जो कुछ भी वह मन में चाहती थी वही उसने अभीष्ट वर प्राप्त कर लिया था। फिर उस तुलसी देवी ने उस महान भाग वाले का पूर्ण भोग प्राप्त कर लिया था जो कि विश्वों में महान कठिन है ॥४०॥ फिर परम प्रसन्न मन वाली उस तुलसी देवी ने उग्रतम तप का जो महान परिश्रम एवं खेद था उसका त्याग कर दिया था। जब मनुष्यों को किये हुए परिश्रम का फल सिद्ध हो जाया करता है तो वह तपस्या आदि का अत्यन्त दुख भी एक प्रकार का उत्तम सुख साती हो जाया करता है ॥४१॥ फिर उसमें भोगकर या खाकर-पीकर परम सन्तुष्ट होते हुये शयन किया था जो कि शय्या पुष्प चन्दन चर्चित एवं अन्य भी मनोरम थी। उसी पर शयन किया था। ॥४२।

२२-तुलस्या सह शङ्खचूड़स्य मेलनं कथोपकथनञ्च ।

तुलसी परितुष्टा च सुखापहृष्टमानसा ।
नवयौवनसम्पन्ना प्रशंसन्ती वराङ्गना ॥१॥
चिक्षेप पञ्चवाणञ्च पञ्चबाणश्च तां प्रति ।
पुष्पायुधेन सा दग्धा पुष्पचन्दनचर्चिता ॥२॥
क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तन्त्रां सुखावहाम् ।
क्षणं सा दाहनं प्राप क्षणं प्राप प्रमत्तताम् ॥३॥

पुनः स्वचेतना प्राप्य विललाप पुन पुनः ।
एत्र तपोवने सा च तस्थौ तत्रैव नारद ॥४॥
शङ्खचूड़ो महायोगी जैगीषव्यान्मनोरमम् ।
कृष्णस्य मन्त्र सम्प्राप्य कृत्वा सिद्धिन्तु पुष्करे ॥५॥
कवचञ्च गल वद्ध्वा सर्वमङ्गलम् मङ्गलम् ।
ब्रह्मेशाच्च वरं प्राप्य यत्तन्मनसि वाञ्छतम् ।
आज्ञया ब्रह्मण सोऽपि वदरीञ्च समाययौ ॥६॥

इस अध्याय म तुलसी क साथ शङ्ख चूड का मिलन होने तथा पारस्परिक कथोपकथन का वर्णन किया जाता है । नारायण ने कहा — देवी तुलसी पूर्णतया परितुष्ट हुई सुख से अपहृष्ट म नस वाली-नूतन यौवन से वह सम्पन्न थी तथा वराङ्गना प्रशसा करती हुई वह सस्थित थी ॥१॥ उसी समय काम देव ने उसके ऊपर अपने पञ्च वाणो का प्रक्षेप किया था । पुष्प और चन्दन से चर्चित होने वाली पुष्पायुध (काम देव)के द्वारा वह दग्ध हो गई थी ॥ २ ॥ क्षण मात्र के लिय तो वह उद्विग्न हो जाती थी और कभी क्षण भर कुछ सुख का अनुभव करती थी—कुछ समय दाह को और कभी प्रमत्त दशा को प्राप्त होती थी ॥ ३ ॥ फिर चतना प्राप्त करके बार २ विलाप करने लगती थी । हे नारद ! इसी दशा मे वह उस तपोवन मे सस्थित थी ॥ ४ ॥ शङ्ख चूड महान योगी था । उस ने जैगीषव्य स परम सुन्दर कृष्ण के मन्त्र की प्राप्ति करके पुष्कर मे सिद्धि प्राप्त की थी । ५ ॥ वह फिर सर्व मङ्गलो का भी मङ्गल कवच अपने गले मे बांधकर ब्रह्मेश से वर प्राप्त करके जो कुछ उसका इच्छित था, ब्रह्मा की आज्ञा से वह भी वदरीक्षेत्र को आ गया था ॥ ६ ॥

आगच्छन्त शङ्खचूड़ं ददर्श तुलसी मुने ।
नवयौवनसम्पन्नं कामदेवसमप्रभम् ॥७॥
श्वेतचम्पकवर्णाभ रत्नभूषणभूषितम् ।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥८॥

रत्नसारविनिर्माणविमानस्थं मनोहरम् ।
रत्न कुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥९॥
पारिजातकुसुमानां माल्यवन्तञ्च सस्मितम् ।
कस्तूरीकुङ्कुमयुतं सुगन्धिचन्दनान्वितम् ॥१०॥
सा दृष्ट्वासन्निधाने तं मुखमाच्छाद्य वाससा ।
सस्मितं तं निरीक्षन्ती सकटाक्षं पुनः पुनः ॥११॥
बभूवातिनम्रमुखी नवसङ्गमलज्जिता ।
कामुकी कामबाणेन पीडिता पुलकान्विता ॥१२॥
दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् ।
उवास तत्समीपे च मधुरं तामुवाच सः ॥१३॥
का त्वमत्र कस्य कन्या धन्ये मान्ये सुयोषिताम् ।
का त्वं मानिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनि ॥१४॥

हे मुने ! परम नवीन यौवन से सम्पन्न काम देव के समान प्रभा वाले आते हुये शङ्ख चूड़ को तुलसी ने देखा था । वह शङ्ख चूड़ श्वेत चम्पक के वर्ण की आभा वाला था तथा रत्नों के भूषणों से विभूषित और शरत की पूर्णिमा के चन्द्र के तुल्य मुख वाला और शरत्काल के विकसित कमलके सदृश नेत्रों वाला था । ७-८॥ शङ्खचूड़ उत्तम रत्नों के द्वारा निर्मित विमान में बैठा हुआ था-अतीव सुन्दर था जिसके गण्डस्थल पर रत्नों के बने हुए दो कुण्डल विराजमान थे ॥९। वह उस समय पारिजात के पुष्पों की मालाओं से समलकृत था तथा मन्दस्मित से समन्वित मुख वाला-कस्तूरी और कुङ्कुम से युक्त सुगन्धित चन्दन से चर्चित अङ्गों वाला था ।१०॥ ऐसे शङ्ख चूड़ को तुलसी ने अपने सन्निकट में स्थित देखा तो उसने वस्त्र से अपना मुख ढक लिया था । वह कामुकी उस समय काम बाण से पीड़ित होकर पुलकों से अङ्कित अङ्ग वाली हो गई थी॥ ११ ॥ वह तुलसी उस शंख चूड़ को मन्द स्मित पूर्वक कटाक्षों के सहित बार २ देखती जा रही थी और काम देव के बाणों से परम पीड़ित हो रही थी ॥ १२ ॥ वह शंख चूड़ अति सुन्दरी परम ललित सुन्दर दाँतों वाली-अत्यन्त सुन्दर शील स्वभाव वाली सती को देखकर उसी के समीप ठहर गया था और वह फिर उससे परम

मधुर वचन बोला ॥ १३ ॥ शङ्ख चूड ने कहा—हे भद्रे ! हे मान्ये ! आप कौन हैं जो यहा पर इस वन मे स्थित हो रही हैं और आप किसकी कन्या हैं। आप तो स्त्रियो मे बहुत सम्मान के योग्य है ? हे मानिनि ! आप स्वयं ही वर प्रदान करें। हे कल्याणी ! आप तो सब प्रकार के कल्याणो को देने वाली हैं ॥ १४ ॥

स्वर्गभोगादिसाराति विहारे हार रूपिणि ।
संसारदारसारे च मायाधारे मनोहरे ॥१५॥
जगद्विलक्षणे क्षामे मुनीन्द्रमोहकारिणि
मौनीभूते किङ्कर मा सम्भाषा कुरु सुन्दरि ॥१६॥
इत्येव वचन श्रुत्वा सकामा वामलोचना ।
सस्मिता नम्रवदना सकामा तमुवाच सा ॥१७॥
धर्मध्वजसुताऽहञ्च तपस्यायां तपोवने ।
तपस्विनीह तिष्ठामि कस्त्व व गच्छ यथासुखम् ॥१८॥
कामिनीकुलजाताञ्च रहस्य कामिनी सतीम् ।
न पृच्छति कुले जात एवमेव श्रुतौ श्रुतम् ॥१९॥
लम्पटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थवर्जितः ।
येनाश्रुतं श्रुतेरर्थं सकामोच्छति कामिनीम् ॥२०॥
आपातमधुरामन्तं श्रान्तवान् यस्य नाम ।
विषकुम्भाकाररूपाममृतास्यां च कामिनीम् ॥२१॥

आप तो विहार करनेमे हार के स्वरूप वाली हैं और स्वर्ग के भोग के आदि सार स्वरूप से संयुत है। आप इस संसार की रमणियो मे सार रूप वाली हैं-माया की आधार और परम मन हर हैं ॥ १५ ॥ हे सुन्दरि ! आप जगत मे अत्यन्त विलक्षण रूप वाली है। हे क्षामे ! आप तो बडे २ मुनीन्द्रो के भी मन को मोहित कर देने वाली हैं। हे मौन धारण करने वाली सुन्दरि ! किङ्कर मुझसे सम्भाषण करने की कृपा करो ॥ १६ ॥ इस तरह के वचन सुनकर काम वासना से पूर्ण वह काम लोचना स्मित से युक्त हो नम्रवदन वाली वह काम से उत्पीडित उस शङ्ख चूड से बोली ॥ १७ ॥ तुलसी ने कहा—मैं

धर्मध्वज राजा की पुत्री हूँ। इस समय मैं यहाँ तपोवन में तप करने-तपस्विनी होकर स्थित हूँ। आप कौन है? अब आप सुख पूर्वक यहाँ से जाइये ॥ १८ ॥ किसी भी कामिनी से जोकि सत्कुल में समुत्पन्न हुई हो, एकान्त में ऐसी सती स्वाध्वी से कोई भी सत्कुल में समुत्पन्न पुरुष कुछ भी नहीं पूछा करता है—ऐसा ही श्रुति में सुना गया है ॥ १९ ॥ जो लम्पट होता है और असूत्कुल में पैदा हुआ हो तथा धर्म शास्त्र से रहित हो तथा जिस ने श्रुति का अर्थ कभी नहीं सुना हो, वही कामी इस तरह कामिनी की इच्छा किया करता है ॥२०॥ वह कामिनी आरम्भ में तो बड़ी मधुर दिखाई दिया करती है किन्तु अन्त में पुरुष को समाप्त करने वाली होती है। वह विष के कूम्भ के आकार वाली होती है जिसके मुख पर अमृत हुआ करता है ॥ २१ ॥

त्वयायत्कथितं देविनच सर्वमलीककम् ।
किञ्चित्सत्यमलीकञ्चकिञ्चिन्मत्तानिशामय ॥२२॥
निर्मितं द्विविध धात्रा स्त्रीरूपसर्वमोहनम् ।
कृत्यारूपं वास्तवञ्च प्रशस्यञ्चाप्रशंसितम् ॥२३॥
लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिकम् ।
सृष्टिसूत्रस्वरूपञ्चाप्याद्यं स्रष्ट्रा तत् तु विनिर्मितम् ॥२४॥
एतासामंशरूपं यत् स्त्रीरूप वास्तवं स्मृतम् ।
तत् प्रशंस्यं यशोरूपं सर्वमंगलकारणम् ॥२५॥
सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तच्च शुद्ध स्वभावतः ।
तदुत्तमञ्च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम् ॥२६॥
तद् वास्तुवञ्च विज्ञेयं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
रजोरूपं तमोरूपं कृत्यासु द्विविध स्मृतम् ॥२७॥
स्थानाभावात् क्षणाभावान्मध्यवृत्तेरभावतः ।
देहक्लेशेन रोगेण सत्संसर्गेण सुन्दरि ॥२८॥
वहुगोष्ठावृतेनैव रिपुराजभयेन च ।
रजोरूपस्य साध्वीत्वमेतेनैवोपजायते ॥२९॥

शङ्खचूड ने कहा—हे देवि ! आपने जो कुछ भी इस समय कहा है वह सब असत्य नही है। उसमे कुछ तो सत्य है और कुछ मिथ्या है—यह सब आप मुझसे श्रवण करिये ॥ २२ ॥ विधाता ने सबको मोहित करने वाला स्त्री का दो प्रकार का रूप निर्मित किया है। एक तो इसका कृत्या रूप है और दूसरा वास्तविक है। एक इसका रूप प्रशंसा के योग्य होता है और दूसरा अप्रशंसित रूप होता है ॥ २३ ॥ लक्ष्मी–सरस्वती–दुर्गा–सावित्री और राधिका आदि सब इस सृष्टि की सूत्र स्वरूप एवं आद्य विनिर्मित है ॥२४॥ इन सबके अंश रूप जो स्त्री का रूप है उसे वास्तविक कहा गया है। वह प्रशंसा के योग्य–यश के रूप वाला और समस्त मङ्गलो का कारण होता है ॥ २५ ॥ सत्व की प्रधानता वाला जो रूप है वह स्वभाव से ही शुद्ध होता है और वह विश्व मे उत्तम–साध्वी रूप एवं प्रशंसित होता है ॥ २६ ॥ वही वास्तविक रूप जानने के योग्य है—ऐसा मनीषी गण कहते है। जो कृत्या हैं उनमे रजो रूप और तमोरूप दो प्रकार के बताये गये है ॥ २७ ॥ हे सुन्दरी ! रजो रूपणी का साध्वीत्व तो स्थान के अभाव से–समय के न मिलने से–मध्य वृत्ति के अभाव से अर्थात किसी मिलाने वाले के न होने से–देह के क्लेश और रोग से तथा सत्पुरुषो के संसर्ग से–बहुत गोष्ठी वृत होने से एवं राजा के भय से ही हुआ करता है। इन उक्त कारणो के होने से रजो रूप वालियो का साध्वीत्व बना रहता है अन्यथा कभी नही रह सकता है ॥ २८ - २९ ॥

इदं मध्यमरूपञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः ।
तमोरूपं दुर्निवार्य्यमधमं तद् विदुर्बुधा ॥३०॥
न पृच्छति कुले जातं पण्डितश्च परस्त्रियम् ॥३१॥
आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना ।
गान्धर्वेणविवाहेनत्वाग्रहीष्यामिशोभने ॥३२॥
अहमेव शङ्खचूडो देवविद्रावकारकः ।
दनुवंशोद्भवो विश्वे सुदामाहं हरेः पुरे ॥३३॥
अहमष्टसु गोपेषु गोगोपीपार्षदेषु च ।
अधुना दानवेन्द्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः ॥३४॥

जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमन्त्रप्रभावतः ।
जातिस्मरात्वं तुलसी संसक्ता हरिणा पुरा ॥३५॥
त्वमेव राधिकाकोपात् जातासि भारते भुवि ।
त्वां सम्भोक्तुमिच्छुकोऽहं नालं राधाभयात्ततः ॥३६॥
इत्येवमुक्त्वा स पुमान् विरराम महामुने ।
सस्मिता तुलसी हृष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३७॥

महा मनीषी लोग इसको मध्यम रूप कहा करते हैं । जो दूसरा तमो रूप होता है वह तो दुर्निवार्य ही होता है । उसे बुधगण परम अधम कहा करते हैं ॥ ३० ॥ यह ठीक है कि कोई भी सत्कुल में उत्पन्न होने वाला पुरुष तथा पण्डित पराई स्त्री से पूछ ताछ नहीं किया करता है । मैं भी इसे स्वीकार करता हूँ ॥ ३१ ॥ किन्तु मैं तो इस समय ब्रह्मा जी की आज्ञा से ही आपके पास आ रहा हूँ और हे शोभने । मैं अब गान्धर्व विवाह के द्वारा तुमको ग्रहण करूँगा ॥३२॥ मैं ही वह शंखचूड़ हूँ जो देवों को विद्रुत कर देने वाला है । मैं इस समय तो विश्व में दनु के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ परन्तु पहिले जन्म में मैं हरि के पुर में सुदामा था ॥ ३३ ॥ मैं हरि के आठ महा सखा गोपों में से हूँ और गोप–गोपी तथा पार्षदों में से प्रधान हूँ । इस समय तो अवश्य ही मैं दानवेन्द्र हूँ जो कि राधिका के शाप से ऐसा हो गया हूँ ॥३४॥ मैं जातिस्मर हूँ । मैं जानता हूँ. कृष्ण मन्त्र के प्रभाव से ही यह ज्ञान है । आप भी जातिस्मरा हैं और आपका नाम तुलसी है जो पहिले सृष्टि में अत्यन्त ससक्त थी ॥३५॥ आप भी राधिका के क्रोध से ही इस भूमि तल में उत्पन्न हुई हैं । मैं आपके साथ सम्भोग करने का इच्छुक हूँ । राधा के भय से फिर कोई अड़चन नहीं है ॥३६॥ हे महामुने ! वह पुरुष इस प्रकार से कह कर विरत हो गया था । उस स्मितयुक्त तुलसी ने उसे देख कर अपना कहना आरम्भ किया था ॥३७॥

मूर्ध्ना ननाम तुलसी शङ्खचूडश्च नारद ।
उवास तत्र देवे[?] क्रीडा[?] च तयोर्हितम् ॥३८॥

किं करोषि शङ्खचूड सवादमनया सह ।
गान्धर्वेण विवाहेन त्वमिमां ग्रहणं कुरु ॥३९॥
त्वञ्च पुरुषरत्नञ्च स्त्रीरत्न स्त्रीष्वियसती ।
विदग्धायाविदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥४०॥
निर्विरोधसुखं राजन् को वात्यजति दुर्लभम् ।
योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र सशयः ॥४१॥
किमुपेक्षसि त्वं कान्तमीदृशं गुणिनं सती ।
देवानामसुराणाञ्च दानवानां विमर्दकम् ॥४२॥
इत्येवमाशिषं कृत्वा स्वालयं प्रययौ विधिः ।
गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे ताञ्च दानवः ॥४३॥

हे नारद ! तुलसी देवी ने शङ्खचूड को शिर के साथ प्रणाम किया था। वहाँ देश के स्वामी ब्रह्मा जी उपस्थित हो गये थे। वे भी वहीं स्थित हो गये थे। ब्रह्मा ने इन दोनों के हित की बात कही थी ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा जी ने कहा—हे शङ्खचूड ! तू अब इस देवी के साथ क्या सम्वाद करता है। अब तो इसको गान्धर्व विवाह के द्वारा ग्रहण कर ॥३९॥ तू तो पुरुषों में रत्न है और रमणियों में सती यह रत्न के समान है। विदग्धा का विदग्ध के साथ सङ्गम गुण वाला हुआ करता है ॥ ४० ॥ हे राजन ! बिना विरोध वाले दुर्लभ सुख का कौन त्याग किया करता है ? अर्थात् कोई भी नहीं करता है। जो विरोध रहित सुख का त्याग करने वाला है, वह मानव नहीं, पशु ही है—इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥ ४१ ॥ हे सती ! तू अब ऐसे गुणी देवों, असुरों और दानवों के विमर्दन करने वाले कान्त की क्या उपेक्षा कर रही है ? ॥ ४२ ॥ इस तरह से आशीर्वाद देकर ब्रह्मा जी अपने स्थान को चले गये थे। फिर दानव शङ्खचूड ने गान्धर्व विवाह के द्वारा उस सती तुलसी को ग्रहण कर लिया था ॥ ४३ ॥

तया सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः ।
रम्यक्रीड़ालयं कृत्वा विजहार पुनस्ततः ।।
एवं संबुभुजे राज्यं शङ्खचूड़ः प्रतापवान् ।
एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो वली ।।४४।।
देवानामसुराणाञ्च दानवानाञ्चसन्ततम् ।
गन्धर्वाणां किन्नराणांराक्षसानाञ्चशास्तिदः ।।४५।।
हृताधिकारा देवाश्च चरन्ति भिक्षुका यथा ।।४६।।
पूजाहोमादिकंतेषां जहार विषयवलात् ।
आश्रयचाधिकारञ्च शस्त्रास्त्रभूषणादिकम् ।।४७।।
निरुद्यमाः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ।
तेच सर्वेविषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम् ।।४८।।
वृत्तान्तं कथयामासू रुरुदुश्च भृश मुहुः ।
तदा ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं जगाम शङ्करालयम् ।।४६।।
सर्वं सकथयामास् विधाता चन्द्रशेखरम् ।
ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्द्धं वैकुण्ठञ्चजगाम ह ।।५०।।

इस के अनन्तर उसके साथ वह दानव अपने आश्रम में आकर एक परम सुन्दर क्रीड़ा का स्थान निर्मित कर उसमे विहार किया करता था। इस प्रकार से उस प्रताप वाले शङ्खचूड ने राज्य का उपभोग किया था। उस बलवान राज राजेश्वर ने पूरे एक मन्वन्तर पर्यन्त राज्य का उपभोग किया था ।। ४४ ।। वह देवों–असुरों–दानवों–गन्धर्वों–किन्नरों और राक्षसों का निरन्तर शासन करता था ।। ४५ । देवगण तो उस समय छिने हुए अधिकार वाले होकर भिक्षुकों की तरह विचारे इधर-उधर भ्रमण किया करते थे ।। ४६ ।। इस प्रतापी शङ्खचूड़ ने उनकी पूजा तथा होम आदि सबका विषय वलात् हरण कर लिया था । इसने देवों का आश्रय स्थान-अधिकार–शस्त्र–अस्त्र और भूषण आदि सभी कुछ का अपहरण कर लिया था ।।४७।। देवगण सब विचारे विना उद्यम वाले एक चित्र पुत्तलिका की भाँति हो गये थे । वे सब बहुत ही विषाद से भरे हुए

ब्रह्म की सभा में गये थे ॥४८॥ उन्हों ने सारा वृतान्त ब्रह्मा को कह सुनाया था और वे वहाँ बहुत अधिक बार-बार रोने लगे थे। उस वक्त ब्रह्मा जी देवों के साथ शङ्कर के आश्रय में गये थे ॥४९॥ वहाँ विधाता ने देवों की दशा का दुःख सर्व चन्द्र शेखर शिव से कहा था। फिर ब्रह्मा-शिव उन देवों के साथ वैकुण्ठ लोक में गये ॥५०॥

सुदुर्लभं परं धाम जरामृत्युहरं परम् ।
सम्प्राप्य च वरं द्वारामाश्रमाणां हरेरहो ॥५१॥
ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान् ।
शोभितान् पीतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥५२॥
वनमालान्वितान् सर्वान् श्यामसुन्दरविग्रहान् ।
शंखचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान् ॥५३॥
सस्मितानपद्मवक्त्रांश्चपद्मनेत्रान्मनोहरान् ।
ब्रह्मा तान् कथयामास वृत्तान्तं गमनार्थकम् ॥
तेऽनुज्ञाञ्च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया ॥५४॥

वह वैकुण्ठ धाम—सबसे पर है जो जन्म-मृत्यु और जरा का हरण करने वाला था। हरि के आश्रमों का जो सर्वश्रेष्ठ द्वार था, उस को प्राप्त किया था ॥५१॥ वहाँ पर रत्न जटित सिंहासनों पर स्थित—पीले वस्त्रों से सुशोभित—रत्नों के भूषणों से समलङ्कृत—वनमाला धारी—श्याम एवं सुन्दर विग्रह वाले—शंख, चक्र, गदा, पद्म आयुधों को धारण किये हुए—चार भुजाओं से समन्वित—मन्द मुस्कान से युक्त—पद्म के समान सुन्दर मुख वाले—कमल के सदृश नेत्रों वाले परम मनोहर द्वार पालों को देखा था। ब्रह्मा ने अन्दर जाने के लिये निवेदन किया था। उन द्वारपालों ने ब्रह्मा को अन्दर प्रवेश करने की आज्ञा दे दी थी और फिर ब्रह्मा ने भीतर प्रवेश किया था ॥ ५२ ५४ ॥

एवञ्च षोडशद्वारान्निरीक्ष्य कमलोद्भवः ।
देवैः सार्द्धं तानतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम् ॥५५॥

देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ।
नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः ॥५६॥
एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं विभुम् ।
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुवुस्तदा ॥५७॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः ।
भक्त्या परमया युक्ता भीता नम्रात्मकन्धराः ॥५८॥
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा विधाता जगतामपि ।
वृत्तान्तं कथयामास विनयेन हरेः पुरः ॥५९॥
हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित् ।
प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यञ्च मनोहरम् ॥६०॥

इस प्रकार से ब्रह्मा ने वहाँ सोलह द्वारों को देखा था । देवों के साथ उन सब द्वारों को अतिक्रान्त करके ब्रह्मा जी ने हरि की सभा में प्रवेश किया था ॥५५॥ वह सभा देवर्षियों से और चार भुजाओं वाले पार्षदों से परिवृत थी । वे समस्त पार्षद नारायण के समान स्वरूप वाले, सब कौस्तुभ मणियों से विभूषित थे ॥५६॥ हरि की सभा पूर्ण चन्द्र के मण्डल के तुल्य आकार वाली-चौकोर - परम मनोहर-उत्तम मणियों के द्वारा निर्माण वाली तथा हीराओं के सार उत्तम हीरों से भूषित थी ॥५७॥ इस प्रकार की समस्त पार्षद आदि से विशिष्ट - परिपूर्णतम - विभु हरि को देखकर ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने उनको प्रणाम किया था और फिर स्तुति करने लगे थे ॥५७॥ सभी देवगण का शरीर रोमाञ्चित हो रहा था, उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी । उनका कण्ठ गद्गद था , वे सब भक्त परमभक्ति से युक्त थे , भीत हो रहे थे और विनय के भाव से सबको कन्धरा नीचे की ओर झुकी हुई थी ॥५८॥ सब पुटाञ्जलि युक्त होकर स्थित हो गये थे, जगतों की भी रचना करने वाले ब्रह्मा ने हरि के आगे वह देवों के विषाद का वृत्तान्त विनय पूर्वक कह सुनाया था । भगवान् हरि ने

जोकि सर्वस्व और सबके भावों के ज्ञाता थे, ब्रह्मा के वचन को सुनकर हँसते हुए ब्रह्मा से परम मनोहर रहस्य कहा था ॥५९-६०॥

शङ्खचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज ।
मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥६१॥
सुराः शृणुत तत्सर्वमितिहासं पुरातनम् ।
गोलोकस्यैवचरितं पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥६२॥
सुदामा नाम गोपश्च पार्षदप्रवरो मम ।
स प्राप दानवीयोनिं राधाशापात् सुदारुणात् ॥६३॥
तत्रैकदाहमगमं स्वालयाद्रासमण्डलम् ।
विहाय मानिनीं राधांममप्राणाधिकां पराम् ॥६४॥
सा मां विरजया सार्द्धं विज्ञाय किङ्करीमुखात् ।
पश्चात्क्रुधा जगामैव न ददर्श च तत्र च ॥६५॥
विरजाञ्च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम् ।
पुनर्जगामसारुष्टास्वालयंसखीभिः सह ॥६६॥
मां दृष्ट्वा मन्दिरे देवी सुदामसहितं पुरा ।
भृशं मां भर्त्सयामासमौनीभूतञ्च सुस्थिरम् ॥६७॥
तच्छ्रुत्वा च समहाच्च सुदामाता चुकोप ह ।
सचताभर्त्सयामासकोपेनममसन्निधौ ॥६८॥
तच्छ्रुत्वा सा कोपयुक्ता रक्तपङ्कजलोचना ।
बहिष्कर्तुञ्चकाराज्ञां सन्त्रस्तांममसंसदि ॥६९॥
सखीलक्ष समुत्तस्थौ दुर्वारं तेजसोज्ज्वलम् ।
बहिश्चकार तं तूर्णं जल्पन्तञ्चपुनः पुनः ॥७०॥

श्री भगवान ने कहा — हे पद्मज ! मैं शङ्खचूड का समस्त वृत्तांत भली भाँति पूर्ण रूप से जानता हूँ । वह पहिले मेरा ही महान तेजस्वी भक्त एक गोप था ॥६१॥ हे देवगण ! इसका पहिला समस्त पुराना इतिहास श्रवण करो जोकि इस गोलोक का ही पापों के नाश करने वाला और

पुण्य का कारण चरित है ।।६२।। एक सुदामा नाम वाला मेरा परम श्रेष्ठ पार्षद गोप था। वह राधा के शाप के कारण से जोकि सुदारुण शाप था, दानव की योनि को प्राप्त हो गया था ।।६३।। वहा पर मैं एक वार अपने आवास स्थान से रासमण्डल में गया था और मेरी प्राणों से भी अधिक प्रिया मानिनी राधा का उस समय मैंने त्याग कर दिया था ।।६४। उस राधिका देवी ने किसी सेविका के मुख के द्वारा मुझे विरजा के साथ संसक्त होने वाला जानकर वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गई थी और यह वहाँ आगई तथा मुझको वहाँ पर उसने देख लिया था ।।६५।। वहाँ विरजा को नदी रूप वाली उसने देखा और मुझको तिरोहित (अप्रकट) देखा था। फिर वह क्रुद्ध होती हुई सखियों के साथ अपने आलय को आ गई थी ।।६६।। उस देवी ने मुझको मन्दिर मे सुदामा के साथ पहिले देखा था। उसने मौनी भूत एव सुस्थिर मुझको अत्यन्त भर्त्सना दी थी ।।६७।। यह सुनकर सुमहान सुदामा को क्रोध आ गया था। फिर उसने क्रोध से मेरी सन्निधि ही मे राधिका देवी को जोर से डाट-फटकार दी थी ।।६८।। यह सुनकर वह कोप से युक्त लाल कमल के समान नेत्रों वाली मेरी संसद में सन्त्रस्त होती हुई उसने सुदामा को वहिष्कृत कर देने की आज्ञा दे दी थी ।।६९।। एक लाख सखियों का समुदाय वहाँ उपस्थित खडा था जो वहुत ही दुर्निवार और तेज से उज्ज्वल था, उसने वार-वार वोलते हुये उसको शीघ्र ही वहाँ से वाहर कर दिया था ।।७०।।

सा च तद्वचनं श्रुत्वा समारुष्टा शशापतम् ।
याहि रे दानवींयोनिमित्येवंदारुणं वचः ।।७१।।
तं गच्छन्तं शपन्तञ्च रुदन्तं मां प्रणम्य च ।
वारयामास सा तुष्टा रुदन्ती कृपया पुनः ।।७२।।
हेवत्स ! तिष्ठमागच्छक्वयासीतिपुनः पुनः ।
समुच्चार्य्यंचतत्पश्चात्जगामसाचविस्मिता ।।७३।।
गोप्यश्चरुरुदुःसर्वागोपाश्चेतिसदुःखिताः ।
तेसर्वेराधिकाचापितत्पश्चाद्बोधितामया ।।७४।।

आयास्यतिक्षणार्द्धेनकृत्वाशापस्यपालनम् ।
सुदामन्त्वमिहागच्छेत्युवाचसा निवारिता ॥७५॥
गोलोकस्य क्षणार्द्धेन चेकमन्वन्तर भवेत् ।
पृथिव्या जगता धातरित्येव वचनध्रुवम् ॥७६॥
स एव शङ्खचूडश्च पुनस्तत्रव यास्यति ।
महाबलिष्ठो योगीश· सर्वमायाविशारदः ॥७७ ।

उस राधिका देवी ने अत्यन्त रुष्ट होकर उसके वचन सुनकर उसे शाप दिया था कि तू दानवी योनि मे चला जा—इस तरह का दारुण वचन उस शाप का था ॥७१ । आक्रोश करने वाले रोते हुये जाने वाले उसको फिर सन्तुष्ट होती हुई उस देवी ने रोक लिया था और मुझे प्रणाम करके कृपा से परिपूर्ण होकर रोती हुई वह देवी बोली ॥७२॥ हे वत्स ! खडे रहो, मत जाओ, अब तू कहाँ जा रहा है । ऐसा बार-बार कहकर वह विस्मित होती हुई इस के पश्चात् चली गई थी ॥७३॥ उस समय समस्त गोपियाँ और गोप अत्यन्त दु खित होते हुये रुदन करने लगे थे । वे सभी और राधिका भी रुदन कर रहे थ और फिर मैंने उन्हें समझाया था ॥७४॥ यह शाप का पालन करके आधे क्षण मे ही फिर यहाँ आ जायेगा । फिर वह देवी सुदामा स बोली ह सुदामन् ! तू यहाँ आजा—यह कहकर वह निवारित हुई थी ॥७५॥ गोलोक का एक आधा क्षण पृथिवी मे एक मन्वतन्र होता है । हे जगतो के धाता ! इस प्रकार से यह वचन ध्रुव ही है ॥७६॥ वह ही यह शखचूड है । वह फिर वहा पर ही जायेगा । यह महान् बलिष्ठ-योगीश और सब प्रकार की माया का पूर्ण पण्डित है ॥७७॥

मम शूल गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छथ भारतम् ।
शिव· करोतु सहारं मम शूलेनदानवम् ॥७८॥
ममैव कवच कण्ठे सर्वमङ्गलमङ्गलम् ।
बिभर्त्तिदानव· शश्वत्ससारविजयीतत· ॥७९॥
तत्र ब्रह्मन् स्थिते कण्ठे न कोऽपिहिंसितुक्षम· ।
तद्याञ्चाहिकरिष्यामिविप्ररूपोऽहमेवच ॥८०॥

सतीत्वभगस्ततपत्न्या यत्र काले भविष्यति ।
तत्रैवकालेतन्मृत्युरितिदत्तोवरस्त्वया ॥८१॥
पश्चात् सा देहमुत्सृज्य भविष्यतिप्रियामम ।
इत्युक्त्वाजगतांनाथोददौशूलंहरायच ॥८२॥

अब मेरा शूल ग्रहण करके शीघ्र भारत में जाओ, शिव मेरे शूल से दानव का संहार करे ॥७८॥ वह दानव मेरा ही सर्व मङ्गलों का मङ्गल नामक कवच कण्ठ में धारण करता है इसीलिये वह निरन्तर संसार का विजयी है ॥७९॥ हे ब्रह्मन्! वहाँ उस कवच के कण्ठ में रहते हुये उसे कोई भी मारने में समर्थ नहीं हो सकता है। इस लिये उस की याचना विप्र के रूप वाला होकर मैं ही करूँगा ॥८०॥ उसकी पत्नी का जिस ही समय में सतीत्व का भङ्ग होगा, उसी समय उसकी मृत्यु होगी, ऐसा वर आपने उसे दिया है ॥८१॥ इसके पश्चात् वह देह को त्याग कर मेरी प्रिया हो जायेगी। इतना कहकर जगत् के नाथ ने हर के लिये अपना शूल दे दिया था ॥८२॥

———

२३-शिवेन सह शङ्खचूडस्य युद्धार्थं पुष्पदन्तप्रेरणम्

ब्रह्मा शिवं सनियोज्य संहारे दानवस्य च ।
जगाम स्वालय तूर्णं यथास्थानंमहामुने ॥१॥
चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे ।
तत्र तस्थौ महादेवो देवनिस्तारहेतवे ॥२॥
दूतं कृत्वा पुष्पदन्तं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम् ।
शीघ्रं प्रस्थापयानास शंखचूडान्तिकंमुदा ॥३॥

स चेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं वरम् ।
महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम् ॥४॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तद्द्विगुणं मुने ।
स्फाटिकाकारमणिभिर्निर्माणमणिवेष्टितम् ।
सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम् ॥५॥
अतिक्रम्य नवद्वारं जगामाभ्यन्तरं पुरम् ।
न कैश्च रक्षितं श्रुत्वा दूतरूपं रणस्य च ॥६॥
गत्वा सोऽभ्यन्तरं द्वारं द्वारपालमुवाच ह ।
रणस्य सर्ववृत्तान्तं विज्ञापयितुमीश्वरम् ॥७॥

इस अध्याय मे शिव के साथ शंखचूड के युद्ध के लिये पुष्पदन्त को प्रेरणा का वर्णन किया गया है। नारायण बोले—हे महा मुने ! ब्रह्मा और शिव को दानव के संहार मे नियुक्त करके नारायण यथा स्थान अपने आलय को चले गये थे ॥१॥ चन्द्रभागा नाम वाली नदी के तटपर मनो म वड के पेड के समीप महादेव वहाँ पर देवों के निस्तार करने के लिये स्थित हो गये थे ॥२॥ गन्धर्वों के स्वामी पुष्पदन्त को अपना दूत बनाकर जोकि उनका परम अभीष्ट था उस समय परम प्रसन्नता से शंखचूड के निकट भेज दिया था ॥३॥ वह भी पुष्पदन्त अपने स्वामी की आज्ञा से श्रेष्ठ उस नगर मे शीघ्र ही चला गया था। वह महेन्द्र के नगर से भी उत्कृष्ट था तथा कुबेर के भवन से भी अधिक उत्तम बना हुआ था ॥४॥ हे मुने ! वह शंखचूड का नगर पाँच योजन के विस्तार से विस्तीर्ण था और दीर्घता मे उस से भी दुगुना था। स्फटिक मणि के आकार वाली मणियों से निर्मित एवं मणियों से खूब वेष्टित था। इसका दुर्ग सात परिखाओं से युक्त था ॥५॥ उस पुर के नौ द्वार थे। उन सब द्वारों का अतिक्रमण करके वह पुष्पदन्त अन्दर पुर मे चला गया था। उसे रण का दूत रूप वाला श्रवण करके किसी ने भी रक्षित नही किया था अर्थात् बीच मे ही रोका नही था। फिर वह भीतर के द्वार पर पहुँच कर द्वारपाल से बोला था कि मैं रण का समस्त वृत्तान्त राजा को बताने के लिये आया हूँ। उसने वह

कहकर दूत को आगे आने को बोला था और फिर वह आगे जाकर पहुँच गया तथा उसने परम सुन्दर शखचूड़ को देखा था ॥६-७॥

स च तं कथयित्वा च दूतं गन्तुमुवाच ह ।
स गत्वा शंखचूड़न्तं ददर्श सुमनोहरम् ॥८॥
सभामण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासनस्थितम् ।
मणीन्द्रखचितंचित्ररत्नदण्डसमन्वितम् ॥६॥
रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तं शोभितं सदा ।
भृत्येन मस्तकन्यस्तं स्वर्णच्छत्र मनोहरम् ॥१०॥
सेवितं पार्षदगणैर्व्यजनैः श्वेतचामरैः ।
सुवेश सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम ॥११॥
माल्यानुलेपनं सूक्ष्मवस्त्रञ्च दधतं मुने ।
दानवेन्द्रैः परिवृतं सुवेशैश्च त्रिकोटिभिः ॥१२॥
शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिरस्त्रधारिभिः ।
एवंभूतञ्च तं दृष्ट्वा पुष्पदन्तः सविस्मयः ॥१३॥
उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च ॥१४॥

वहाँ पर पुष्पदन्त ने देखा था कि शंखचूड़ सभा के मध्य में स्थित था। मध्य में एक स्वर्ण निर्मित सिंहासन पर वह बैठा था। वह सिंहासन बड़ी बड़ी उत्तम मणियों से जटित हो रहा था। बड़ा ही विचित्र बना हुआ था तथा रत्नों के दण्डों से युक्त था। वह राजा का आसन रत्नों के विरचित कृत्रिम पुष्पों से प्रशस्त था और सर्वदा शोभा से सम्पन्न रहा करता था। एक भृत्य के द्वारा मस्तक पर सुवर्ण का छत्र लगा हुआ था जोकि बहुत ही सुन्दर था।८-१०। इधर-उधर व्यंजन और श्वेत चामरों के द्वारा पार्षद गण उस राजेश्वर की सेवा कर रहे थे। राजा का बहुत सुन्दर वेश था, वह परम सुन्दर और रत्नों के भूषणों से समलङ्कृत था ॥११॥ हे मुने ! माल्य और अनुलेपनों से समन्वित तथा बहुत सूक्ष्म वस्त्र धारण करने वाला राजा उस पर स्थित था। तीन करोड़ सुन्दर वेशधारी

दानवों से चारों ओर परिवृत था। सौ करोड़ इनके अतिरिक्त अन्य अस्त्रों को धारण किये हुये शूर वहाँ भ्रमण कर रहे थे। इस प्रकार के उस राजेश्वर शङ्खचूड को देखकर पुष्पदन्त बहुत ही विस्मित हो गया था। उसने शङ्खचूड से रण का वृत्तान्त कह दिया था जो कि शङ्कर के द्वारा भेजा गया था ॥१२-१४॥

राजेन्द्र शिवदूतोऽहं पुष्पदन्ताभिधः प्रभो।
यदुक्तं शङ्करेणैव तद् ब्रवीमि निशामय ॥१५॥
राज्यं देहि च देवानामधिकारञ्च साम्प्रतम्।
देवाश्च शरणापन्ना देवेशे श्रीहरौ परे ॥१६॥
दत्त्वा त्रिशूलं हरिणा तव प्रस्थापितः शिवः।
चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले त्रिलोचनः ॥१७॥
विषयं देहि तेषाञ्च युद्धं वा कुरु निश्चितम्।
गत्वा वक्ष्यामि किं शम्भुं तद् भवान् वक्तुमर्हति ॥१८॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा शङ्खचूडः प्रहस्य च।
प्रभातेऽहं गमिष्यामि त्वञ्च गच्छेत्युवाच ह ॥१९॥
स गत्वोवाच तूर्णं तं वटमूलस्थमीश्वरम्।
शङ्खचूडस्य वचनं तदीयं यत् परिच्छदम् ॥२०॥

पुष्पदन्त ने कहा—हे राजेन्द्र! मैं पुष्पदन्त नाम वाला शिव का दूत हूँ। हे प्रभो! भगवान शङ्कर ने जो कुछ कहा है उसे मैं कहता हूँ, आप श्रवण करें ॥१५॥ अब देवों को राज्य और अधिकार दे देवें जो आपने उनका छीन लिया है। देवगण परात्पर श्री हरि देवेश के शरण में पहुँच गये हैं ॥१६॥ हरि ने त्रिशूल प्रदान कर शिव को आपके लिये प्रस्थापित कर दिया है। वह त्रिलोचन इस समय चन्द्र भागा नदी के तटपर एक वट मूल के निकट विराजमान हैं ॥१७॥ या तो आप देश उनको देवें या निश्चित होकर युद्ध करें। अब जाकर शम्भु से क्या कहूँगा यह कृपा कर मुझे बता देने के योग्य होते हैं ॥१८॥ दूत के इस वचन को सुनकर शङ्खचूड हँस दिया था और कहा कि मैं कल प्रातः काल आता

हूँ। अब तुम चले जाओ ॥१९॥ वह पुष्पदन्त शीघ्र ही आकर वट के मूल में स्थित शिव से शंखचूड़ के जो वचन कहे हुए थे उनको उसने कह दिया था ॥२०।

हे प्राणनाथ हे बन्धो तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम् ।
हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवनंक्षणम् ॥२१॥
भुङ्क्ष्व जन्मसमाधानं यद्वै मनसि वाञ्छितम् ।
पश्यामि त्वां क्षणं किञ्चिल्लोचनाभ्यां पिपासिता ॥२२॥
आन्दोलयन्ति प्राणा मे मनोदग्धञ्च सन्ततम् ।
दु स्वप्नञ्च मया दृष्टञ्चाद्यैव चरमे निशि ॥२३॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः ।
उवाच वचनं प्राज्ञोहितं सत्यंयथोचितम् ॥२४॥
कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनिबन्धने ।
शुभं हर्षं सुखं दुःखं भयं शोकममङ्गलम् ॥२५॥
काले भवन्ति वृक्षाश्च स्कन्धवन्तश्च कालतः ।
क्रमेण पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च कालतः ॥२६॥
ते सर्वं फलिनः काले काले कालं प्रयान्ति च ।
भवन्ति काले भूतानि काले कालं प्रयान्ति च ॥२७॥
काले भवन्ति विश्वानि काले नश्यन्ति सुन्दरि ॥२८॥

उस समय जबकि वह शंखचूड़ युद्ध के लिये जा रहा था, तुलसी उससे कहने लगी थी— हे प्राणनाथ ! हे बन्धो ! आप मेरे वक्षःस्थल पर क्षण भर के लिये स्थित हो जावे । हे प्राणों के अधिष्ठाता देव । मेरे जीवन क्षण भर के लिये रक्षित करें ॥२१॥ आप जन्म के समाधान का भोग करें। जोभी मन में इच्छित है मैं अपने प्यासे नेत्रों से आपको क्षण भर तक देखती हूँ ॥२२॥ मेरे प्राण आन्दोलन करते है और मेरा मन निरंतर दग्ध हो रहा है । मैंने आज ही निशा के अन्तिम समय में एक बहुत ही बुरा स्वप्न देखा है। तुलसी के ऐसे वचन का श्रवण कर नृपेश्वर ने खा पीकर प्राज्ञ नृपेश्वर ने परम हित-सत्य और यथोचित वचन कहा था ॥२३-२४॥ शंख चूड़ ने

कहा—कर्मों के भोग के निबन्धन में काल के द्वारा सब योजित किया गया है। शुभ-हर्ष सुख दुःख-भय-शोक और मङ्गल ये सभी काल के द्वारा हुआ करते हैं। वृक्ष जिस तरह समय आने पर अपने आप ही फल तथा स्कन्ध वाले काल वश होते हैं। वृक्षों में पुष्प और फल काल के द्वारा ही होते हैं॥२५-२६॥ वे सभी समय आने पर ही फल वाले होते हैं और काल में समाप्त हो जाया करते हैं। इसी प्रकार से ये प्राणी भी समय पर होते हैं और काल में ही समाप्त हो जाते हैं। हे सुन्दरि! ये समस्त विश्व भी काल वश समुत्पन्न होते और नष्ट हुआ करते हैं॥२८-२८॥

काले सृजति स्रष्टा च पाता पाति च कालतः।
संहर्त्ता संहरेत् कालेनञ्चरन्तिक्रमेण च॥२९॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतेः परः।
स्रष्टा पाता च संहर्त्ता स कृष्णः कालेन गजदा॥३०॥
काले स एव प्रकृतिं निर्माय स्वेच्छयापभुः।
निर्माय प्राकृतान्सर्वान्विश्वस्थांश्चचराचरान्॥३१॥
आब्रह्मस्तम्भपर्य्यन्तं सर्वं कृत्रिममेव च।
प्रवदन्ति च कालेन नश्यत्यपि हि नश्वरम्॥३२॥
भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्।
सर्वेशं सर्वरूपञ्च सर्वात्मनन्तमीश्वरम्॥३३॥
जलं जलेन सृजति जलं पाति जलेन च।
हरेज्जलं जलेनैव तं कृष्णं भज नन्दनम्॥३४॥
यस्याज्ञया वाति वातः शीघ्रगामी च सन्ततम्।
यस्याज्ञया च तपनस्तपत्येव च सारणम्॥३५॥
अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ च न पण्डितः।
सुखं दुःखं भ्रमत्येव चक्रनेमिक्रमेण च॥३६॥

इस सृष्टि का सृजन करने वाला स्रष्टा भी काल आने पर सृजन-पालन किया करता है। जो इसका संहार करने वाला है वह भी समय

आने पर संहार किया करता है। इसी क्रम से ये सभी चला करते हैं ॥२९॥ ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि का ईश्वर जो प्रकृति से भी पर है, सर्वदा पूर्ण अंश से सृष्टा-पाता और संहर्त्ता वह भी होता है ॥३०॥ वह प्रभु भी काल में ही प्रकृति का स्वेच्छा से निर्माण करता है और विश्वों में स्थित समस्त प्राकृतों का जो चर एवं अचर हैं निर्माण किया करता है ॥३१॥ यह ब्रह्म स्तम्भ पर्यन्त समस्त कृत्रिम ही है। यह समस्त नाशवान् काल आने पर नष्ट हो जाया करता है और कुछ भी नहीं करता है, ऐसा कहते हैं।३२॥ हे सुन्दरि! त्रिगुण से भी पर सत्य स्वरूप परब्रह्म राधा के ईश का भजन करो, वही सबका ईश है, सर्व रूप है—सबकी आत्मा है और अनन्त ईश्वर है ॥३३॥ जो जल से जल का सृजन करता है और जल से जल का पालन करता है तथा जल में ही जल का हरण किया करता है, उस कृष्ण का निरन्तर भजन करो ॥३४॥ जिसकी आज्ञा से यह वायु वहन करता है और शीघ्रगामी होता है और सर्वदा जिसके आदेश से यह सूर्य यथाक्षण तपता रहता है, उसका ही भजन करना चाहिये ॥३५॥ जो अज्ञानी होते हैं वही शोक तथा विपत्ति के समय कातर हुआ करते हैं। पण्डित कभी नहीं होते हैं। पहिये की नेमि का जो ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर जाने-आने का क्रम होता है, जबकि पहिया घूमता है, उसी क्रम से इस संसार में सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आया-जाया करते हैं ॥३६॥

२४–शिवेन सह युद्धार्थं शङ्खचूडस्य कथोपकथनम्।

श्रीकृष्णं मनसा ध्यात्वा राजा कृष्णपरायणः।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय पुष्पतल्पान्मनोहरात् ॥१॥
रात्रिवासः परित्यज्य स्नात्वा मङ्गलवारिणा।
धौतवस्त्रं परिधाय कृत्वा तिलकमुज्ज्वलम् ॥२॥

चकाराह्निकमावश्यमभीष्टदेववन्दनम् ।
दध्याज्य मधु लाजञ्च ददर्श वस्तु मङ्गलम् ॥३॥
रत्नश्रेष्ठ मणिश्रेष्ठ वस्त्रश्रेष्ठञ्च काञ्चनम् ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यञ्च नारद ।४॥
अमूल्यरत्न यत्किञ्चित् मुक्तामणिवराहीरकम् ।
ददौ विप्राय गुरवे यात्रामङ्गलहेतवे ॥५॥
भृत्यद्वारा क्रमेणैव चकार सैन्यसञ्चयम् ।
अश्वानाञ्च त्रिलक्षेण पञ्चलक्षण हस्तिनाम् ॥६॥
रथानामयुतनैवधानुष्काणात्रिकोटिभि· ।
त्रिकोटिभिश्चर्मिणाञ्चशूलिनाचत्रिकोटिभि ॥७।
कृता सेनापरिमिता दानवेन्द्रेण नारद ।
तस्यां सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदा ॥८॥
त्रिंशदक्षौहिणी वाद्यभाण्डौघञ्च चकार ह ।
वहिर्बभूव शिविरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥९॥

इस अध्याय मे युद्ध के लिये शिवके साथ शखचूड के कथोपकथन का वर्णन किया गया है । नारायण ने कहा—कृष्ण परायण राजा ने मन से श्रीकृष्ण का ध्यान किया और परम मनोहर पुष्पों की शय्या से वह ब्राह्म मुहूर्त मे उठ गया था । फिर उसने रात्रि के वस्त्रो का त्याग करके मगल जल से स्नान किया था । इसके अनन्तर धौत वस्त्र धारण कर उसने उज्ज्वल तिलक किया था ॥१-२॥ इसके उपरान्त उसने आवश्यक आह्निक और अभीष्ट देव को वन्दन किया था । फिर उसने दधि-घृत मधु-लाजा इन मगल वस्तुओ का दर्शन किया ॥३॥ इसके पश्चात् हे नारद ! उस राजा ने ब्राह्मणो को भक्ति भाव से और नित्य की ही भाँति श्रेष्ठ रत्न, उत्तम मणि सुन्दर वस्त्र तथा सुवर्ण दान मे दिये थे ॥४॥ अमूल्य रत्न और जो कुछ मुक्ता, माणिक्य और हीरा उनको अपने गुरुदेव ब्राह्मण के लिये अपनी यात्रा के मगल के लिये दान दिया था ।५॥

फिर उस राजा ने भृत्यों के द्वारा अपनी सेवा को एकत्रित किय; जिसम तीन लाख अश्व और पाँच लाख हाथी थे ।।६।। राजा की उस सेना में दश हजार रथ, तीन करोड़ धनुपधारी तथा तीन-तीन करोड़ चर्मी एवं शूली थे ।।७।। हे नारद ! उस दानवों के राजा ने अपनी परिमित सेना बना ली थी और उस सेना मे युद्ध शास्त्र का महा पण्डित एक सेनापति नियुक्त किया गया था ।।८।। इस प्रकार से तीस अक्षौहिणी वह सेना थी । उसने फिर वाद्यभाण्ड का समूह किया था । मन से श्री हरि का वह स्मरण करता हुआ अपने शिविर से वाहर आया था ।।९।।

रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानमारुराह सः ।
गुरुवर्गान् पुरस्कृत्य प्रययौ शङ्करान्तिकम् ।।१०।।
तत्र गत्वा शङ्खचूडो ददर्श चन्द्रशेखरम् ।
वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।।११।।
कृत्वा योगासनं स्थित्वा मुद्रायुक्तञ्च सस्मितम् ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं जवलन्तं ब्रह्मतेजसा ।।१२।।
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्वरं वरम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभं जटाजालाञ्च विभ्रतम् ।।१३।।
त्रिनेत्रं पंचवक्त्रंच नागयज्ञोपवीतिनम् ।
मृत्युञ्जयं मृत्युमृत्य विश्वमृत्युकरं परम् ।।१४।।
भक्त मृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोरमम् ।
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।।१५।।

राजा स्वयं रत्नों के द्वारा निर्मित विमान पर समारूढ़ हुआ था । वह अपने गुरु वर्गों को आगे करके शङ्कर के समीप आ गया था ।।१०।। वहां जाकर शंखचूड़ ने भगवान चन्द्रशेखर को देखा था जो एक वट के मूल के पास स्थित थे और करोड़ सूर्यों के समान प्रभा वाले थे । उस समय भगवान शंकर योगासन लगाकर मुद्रा से युक्त मन्द मुस्कान से समन्वित

सन पर विराजमान हो रहे थे। शिवका वर्ण शुद्ध स्फटिक मणि के समान था और वे ब्रह्म तेज से देदीप्यमान थे ॥११-१२॥ शिव ने त्रिशूल और पट्टिश धारण कर रक्खे थे तथा व्याघ्र का चर्म पहिने थे। मस्तक पर तपे हुये सुवर्ण के समान जटाओं का भार रखा हुआ था। तीन नेत्र वाले—पाँच मुखों से युक्त और नागों का यज्ञोपवीत धारण किये हुए स्थित थे। उनका स्वरूप मृत्यु को जीतने वाला मृत्यु के मृत्यु-इस समस्त विश्व को मृत्यु के करने वाला-परम भक्तों की मृत्यु का हरण करने वाला शान्त था। शिव ने गौरी के कान्त-परम सुन्दर तपों के फल देने वाले और समस्त सम्पत्तियों के प्रदान करने वाले हैं ॥१३-१५॥

विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित्।
मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवश्चातिधार्मिकः ॥१६॥
कश्यपश्चापि तत्पुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापतिः।
दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश ॥१७॥
तास्वेका च दनुः साध्वी तत् सौभाग्येन च वर्द्धिता।
चत्वारिंशद्दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोज्ज्वलाः ॥१८॥
तेष्वेकोविप्रचित्तिश्च महाबलपराक्रमः।
तत्पुत्रो धार्मिको दंभो विष्णुभक्तोजितेन्द्रियः ॥१९॥
जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम्।
शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥२०॥
तदा त्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम्।
पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वष्टसु धार्मिकः ॥ २१ ॥

श्री महादेव ने दानवेन्द्र से कहा—ब्रह्मा जगतों के विधाता हैं, धर्म के पिता हैं और धर्म के तत्व को जानने वाले हैं। उनका पुत्र मरीचि भी परम वैष्णव तथा अतिधार्मिक है। उस मरीचि का पुत्र कश्यप ऋषि भी परम धर्मिष्ठ प्रजापति है। प्रजापति दक्ष ने प्रीति से और भक्ति के साथ उन को अपनी तेरह कन्यायें दी थीं ॥१६-१७॥ उन्हीं तेरह कन्या में

में एक दनु नाम धारिणी परम साध्वी कन्या थी जोकि सौभाग्य से वर्जित हुई थी। उस दनु के चालीस पुत्र थे जोकि तेज से अत्युज्ज्वल दानव हुये हैं ॥१८॥ उन्हीं चालीस पुत्रों में एक विप्रचित्ति था जो महान बल और पराक्रम से युक्त था। उसका पुत्र परम धार्मिक दम्भ था जो विष्णु का भक्त और जितेन्द्रिय हुआ था।१६। उसने पुष्कर में एक लाख वर्ष तक परम मन्त्र का जाप किया था। शुक्राचार्य को अपना गुरु बना कर परमात्मा श्रीकृष्ण के मन्त्र का जप किया था ॥२०॥ उस समय तुझे अपने पुत्र के रूप मे प्राप्त किया था। पहिले तू आठ प्रमुख श्रीकृष्ण के गोपों में एक धार्मिक गोप और श्रीकृष्ण पार्षद था ॥२१॥

अधुना राधिकाशापात् भारते दानवेश्वरः।
आब्रह्मस्तम्भपर्य्यन्तं भ्रमं मेनेच वैष्णवः ॥ २२ ॥
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यं हरेरपि।
दीयमानं न गृह्णन्तिवैष्णवाः सेवनंविना ॥ २३ ॥
ब्रह्मात्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः।
इन्द्रत्व वा कुवेरत्वं न मेने गणनासु च ॥ २४ ॥
कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमे।
देहि राज्यञ्च देवानां मत्प्रीतिं कुरु भूमिप ॥ २५ ॥
सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तिष्ठन्तु स्वेपदे।
अलं भ्रातृविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजा ॥ २६ ॥
यानिकानिचपापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
ज्ञातिद्रोहस्यपापस्यकलां नार्हन्तिषोडशीम् ॥ २७ ॥
स्वसम्पदाञ्च हानिञ्च यदि राजेन्द्र मन्यसे।
सर्वावस्थासु समता केषां याति च सर्वदा ॥ २८ ॥

इस समय श्री राधिका के शाप से ही तू भारत में दानवों का राजा हुआ है। जो वैष्णव होता है वह तो आब्रह्म स्तम्भ पर्यन्त सब को भ्रम ही मानता है ॥२२॥ वह वैष्णव सालोक्य-सार्ष्टि-सारूप्य-सामीप्य

इन चारों प्रकार की मुक्तियों के हरि के साथ एकरूपता होने की दोपना होने पर भी सेवा के बिना वैष्णव लोग ग्रहण नहीं किया करते हैं ॥२३॥ वैष्णव ब्रह्मत्व और अमरत्व को भी तुच्छ ही माना करता है। वह इन्द्रासन के पद को तथा कुबेर बन जाने को किसी गणना में नहीं रखता है ॥२४॥ हे राजेन्द्र! तू तो कृष्ण का भक्त है। तुझे देवों के पद और अधिकार के विषय में यह क्या भ्रम हो गया है? हे भूमिप! देवों के राज्य को दे दो और मेरी प्रसन्नता का सम्पादन करो ॥२५॥ तू अपने राज्य में सुख पूर्वक निवास कर उनका सुखोपभोग कर और देवगण अपने पद पर स्थित रहें। भाइयों के साथ विरोध मत करो क्योंकि आप सभी लोग कश्यप के ही वंश में जन्म ग्रहण करने वाले हैं ॥२६॥ ब्रह्म हत्यादिक जो भी महापातक हैं वे सब ज्ञातिद्रोह की एक सोलहवीं कला के समान भी नहीं हुआ करती हैं अर्थात् यह एक महान् पाप है ॥२७॥ हे राजेन्द्र! यदि तू अपनी सम्पत्तियों की हानि मानता है तो समझले सभी अवस्थाओं में समता सर्वदा किसकी होती है? अर्थात् किसी की भी नहीं हुआ करती है ॥२८॥

त्वयायत्कथितं नाथ सर्वंसत्यं च नानृतम्।
तथापि किञ्चिद्याथार्थ्यं श्रूयतां मन्निवेदनम् ॥ २९ ॥
ज्ञातिद्रोहे महत्पाप त्वयोक्तमधुनात्र यत्।
गृहीत्वा तस्यसर्वस्वंकुत प्रस्थापितोबली ॥ ३० ॥
मया समुद्धृतं सर्वमैश्वर्यं विक्रमेण च।
सतुलाच्च समुद्धर्तुं नाल सोऽपि गदाधर ॥ ३१ ॥
सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्चहिंसित.।
शुम्भादयश्चासुराश्च कथ देवैर्निपातिता. ॥ ३२ ॥
पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः।
क्लेशभाजो वयं तत्र ते: सर्वंफलभाजनं ॥ ३३ ॥
तनावयोर्विरोधे च गमनं निष्फलं तव।
समसम्बन्धिनोर्बन्धो रोलरस्य महात्मनः ॥३४॥

इयं ते महती लज्जा स्पर्द्धास्माभिः सहाधुना ।
ततोऽधिकाचसमरे कीर्त्तिहानिः पराजये ॥ ३५ ॥
शङ्खचूड़वचः श्रुत्वा प्रहस्य च त्रिलोचनः ।
यथोचितं सुमधुरमुवाच दानवेश्वरम् ॥ ३६ ॥

शंखचूड़ ने कहा—हे नाथ ! आपने जो कुछ भी कहा है वह सब अक्षरशः सत्य है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है । तो भी कुछ यथार्थ बात मेरे द्वारा निवेदन की गई हुई का आप श्रवण करने की कृपा करें ॥२९॥ आपने जो अभी-अभी यह कहा है कि ज्ञाति वालों से द्रोह करना एक महान पाप होता है तो यह बताइये बला उसका सर्वस्व लेकर कहाँ प्रस्थापित हो गया था ? मैंने तो समस्त ऐश्वर्य विक्रम के द्वारा प्राप्त किया है । गदा पर तो सुतल से भी वह समुद्धार करने को समर्थ नहीं हो सकता था ॥३०-३१॥ देवों ने भाई के साथ हिरण्याक्ष को कैसे मार दिया था ? और शुम्भ आदि असुर देवों ने क्यों मार दिये थे ? ॥३२॥ पहिले समुद्र मन्थन के समय देवों ने अमृत का भक्षण कर लिया था । हम सभी उस मन्थन के क्लेश को भोगने वाले थे । उसमें हम सभी तो फल प्राप्त करने के पात्र थे ॥३३॥ परमात्मा श्री कृष्ण का यह विश्व एक क्रीड़ा करने का आधार है । वह जिस किसी के लिये उसका ऐश्वर्य दे दिया करते हैं, यह देवों और दानवों का वाद सदा ही होने वाला है और नैमित्तिक है । उनका पराजय और जय और हमारा जय-पराजय समय पर क्रम से होता रहता है ॥ इसलिये हमारे इस विरोध में आपका गमन निष्फल ही है क्योंकि आपका तो सब से समान सम्बन्ध है । आप ईश्वर और महान् आत्मा वाले सबके बन्धु हैं ॥३४-३६॥

युष्माभिः सह युद्धं मे ब्रह्मवंश समुद्भवैः ।
का लज्जा महती राजन्नकीर्तिर्वा पराजये ॥ ३७ ॥
युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च ।
हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप ॥ ३८ ॥

हिरण्याक्षस्य युद्धञ्च पुनस्तेन गदाभृता ।
त्रिपुरै सह युद्धञ्च मया चापि पुराकृतम् ॥ ३६ ॥
सर्वैश्वर्य्या सर्वमातु प्रकृत्याञ्च बभूव ह ।
सह शुम्भादिभि. पूर्वं समर परमाद्भुतम् ॥ ४० ॥
पार्षदप्रवरस्त्वञ्च कृष्णस्य परमात्मन. ।
ये ये हताश्च ते दैत्या नहि केऽपित्वया समा ॥ ४१ ॥
का लज्जा महती राजन् मम युद्ध त्वयासह ।
सुराणा शरणस्यैव प्रेपितस्य हरेरहो ॥ ४२ ॥
देहि राज्यञ्च देवाना वाग्व्ययैकिप्रयोजनम् ।
युद्ध त्व कुरुमत्सार्द्धमितिमेनिश्चितवच ॥ ४३ ॥
इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च नारद ।
उत्तस्थौ शङ्खचूडश्च स्वामात्यै. सह सत्वर ॥ ४४ ॥

यह तो आपके लिये महान लज्जा की बात है और इस समय हमारे साथ स्पर्धा है। और समर हुआ तो उसमे यदि आपकी पराजय हुई तो आपकी और भी अधिक कीर्ति की हानि होगी ॥३७॥ त्रिलोचन महादेव को शङ्खचूड के इन वचनो का श्रवण करके हँसी आ गई थी और फिर वे उस दानवेश्वर से यथोचित सुमधुर वचन बोले ॥३८॥ श्री महादेव ने कहा—ब्रह्मा वश न जन्म लेने वाले तुम्हारे साथ मेरा युद्ध होता है तो इसमे लज्जा की क्या बात है ? और यदि पराजय मेरी होती है तो उस मे हे राजन ! मेरी अकीर्ति भी क्या है ? ॥३९॥ आदि काल मे तो हरि का ही मधु तथा कैटभ के साथ युद्ध हुआ था। हे नृप ! और हिरण्यकशिपु का उस आत्मा के साथ युद्ध हुआ था ॥४०॥ फिर उस गदा धारी के साथ हिरण्याक्ष का युद्ध हुआ था। पहिले मेरे साथ भी त्रिपुरो के साथ युद्ध हुआ था ॥४१॥ समस्त ऐश्वर्य सबकी माता प्रकृति के ही थे। शुम्भ आदि के साथ पहिले परम अद्भुत युद्ध हुआ था ॥४२॥ तू तो परमात्मा श्रीकृष्ण का परम श्रेष्ठ पार्षद है। जो-जो भी दैत्य मारे गये हैं

वे कोई भी तेरे समान नहीं थे ॥४३॥ हे राजन् ! तेरे साथ मेरे युद्ध में क्या बड़ी लज्जा की बात है ? मुझे तो इस समय सुरों के रक्षक हरि का भेजा मानो, अब तुम देवों देवों के राज्य को दे दो, इस वाणी के व्यय करने में क्या प्रयोजन की सिद्धि होगी अर्थात् इस तरह युक्ति-प्रत्युक्ति द्वारा विवाद करने से कोई भी लाभ नहीं होगा। तू मेरे साथ युद्ध कर, मेरा यह निश्चित वचन है। हे नारद ! शङ्कर इतना कहकर उस समय विराम को प्राप्त हो गये थे और शङ्खचूड़ अपने मन्त्रियों के साथ शीघ्रता से खड़ा हो गया था ॥४४॥

———

२५—शिवशङ्खचूड़युद्धम् ।

शिवस्तत्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः ।
ययौ स्वयञ्च समरं सगणैः सहनारद ॥ १ ॥
शङ्खचूड़ः शिव द्दष्ट्वा विमानादवरुह्य च ।
ननाम परया भक्त्या दण्डवत् पतितो भुवि ॥ २ ॥
तं प्रणम्य च वेगेन विमानमारुरोह सः ।
तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम् ॥ ३ ॥
शिवदानवयोर्युद्धं पूर्णमब्दं बभूव ह ।
न बभुवतुर्ब्रह्मन्ननयोर्जयपराजयौ ॥ ४ ॥
न्यस्तशस्त्रश्च भगवान् न्यस्तशस्त्रश्च दानवः ।
रथस्थः शंखचूड़श्चवृषस्थोवृषभध्वजः ॥ ५ ॥
दानवानाञ्च शतकमुद्वृत्तञ्च बभूव ह ।
रणे ये ये मृताः शम्भुर्जीवयामास तान्विभुः ॥ ६ ॥
ततो विष्णुर्महामायावृद्धब्राह्मणरूपधृक् ।
आगत्य च रणस्माथानमुवाच दानवेश्वरम् ॥ ७ ॥

इस अध्याय मे शिव और शङ्खचूड के युद्ध का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा—हे नारद ! शिव ने जोकि तत्वज्ञान के महा पण्डित है, शङ्खचूड के तत्ववचन को सुनकर वे अपने गणो के साथ स्वय युद्ध करने को गये थे ॥१॥ शङ्खचूड ने शिव को देखा तो स्वय विमान से नीचे उतर पडा फिर उसने परम भक्ति से भूमि तल मे पतित होकर दण्ड की भांति शिवको प्रणाम किया था ॥२॥ उनको प्रणाम करके फिर वह वेग के साथ विमान पर समारूढ हो गया था और शीघ्र ही सन्नाह किया था तथा उसने दुर्वह धनुष ग्रहण कर लिया था ॥३॥ वह शिव और दानवो का युद्ध पूरे एक वर्ष तक हुआ था। रण मे जो-जो मृत हुये थे, विभु ने उनको जीवित कर दिया था। हे ब्रह्मन ! इन दोनो के युद्ध मे जय और पराजय कुछ भी नही हुआ था ॥४॥ भगवान शम्भु ने और दानव ने दोनो ने आसन छोड दिये थे। रथ मे तो शङ्खचूड स्थित था और वृषभध्वज शिवसमारूढ थे। दानवो का शतक उद्वृत हो गया था।५-६। इसके पश्चात् महा माया वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करने वाले विष्णु वहाँ आये थे और उस रण के स्थान मे आकर वह दानवेश्वर से बोले ॥७॥

देहि भिक्षाञ्च राजेन्द्रमह्य विप्रायसाम्प्रतम् ।
त्वसर्वसम्पदादातायन्मेमनसिवाञ्छितम् ॥ ८ ॥
निराहाराय वृद्धाय तृषितायातुराय च ।
पश्चात् त्वाकथयिष्यामिपुर सत्यञ्चकुर्विति ॥९ ॥
ओमित्युवाच राजेन्द्र प्रसन्नवदनेक्षणः ।
कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाचेति मायया ॥१० ॥
तत् श्रुत्वा दानवश्रेष्ठो ददौ कवचमुत्तमम् ।
गृहीत्वा कवच दिव्य जगाम हरिरेव च ॥ ११ ॥
शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसी प्रति ।
गत्वा तस्या माययाच वीर्याधानञ्चकार ह ॥ १२ ॥

अथ शम्भुर्हरेः शूलं जग्राह दानवं प्रति ।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डशतकप्रभमुज्ज्वलम् ॥ १३ ॥
नारायणाधिष्ठिताग्रं ब्रह्माधिष्ठितमध्यगम् ।
शिवाधिष्ठितमूलञ्चकालाधिष्ठितधारकम् ॥ १४ ॥

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—हे राजेन्द्र ! मुझ वृद्ध ब्राह्मण के लिये भिक्षा दो क्योंकि आप तो समस्त सम्पदाओं के प्रदान करने वाले हैं । मेरे मन में जो भी कुछ इच्छित है, वही मुझे देने की कृपा करें ॥८॥ मैं निराहार हूँ - वृद्ध हूँ - तृषित हूँ और आतुर हूँ , मुझे ऐसी दशा वाले के पहिले भिक्षा दो, इसके पश्चात् मैं कहूँगा । पहिले अपना सत्य वचन मुझे दे दो कि मैं जो याचना करूँगा वह आप मुझे देंगे ॥ ९ ॥ राजेन्द्र शङ्खचूड़ ने प्रसन्न सुख और नेत्र वाला होकर उस वृद्ध ब्राह्मण से 'ॐ'—ऐसा कहा था अर्थात् तुम जो भी याचना करोगे उसे मैं तुमको निंश्चित रूप से दूँगा, ऐसी स्वीकृति का वचन दिया था । तव वृद्ध ब्राह्मण ने कहा मै तुम्हारे कवच की याचना करता हूँ ॥९-१०॥ यह श्रवण करके उस दानवों में श्रेष्ठ ने तुरन्त ही वह उत्तम कवच उसे दे दिया था । उस कवच को ग्रहण कर के हरि अपने दिव्य लोक को चले गये थे ॥११॥ इसके उपरान्त शङ्खचूड़ का रूप धारण करके वे तुलसी के समीप गये थे और वहाँ जाकर माया से उस में वीर्य का आधान कर दिया था ॥१२॥ इसके अनन्तर शम्भु ने दानव के प्रति हरि का दिया हुआ शूल ग्रहण किया था । वह शूल ग्रीष्म काल के मध्याह्न समय के मार्त्तण्ड शतक की प्रभा के समान उज्ज्वल था ॥१३॥ उसका अग्रभाग नारायण से अधिष्ठित था तथा मध्यभाग ब्रह्मा से अधिष्ठित था और शिव से अधिष्ठत उसकी धार थी ॥१४॥

किरणावलिसंयुक्तं प्रलयाग्निशिखोपमम् ।
दुर्निवार्य्यञ्च दुर्द्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥ १५ ॥

तेजसा चक्रतुल्यञ्च सर्वशस्त्रविघातकम् ।
शिवकेशवयोरन्य दुर्वहञ्च भयङ्करम् ॥ १६ ॥
धनु सहस्र दीर्घेण प्रस्थेन शतहस्तकम् ।
सजीव ब्रह्मरूपञ्च नित्यरूपमनिर्मितम् ॥ १७ ॥
संहर्त्तुं सर्वब्रह्माण्डमलञ्च ह्यवलीलया ।
चिक्षेप घूर्णन कृत्वा शङ्खचूडे च नारद ॥ १८ ॥
राजा चाप परित्यज्यश्रीकृष्णचरणाम्बुजम् ।
ध्यानञ्चकारभक्तयाचकृत्वायोगासनधिया ॥ १९ ॥
शूलञ्च भ्रमण कृत्वा पपातदानवोपरि ।
चकार भस्ममात्तञ्च सरथञ्चावलीलया ॥ २० ॥
राजा धृत्वा दिव्यरूप किशोरगोपवेशकम ।
द्विभुज मुरलीहस्तरत्नभूषणभूषितम् ॥ २१ ॥

वह शूल किरणों की अवलि से संयुक्त था, वह प्रलय की अग्नि की शिखा के समान दुर्निवार्य-दुर्धर्ष-अव्यर्थ और वैरियो के घात करने वाला था ॥१५॥ वह शूल तेज से सुदर्शन चक्र के समान था और समस्त शास्त्रो का विघातक था। यह शिव और केशव से अन्य के लिये बहुत ही दुर्वह तथा भयङ्कर था ॥१६॥ यह शूल दीर्घ प्रस्थ से सहस्र धनुषो का सौ हाथ पर नाशक था। यह सजीव-ब्रह्मरूप-नित्य और अनिर्मित था ॥१७॥ हे नारद ! यह शूल लीला से ही इस समस्त ब्राह्मण को संहार करने मे समर्थ था। उस शूल को घुमा करके शङ्खचूड पर प्रक्षिप्त किया था ॥१८॥ उस समय राजा ने चापका परित्याग करके श्रीकृष्ण के चरण कमल का ध्यान किया था और भक्ति पूर्वक योगासन करके एकान्त बुद्धि से ध्यान में मन लगा दिया था ॥१९॥ शूल ने चक्कर खाकर उस दानव के ऊपर पात किया था, और लीला से ही रथके सहित उसको भस्मकर दिया था ॥२०॥ इसके पश्चात राजा ने एक किशोर गोप वेश वाला दिव्य रूप धारण कर लिया था जोकि मुरली हाथ मे लिये हुये था और रत्नो के भूषणो से विभूषित था ॥२१॥

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं वेष्ठितं गोपकोटिभिः।
गोलोकादागतं यानमारुह्य तत् पुरं ययौ ॥ २२ ॥
गत्वा ननाम शिरसा राधामाधवयोर्मुने ।
भक्तया तच्चरणाम्भोजं रासे वृन्दावने वने ॥
सुदामानं तौ च दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणौ ॥ २३ ॥
तदा च चक्रतुः क्रोडे स्नेहेन परिसप्लुतौ ।
अथ शूलञ्च वेगेन प्रययौ शूलिन करम् ॥ २४ ॥
शङ्करस्तेन शूलेन शुलपाणिर्बभुव सः ।
स शिवस्तेन शूलेन दानवस्यास्थिजालकम् ॥ २५ ॥
प्रेम्णा च प्रेरयामास लवणोदे च सागरे ।
अस्थिभिः शंखचूड़स्य शंखजातिर्बभुव ह ॥ २६ ॥
नानाप्रकाररूपा च शश्वत् पूता सुरार्चने ।
प्रशस्तंशङ्खतोयञ्चदेवानां प्रीतिदं परम् ॥ २७ ॥

उसी समय एक विमान गोलोक धाम से आया था जो उत्तम रत्नों से निर्मित था तथा करोड़ों गोपियों से वेष्टित था। उस यान पर वह समारूढ़ होकर गोलोक में चला गया था ॥२२॥ हे मुने ! वहाँ पहुँच कर उसने राधा माधव के चरणों में शिर से प्रणाम किया था। भक्तिपूर्वक वृन्दावन के वन में रास में उनके चरण कमल की वन्दना की थी, वहाँ श्री राधा और माधव दोनों ने सुदामा को देखा तो परम प्रसन्नता प्राप्त की थी ।२३। उस समय उन दोनों ने बड़े ही स्नेह के साथ उस सुदामा को अपनी गोद में बिठा लिया था और स्नेह से संपरिप्लुत हो गये थे इसके पश्चात वह शूल वेग से शूली के हाथ में चला गया था ॥२४॥ उसी समय से उस शूल को हाथ में धारण करने से शंकर का नाम शूलपाणि हो गया था। उस शिव ने उस शूल से दानव के अस्थि जाल को प्रेम लवणोदधि सागर में प्रेरित कर कर दिया था। उन्हीं शंखचूड़ की अस्थियों से समुद्रों में शंख जाति की समुत्पत्ति हुई थी ॥२५-२६॥ वे शंख अनेक रूपों वाले थे जोकि निरन्तर देवों की अर्चना में परम पवित्र माने जाते हैं। शंख का जल परम प्रशस्त

माना जाता है और यह देवों का परम प्रीति देने वाला होता है अर्थात् देवगण इससे अत्यन्त अधिक प्रसन्न होते हैं ॥२७॥

२६—तुलसी वृक्षस्य तत्पत्राणाञ्च माहात्म्यम् ।

हे नाथ ! ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च ।
छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः ॥ १ ॥
पाषाणसदृशस्त्वञ्च दयाहीनो यतः प्रभो ।
तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भुवि देव भवाधुना ॥२॥
ये वदन्ति दयासिन्धुं त्वान्ते भ्रान्ता न संशयः ।
भक्तो विनापराधेन परार्थेच कथं हतः ॥ ३ ॥
दुर्वृत्त त्वञ्च सर्वज्ञो न जानासि परव्यथाम् ।
अतस्त्वमेकजनुषि स्वमेव विस्मरिष्यति ॥ ४ ॥
इत्युक्तवा च महासाध्वी निपत्य चरणे हरेः ।
भृशं रुरोद शोकार्त्ता विललाप मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

तपस्त्वया कृतं साध्वि मदर्थे भारते चिरम् ।
त्वदर्थे शङ्खचूडश्च चकार सुचिरं तपः ॥ ७-८ ॥

इस अध्याय में तुलसी वृक्ष का और उसके पत्रों के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। तुलसी ने कहा—हे नाथ ! आपके हृदय में दया बिल्कुल भी नहीं है, और आपका हृदय पाषाण के सदृश अत्यन्त कठोर है, आपने छल से धर्म का भङ्ग करके मेरे स्वामी का हनन किया है। हे प्रभो ! आप पाषाण के ही समान दया से हीन हैं। इसलिये मैं कहती हूँ कि अब आप इस भूतल में पाषाण रूप देव हो जावें ॥१-२॥ जो

आपको दया का समुद्र कहा करते हैं, वे मनुष्य भ्रान्त हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। आपने अपना ही भक्त परार्थ के लिये क्यों मार दिया था ? ॥३॥ हे दुर्वृत ! आप तो सर्वज्ञ कहे जाते हैं किन्तु आप पराई व्यथा को कुछ भी नहीं जानते हैं। इस लिये एक जन्म में आप अपने आप को ही भल गये ॥४॥ इतना कहकर वह महा साध्वी तुलसी हरि के चरणों में गिर गई थी। वह बहुत अधिक रोई और शोक में आर्त्त होकर वार-बार अत्यन्त विलाप करने लगी थी ॥५॥ उस की करुणा को देखकर करुणामय तथा करुणा के सागर कमला के स्वामी नारायण ने उसका समझाने के लिये कहा था ॥६॥ श्री भगवान ने कहा—हे साध्वि ! तू ने भारत में मेरे प्रति प्राप्त करने के लिये बहुत समय तक तपस्या की थी और तुझे पत्नी के स्वरूप में पाने के लिये शंखचड़ने अत्यधिक समय तक तप किया था ॥७-८॥

कृत्वा त्वां कामिनीं कामी विजहार च तत् फलात् ।
अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम् ॥ ९ ॥
इदं शरीरंत्यक्तवा च दिव्यंदेहं विधाय च ।
रासे मे रमया सार्द्धं त्वं रमा सदृशीभव ॥१०॥
इदं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता ।
पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्या भवतु भारते ॥ ११ ॥
तव केशसमूहाश्च पुण्यवृक्षा भवन्त्विति ।
तुलसीकेशसम्भूता तुलसीतिच विश्रुता ॥ १२ ॥
त्रिलोकेषु च पुष्पाणां पत्राणांदेवपूजने ।
प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने ॥१३॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मम सन्निधौ ।
भवन्तु तुलसीवृक्षा वराःपुष्पेषुसुन्दरि ॥१४॥
गोलोके विरजा तीरे रासे वृन्दावने भुवि ।
भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने ॥१५॥

माधवी केतकी कुन्दमल्लिका मालतीवने ।
भवन्तु तरवस्तत्र पुण्यस्थानेषु पुण्यदाः ॥१६॥
तुलसीतरुमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे ।
अधिष्ठानन्तु तीर्थानां सर्वेषाञ्च भविष्यति ॥१७॥

अतएव उस कामी ने तुझको कामनी बनाकर उस तपस्या के फल स्वरूप तेरे साथ बिहार किया था। अब तेरे तप के फल देने का उचित समय उपस्थित हो गया है ॥९॥ अब तू इस शरीर को त्याग कर अपना दिव्य देह प्राप्त कर और मेरे धाम में रमा के साथ तू रमा के ही तुल्य हो जा ॥१०॥ यह मेरा शरीर नदी रूप है जोकि गण्डकी - इस नाम से प्रसिद्ध है। यह गण्डकी परम पवित्र - सुपुण्य के प्रदान करने वाली और भारत में मनुष्यों के लिये पुण्य स्वरूपिणी होवे ॥११॥ तेरे जो यह केशों के समूह हैं व सब पुण्य वृक्ष हो जावें इसी लिये तुलसी के केशों से सम्भूत तुलसी नाम से प्रसिद्ध रूप है ॥१२॥ तीनों लोकों में देवों के पूजन में पुष्पों और पत्रों में यह प्रधान रूप वाली तुलसी हे वरानने हो जायगी ॥१३॥ हे सुन्दरी! स्वर्ग में - मर्त्यलोक में पाताल में और वैकुण्ठ में मेरी सन्निधि में पुष्पों में श्रेष्ठ तुलसी के वृक्ष होवें ॥१४॥ गो लोक में-यमुना के तटपर - रास में - वृन्दावन की भूमिका में - भाण्डीर में - चम्पक वन में तथा रम्य चन्दन के वन में - माधवी, केतकी, कुन्द मल्लिका और मालती के वन में वहां पर पुण्य स्थानों में पुण्य प्रदान करने वाले तेरे तरु होवें ॥१५-१६॥ तुलसी के तरु के मूल में - सुपुण्य देने वाले पुण्य देश समस्त तीर्थों का अधिष्ठान होगा ॥१७॥

२७—सावित्र्युपाख्यानम् ।

मद्रदेशे महाराजा बभूवाश्वपतिर्मुने ।
वैरिणां बलहर्त्ता च मित्राणां दु.खनाशन. ॥१॥

आसीत्तस्य महाराज्ञी महिषीधर्मचारिणी ।
मालतीतिचसाख्यातायथालक्ष्मीर्गदाभृतः ॥२॥
सा च राज्ञीमहासाध्वीवशिष्ठस्योपदेशतः ।
चकाराराधनंभक्त्यासावित्र्याश्चैव नारद ॥३॥
प्रत्यादेश न सा प्राप महिषी न ददर्श ताम् ।
गृहं जगाम सा दुःखाद्धृदयेनविदूयता ॥४॥
राजा तां दु.खितां दृष्ट्वाबोधयित्वानयेनवै ।
सावित्र्यास्तपसेभक्त्याजगामपुष्करंतदा॥५॥
तपश्चार तत्रैव संयतः शतवत्सरम् ।
न ददर्श च सावित्रीं प्रत्यादेशो बभूव ह ॥६॥
शुश्रावाकाशवाणीञ्च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम् ।
गायत्री दशलक्षञ्च जपं कुर्वित नारद ॥७॥
एतस्मिन्ननन्तरे तत्र प्रजगाम पराशरः ।
प्रणनाम नृपस्तञ्च मुनिर्नृपमुवाच ह ॥८॥

इस अध्याय में सावित्री के उपाख्यान का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा -- हे मुने ! भद्रदेश मे महाराजा अश्वपति हुए थे। यह राजा शत्रुओं के तो बल के हरण करने वाले थे और मित्रों के दुःखों का नाश करने वाले हुए थे॥१॥ उसकी महारानी धर्म का आचरण करने वाली महिषी मालती -- इस नाम से कही गई थी जोकि भगवान गदाधारी की पत्नी लक्ष्मी के तुल्य थी। २॥ हे नारद ! वह सती बहुत अधिक साध्वी थी। उसने वसिष्ट मुनी के उपदेश से भक्ति - भाव के साथ अराधना की थी॥३॥ उस महिषी ने कोई भी प्रत्यादेश प्राप्त नहीं किया था और उसने उस देवी का दर्शन भी नहीं किया था। इस लिये बड़े ही दुःख से विद्यमान हृदय से वह गृह को चली गई थी॥४॥ राजा ने जब उसको परम दुःखित देखा तो नय की विधि से उसे समाझया था और फिर वह उस समय भक्ति पूर्वक सावित्री देवी के तप करने के लिये पुष्कर को चला गया था॥५॥ वहां पर उसने एक सौ वर्ष पर्यन्त निरंतर अति संयत होकर तप किया था। उसने सावित्री देवी का दर्शन तो प्राप्त नहीं

किया था किन्तु उसका प्रत्यादेश हुआ था ।।६।। उस राजा ने विना शरीर वाली आकाश वाणी का श्रवण किया था । हे नारद ! उस आकाश वाणी ने कहा था कि गायत्री का दश लाख जप करो ।।६।। इसी बीच में वहाँ पर पराशर मुनि आ गये थे । राजा ने पराशर को प्रणाम किया था और फिर मुनि ने उस राजा से कहा था ।।८।।

सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनकृतं हरेत् ।
दशधा प्रजपान्नृणां दिवारात्र्यघमेव च ।।६।।
शतधा च जपाच्चैव पापं मासार्जितं परम् ।
सहस्रधा जपाच्चैव कल्मषं वत्सरार्जितम् ।।१०।।
लक्षजन्मकृतं पापं दशलक्षं त्रिजन्मनः ।
सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षो विनश्यति ।।११।।
एवं क्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु ।
साक्षाद्द्रक्ष्यसि सावित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात् ।।१२।।
नित्यं नित्यं त्रिसन्ध्यञ्च करिष्यसि दिने दिने ।
मध्याह्ने च पिसायाह्ने प्रातरेवं शुचिः सदा ।।१३।।
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत् ।।१४।।

पराशर ने कहा – गायत्री का एक बार जप दिन भर के किये हुए पाप हरण करता है । दशवार जाप करने से मनुष्यों के दिन रात्रि के अघों का नाश हो जाता है ।।६। एकसौ बार जप करने से एक मास में किये हुए परम पाप का हरण होता है और एक सहस्र वार गायत्री के जप से एक वर्ष से अर्जित पाप का क्षय होता है ।।१०।। गायत्री के दशलाख बार जप से तीन जन्म में लक्ष जन्म में किये हुए पापों का क्षय होता है ।।११।। हे राजर्षे ! इसी प्रकार के क्रम से गायत्री का दशलाख जप करो हे राजर्षे ! इसी प्रकार के क्रम से गायत्री का दशलाख जप करो । फिर तीन जन्मों के पापों के क्षय हो जाने से सावित्री देवी का साक्षात् दर्शन प्राप्त

कर लोगे ॥१२॥ प्रयि-नित्य प्रतिदिन तीनों कालकी सन्ध्या करोगे। सदा पवित्र होकर प्रायःकाल में - मध्याह्न में और सायाह्न में सन्ध्या करनी ही चाहिए ॥१३॥ जो सन्ध्या से हीन होता है वह नित्य ही अपवित्र रहता है और समस्त कर्मों में क्रिया करने के अयोग्य होता है। जो कुछ भी वह दिन में कर्म करता है, उसके फल का वह भागी नहीं हुआ करता है ॥१४॥

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठः सर्वं पूजाविधिक्रमम् ।
तामुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम् ॥१५॥
दत्वा सद्य नृपेन्द्राय प्रययौ स्वालय मुनौ ।
राजा सम्पूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च ॥१६॥
स्तुत्वाऽनेन सोऽश्वपतिः संपूज्य विधिपूर्वकम् ।
ददर्शतत्रतां देवींमहस्रार्कसमप्रभाम् ॥१७॥
उवाच तं तु राजानप्रसन्ना सस्मितासती ।
यथामातास्वपुत्रञ्च द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ॥१८॥
जानामिते महाराज यत्तेमनसिवर्त्तते ।
वाञ्छितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामिनिश्चितम् ॥१९॥
साध्वी कन्याभिलापञ्च करोति तव कामिनी ।
त्वं प्रार्थयसि पुत्रञ्च भविष्यतिक्रमेणते ॥२०॥
इत्युक्त्वा सा महादेवी ब्रह्मलोकं जगाम ह ।
राजा जगामस्वगृहंतत्कन्याऽऽदौवभूवह ॥२१॥

इतना कह कर उस पराशर मुनि ने सावित्री देवी की सम्पूर्ण पूजा की विधि का क्रम और अभिप्सित ध्यान आदि उस राजा को कह दिया था ॥१५॥ इस तरह से मुनि ने नृपेन्द्र को सब दे दिया था और फिर वह अपने आश्रम को चले गये। राजा ने सावित्री देवी की अर्चना की थी और उसका दर्शन प्राप्त किया तथा उस सावित्री से वरदान पाने का लाभ भी प्राप्त किया था।१६। इस अध्याय में द्वितीय सावित्री का जन्म तथा विवाह

इस स्तोत्र के द्वारा उस सावित्री देवी का स्तवन करके और विधि विधान के साथ समर्चन करके वहाँ पर एक सहस्र सूर्य की प्रभा के समान प्रभा वाली सावित्री देवी का दर्शन किया था ॥१७॥ उस सावित्री देवी ने परम प्रसन्न होकर मन्द मुस्कान वाली सती ने उस राजा से कहा था जैसे कोई माता अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करती है ॥१८॥ सावित्री देवी ने कहा—हे महाराज ! तेरे मन में जो कुछ भी है उसे मैं जानती हूँ । तेरी पत्नी का जो भी कुछ इच्छित मनोरथ है उस सब को निश्चित रूप से मैं दूँगी अर्थात् पूर्ण करूँगी ॥१९॥ तेरी साध्वी कामिनी कन्या की अभिलाषा रखती है और तू पुत्र के लिये प्रार्थना कर रहा है, सो तुझे क्रम से यह होगा ॥२०॥ इतना वह सावित्री देवी राजा से कह कर ब्रह्म लोक को चली गई थी और राजा अपने घर को चला गया था । इसके अनन्तर उसके आदि में कन्या उत्पन्न हुई थी ॥२१॥

आराधनाच्च सावित्र्याबभूव कमलाकला ।
सावित्रीति च तन्नाम चकाराश्वपतिर्नृप. ॥२२॥
कालेन सा वर्द्धमाना बभूव च दिने दिने ।
रूपयौवनसम्पन्ना शुक्ले चन्द्रकला यथा ॥२३॥
सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं तदा ।
सावित्री च सत्यवन्तं नानागुणसमन्वितम् ॥२४॥
राजा तस्मै ददौ ताञ्च रत्नभूषणभूषिताम् ।
स च सार्द्धं यौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ ॥२५॥
स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान् सत्यविक्रमः ।
जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहर्षं पितुराज्ञया ॥२६॥
जगाम तत्र सावित्री तत्पश्चाद्दैवयोगतः ।
निपत्य वृक्षाद्दैवेन प्राणांस्तत्याज सत्यवान् ॥२७॥
यमस्तज्जीवपुरुषं बद्धाङ्गुष्ठसमं मुने ।
गृहीत्वा गमनञ्चक्रे तत्पश्चात् प्रययौ सती ॥२८॥

पश्चात्तां सुन्दरीं दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः ।
उवाच मधुर साध्वीं साधूनां प्रवरो महान् ॥२९॥

सावित्री देवी की आराधना से वह कमला की एक कला हुई थी, इस लिये अश्वपति राजा ने उसका नाम सावित्री यह रखा था ॥२२॥ समय के निकलते हुए वह बढ़ कर दिनों दिन बड़ी हो गयी थी । वह रूप - यौवन से सम्पन्न शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला के तुल्य परम सुन्दरी थी ॥२३॥ उसने उस समय द्युमत्सेन के पुत्र को अपना पति वरण किया था, जिसका नाम सत्यवान था और वह अनेक गुण गण से सम्पन्न था ॥२४॥ राजा अश्वपति ने उस सावित्री को रत्नों के भूषणों से विभूषित कर के उस सत्यवान को दान कर दिया था । और वह यौतुक (दहेज) के साथ उसे ग्रहण करके घर को चला गया था ॥२५॥ एक वर्ष समाप्त होने पर सत्य विक्रम वाला सत्यवान अपने पिता की आज्ञा से फल काष्ठ के लिये प्रसन्नता पूर्वक गया ॥२६॥ दैवयोग से उसके पीछे ही सावित्री भी वहाँ चली गई थी । सत्यवान दैव वश वृक्ष से गिर गया था और उसने अपने प्राणों को त्याग दिया था ॥२७॥ हे मुने ! यम ने वृद्ध अङ्गुष्ठ के समान उस जीव पुरुष को ग्रहण कर लिया था और वहाँ से गमन कर गया था । उसी के पीछे सती सावित्री गई थी ॥२८॥ संयमनी के पति यम ने उस सावित्री को पीछे आती हुई देखकर साधुओं में प्रवर श्रेष्ठ महान ने उस साध्वी से मधुर वचन कहा था ॥२९॥

अहोकयासिसावित्री गृहीत्वा मानुषींतनुम ।
यदियास्यासिकान्तेन सार्द्धं देहलदात्यज ॥३०॥
गन्तुं मर्त्योन शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम् ।
देहञ्च यमलोकञ्च नश्वरंनश्वरः सदा ॥३१॥
भर्त्तुस्ते कालपूर्णश्च बभूव भारते सति ।
सेकर्मफलभोगार्थं सत्यवान् याति मद्गृहम् ॥३२॥
कर्मणाजायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ।
सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणैव प्रपद्यते ॥३३॥

कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा ।
स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादि रहितोभवेत् ॥३४॥
स्वकर्मणासर्वसिद्धिममरत्वलभेद्ध्रुवम् ।
लभेत्स्वकर्मणाविष्णो र्सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥३५॥
कर्मणा ब्राह्मणत्वञ्च मुक्तित्वञ्च स्वकर्मणा ।
सुरत्वञ्च मनुत्वञ्च राजेन्द्रत्वं लभेन्नर ॥३६॥
कर्मणाच मुनीन्द्रत्व तपस्वित्वञ्च कर्मणा ।
कर्मणा क्षत्रियत्वञ्च वैश्यत्वञ्च स्वकर्मणा ॥
कर्मणा चैव शूद्रत्वमन्त्यजत्व स्वकर्मणा ॥३७॥
कर्मणायाति वैकुण्ठगोलोकञ्च निरामयम् ।
कर्मणा चिरजीवी च क्षणायुश्चस्वकर्मणा ॥३८॥
कर्मणाकोटिकल्पायु क्षीणायुश्चस्वकर्मणा ।
जीवमञ्चारमानायुरन्ते मृत्यु स्वकर्मणा ॥३९॥
इत्येव कथितं सर्वं मया ।हरञ्चमु दाग ।
कर्मणाते मृता भर्त्ता गच्छ वत्से यथासुखम् ॥४०॥

हे सावित्री ! तुम कहाँ जा रही हो ? इस मानवी शरीर को लेकर हमारी पुरी मे काई भी नहीं जाया करता है । यदि तू अपने कान्त के पास जाओगी तो इस देह का त्याग दो ॥३०॥ नश्वर मनुष्य इस पञ्चभौतिक नश्वर (मानव न) शरीर को लेकर सदा यमलोक का नहीं जा सकता है ॥३१॥ हे सति ! तुम्हारे इस स्वामी का तो भारत मे समय समाप्त हो चुका है । अपने समस्त कर्मों के फलों को भोगने के लिए अब यह मेरी पुरी मे जा रहा है । ३२॥ यह जीव कर्म से उत्पन्न होता है और कर्मों के कारण ही मरण प्राप्त किया करता है । इस आत्मा का सुख-दुःख-भय-शोक सब कर्म के द्वारा प्राप्त हुआ करते हैं ॥३३॥ यह जीव कर्म के द्वारा ही इन्द्र के पद को प्राप्त कर लेता है और अपने कर्म से ब्रह्मा का पुत्र हो जाता है तथा अपने कर्म से हरि का दास होकर वह जन्म-मरण आदि सब से रहित हो जाता है ॥३४॥ अपने कर्मों के प्रभाव से

जीवात्मा अमरत्व को लाभ कर लेता है तथा अपने कर्मों के कारण भगवान विष्णु की सालोक्य आदि चार प्रकार की मुक्ति को प्राप्ति किया करता है एवं समस्त सिद्धियों का लाभ कर लेता है ।।।।३५।। कर्मों के द्वारा ही ब्राह्मणत्व और अपने कर्म से मुक्तित्व यह जन्तु प्राप्त करता है तथा मनुष्य सुरत्व-मनुष्यत्व एवं राजेन्द्रत्व के पद का लाभ प्राप्त करता है ।।३६।। कर्मों के प्रभाव से मुनीन्द्रत्व-तपस्वित्व-क्षत्रियत्व तथा वैश्यत्व के पदों को प्राप्त करता है । यह जीवात्मा कर्म से शूद्रत्व और अन्त्यजत्व को पाया करता है । कर्म ही प्रबल और सबकी प्राप्ति का चाहे बुरा हो या भला मुख्य साधन होता है । समस्त प्राणी इसी के द्वारा बद्ध हैं ।।३७।। कर्म से वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति होती है और निरामय गोलोक धाम को भी चला जाया करता है । कर्मों के अनुसार ही यहाँ यह चिरकाल तक जीवित रहने वाला तथा कर्म प्रभाव से क्षण की आयु वाला होता है ।।३८।। कर्म से करोड़ों कल्पों की आयु हो जाती है और कर्म से ही क्षीण आयु वाला होता है । जीव का सञ्चार होने भर की भी आयु हुआ करती है तथा अपने कर्म से गर्भ में ही मृत्यु हो जाया करती है ।।३९।। हे सुन्दरि ! मैं ने यह सम्पूर्ण तत्व इस प्रकार से तुमको बता दिया है । तुम्हारा यह स्वामी अपने कर्म के प्रभाव से मृत हो गया है । इसलिये हे वत्से ! तुम अपने घर सुख पूर्वक वापिस चली जाओ ।।४०।।

२८—कर्मविपाके सावित्री प्रश्नः ।

यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता ।
तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी ।।१।।
किंकर्म्मवाशुभं धर्म्मराजकिंवाऽशुभनृणाम् ।
कर्म्म निर्मुलयन्त्येव केनवासाववोजनाः ।।२।।
कर्म्मणां वीजरूपःकः कोवा कर्म्मफलप्रदः ।
किं कर्म्म उद्भवेत् केनकोवा तद्धेतुरेवच ।।३।।

कोवाकर्म्मफलभुङ्क्ते कोवानिलिप्त एवच ।
कोवादेहीकश्चदेहः कोवात्र कर्म्मकारकः ॥४॥
किं विज्ञान मनोबुद्धिः के वा प्राणाः शरीरिणाम् ।
कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः ॥५॥
भोक्ता भोजयिता कोवा को भोग काच निष्कृतिः ।
को जीव परमात्मा क तन्मे व्याख्यातु मर्हसि ॥६॥

इस अध्याय मे कर्मो के विपाक के सम्बन्ध मे सावित्री के द्वारा किये हुये प्रश्नो का वर्णन किया जाता है ॥१॥ श्री नारायण बोले—उक्त प्रकार से कथित यमराज के वचनो का श्रवण करके प्रतिव्रत तथा मनस्विनी सावित्री ने परम भक्ति भाव से उस यमराज की स्तुति की थी ॥१॥ सावित्री ने कहा—हे धर्मराज ! आप अब कृपा करके मुझे यह स्पष्ट रूप से बताइये कि मनुष्यो का कौन सा कर्म शुभ होता है और कौन सा कर्म अशुभ हुआ करता है ? मधुजन किसके द्वारा उस अशुभ कर्म को निर्मूल किया करते हैं ? कर्मों का बीजरूप कौन है और इनके फल का देने वाला कौन है। किसके द्वारा कौन कर्म उत्पन्न होता है और उसका हेतु कौन होता है ॥२ ३॥ कर्मो के फल को कौन भोगता है और कौन कर्मो मे निर्लिप्त हो रहा करता है ? देही कौन है और देह कौन है ? तथा यहाँ कर्मों का करने वाला कौन है ? ॥४॥ विज्ञान क्या है तथा क्या मन और बुद्धि है ? शरीर धारियो के प्राण कौन हैं। इन्द्रियाँ कौन सी हैं और उनका लक्षण क्य है ॥५॥ भोक्ता भुगाने वाला और भोग और उसकी निष्कृति (निराकरण) क्या है ? जीव कौन है, परमात्मा कौन है ?—यह सब व्याख्या करने को आप योग्य होते हैं ॥६॥

वेदप्रविहित कर्म्म तन्मन्ये मङ्गल परम् ।
अवेदविन्नु यत् कर्म्म तदेवाशुभमेव च ॥७॥
अहैतुकी विष्णुसेवा सङ्कल्परहिता सताम् ।
कर्म्मनिर्म्मूलरूपा च सा एव हरिभक्तिदा ॥८॥

हरिभक्तो नरो यश्च सच्च मुक्तः श्रुतौ श्रुतम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्ज्जितः ॥९॥
मुक्तिश्च द्विविधा साध्वि ! श्रुत्युक्ता सर्व्वसम्मता ।
निर्वाणपददात्री च हरिभक्तिप्रदा नृणाम् ॥१०॥
हरिभक्तिस्वरूपाञ्चमुक्तिवाञ्छन्तिवैष्णवाः ।
अन्ये निर्वाणरूपाञ्चमुक्तिमिच्छन्तिसाधवः ॥११॥
कर्मणोवीजरूपश्च सन्ततं तत् फलप्रदः ।
कर्मरूपश्च भगवान् श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥१२॥
सोऽपि तद्धेतुरूपश्च कर्म तेन भवेत्सति ।
जीवः कर्मफलं भुङ्क्ते आत्मा निर्लिप्त एवच । १३॥
आत्मनः प्रतिविम्वश्च देही जीवः स एवच ।
पाञ्चभौतिकरूपश्च देहो नश्वरएव च ॥१४॥

यमराज ने कहा—वेद के द्वारा विदित जो कर्म है वही परम मङ्गल मैं मानता हूँ। जो कर्म अवैदिक अर्थात् वेद के विरुद्ध या वेद से विहित नहीं है वही अशुभ होता है ॥७॥ विना किसी हेतु के संकल्प से रहित सत्पुरुषों की जो विष्णु सेवा है वह कर्मों के निर्मूल करने के रूप वाली तथा हरि भक्ति के प्रदान करने वाली होती है ॥८॥ जो नर हरि का भक्त होता है वह मुक्त होता है। ऐसा श्रुति में श्रुत है। वह नर जन्म-व्याधि-मृत्यु-जरा-शोक-भीति आदि सब से वर्जित हो जाता है ॥९॥ हे साध्वि ! यह मुक्ति दो प्रकार की होती है जो श्रुति में कही गई है और सर्व सम्मत है तथा एक तो निर्वाण के पद को देने वाली मुक्ति होती है और दूसरी हरि की भक्ति प्रदान करने वाली है ॥१०॥ वैष्णव लोग हरि भक्ति प्रदा मुक्ति को ही चाहते हैं जोकि हरि की भक्ति के रूप वाली होती है। अन्य साधु लोग निर्वाण पद रूप वाली मुक्ति की इच्छा रखते हैं ॥११॥ कर्म का वीज रूप और उसका फल देने वाला कर्मरूप भगवान श्री कृष्ण हैं जो प्रकृति से पर हैं ॥१२॥ हे सति ! वह भी उसका हेतु रूप है। उससे कर्म होता है। कर्मों के फल को जीव भोगता है और

यह आत्मा निर्लिप्त ही रहता है ॥१३॥ आत्मा का प्रतिबिम्ब ही देही है। वह ही जीव है। पञ्च भौतिक (अर्थात् पृथिवी आदि पाँच भूतों से निर्मित) रूप वाला देह होता है जो नाशवान है ॥१४॥

पृथिवीवायुराकाशो जलं तेजस्तथैव च।
एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टि सृष्टिविधौ हरे ॥१५॥
कर्त्ता भोक्ता च देही च स्वात्मा भोजयिता सदा।
भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च ॥१६॥
सदसद्भेदबीजञ्च ज्ञानं नानाविधं भवेत्।
विषयाणां विभागानां भेदबीजञ्च कीर्तितम् ॥१७॥
बुद्धिर्विवेचनारूपा सा ज्ञानदीपनी श्रुतौ।
वायुभेदाश्च प्राणाश्च बलरूपाश्च देहिनाम् ॥१८॥
इन्द्रियाणाञ्च प्रवरम् ईश्वराणां समूहकम्।
प्रेरकं कर्मणाञ्चैव दुर्निवार्यञ्च देहिनाम् ॥१९॥
अनिरूप्यमदृश्यञ्च ज्ञानभेदं मनः स्मृतम् ॥२०॥
लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वग्जिह्वादिकमिन्द्रियम्।
अंगिनामंगरूपञ्च प्रेरकं सर्वकर्मणाम् ॥२१॥
रिपुरूपं मित्ररूपं सुखदं दुःखदं सदा।
सूर्य्यो वायुश्च पृथिवी वाण्याद्या देवताः स्मृताः ॥२२॥
प्राणदेहादिभृत् यो हि स जीवः परिकीर्त्तितः।
परमात्मा परब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥२३॥
कारणं कारणानाञ्च श्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
इत्येवं कथितं सर्वं मया पृष्टं यथागमम् ॥
ज्ञानिनां ज्ञानरूपञ्च गच्छ वत्से यथा सुखम् ॥२४॥

पृथिवी-वायु-आकाश-जल-तेज ये हरि की सृष्टि के विधान में सूत्ररूप सृष्टि हैं। कर्त्ता और भोक्ता देही होता है तथा सदा अपना आत्मा भोजयिता (भुगाने वाला) है। विभव का जो भेद है वही भोग है और इसकी निष्कृति मुक्ति होती है ॥१५-१६॥ सद् और असद् के भेद

का बीज ज्ञान नाना प्रकार का होता है। विषयों के विभागों के भेद को बीज कहा गया है ॥१७॥ विवेचन के रूप वाली बुद्धि होती है। वह श्रुति में ज्ञान के दीपन करने वाली कही गई है। प्राण वायु के ही भेद हैं जोकि देह धारियों के बल स्वरूप होते हैं ॥१८॥ इन्द्रियों में प्रवर-ईश्वरों का समूह-कर्मों का प्रेरक और देहियों का दुर्निवार्य निरूपण करने के योग्य और अदृश्यज्ञान का भेद ही मन कहा गया है ॥१९-२०॥ लोचन-श्रवण-घ्राण-त्वक् औ जिह्वा आदि इन्द्रियाँ हैं। ये सब अङ्गियों के अङ्ग रूप हैं तथा समस्त कर्मों की प्रेरक होती हैं ॥२१॥ रिपु का रूप और मित्र का रूप सदा दुःख देने वाला तथा सुख देने वाला होता है। सूर्य-वायु और पृथिवी तथा वाणी आदि देवता कहे गये हैं ॥२२॥ देह आदि के धारण करने वाला जो प्राण है, वह ही जीव कहा गया है। परमात्मा पर ब्रह्म है जो निर्गुण एवं प्रकृति से पर होता है ॥२३॥ कारणों का कारण भगवान स्वयं श्रीकृष्ण हैं। इस प्रकार से मैंने आगम के अनुसार सब तुमको बता दिया है जोकि ज्ञानियों का ज्ञान रूप है। हे वत्से ! अब तुम सुख पूर्वक वापिस चली जाओ। २४॥

त्यक्त्वा क यामि कान्तं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं बुधम्।
यद् यत् करोमि प्रश्नञ्च तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥२५॥
कां कां योनियाति जीवः कर्मणा केन वा यम।
केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकपितः ॥२६॥
केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद्धरेः।
केन वा कर्मणा रोगी चारोगी केन कर्मणा ॥२७॥
केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणः।
केन वा कर्मणा दुःखी केनवाकर्मणा सुखी ॥२८॥
को वा कं नरकं याति कियन्तंतेषु तिष्ठति।
पापिनां कर्मणा केनकोवाव्याधिःप्रजायते ॥
यद्यदस्ति मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२९॥

सावित्री ने कहा—मैं अपने स्वामी को और ज्ञान के सागर परम बुध आपका त्याग करके कहाँ जाऊँ ? मैं जो-जो प्रश्न करती हूँ, आप उसे बताने को योग्य होते हैं ॥२५॥ हे यमराज ! यह जीव किस कर्म से किस-

किस योनि म जाया करता है? किस कर्म से यह स्वर्ग का जाता है और कौन से कर्म से नरक को जाया करता है ? ॥२६॥ हे पिता ! किस कर्म से इस जीव की मुक्ति होती है और कौन सा कर्म है जिसके द्वारा हरि की भक्ति हो जाती है ? किस कर्म के द्वारा यह रोगी और किस से स्वस्थ होता है ? ॥२७। ऐसा कौन सा कर्म है जिसके करने से यह जीव दीर्घ काल तक जीवित बना रहता है और किस कर्म के द्वारा अल्प आयुवाला हो जाता है ? तथा किस कर्म से सुख वाला और किस के द्वारा यह दुखी होता है ? ॥२८॥ कौन किस नरक मे जाता है, और कितने समय तक उनमे रहता है। पापिया का किस कर्म से कौनसी व्याधि होती है ? मैंने जो-जो भी आप से पूछा है उस सबको आप व्याख्या कर बताने के योग्य होते हैं ॥२९॥

२९—कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनम् ।

सावित्रीवचन श्रुत्वा जगाम विस्मय यम ।
प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकञ्च जीविनाम ॥१॥
कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्व वयसाधुना ।
ज्ञानन्ते पूर्वविदुषा योगिना ज्ञानिना परम् ॥२॥
सावित्रीवरदानेन त्व सावित्रीकला सती ।
प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्समा शुभे ॥३॥
यथा श्री श्रीपते क्रोड भवानी च भवोरसि ।
यथाराधाचश्रीकृष्णेसावित्री ब्रह्मवक्षसि ॥४॥
धर्मोरसि यथा मूर्त्ति शतरूपा मनो यथा ।
कर्दमे दवहूती च वशिष्ठेऽरुन्धती यथा ॥५॥
अदितीकश्यपे चापि यथाहल्या च गौतमे ।
यथा शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रे च रोहिणी ॥६॥
यथा रति कामदवे यथा स्वाहा हुताशने ।
यथा स्वधा च पितृषु यथा सज्ञा दिवाकरे ॥७॥

इस अध्याय में कर्मों के विपाक में कर्मों के अनुकूल स्थान में गमन करने का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा—सावित्री के इस वचन को सुनकर यमराज को बहुत आश्चर्य हुआ था। वह हँसा और फिर जीवों के कर्म पाक को बताना उसने आरम्भ किया था ॥१॥ यमराज ने कहा—हे वत्से ! जब बारह वर्ष की कन्या अवस्था से होती है, किन्तु तेरा ज्ञान पूर्व विद्वान योगी और ज्ञानियों का सा है ॥२॥ हे शुभे ! पहिले राजा ने तप द्वारा सावित्री के वरदान से उसी के समान सावित्री की कला तुझे प्राप्त किया है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार से श्रीपति की गोद में श्री है, महादेव की गोद में भवानी है, श्रीकृष्ण के अङ्क में राधा है उसी प्रकार से ब्रह्मा के वक्ष-स्थल में सावित्री देवी है ॥४॥ धर्म के उर में जैसे मूर्तिमनु में शतरूपा-कर्दम में देवहूती-वसिष्ट में अरुन्धती-कश्यप में अदिति-गौतम में अहल्या-महेन्द्र में शची-चन्द्र में रोहिणी-काम देव में रति-हुताशन में स्वाहा तथा पितृगण स्वधा और जिस तरह दिवा कर में संज्ञा है ॥५-७॥

वरुणानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा ।
यथा धरा वराहे च देवसेना च कार्त्तिके ॥८॥
सौभाग्या सुप्रिया त्वञ्च भव सत्यवति प्रिये ।
इति तुभ्यं वरं दत्तमपरञ्च यदीप्सितम् ॥
वृणु देवी महाभागे सर्वदास्यामि निश्चितम् ॥९॥
सत्यवदौरसेनैव पुत्राणां शतकं मम ।
भविष्यति महाभाग वरमेतद् मदीप्सितम् ॥१०॥
मत्पितुः पुत्रशतक श्वशुरस्य च चक्षुषी ।
राज्यलाभो भवत्वेव वरमेवं मदीप्सितम् ॥११॥
अन्ते सत्यवता सार्द्धं यास्यामि हरिमन्दिरम् ।
समतीते लक्षवर्षे देहीमं मे जगत्प्रभो ॥१२॥
जीवकर्मविपाकञ्च श्रोतुं कौतूहलञ्च मे ।
विश्वविस्तारबीजञ्च तन्मे व्याख्यातु मर्हसि ॥१३॥

वरुण के साथ वरुणानी जैसे दक्षिणा वराह के साथ और जैसे स्वामि कार्तिकेय से देवसेना है, उसी तरह से हे प्रिये ! तू भी हे सत्यवति ! सौभाग्य वाली और सुप्रिया हो। यह तुझे वरदान दिया है और अन्य भी जो कुछ तेरा अभीप्सित हो दूँगा। हे महाभागे ! सुनो, सभी कुछ निश्चित रूप से दूँगा ॥८-९॥ सावित्री ने कहा—मुझे सत्यवान की भाँति और एक सौ पुत्र होवें, यही मेरा अभीष्ट वरदान है ॥१०॥ मेरे पिता के सौ पुत्र और मेरे श्वशुर के नेत्र लाभ तथा राज्य लाभ होवें, यही मेरा अभीप्सित वरदान है ॥११॥ हे प्रभो ! इस सब के प्राप्त होने के अन्त में मैं सत्यवान अपने स्वामी के साथ हरि के मन्दिर में जाऊँगी जबकि एक लाख वर्ष व्यतीत हो जावेगा। हे समार के स्वामिन ! यह वरदान मुझे प्रदान करो ॥१२॥ मुझे जीवों का कर्म विपाक श्रवण करने का बड़ा कौतूहल है और आप इस की व्याख्या करने के योग्य होते हैं ॥१३॥

भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव।
जीवकर्मविपाकञ्च कथयामि निशामय ॥१४॥
शुभानामशुभानाञ्च कर्मणां जन्म भारते।
पुण्यक्षेत्रेऽत्र सर्वत्र नान्यत्र भुञ्जते जनाः ॥१५॥
सुरादैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः।
नरश्च कर्मजनको न सर्वसमजीविनः ॥१६॥
विशिष्टजीविनः कर्म्म भुञ्जते सर्वयोनिषु।
विशेषतो मानवाश्च भ्रमन्ति सर्वयोनिषु ॥१७॥
शुभाशुभं भुञ्जन्ते च कर्म पूर्वार्जितं परम्।
शुभेन कर्मणा यान्ति ते स्वर्गादिकमेव च ॥१८॥
कर्म्मणा चाशुभेनैव भ्रमन्ति नरकेषु च।
कर्म्म निर्मूलने मुक्तिः सा चोक्ता द्विविधामता ॥१९॥
निर्वाणरूपा सेवा च कृष्णस्य परमात्मनः।
रोगी प्रकर्म्मणा जीवश्चारोगी शुभकर्म्मणा ॥२०॥

दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च निश्चितम् ।
अन्धादयश्चङ्गहीनाः कुत्सितेन च कर्मणा ॥२१॥

यमराज ने कहा—हे सावित्रि ! यह सब तेरे मन में रहने वाला मनोरथ होगा । अब मैं जीवों के कर्मों का विपाक बताता हूँ, उसका श्रवण कर ॥१४॥ इस पुण्य के क्षेत्र भारत में सर्वत्र शुभ और अशुभ कर्मों का जन्म होता है जिसे नर भोगते हैं अन्यत्र नहीं भोगा जाता है ॥१५॥ सुर-दैत्य-दानव-गन्धर्व-राक्षस आदि और नर कर्मों के जनक हैं, सब समजीवी नहीं हैं ॥१६॥ समस्त योनियों में विशिष्ट जीव ही कर्म का भोग किया करते हैं । विशेष रूप से ये मानव ही समस्त योनियों में भ्रमण किया करते हैं ॥१७॥ शुभ और अशुभ पूर्व जन्मों में अर्जित किया हुआ कर्म भोगते हैं । शुभ कर्म से मानव स्वर्ग आदि में जाते हैं ॥१८॥ जब कोई अशुभ कर्म होते हैं तो उनके कारण वे नरकादि में भ्रमण करते हैं । कर्मों का निर्मूलन होने पर मुक्ति होती है जोकि दो प्रकार की मानी गई है ॥ १९ ॥ एक निर्वाण रूप वाली मुक्ति है और दूसरी परमात्मा कृष्ण की सेवा के स्वरूप वाली है । अकर्म से जीव रोगी होता है और शुभ कर्म से वह रोग रहित रहता है ॥२०॥ कुत्सित कर्म के प्रभाव से ही अन्धे और अङ्ग हीन होते हैं । दीर्घजीवी तथा क्षीण आयु वाले-सुखी-और दुखी सब कर्म से ही हुआ करते हैं ॥२१॥

सिद्धयादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेनकर्म्मणा ।
सामान्यंकथितं सर्वं विशेषं शृणुसुन्दरि ॥२२॥
सुदुर्लभ सुभोग्यञ्च पुराणे च श्रुतिष्वपि ॥२३॥
दुर्लभा मानवीजातिः सर्वजातिषु भारते ।
सर्वाभ्योत्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्त;सर्वकर्म्मसु ॥२४॥
विष्णुभक्तोद्विजश्चैवगरीयान् भारतेततः ।
निष्कामश्च सकामश्च वैष्णवोद्विविध.सति ॥२५॥
सकामश्च प्रधानश्च निष्कामो भक्तएवच ।
कर्म्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः ॥२६॥

स याति देहं त्यक्तवा च पदं विष्णोर्निरामयम् ।
पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिनां सति ॥२७॥

हे सुन्दरि ! सर्वोत्कृष्ट कर्म से मानव सिद्धि आदि को प्राप्ति किया करता है। यह मैंने साधारण रूप से सब बता दिया है। अब विशेष कर श्रवण करो ॥२२॥ पुराणों में और श्रुतियों में भी सुन्दर भाग्य बहुत ही दुर्लभ होता है ॥२३॥ भारत में यह मानव की जाति दुर्लभ होती है। इन में भी ब्राह्मण समस्त कर्मों में प्रशस्त एवं समस्त कर्मों में श्रेष्ठ होता है ॥२४॥ भारत मे विष्णु का भक्त द्विज बहुत ही बड़ा होता है। हे सति ! यह वैष्णव यहाँ ब्राह्मण भी निष्काम और सकाम दो प्रकार का हुआ करता है ॥२५॥ सकाम भक्त प्रधान होता है और निष्काम अर्थात् कामना से रहित केवल भक्त ही होता है। जो सकाम है वह भी कर्म भोगी होता है तथा निष्काम उपद्रवों से रहित होता है ॥२६॥ वह देह का त्याग करके विष्णु के निरामय पद को प्राप्त करता है। हे सति ! जो काम रहित होते हैं उनका पुनरागमन नहीं होता है ॥२७॥

———

३०—यमसावित्रीसंवादवर्णनम् ।

धर्मराज महाभाग वेदवेदाङ्गपारग ।
नानापुराणेतिहास-पञ्चरात्र-प्रदर्शक ॥ १ ॥
सर्वेषु सारभूतं यत् सर्वेष्टं सर्वसम्मतम् ।
कर्मच्छेदबीजरूपं प्रशस्यं सुखदं नृणाम् ॥ २ ॥
यशःप्रदं धर्मदञ्च सर्वमङ्गलमङ्गलम् ।
येन यामी न ते यान्ति यातनां भवदुःखदाम् ॥ ३ ॥
कुण्डानि च न पश्यन्ति तत्र नैव पतन्ति च ।
न भवेद्येन जन्मादि तत्कर्म वद सुव्रत ॥ ४ ॥

किमाकाराणिकुडानि कति तेषां स्तितानि च ।
केनरूपेण तत्रैव तिष्ठन्ति पापिनःसदा ॥ ५ ॥
स्वदेहे भस्मसाद्भूते यान्तिलोकान्तरं नरा. ।
केन देहेन वा भोगभुञ्जते वा शुभाशुभम ॥ ६ ॥
सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति ।
देहो वा किंविधोब्रह्मन् तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥
सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन् ।
कथां कथितुमारेभे गुरुं नत्वा च नारद ॥ ८ ॥

इस अध्याय मे यम और सावित्री के सम्वाद का वर्णन किया जाता है। सावित्री ने कहा--हे महाभाग ! आप तो वेदों और वेदाङ्गो के पारङ्गत महा महापण्डित है। हे धर्मराज ! आप अनेक पुराण और इतिहास तथा पञ्चरात्र के प्रदर्शन करने वाले हे ॥१॥ इन सब मे सारभूत-सबका इष्ट-सर्व सम्मत और कर्मो के छेदन करने वाला मनुष्यों का सुख देने वाला तथा प्रशस्त हो एवं यश प्रदायक-धर्म का देने वाला और समस्त मङ्गलों का भी मंगल हो जिससे वे सब भव (संसार) की दुःखद यातना को नही प्राप्त करते है -- कुण्डों को न देखते है और न उनमे पडते हे और जिससे जन्म आदि नही होते हैं, वही कर्म हे सुव्रत ! मुझे अब आप कृपाकर बताइये ॥२-३-४॥ ये कुण्ड किस आकार वाले और कितने हैं और पापी लोग वहा पर किस रूप से सदा रहा करते है ? ॥५॥ इस अपने देह के भस्मसात हो जाने पर नर फिर किस देह से अन्य लोक को जाया करते हैं तथा शुभ और अशुभ कर्म का फल भोगते हे ! ॥६॥ अधिक समय तक कर्मो के भोग से यह देह नष्ट क्यो नही होता है? ब्रह्मन ! वह देह भी किस प्रकार का होता है ? आप यह सब बताने के योग्य होते है ॥७॥ हे नारद ! धर्मराज ने सावित्री के इन वचनो को सुन कर हरि का स्मरण करते हुए गुरु को प्रणाम करके कथा को कहना आरम्भ किया था ॥८॥

वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मेषु संहितासु च ।
पुराणेष्वितिहासेषु पञ्चरात्रादिकेषु च ॥ ९ ॥

अन्येषु सर्वशास्त्रेषु वेदाङ्गेषु च सुव्रते ।
सर्वेष्टसारभूतञ्च मङ्गलं कृष्णसेवनम् ॥ १० ॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकसन्तापतारणम् ।
सर्वमङ्गलरूपञ्च परमानन्दकारणम् ॥ ११ ॥
कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम् ।
भक्तिवृक्षाङ्कुरकरं कर्मवृक्षनिकृन्तनम् ॥ १२ ॥
गोलोकमार्गसोपानमविनाशिपदप्रदम् ।
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभे ॥ १३ ॥
कुण्डानि यमदूतञ्च यमञ्च यमकिङ्करान् ।
न हि पश्यन्ति स्वप्नेन श्रीकृष्णकिङ्करा सति ॥ १४ ॥

यमराज ने कहा—हे वत्से ! चारों वेदों में समस्त धर्मों में संहिताओं में पुराणों में और पञ्चरात्र आदि में अन्य सम्पूर्ण शास्त्रों—वेदाङ्गों में हे सुव्रते ! सब का इष्ट और सारभूत मंगल कृष्ण का सेवन ही होता है ॥९ १०॥ यह कृष्ण का सेवन जन्म-मृत्यु-जरा-रोग-शोक और सन्ताप का तारने वाला है यह सबका मङ्गल रूप है और परम आनन्द का कारण है ॥११॥ यही समस्त सिद्धियों का कारण तथा नरकों के सागर से तारने वाला होता है, यह भक्ति के वृक्ष का अंकुर स्वरूप है और कर्म रूपी वृक्ष का छेदन करने वाला है ॥१२॥ यह गोलोक धाम को प्राप्त करने का सोपान है और अविनाशी पद के प्रदान करने वाला है। हे शुभे ! यह सालोक्य सार्ष्टि सारूप्य-सामीप्य चारों प्रकार के मोक्ष को प्रदान करने वाला है। हे सति ! जो भगवान श्रीकृष्ण के सेवक होते हैं, वे कुण्डों को और यम के दूतों को तथा हम और यम किङ्करों को नहीं देखा करते हैं। वैसे तो क्या उन्हें स्वप्न में भी दिखाई नहीं देते हैं ॥१३-१४॥

हरिव्रतं ये कुर्वन्ति गृहिणं कर्मभागिनं ।
ये स्नान्ति हरितीर्थे च नाश्नन्ति हरिवासरे ॥ १५ ॥

प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां पूजयन्ति च ।
न यान्तितेचघोराञ्च मम संयमनी पुरीम् ॥ १६ ॥
त्रिसन्ध्यपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः ।
स्वधर्मनिरताःशान्ता नयान्तियममन्दिरम् ॥ १७ ॥

जो गृहस्थ हरि का व्रत करते हैं जोकि कर्मों के भोगने वाले हैं और जो हरि के तीर्थों में स्नान करते हैं तथा हरि वासर में भोजन नहीं किया करते हैं - नित्य ही हरि को प्रणाम करते हैं - हरि की अर्चा करते हैं एवं उन्हें पूजते हैं, वे मेरी घोर संयमनी पुरी को नहीं जाया करते हैं ॥१५-१६॥ तीनों काल की सन्ध्या के द्वारा पवित्र और शुद्धाचार से जो सदा समन्वित रहते हैं -- अपने धर्म में निरत रहने वाले -- शान्त हैं, वे मेरे मन्दिर को नहीं जाया करते हैं ॥१७॥

३१—श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनम् ।

हरिभक्तिं देहि मह्यं सारभूतां सुदुर्लभाम् ।
त्वत्तः सर्वं श्रुतं देव नावशिष्टोऽधुना मम ॥ १ ॥
किञ्चित् कथयमेधर्मं श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनम् ।
पुंसां लक्षोद्धारवीजं नरकार्णवतारणम् ॥ २ ॥
कारणं मुक्तिसाराणां सर्वाशुभनिवारणम् ।
पावनकर्मवृक्षाणां कृतपापौघहारणम् ॥३॥
मुक्तयः कतिधा सन्ति किं वा तासाञ्च लक्षणम् ।
हरिभक्तेर्मूत्तिभेदं निषेकस्यापि लक्षणम् ॥ ४ ॥
तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता ।
किं तज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदांवर ॥ ५ ॥
सर्वदानमनशनं तीर्थस्नानं व्रतं तपः ।
अज्ञानज्ञानदानस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥ ६ ॥

पितु शतगुणा माता गौरवेणातिनिश्चिता ।
मातु शतगुणं पूज्यो ज्ञानदातागुरु प्रभो ॥ ७ ॥

इस अध्याय में श्रीकृष्ण के गुणों का कीर्त्तन निरूपित किया गया है। सावित्री ने कहा — हे देव ! आप मुझे कृपया हरि की भक्ति का प्रदान करें जो सारभूत और परम सुदुर्लभ है। मैंने आप से सभी कुछ सुन लिया है। अब कुछ भी श्रवण करने को शेष नहीं रहा है ॥१॥ कुछ मुझसे श्रीकृष्ण के गुणों के कीर्त्तन क्रम को भी बताइये जो पुरुषों का उद्धार-बीज तथा नरकों से अवतरण करने वाला है ॥२॥ यह मुक्ति के सारा का कारण-समस्त अशुभों का निवारक-कर्म वृक्षों को पवित्र करने वाला तथा किये हुए पापों के समूह का हरने वाला है ॥३॥ मुक्तियाँ कितने प्रकार की हैं और उनका लक्षण क्या होता है ? हरि की भक्ति के मूर्ति भेद तथा निषेक का लक्षण मुझे बताइये ॥४॥ विधि के द्वारा रचित यह स्त्री जाति तो तत्वज्ञान से विहीन होती है। हे वेदों में बताओ में श्रेष्ठ ! यह बताइये उनका सारभूत ज्ञान क्या है ? ॥५॥ सब प्रकार के दान-अनशन-व्रत-उपवास-तप और तीर्थों का स्नान ये सब किसी अज्ञानी व्यक्ति को ज्ञान के दान की सोलहवीं कला के भी समान योग्य नहीं होते हैं ॥६॥ हे प्रभो ! गौरव में पिता से शतगुणा अधिक माता होती है यह निश्चित मत है। माता से भी सौगुना अधिक ज्ञान का देने वाला गुरु पूज्य होता है ॥७॥

पूर्वं सर्ववरो दत्तो यत्ते मनसि वाञ्छितम् ।
अधुना हरिभक्तिस्ते वत्सेभवतु मद्वरात् ॥ ८ ॥
श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनम् ।
वक्तृणां प्रश्नकर्त्तृणां श्रोतृणां कुलतारणम् ॥ ९ ॥
शेषो वक्त्रसहस्रेण न हि यद्वक्तुमीश्वर ।
मृत्युञ्जयो न क्षमश्च वक्तुं पञ्चमुखेन च ॥ १० ॥
धाता चतुर्णां वेदानां विधाताजगतामपि ।
ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नालंविष्णुश्चसर्ववित् ॥ ११ ॥

कार्त्तिकेय षण्मुखेन नापिवक्तुमलं ध्रुवम् ।
न गणेशः समर्थश्चयोगीन्द्राणांगुरोगुरुः ॥ १२ ॥
सारभूताश्च शास्त्राणा वेदाश्चत्वारएव च ।
कलामात्रंयद्गुणानां नविदन्तिबुधाश्चये ॥ १३ ॥
सरस्वती च यत्नेन नालं यद्गुणवर्णने ।
सनतकुमारो धर्मश्च सनकश्च सनातनः ॥१४॥

यमराज ने कहा—मैंने पहले सब प्रकार का वरदान दे दिया था, जो तेरे मन में इच्छित था । अब मेरे वरदान से तुझे हे वत्से ! श्री हरि की भक्ति प्राप्त होगी ॥८॥ हे कल्याणि ! अब तू श्रीकृष्ण के गुणों का कीर्तन सुनना चाहती है जोकि बताने वालों और प्रश्न करने वालों तथा सुनने वालों के कुल को तारने वाला है ॥९॥ यह कृष्ण-गुण इतना अनंत है कि शेष अपने सहस्र मुखों से भी बताने में समर्थ नहीं होते हैं — मृत्युञ्जय शिव पाँच मुख वाले भी बताने में समर्थ नहीं हैं । चार वेदों के विधाता और समस्त जगतों के रचियता चार--मुख वाले ब्रह्मा चारों मुखोंसे कहने की क्षमता नहीं रखते हैं एवं सर्ववेत्ता विष्णु भी असमर्थ हैं ॥१०॥११॥ स्वामि कार्त्तिकेय छै मुख से नहीं कह सकते हैं तथा योगीन्द्रों के गुरूओं के गुरु गणेश भी समर्थ नहीं है ॥१२॥ समस्त शास्त्रों के सारभूत चार वेद ही होते हैं । जो बुध हैं वे तो जिनके गुणों की एक कला भी नहीं जानते ॥१३॥ वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती भी यत्नों के द्वारा जिसके गुणों के वर्णन में समर्थ नहीं है । सनतकुमार-धर्म-सनक आदि भी क्षमता नहीं रखते हैं ॥१४॥

सनन्दः कपिलः सूर्य्योयेऽन्ये च ब्रह्मणःसुताः ।
विचक्षणा न यद्वक्तुं केवान्येजड़बुद्धयः ॥ १५ ॥
न यद्वक्तुं क्षमाःसिद्धामुनीन्द्रायोगिनस्तथा ।
के वान्ये च वयं केवा भगवद्गुणवर्णने ॥ १६ ॥
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजंब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
अतिसाध्यंस्वभक्तानांतदन्येषांसुदुर्लभम् ॥१७॥

कश्चित् किञ्चिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्तनं महत् ।
अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा ब्रह्मसुतादयः ॥१८॥
ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः ।
सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शम्भुरेव च ॥१९॥
तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना ।
अतीवनिर्जने रम्ये गोलोके रासमण्डले ॥२०॥
तत्रैव कथितं किञ्चित् तद्गुणोत्कीर्तनं पुनः ।
धर्मायकथयामासशिवलोके शिवः स्वयम् ॥२१॥

सनन्द-कपिल सूर्य और अन्य ब्रह्मा के पुत्र तथा विचक्षण श्री कृष्ण के गुणों के वर्णन करने में असमर्थ है तो विचार अन्य जड़ बुद्धि वालों की बात ही क्या है ॥१५॥ जिनके वर्णन करने में बड़े बड़े सिद्ध मुनीन्द्र और योगी लोग असमर्थ होते हैं तो अन्य लोग और हम भगवद्गुणों के वर्णन करने में क्या चीज हैं ॥१६॥ जिसके चरण कमल का ब्रह्मा- विष्णु और शिव आदि समस्त देवगण ध्यान किया करते हैं वह अपने भक्तों के लिये तो अत्यन्त साध्य है किन्तु अन्य सबके लिये बहुत ही कठिन है ॥१७॥ उनके महान गुणों के कीर्तन कोई कुछ ही जानता है। अतिरिक्त तो ब्रह्मा और ब्रह्मा के पुत्र आदि ही जानते हैं ॥१८॥ इससे भी अधिक ज्ञानियों के गुरु गणेश जानते हैं। सबसे अति अधिक सर्वज्ञ भगवान शम्भु ही जानते हैं ॥१९॥ परमात्मा कृष्ण ने पहिले उन शम्भु के लिये ज्ञान दिया था जोकि अत्यन्त निर्जन परम रम्य गोलोक के रास मण्डल में दिया था ॥२०॥ वहाँ पर ही फिर उनके गुणों का कीर्तन कुछ कहा था। इसके अनन्तर स्वयं शिव ने शिव लोक में धर्म के लिये इसे कहा था ॥२१॥

धर्मस्तत्कथयामास पुष्करे भास्कराय च ।
ममाराध्य मम पिता मां प्राप तपसा मुने ॥२२॥
पूर्वं स्वविषयञ्चाहं न गृह्णामि प्रयत्नतः ।
वैराग्ययुक्तस्तपसे गन्तुमिच्छामि सुव्रते ॥२३॥

तदा मां कथयामास पितायद्गुणकीर्त्तनम् ।
यथागमं तद्वदामि निबोधातीव दुर्गमम् ॥२४॥
तद्गुणं स न जानाति तदन्यस्यचकाकथा ।
यथाकाशो नजानाति स्वान्तमेववरानने ॥२५॥
सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वकारणकारणम् ।
सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यःसर्ववित्सर्वरूपधृक् ॥२६॥
नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः ।
निरङ्कुशश्च निःशङ्कोनिर्गुणश्च निराश्रयः ॥२७॥
निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः ।
तद्विकाराश्चप्रकृतिस्तद्विकाराश्चप्राकृताः ॥२८॥
स्वयं पुमांश्च प्रकृतिः स्वयं च प्रकृतेः परः ।
रूपं विधत्ते ऽरूपश्च भक्तानुग्रहहेतवे ॥२९॥

धर्म ने सूर्य को पुष्कर में उनके गुण-गण कह कर सुनाये थे। जिसकी आराधना करके मेरे पिता ने तप के द्वारा हे सति ! मुझे प्राप्त किया था ॥२२॥ हे सुव्रते पहिले तो मैं भी अपने विषय को ग्रहण नहीं करता था और वैराग्य से युक्त होकर तपस्या करने को जाने की इच्छा करता था ॥२३॥ तब मेरे पिता सूर्य ने इनके गुणों का कीर्त्तन कहा था। जैसा आगम कहता है उसी के अनुसार उसे मैं बताता हूं। यह अत्यन्त दुर्गम है, इसको समझ ले ॥२४–२५॥ उनके गुण इतने अनन्त हैं कि उन्हें वे स्वयं भी नहीं जानते हैं फिर और की तो बात ही क्या है ? हे वरुनने ! जिस तरह आकाश स्वान्त को ही नहीं जानता है ॥२५॥ भगवान सब के अन्तरात्मा हैं और सब के कारणों के भी कारण स्वरुप हैं। वह सर्वेश्वर हैं सब के–आदि में रहने वाले हैं–सभी कुछ के ज्ञाता हैं और सबका रुप धारण करने वाले हैं ॥२६॥ नित्य रुप वाले–नित्य देह वाले नित्य आनन्द से युक्त —निरकृति -- निरङ्कुश --निःशङ्क-- निराश्रय और निगुण है। वे निर्लिप्त --सब के साक्षी --सबके आधार और परात्पर हैं। उसी का विकार यह प्रकृति है और उसके विकार रुप प्राकृत हैं ॥२७–२८॥ यह प्रभाव स्वयं

ही प्रकृति है और स्वयं ही प्रकृति से पर भी है। यह स्वयं रूप रहित होते हुए भी अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये रूप को धारण किया करते हैं अथवा निराकार भी साकार बन जाया करते है ॥२९॥

परमानन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः ।
यत्प्रसादाद्वाति वातः प्रवरः शीघ्रगामिनाम् ॥३०॥
तपनश्च प्रतपति यद्भयात् सन्ततं सति ।
यदाज्ञया वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥३१॥
यदाज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेव सुशीतलम् ।
दिशो रक्षन्ति दिक्पाला महाभीता यदाज्ञया ॥३२॥
भ्रमन्ति राशिचक्राणि ग्रहाश्च यद्भयेन च ।
भयात्फलन्ति वृक्षाश्च पुष्पन्त्यपि च यद्भयात् ॥३३॥
भयात् फलानि पक्वानि निष्फलास्तरवो भयात् ।
यदाज्ञयास्थलस्थाश्च न जीवन्ति जलेषु च ॥३४॥
तथा स्थले जलस्थाश्च न जीवन्ति यदाज्ञया ।
अहं नियमकर्त्ता च धर्माधर्मे च यद्भयात् ॥३५॥

यह परम आनन्द से युक्त हैं और वैराग्य से युक्त हैं जिसकी कृपा से यह वायु वहन किया करता है जो कि शीघ्र गमन करने वालों में परम एवं सब श्रेष्ठ है ॥३०॥ यह सूर्य भी जिसके भय से हे सति! निरन्तर तपता रहता है। जिसकी आज्ञा से इन्द्र देव वर्षा किया करते हैं और मृत्यु जन्तुओं में बराबर चरण करता रहता है ॥३१॥ यह अग्नि देव भी उसी के भय से दाह करता है और जल शीतलता धारण किये रहता है। जिन महापुरुष की आज्ञा पाकर ही समस्त दिक्पाल दिशाओं की रक्षा करते हैं और सदा महा भयभीत रहा करते हैं ॥३२॥ राशियों का समूह जिसके भय से घूमता रहता है और वृक्ष भी जिसके डर से पुष्प और फल दिया करते हैं ॥३३॥ उसी का भय है कि फल पक जाया करते हैं और वृक्ष निष्फल हो जाते हैं। यह भी उसी की आज्ञा है कि स्थल में रहने वाले जीव जल में जीवित नहीं रहते हैं और जल में रहने वाले स्थल में जिन्दा नहीं

रहा करते हैं। मैं भी जिसके भय से धर्म और अधर्म के विषय में नियमों के करने वाला हूं॥३४-३५॥

चक्षुर्निमीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः।
प्रलये प्राकृताः सर्वे देवाद्याश्च चराचराः ॥३६॥
लीनाधातरि धाता च श्रीकृष्णनाभिपङ्कजे।
विष्णुःक्षीरोदशायी च वैकुण्ठेयश्चतुर्भुजः ॥३७॥
विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः।
रुद्राद्याभैरवाद्याश्च यावन्तश्च शिवानुगाः ॥३८॥
शिवाधारे शिवेलीना ज्ञानानन्देसनातने।
ज्ञानाधिदेवः कृष्णस्य महादेवस्य चात्मनः ॥३९॥
तस्य ज्ञानविलीनश्च बभूव च क्षणं हरेः।
दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः ॥४०॥
सा च कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्धयधिष्ठातृदेवता।
नारायणांशःस्कन्दश्चलीनावक्षःस्थलेतस्यच ॥४१॥
श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो गणेश्वरः।
पद्मांशाचापिपद्मायां सा राधायाञ्च सुव्रते ॥४२॥

उस महान पुरुष के नेत्रों के मूँदने में प्राकृतिक लय होता है। प्रलय काल में देव आदि सभी चराचर प्राकृत धाता में लीन हो जाते हैं और वह धाता श्रीकृष्ण के नाभि के कमल में लीन हो जाता है। क्षीर सागर में शयन करने वाले विष्णु जो वैकुठ लोक में चार भुजा वाले स्थित रहते हैं वह भी परमात्मा श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व में विलीन हो जाते हैं। रुद्र आदि और भैरव आदि जितने भी शिव के अनुयायी हैं, वे सब शिव (मङ्गल) के आधार-ज्ञानानन्द-सनातन शिव में लीन हो जाते हैं। जो कि महान आत्मा एवं महान देव कृष्ण के ज्ञान के अधि देव हैं ॥३६॥३७॥३८॥३९॥ उस हरि का क्षण भर केलिये ज्ञान का विलय हो जाता है। महामाया दुर्गा में समस्त शक्तियाँ विलीन हो जाती हैं ॥४०॥ वह दुर्गा कृष्ण की बुद्धि में बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है। जिसके वक्षःस्थल में नारायण का अंश स्कन्द

स्थित रहते हैं ॥४१॥ उसकी बाहु में कृष्ण का अंश देवों का अधीश गणेश है। हे सुव्रते ! पद्मा का अंश पद्मा में और राधा में स्थित है ॥४२॥

यथा श्रुतं तातवक्त्रात् तथोक्तञ्च यथागमम् ।
मुक्तयश्च चतुर्वेदनिरुक्ताश्च चतुर्विधाः ॥४३॥
तत्प्रधाना हरेर्भक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी ।
सालोक्यदा हरेरेका चान्या सारूप्यदा परा ॥४४॥
सामीप्यदा च निर्वाणदात्री चैवमिति स्मृतिः ।
भक्तास्तान्नहि वाञ्छन्ति विना तत्सेवनादिकम् ॥४५॥
सिद्धित्वममरत्वञ्च ब्रह्मत्वञ्चावहेलया ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिखण्डनम् ॥४६॥
दिव्यरूपधारणञ्च निर्वाणं मोक्षदं विदुः ।
मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्द्धिनी ॥४७॥
भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकलक्षणं शृणु ।
विदुर्बुधा निषेकञ्च भोगञ्च कृतकर्मणाम् ॥४८॥
तत्खण्डनञ्च शुभदं श्रीकृष्णसेवनं परम् ।
तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि सारञ्च लोकवेदयोः ॥४९॥

मैंने जो भी अपने पिता के मुख से शास्त्र के अनुसार सुना है, वैसा ही तुमको बता दिया है। चारों वेदों ने चार प्रकार की मुक्तियाँ बताई हैं ॥४३॥ उन सब में प्रधान हरि की भक्ति है जो मुक्ति से भी बड़ी है। उनमें एक हरि के सालोक्य के प्रदान करने वाली है और दूसरी सारूप्य को देने वाली है। एक सामीप्य के प्रदान करने वाली है और तीसरी निर्वाण पद को देने वाली होती है—ऐसा स्मृति कहती है। भक्त लोग इन मुक्तियों को नहीं चाहते हैं जिनमें हरि की सेवा आदि कुछ भी नहीं है ॥४४॥४५॥ सिद्धित्व-अमरत्व और ब्रह्मत्व अवहेला से जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, भय, शोक आदि सबका खण्डन करने वाले हैं ॥४६॥ दिव्य रूप का धारण करने वाला निर्वाण मोक्ष प्रदान करने वाला है। यह मुक्ति तो हरि की सेवा से रहित होती

हैं और भक्ति सेवा के विवर्द्धन करने वाली होती है ॥४७॥ भक्ति और मुक्ति इन दोनों का यही भेद होता है। अब निषेध का लक्षण श्रवण करो। किये हुए कर्मों का निषेक और भोग को वृद्ध लोग जानते हैं ॥४८॥ उसका खण्डन शुभ का देने वाला श्रीकृष्ण का सेवन पर होता है। हे साध्वि ! यह लोक और वेदों का सार स्वरूप तत्त्व ज्ञान है ॥४९॥

विघ्नघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छवत्सेयथासुखम् ।
इत्युक्त्वासूर्य्यपुत्रश्चजीवयित्वाचतत्पतिम् ॥५०॥
तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्त्तुमुद्यतः ।
दृष्ट्वा यमञ्चगच्छन्तं सावित्री तं प्रणम्य च ॥५१॥
रुरोद चरणेधृत्वा सद्विच्छेदोऽतिदुःखदः ।
सावित्रीरोदनं दृष्ट्वा यम एव कृपानिधिः ॥
तामित्युवाच सन्तुष्टो रुरोद चापि नारद ॥५२॥
लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ।
अन्ते यास्यसि गोलोके श्रीकृष्णभवनं शुभे ॥५३॥
गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतंकुरु ।
द्विसप्तवर्षपर्य्यन्तं नारीणां मोक्षकारणम् ॥५४॥
ज्यैष्ठे कृष्णचतुर्दश्यां सावित्र्याश्चव्रतंशुभम् ।
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्याव्रतंशुभम् ॥५५॥
द्व्यष्टवर्षव्रतं चेदं प्रत्यब्दं पक्षमेव च ।
करोति परया भक्त्या सा याति च हरेः पदम् ॥५६॥

जो विघ्न देने वाला है वह शुभ देने वाला कहा गया है। हे वत्से ! अब तू सुख पूर्वक वापिस जा। यह कहकर सूर्य के पुत्र यमराज ने उसके पति को जीवित कर दिया था और उसको शुभ आशीर्वाद देकर वह जाने को उद्यत हो गया। जब सावित्री ने देखा कि यमराज जा रहे हैं तो उसने उनको प्रणाम किया था। वह उनके चरणों में अपना शिर रखकर रोने लगी थी कि सत्पुरुष का विच्छेद (वियोग) अत्यन्त दुःखदायी होता है। हे

नारद ! सावित्री का रुदन देखकर कृपा के निधि सन्तुष्ट होकर उससे बोले और स्वयं भी रो पड़े थे ॥५०॥५१॥५२॥ यमराज ने कहा—हे शुभे ! पुण्य के क्षेत्र भारत में एक लाख वर्ष तक सुखों का उपभोग कर अन्त में गोलोक में श्री कृष्ण के भवन को तू चली जायगी ॥५३॥ हे भद्रे ! अपने घर में जाकर तू सावित्री का व्रत करना । चौदह वर्ष पर्यन्त सावित्री का व्रत करने में नारियों का मोक्ष का कारण यह हुआ करता है ॥५४॥ ज्येष्ठ मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन सावित्री का शुभ व्रत होता है । भाद्रपद मास की शुक्लाष्टमी के दिन महालक्ष्मी का शुभ व्रत होता है ॥५५॥ प्रतिवर्ष सोलह वर्ष तक यह व्रत अथवा पक्ष में ही जो नारी परम भक्ति से किया करती है वह हरि के स्थान को प्राप्त करती है ॥५६॥

या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसन्तानहेतवे ।
इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥५७॥
इत्युक्त्वा तां धर्मराजोजगामनिजमन्दिरम् ।
गृहीत्वास्वामिनसाचसावित्रीचनिजालयम् ॥५८॥
सावित्री सत्यवन्तञ्च वृत्तान्तञ्च यथाक्रमम् ।
अन्यांश्चकथयामासबान्धवांश्चैव नारद ॥५९॥
सावित्रीजनकः पुत्रान् सम्प्राप वै क्रमेण च ।
श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं स्वपुत्रान्वरेणच ॥६०॥
लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ।
जगाम स्वामिना सार्द्धंगोलोकं सा पतिव्रता ॥६१॥
सवितुश्चाधिदेवी या मन्त्राधिष्ठातृदेवता ।
सावित्रीचापिवेदानांसावित्री तेन कीर्त्तिता ॥६२॥

जो नारी धन और सन्तान के लिये भक्तिभाव पूर्वक पूजा करती है वह इस लोक में सुख भोग करके अन्त समय में श्री हरि के स्थान की प्राप्ति किया करती है ॥५७॥ यह कहकर वह धर्मराज अपने मन्दिर में चले गये थे । वह सावित्री भी अपने स्वामी सत्यवान को लेकर अपने गृह को

चली आई थी ॥५८॥ हे नारद ! उस सावित्री ने यह समस्त वृतान्त यथा क्रम अपने स्वामी सत्यवान से तथा अन्य बान्धवों से कह दिया था । सावित्री के पिता ने पुत्रों की प्राप्ति की थी—उसके श्वशुर ने अपने नेत्रों को प्राप्त किया और सावित्री ने यमराज के वरदान से श्रेष्ठ पुत्रों की प्राप्ति की थी ॥६०॥ फिर उसने एक लाख वर्ष पर्यन्त पुण्य क्षेत्र भारत में पूर्ण सुख का उपभोग करके वह पतिव्रता अपने स्वामी सत्यवान के साथ ही अन्त में गोलोक में चली गई थी ॥६१॥ वह सविता की अधिदेवी थी और मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवता थी और वेदों की भी वह सावित्री अधि देवी थी। अतएव सावित्री-इस नाम से वह प्रसिद्ध हुई थी ॥६२॥

३२—लक्ष्म्युपाख्यानम् ।

श्रीकृष्णस्यात्मनश्चैव निर्गुणस्य निराकृतेः ।
सावित्री यमसंवादे श्रुतं सुनिर्मलं यशः ॥१॥
तद्गुणोत्कीर्त्तनं सत्यं मङ्गलानाञ्चमङ्गलम् ।
अधुनाश्रोतुमिच्छामिलक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर ॥२॥
केनादौ पूजिता सापि किम्भूता केन वा पुरा ।
तद्गुणोत्कीर्त्तनं सत्यं वद वेदविदांवर ॥३॥
सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन् कृष्णस्य परमात्मनः ।
देवी वामांशसंभूता बभूव रासमण्डले ॥४॥
अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला ।
यथा द्वादशवर्षीया शश्वत्सुस्थिरयौवना ॥५॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा ।
शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाप्रच्छादनानना ॥६॥

शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना।
सा च देवी द्विधाभूता सहसैवेश्वरेच्छया। ७।

इस अध्याय में लक्ष्मी के उपाख्यानों के विषय में वर्णन किया जाता है। नारद ने कहा—निर्गुण निराकृति परमात्मा श्रीकृष्ण का सावित्री और यम के सम्वाद में परम निर्मल यश का श्रवण किया है। उनके गुणों का कीर्त्तन सत्य और मङ्गलों का भी मङ्गल स्वरूप है। हे ईश्वर! अब मैं लक्ष्मी के उपाख्यान को श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ। आदि में उनका किसने पूजन किया था और वह किस स्वरूप वाली थी। उसके गुणों का कीर्तन किसने पहिले किया था? हे वेद विदां में श्रेष्ठ! यह सब सत्य सत्य बताइये। नारायण ने कहा—हे ब्रह्मन्! पहिले सृष्टि के आदि में परमात्मा कृष्ण की यह रासमण्डल में वामाङ्ग से उत्पन्न हुई थी॥१।२॥ ॥३॥४॥ यह अत्यन्त सुन्दरी श्यामा और न्यग्रोध के परिमाण्डल वाली थी जिस प्रकार से कोई बारह वर्ष की हो-यह निरन्तर सुस्थिर यौवन वाली थी॥५॥ इस की आभा श्वेत चम्पक के पुष्प के तुल्य थी—सुखदायक निरीक्षण करने के योग्य और परम मनोहर थी तथा शारतकाल की पूर्णिमा के करोड़ चन्द्रों की प्रभा को पराजित करने वाले मुख से समन्वित थी॥६॥ शरत्कालीन मध्य समय के विकसित पद्मों की शोभा को मोचन करने वाले नेत्रों वाली थी। वह देवी सर्वेश्वर भगवान की इच्छा से दो रूपों वाली हो गई थी॥७॥

समा रूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा।
यशसा वाससा मूर्त्या भूषणेन गुणेन च॥८॥
स्मितेन वीक्षणेनैव वचसा गमनेन च।
मधुरेण स्वरेणैव नयेनानुनयेन च॥९॥
तद्वामांशा महालक्ष्मीर्दक्षिणांशा च राधिका।
राधादौ वरयामास द्विभुजञ्च परात्परम्॥१०॥
महालक्ष्मीश्च तत्पश्चात् चकाम कमनीयकम्।
कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह॥११॥

दक्षिणांशश्च द्विभुजो वामांशश्च चतुर्भुजः ।
चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौपुरा ॥१२॥
लक्ष्यतेदृश्यतेविश्वंस्निग्धदृष्ट्या ययानिशम् ।
देवीष्याचमहती महालक्ष्मीश्चसास्मृता ॥१३॥
द्विभुजो राधिकाकान्तो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः ।
गोलोके द्विभुजस्तस्थौ गोपैर्गोपीभिरावृतः ॥१४॥

किन्तु रूप - वर्ण -तेज-वय-कान्ति-यश-वस्त्र-मूर्ति-भूषण-गुण-स्मित-वीक्षण-वचन-गमन-माधुर्य-मधुर-स्वर-नय-अनुनय इन सबसे दोनों ही एक समान रूप थे ॥८॥९॥ परमात्मा के वाम अंश वाली महालक्ष्मी हुई थी और दक्षिण अंश वाली राधिका थी । राधा ने आदि में दो भुजाओं वाले परात्पर का वरण किया था ॥१०॥ इसके अनन्तर महालक्ष्मी ने उस कमनीय के प्राप्त करने की कामना की थी । श्री कृष्ण भी उसके गौरव से दो रूप वाले हो गये थे ॥११॥ जो दक्षिणांश उनका था वह तो दो भुजाओं वाला हुआ था और वामांश चार भुजाओं वाला हो गया था । पहिले दो भुजाओं वाले ने चतुर्भुज के लिये महालक्ष्मी को दे दिया था ॥१२॥ जिसके द्वारा निरन्तर यह सम्पूर्ण विश्व स्निग्ध दृष्टि से लक्षित होता है, देखा जाता है और जो देवियों महती(सबसे बड़ी) है इसलिये महालक्ष्मी इस शुभ नाम से यह कही गई है ॥१३॥ दो भुजाओं वाले राधिका के कान्त हैं और चतुर्भुज महालक्ष्मी के कान्त हैं । जो द्विभुज हैं वह गोप एवं गोपिकाओं से आवृत होकर गोलोक में स्थित थे ॥१४॥

चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह ।
सर्वांशेन समौ तौद्वौ कृष्णनारायणौ परौ ॥१५॥
महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा वभूव सा ।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमा परा ॥१६॥
शुद्धसत्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता ।
प्रेम्णा साच प्रधानाच सर्वासु रमणीषुच ॥१७॥

स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसम्पत्स्वरूपिणी ।
पातालेषु च मर्त्येषु राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥१८॥
गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहिणी च कलांशया ।
सम्पत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमङ्गलमङ्गला ॥१९॥
गवां प्रसूः सा सुरभीदक्षिणा यज्ञकामिनी ।
क्षीरोदसिन्धुकन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च ॥२०॥
शोभारूपा च चन्द्रे च सूर्यमण्डलमण्डिता ।
विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु च जलेषु च ॥२१॥

जो चतुर्भुज उनका दूसरा स्वरूप था, वह अपनी प्रयसी पद्मा के साथ वैकुण्ठ लोक मे चले गये थे । ये कृष्ण और नारायण दोनो ही सर्वांश मे समान एव पर थे ॥१५॥ वह महालक्ष्मी योग के द्वारा अनेक स्वरूपों वाली हो गई थी । वैकुण्ठ मे तो यह परा-परिपूर्णतम रूप वाली महा लक्ष्मी थी ॥१६॥ यह महालक्ष्मी शुद्ध-सत्त्वमय स्वरूप से युक्त-सर्व सौभाग्य से समन्वित थी और प्रेम से वह समस्त रमणियो मे प्रधान थी ॥१७॥ यह स्वर्ग मे इन्द्र की सम्पत्ति के स्वरूप वाली स्वर्ग लक्ष्मी थी । पाताल मे मनुष्यों मे और राजाओ मे यह राज लक्ष्मी हुई थी ॥१८॥ गृहों मे गृह लक्ष्मी थी और कलांश से गृहिणी थी । गृहणियो के यहां वह सम्पत्ति के स्वरूप वाली, समस्त मङ्गलो के मङ्गल करने वाली थी । गौओ की सन्तति वह सुरभि है और यज्ञ की कामिनी दक्षिणा के रूप वाली यही होती है । क्षीर सिन्धु मे न्यास वाली और पद्मनियो मे श्री के रूप वाली स्थित यह है ॥१९॥२०॥ यह देवी चन्द्र मे भी विराजमान रहती है जोकि शोभा के रूप मे स्थित है । यह सूर्य मण्डल मे भी तेज के रूप मे विद्यमान रहा करती है । इस प्रकार से बहुत से स्थानो मे विभूषणो मे, रत्नों मे, फलो मे और जलो मे भी वह शोभा के रूप मे स्थित रहती है ॥२१॥

नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च ।
सर्वसस्येषु वस्त्रेषु स्थानेषु संस्कृतेषु च ॥२२॥
प्रतिमासु च देवानां मङ्गलेषु घटेषु च ।

माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा ॥२३॥
मणीन्द्रेषु च हारेषु क्षीरेषु चन्दनेषु च।
वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु वस्तुषु ॥२४॥
वैकुण्ठे पूजिता सादौ देवी नारायणेन च।
द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीयेशङ्करेण च ॥२५॥
विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने।
स्वाम्भुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः ॥२६॥
ऋषीन्द्रैश्चमुनीन्द्रैश्चसद्भिश्चगृहिभिर्भवेत्।
गन्धर्वाद्यैश्चनागाद्यैःपातालेषुचपूजिता ॥२७॥
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे कृता पूजाच ब्रह्मणा।
भक्त्या च पक्षपर्यन्तं त्रिषु लोकेषुनारद ॥२८॥

इन प्रकार से लोक में इस महालक्ष्मी देवी के बहुत से स्थान होते हैं। यह नृपों में-नृपों की पत्नियो मे-दिव्य स्वरूपा रमणियों में-ग्रहों में-सम्पूर्ण शस्यों में-वस्त्रों में-स्थानों में और सुसंस्कृत आलयों में यह शोभा-सौन्दर्य रूप से विराजमान रहा करती है ॥२२॥

देवों की प्रतिमाओं में तथा मङ्गलार्थ संस्थापित घटों में माणिक्या मुक्ता-माल्य-मणीन्द्र-हार-क्षीर चन्दन-रम्य वृक्षों की शाखायें तथा नवीन मेघ आदि सुन्दर वस्तुओं में वह देवी ही अपनी परमाकर्षक छटाओं से सर्वत्र विराजमान है ॥२३-२४॥ वह महालक्ष्मी देवी आदि में वैकुण्ठ धाम में नारायण के द्वारा पूजित हुई थी। फिर दूसरे ब्रह्मा के द्वारा भक्ति से और तीसरे शङ्कर के द्वारा समर्चित हुई थी। हे मुने! क्षीर सागर में वह भारत में वह विष्णु के द्वारा पूजी गई थी। इनके अतिरिक्त स्वाम्भुव मनु-सब और मानवेन्द्रों से-ऋषीन्द्र-मुनीन्द्र-सद्गृही गण-गन्धर्वादि नाग आदि के द्वारा पाताल में पूजित की गई थी ॥२५॥ २६॥ ॥२७॥ भाद्रपद मास की शुक्ल अष्टमी में ब्रह्मा ने पूजा की थी। हे नारद! एक पक्ष पर्यन्त तीनों लोकों में भक्ति के साथ देवी की पूजा की गई थी ॥२८॥

चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मङ्गलवासरे।
विष्णुनानिर्मिता पूजानिपुलोकेपुभक्तित. ॥२९॥
वर्षान्ते पौषसङ्क्रान्त्या मेध्यामावाह्य प्राङ्गणे।
मनुस्तां पूजयामास साभूता भुवनत्रये ॥३०॥
राजेन्द्रेण पूजिता सा मङ्गलेनैव मङ्गला।
केदारेणैव नीलेन नलेन सुबलेन च ॥३१॥
ध्रुवेणोत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा।
कश्यपेन च दक्षेण मनुना च विवस्वता ॥३२॥
प्रियव्रतेन चन्द्रेण कुबेरेणैव वायुना।
यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता ॥३३॥
एवं सर्वत्र सर्वैश्च वन्दितापूजितासदा।
सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्स्वरूपिणी ॥३४॥

चैत्र-पौष-भाद्रपद मास में मङ्गल वार में विष्णु के द्वारा तीनों लोकों में भक्ति भाव से इस देवी की पूजा को निर्मित किया गया है ॥२९॥ वर्ष के अन्त में पौष की संक्राति में पवित्र देवी का प्राङ्गण में आवाहन करके मनु ने पूजा की थी, फिर वही तीनों भुवनों में पूजित हुई थी ॥३०॥ वह मङ्गला देवी मङ्गल राजेन्द्र के द्वारा पूजित हुई थी। केदार नील-नल और सुबल के द्वारा उनकी अर्चना की गई थी ॥३१॥ राजा उत्तान-पाद-ध्रुव-इन्द्र-बलि कश्यप-दक्ष-मनु-विवस्वान्-प्रिय व्रत-चन्द्र कुबेर-वायु-यम-अग्नि देव और वरुण देव के द्वारा इस देवी की समर्चना की गई थी ॥३२॥३३॥ इस प्रकार से यह महालक्ष्मी देवी सर्वत्र सभी के द्वारा वन्दित और पूजित हुई है। यह देवी सब प्रकार के ऐश्वर्यों की अधिष्ठात्री देवी और सम्पूर्ण सम्पत्तियों के स्वरूप वाली है ॥३४॥

३३—इन्द्रं प्रति दुर्वाससःशापः ।

नारायणप्रिया सा च वरा वैकुण्ठवासिनी ।
वैकुण्ठाधिष्ठात्रीदेवी महालक्ष्मीः सनातनी ॥१॥
कथं बभूवसादेवीपृथिव्यांसिन्धुकन्यका ।
किंतद्ध्यानंचकवचं सर्वंपूजाविधिक्रमम् ॥२॥
पुरा केन स्तुतादौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥
पुरा दुर्वासः शापात् भ्रष्टश्रीकः पुरन्दरः ।
बभूव देवसंघश्च मर्त्यलोकश्चनारद ॥४॥
लक्ष्मीः स्वर्गादिकंत्यक्त्वारुष्टापरमदुःखिता ।
गत्वालीनाचवैकुण्ठेमहालक्ष्म्याञ्चनारद ॥५॥
तदा शोकाद्ययुर्देवा दुःखिता ब्रह्मणः सभाम् ।
ब्रह्माणञ्च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च ॥६॥
वैकुण्ठ शरणापन्ना देवा नारायणे परे ।
अतीवदैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ॥७॥

इस अध्याय में इन्द्र देव के प्रति दुर्वासा ऋषि के शाप का निरूपण किया जाता है। नारद ने कहा —वह देवी भगवान नारायण की प्रिया-श्रेष्ट और वैकुण्ठ लोक की निवास करने वाली है। यह देवी वैकुण्ठ लोक की अधिष्ठात्री देवी है। यह सनातनी महालक्ष्मी देवी है ॥१॥ पृथवी में वह देवी सिन्धु की कन्या कैसे हुई थी ? उस देवी का ध्यान क्या है। कवच और पूजार्चन का क्रम क्या है ? सब से प्रथम पहिले किस के द्वारा इसकी स्तुति की गई थी। आप इस सबकी व्याख्या करने के योग्य होते हैं ॥२॥३॥ भगवान नारायण ने कहा—हे नारद ! पहिले इन्द्र दुर्वासा ऋषि के शाप से भ्रष्ट श्री हो गया था और यह मर्त्य लोक तथा देवों का समुदाय भी सब श्री से भ्रष्ट हो गया था ॥४॥ हे नारद ! यह लक्ष्मी परम रुष्ट एवं दुःखित होकर स्वर्ग आदि का त्याग कर वैकुण्ठ में चली गई थी और महालक्ष्मी जाकर लीन हो गई थी ॥५॥ उस समय में शोक से परम दुःखित

होकर देवगण ब्रह्मा की सभा में गये थे । फिर ब्रह्मा को आगे करके सब बैकुण्ठ में गये थे ॥६॥ बैकुण्ठ में जाकर समस्त देवता परम पुरुष नारायण की शरण में प्राप्त हुए थे । सब अत्यन्त दीनता से युक्त एवं सूखे हुए कण्ठ-तालु और ओठों वाले हो रहे थे ॥७॥

तदा लक्ष्मीश्च कलया पुरा नारायणाज्ञया ।
बभूव सिन्धुकन्या सा शक्रसम्पत्स्वरूपिणी ॥८॥
तदा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह ।
सम्प्रापुश्च वरं लक्ष्म्या ददृशुस्तां च तत्र हि ॥९॥
सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वनमालां च विष्णवे ।
ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने ॥१०॥
देवाश्चाप्यसुरग्रस्तं राज्यं प्रापुश्च तद्वरात् ।
तां सम्पूज्य च संस्तूय सर्वे च निरापदः ॥११॥
कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः पुरन्दरम् ।
केन दोषेण वा ब्रह्मन् ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मवित् पुरा ॥१२॥
मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिः पुरा ।
क्रीडां चकार रहसि रम्भया सह कामुकः ॥१३॥
कृत्वा क्रीडां तया सार्द्धं कामुक्याहृतचेतनः ।
तस्थौ तस्मिन्महारण्ये कामोन्मथितचेतनः ॥१४॥

उस समय पहिले भगवान नारायण की आज्ञा से वह लक्ष्मी कला के द्वारा इन्द्र की सम्पत् के स्वरूप वाली सिन्धु की कन्या हुई थी ॥८॥ उस समय देवगण ने दैत्यगणों के साथ क्षीरोदधि का मन्थन किया था और लक्ष्मी देवी का वरदान प्राप्त किया था और उन्होंने उनका दर्शन प्राप्त किया था ॥९॥ उस देवी ने सुर आदि के लिये वरदान दिया था और क्षीर सागर के शयन करने वाले विष्णु के लिये प्रसन्न मुख वाली ने परम तुष्ट होकर वनमाला दी थी ॥१०॥ उस देवी के वरदान से देवगण ने असुरों के द्वारा ग्रस्त किया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर लिया था । उन देवों ने उसकी पूजा तथा स्तुति की थी और फिर वे सब आपत्ति से रहित हो गये थे ॥११॥

नारद ने कहा—हे ब्रह्मन ! पहिले ब्रह्म के वेत्ता मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासा ने किस दोष से परम वलिष्ट इन्द्र को क्यों शाप दिया था ॥१२॥ नारायण ने कहा—पहिले समय में त्रैलोक्य का अधिपति इन्द्र मधुपान से प्रमत्त होकर कामुक ने एकान्त में रम्भा अप्सरा के साथ क्रीड़ा की थी ॥१३॥ उस अप्सरा रम्भा के साथ क्रीड़ा करके कामुकी के द्वारा चित्त हरण किये जाने वाला काम से उन्मथित चित्त वाला होकर उसी महारण्य में स्थित हो गया था ॥१४॥

कैलासशिखरं यान्तं वैकुण्ठादृषिपुङ्गवम् ।
दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१५॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डसहस्रप्रभमीश्वरम् ।
प्रतप्तकाञ्चनाकारं जटाभार महोज्ज्वलम् ॥१६॥
शुक्लयज्ञोपवीतञ्च चीरंदन्डंकमण्डलुम् ।
महोज्ज्वलञ्च तिलकं बिभ्रतंचन्द्रसन्निभम ॥१७॥
समन्वितं शिष्यवर्गैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ।
दृष्ट्वा ननाम शिरसा सम्भ्रमात्त पुरन्दरः ॥१८॥
शिष्यवर्गञ्च भक्त्या च तुष्टावचमुदान्वितः ।
मुनिनाचसशिष्येण तस्मै दत्त शुभाशिषम् ॥१९॥
विष्णुदत्त पारिजातपुष्पञ्च सुमनोहरम ।
जरामृत्युरोगशोकहरं मोक्षकरं परम् ॥२०॥
शक्रः पुष्पं गृहीत्वा चप्रमत्तोराजसम्पदा ।
भ्रमेण स्थापयामास तदेवहस्तिमस्तके ॥२१॥
तत्पुष्पं त्यक्तवन्तञ्च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः ।
तमुवाच महारुष्टः शशाप स रुषान्वितः ॥२२॥

एक बार इन्द्रदेव ने वैकुण्ठ लोक से कैलास के शिखर को जाते हुए ब्रह्म-तेज से देदीप्यमान ऋषियों में श्रेष्ठ दुर्वासा को देखा था ॥१५॥ उस समय दुर्वासा समर्थ ग्रीष्म काल के मध्याह्न समय में सहस्र सूर्य के समान प्रभा से युक्त थे। उनकी कान्ति उस समय तपे हुए स्वर्ण के

समान थी-जटाओं का भार उनके मस्तक पर था और महान उज्ज्वल स्वरूप था ॥१६। शुक्ल यज्ञोपवीत चीर-दण्ड कमण्डल और चन्द्र के समान महान उज्ज्वल तिलक धारण किये हुए थे ॥१७। दुर्वासा मुनि वेदों और वेदाङ्गों के पारगामी महापण्डित शिष्य वर्गों से समन्वित थे। जैसे ही इन्द्र ने मुनि का दर्शन किया था उसने शीघ्रता से उनको शिर से अर्थात चरणों में शिर रखकर प्रणाम किया था ॥१८॥ बड़े ही आनन्द से युक्त होकर भक्तिभाव से इन्द्र ने मुनि के शिष्य समुदाय का स्तवन किया था। इसके अनन्तर मुनि दुर्वासा ने और शिष्य वर्ग ने उस इन्द्र को शुभ आशीर्वाद दिया था ॥१९॥ और परम सुन्दर विष्णु के द्वारा दिया हुआ पारिजात का पुष्प दिया था जो जरा, मृत्यु, रोग और शोक का हरण करने वाला एवं मोक्ष देने वाला था ॥२०॥ इन्द्र ने उस पुष्प का ग्रहण किया और राज-सम्पति से प्रसन्न होकर भ्रम से उसी को हाथी के मस्तक पर स्थापित कर दिया था ॥२१॥ उस पुष्प का त्याग कर देने वाले इन्द्र को देखकर मुनीश्वर ने व्रत नाराज होकर उस से कहा और क्रोधाविष्ट होकर शाप दे दिया था ॥२२

अरे श्रिया प्रमत्तस्त्व कथ मामवमन्यसे।
मद्दत्तपुष्प दत्तञ्च गर्वेण हस्तिमस्तके ॥२३॥
विष्णोर्निवेदित पुष्प नैवेद्य वा फल जलम्।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्य त्यागेन ब्रह्महा भवेत् ॥२४॥
भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च भ्रष्टज्ञानो भवेन्नर।
यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्य भाग्येनोपस्थित शुभम् ॥२५॥
प्राप्तिमात्रेणयाभुङ्क्ते भक्त्याविष्णुनिवेदितम्।
पुंसाशतसमुद्धृत्यजीवन्मुक्त स्वयमेव तु ॥२६॥
विष्णुनैवेद्यभोजीयोनित्य तु प्रणमेद्धरिम्।
पूजयेत्स्तौतिवाभक्त्यासविष्णुसदृशोभवेत् ॥२७॥
अज्ञानाद्यदिगृह्णातिविष्णोर्निर्माल्यमेव च।
सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशय ॥२८॥

ज्ञात्वाभक्त्याचगृह्णातिविष्णोर्नैवेद्यमेवच ।
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥२९॥
यस्मात् संस्थापितं पुष्पं गर्वेण हस्तिमस्तके ।
तस्माद् युष्मान् परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरेः पदम् ॥३०॥

मुनि ने कहा :—अरे इन्द्र ! तू लक्ष्मी से इतना प्रमत्त हो गया है कि तू मेरा अपमान कर रहा है। मेरा दिया हुआ पुष्प तू ने हाथी के मस्तक पर रख दिया है ॥२३॥ विष्णु का निवेदित पुष्प नैवेद्य या जल अथवा फल कुछ भी हो उसे प्राप्त होते ही भुक्त करना चाहिए। उसके त्याग कर देने से मनुष्य ब्रह्म हत्यारा जैसा महापातकी हो जाया करता है ॥२४॥ जो व्यक्ति भाग्य वश प्राप्त विष्णु के शुभ नैवेद्य का त्याग कर देता है वह श्री-बुद्धि और ज्ञान इन तीनों से भ्रष्ट हो जाता है ॥२५॥ जो पुरुष विष्णु निवेदित पदार्थ के प्राप्त होने के साथ ही खा लेता है वह अपनी सौ पीढ़ियों का उद्धार करके स्वयं जीवन्मुक्त हो जाया करता है ॥२६॥ जो विष्णु के नैवेद्य का उपभोग करने वाला हो और नित्य ही हरि को प्रणाम करता है तथा जो विष्णु की पूजा और स्तवन भक्तिभाव से किया करता है वह विष्णु के ही समान हो जाता है ॥२७॥ जो कोई अज्ञान से भी विष्णु का निर्माल्य ग्रहण कर लेता है तो वह भी सात जन्मों में अर्जित किये हुए पाप से मुक्त होजाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२८॥ जो ज्ञान पूर्वक भक्ति से विष्णु के प्रसादी नैवेद्य को ग्रहण करता है वह एक करोड़ जन्मों में किये हुए पाप-समूहों से छुटकारा पा जाता है-इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है ॥२९॥ जिसके गर्व से हाथी के मस्तक पर पुष्प रख दिया है इसी कारण वह लक्ष्मी अब तुम्हारा त्याग करके हरि के स्थान को चली जावे ॥३०॥

मुनिस्थानाद्गृहं गत्वासददर्शामरावतीम् ।
दैत्यै रसुरसङ्घैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम् ॥३१॥

विषण्णयाऽथवा कुत्र बन्धुहीनाञ्चकुत्रचित् ।
पितृमातृकलत्रादि विहीनामतिचञ्चलाम् ॥३२॥
शत्रुग्रस्ताञ्च तां दृष्ट्वा जगामवाक्पतिं प्रति ।
शक्रो मन्दाकिनी तीरे ददर्शगुरुमीश्वरम् ॥३३॥
ध्यायमानं परब्रह्म गङ्गातोये स्थितं परम् ।
प्राञ्जलिसमुखं पवमुखञ्चचिरवतामुखम् । ३४॥
साश्रुनेत्रं पुलकितं परमानन्दसंयुतम् ।
[illegible] ॥३ ।

[illegible] बृहस्पति के गुणों का श्रवण कर (वीतराग विरक्त) हो गया था । [illegible] वह दिनों दिन वैराग्य को बढ़ा रहा था ॥३१॥ इधर मुनि के स्थान से अपने घर जाकर उसने अमरावती पुरी का दैत्यों के समूह और असुरों के द्वारा भय से विकल तथा घिरी हुई देखा था । उस समय वह अमरावती पुरी ऐसी हो रही थी कि कहीं तो वे सब लोग बड़े ही विषाद से दुःखत थे और कहीं पर सभी बन्धुओं से हीन होगये थे । कुछ पिता-माता और कलत्र आदि से रहित थे ऐसे वह पुरी अत्यन्त चञ्चल थी ॥३२॥ महेन्द्र ने शत्रुओं से ग्रसित उस पुरी को देखकर वह वाणी के पति के पास गया था । इन्द्र ने मन्दाकिनी के तट पर ईश्वर गुरु बृहस्पति को देखा था ॥३३॥ जो वहाँ पर गङ्गा के जल में स्थित परम ब्रह्म का ध्यान कर रहे थे । बृहस्पति भी सूर्य की ओर मुख किये हुए थे पूर्वाभिमुख तथा चिरञ्जीवि मुख वाले थे ॥३४॥ उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी शरीर उनका पुलकायमान था । वे उस समय परमानन्द में मग्न थे । गुरुदेव सबमें वरिष्ठ (उत्तम) गरिष्ठ (गुरुता पूर्ण) धर्मिष्ठ और अपने इष्टदेव की सेवा करने वाले थे ॥३५॥

श्रेष्ठञ्च बन्धुवर्गाणामतिश्रेष्ठञ्च ज्ञानिनाम् ।
ज्येष्ठञ्चबन्धुवर्गाणां तहञ्च सुरवैरिणाम् ॥३ ॥

दृष्ट्वा गुरुं जगन्तञ्च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः ।
प्रहरान्ते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः ॥३७॥
प्रणम्य चरणाम्भोजे रुरोदोच्चमुंहुर्मुहुः ।
वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा ॥३८॥
पुनर्वरो मया लब्धो ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम् ।
वैरग्रस्तांश्च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वर: ॥३९॥
शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सतां बुद्धिमतां वरः ।
बृहस्पतिरुवाचेदं कोपरक्ताक्तलोचन: ॥४०॥
श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मा रोदीर्वचनं शृणु ।
न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ च कदाचन ॥४१॥
सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वरास्वप्नरूपिणी ।
पूर्वस्वकर्मायत्ता च स्वयंकर्त्तातयोरपि ॥४२॥

समस्त बन्धुवर्गों में बृहस्पति श्रेष्ठ थे तथा ज्ञानियों में अत्यन्त श्रेष्ठतम थे। वे अपने बन्धुवर्गों में सबसे बड़े थे और सुरों शत्रुओं के लिये अनिष्ट कारक थे ॥३६॥ वहाँ इन्द्र ने ध्यान-मग्न गुरु के दर्शन किये और वह वहीं स्थित हो गया था। एक पहर के अन्त में उठे हुए गुरु को देखकर उसने उनको प्रणाम किया था ॥३७॥ इन्द्र ने गुरु के चरणों में प्रणाम करके वह बार-बार रुदन करने लगा था तथा ब्राह्मण के शाप आदि का समस्त वृतान्त उनसे कह दिया था ॥३८॥ इन्द्र ने कहा कि फिर मैंने भी वर प्राप्त किया था कि सुदुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति और वैर ग्रस्त अपनी पुरी को क्रम से प्राप्त करेगा ।३९। बुद्धिमान और सत्पुरुषों में श्रेष्ठ बृहस्पति ने शिष्य के वचन का श्रवण किया और कोपसे रक्त नेत्रों वाले होकर यह बोले-॥४०॥ बृहस्पति ने कहा—हे सुर श्रेष्ठ ! मैंने सब सुन लिया है-रुदन मत करो और मेरा वचन सुनो। नीति का ज्ञाता पुरुष विपत्ति के समस में कभी भी कातर नहीं होता है ॥४१॥ सम्पत्ति हो अथवा विपत्ति ये दोनों ही स्वप्न के रूप वाली हैं और

न शवान है ॥४१॥ ये पहिले अपने कर्मों के आधीन होती हैं। अतएव इन दोनों का कर्त्ता भी स्वय ही होता है ॥४२॥

सर्वेषाञ्च भ्रमत्येव शश्वज्जन्मनि जन्मनि।
चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना ॥४३॥
भुङ्क्ते हि स्वकृतकर्ममर्वत्रचापिभारते।
शुभाशुभञ्च यत्किञ्चित् स्वकर्मफलभुक्पुमान् ॥४४॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम् ॥४५॥
इत्येवमुक्त वेदे च कृष्णेन परमात्मना।
साम्नि कौथुमशाखाया सवोध्य स्वकुलोद्भवम् ।४६॥
जन्मभोगावशेषे च सर्वेषा कृतकर्मणाम्।
अनुरूपञ्च तेषाञ्च भारतेऽन्यत्र चैव हि ॥४७॥
कर्मणा ब्रह्मशापञ्च कर्मणा च शुभाशिषम्।
कर्मणा च महालक्ष्मी लभेद्दैन्यञ्च कर्मणा ।४८॥
कोटिजन्मार्जित कर्म जीविनामनुगच्छति।
न हि त्यजेद्विना भोगात् तद्याचेव पुरन्दर ॥४९॥

यह दोनो ही सबके यहाँ निरन्तर जन्म - जन्म मे भ्रमण किया करती हैं जैसे कि रथ के पहिए की नेमिका क्रम है कि जो ऊपर है वह चक्र के चलन के समय मे नीचे और फिर नीचे से ऊपर इसी रीति भ्रमण किया करती है। इसमे इतना परिदेवन नहीं करना चाहिए।४३॥भारत मे सर्वत्र ही अपने ही किये हुए कर्म को भोगता है। शुभ या अशुभ जो कुछ भी हो उस कर्म का जो अपने ही द्वारा किया गया है पुरुष फल भोगा करता है॥४४॥जिस कर्म का फल नहीं भोगा गया है वह करोडो शत कल्पो मे भी क्षीण नहीं होता है, जो भी शुभ अशुभ कर्म किया है उसका फल अवश्य भोगना ही पडता है॥४५॥ सामवेद की कौथुम शाखा मे अपने कुल मे उत्पन्न होने वाले को सम्बोधित करके वेद मे परमात्मा श्रीकृष्ण ने यह ही इस प्रकार कहा है ॥४६॥ इस

कर्म्मियों के जन्म के भोग अवशेष रह जाने पर उन सबका भारत में तथा अन्यत्र अनुरूप ही फल का लाभ होता है॥४७॥कर्म से ही ब्रह्म शाप होता है और कर्म से ही शुभ आशीर्वाद प्राप्त होता है। कर्म के अनुसार ही महालक्ष्मी और अन्य सभी कुछ कर्म के द्वारा ही मिला करता है। हे पुरन्दर ! एक करोड़ जन्म में अर्जित किया हुआ कर्म जीवियों के साथ-साथ पीछे चला करता है। वह छाया की ही तरह रहता है कि जब तक उसका भोग नहीं होता है, वह कभी पीछा नहीं छोड़ता है ॥४८॥४९॥

कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम् ।
न्यूनताधिकता वापि भवेदेव हि कर्मणाम् ॥५०॥
वस्तुदाने च वस्तूनां समं पुण्यं समे दिने ।
दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वाधिकं ततः ॥५१॥
समे देशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं सुर ।
देशभेदे कोटिगुणमसंख्यंवाधिकं ततः ॥५२॥
समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्त्तुरेव च ।
पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् ॥५३॥
यथा फलन्ति शस्यानि न्यूनानि वाधिकानि च ।
कृपकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदेफलं तथा ॥५४॥
सामान्यदिवसे विप्रे दानं समफलं भवेत् ।
अमायां रविसंक्रान्त्यां फलं शतगुणंभवेत् ॥
चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तफलमेव च ॥५५॥

काल-देश और पात्र के भेद से कर्मों में कमी और अधिकता भी हुआ करती है ॥५०॥वस्तुओं के दान में सामान्य दिनों में समान ही पुण्य होता है और उन्हीं वस्तुओं के दान में दिनों के भेद होने से करोड़गुना और इससे भी अधिक तथा असंख्य पुण्य हुआ करता है।।५१॥ हे सुरेन्द्र। सामान्य देश में वस्तुओं के दान में साधारण एक समान ही पुण्य होता है किन्तु देश का भेद हो जाने पर उन्हीं वस्तुओं के दान में कोटि गुण

इससे भी अधिक और अनन्त पुण्य भी होता है ॥५२॥ इसी प्रकार से समान पात्र मे वस्तुओं के दान का पुण्य सम ही करने वाले को होता है और पात्र का भेद हो जाने पर उसी वस्तु के दान का पुण्य सौगुना और भी ज्यादा तथा अपरिमित भी होता है ॥५३॥ जिस तरह शस्य न्यून और अधिक फला करते हैं जाति विभागों मे शस्यों के भेद से सामान्यतया होता ही रहता है । उसी प्रकार से पात्र के भेद से पुण्य भी होता है ॥५४॥ साधारण दिन म विप्र को दिये गये दान का फल सामान्य ही होता है किन्तु वही दान अमावस्या और सूर्य सक्रान्ति के दिन म दिया जाता है तो उसका सौगुना फल हुआ करता है ॥५५॥ चातुर्मासी पूर्णिमा मे तो उसी दान का अनन्त फल होता है ॥५५॥

यथा दण्डेन सूत्रेण शरावेण जलेन च ।
कुम्भ निर्माति चक्रेण कुम्भकारो मृदाभुवि ॥५६॥
तथैव कर्मसूत्रेण फल धाता ददाति च ।
यस्याज्ञया सृष्टिविधौ पञ्च नारायण भज ॥५७॥
स विधाता विधातुश्चपातु: पाताजगत्त्रये ।
स्रष्टु स्रष्टा च सहर्तु सहर्ताकालकालक ॥५८॥
महाविपत्तौ ससारे य· स्मरेन्मधुसूदनम् ।
विपत्तौ तस्य सम्पत्तिर्भवेदित्याह शङ्कर. ॥५९॥
इत्येवमुक्त्वा जीवश्च समालिङ्ग्य सुरेश्वरम् ।
दत्वा शुभाशिष चेष्ट बोधयामास नारद ॥६०॥

जिस प्रकार से कुम्हार भूमितल मे मिट्टी-दण्ड-सूत्र शराव और जल के द्वारा घट का निर्माण चाक से किया करता है, उसी तरह से कर्मों के सूत्र से विधाता फल को दिया करता है । जिसकी आज्ञा से सृष्टि की विधि मे पञ्च नारायण का भजन कर । वह विधाता का विधाता और तीनो लोको मे प्रतिपालन करने वाले का भी रक्षक है-सृजन करने वाले का स्रष्टा है और सहारक का सहर्ता एव काल का भी काल है ॥५६॥५७॥५८॥ महान विपत्ति के समय म भी जो ससार मे

मधु सूदन का स्मरण करता है। शङ्कर ने कहा।विपत्ति में भी उसकी सम्पति रहेगी ॥५६॥ इस प्रकार से यह सब कुछ कह करके बृहस्पति ने इन्द्र का भलि भाँति आलिङ्गन किया था और हे नारद! उसे शुभ आशीर्वाद देकर अभीष्ट का ज्ञान करा दिया था ॥६०॥

२४-महालक्ष्म्युपाख्याने विष्णुभक्तस्य शुभकथनम्

हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मन् जगाम ब्रह्मणः सभाम्।
बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैं सुरगणैःसह ॥१॥
शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वाच कमलोद्भवम्।
प्रणेमुर्देवताः सर्वाः गुरुणा सह नारद ॥२॥
वृत्तान्तंकथयामास सुराचार्य्योविधिविभुम्।
प्रहस्योवाचतत् श्रुत्वामहेन्द्रकमलोद्भवः ॥३॥
वत्समद्वंशजातोऽसिप्रपौत्रोमेविचक्षणः।
बृहस्पतेश्चशिष्यस्त्वसुराणामधिपःस्वयम् ॥४॥
मातामहस्ते दक्षश्च विष्णुभक्तःप्रतापवान्।
कुलत्रयं यच्छुद्धञ्चकथं सोऽहङ्कृतोभवेत् ॥५॥
मातापतिव्रता यस्य पिताशुद्धोजितेन्द्रिय।
मातामहोमातुलश्च कथंसोऽहङ्कृतोभवेत् ॥६॥
अहं शिवश्चशेषश्चविष्णुर्धर्मो महान् विराट्।
वयमदंशा भवताश्च तत् पुष्पं न्यक्कृतत्वया ॥७॥
शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च।
तच्च दुर्वाससा दत्तं दैवेन न्यक्कृतं सुर ॥८॥

इस अध्याय में महालक्ष्मी के उपाख्यान में विष्णु के भक्त का शुभकथन को निरूपित किया जाता है। नारायण ने कहा, हे ब्रह्मन! इन्द्र फिर हरि का स्मरण करके बृहस्पति को अपने आगे करके समस्त सुरगणों के साथ

ब्रह्मा जी की सभा में गया था ॥१॥ हे नारद ! ब्रह्मलोक में बहुत शीघ्र जाकर वहाँ कमल से उद्भव होने वाले ब्रह्मा जी का दर्शन करके गुरु के साथ समस्त देवों ने उनको प्रणाम किया था ॥२॥ इसके उपरान्त देव गुरु ने विभु विधाता से सुराचार्य ने समस्त वृतान्त कह दिया था। ब्रह्मा जी ने हँस कर सब वृतान्त श्रवण करने के पश्चात् महेन्द्र से यह कहा था ॥३॥ ब्रह्मा बोले—हे वत्स ! तुम तो मेरे ही वंश में समुत्पन्न हुए हो और मेरे बहुत ही विचक्षण प्रपौत्र हो और बृहस्पति के शिष्य हो जोकि समस्त देवों का स्वयं अधिपति है ॥४॥ तेरा माना मत दक्ष है जोकि विष्णु का भक्त और प्रसाद वाला है। जिसके तीनों कुल शुद्ध हैं। वह कैसे अहङ्कृत (अहङ्कार वाला) हो गया है ॥५॥ जिसकी माता परम पतिव्रता है और जिसके पिता अति शुद्ध और इन्द्रियों का जीतने वाले हैं। इसी प्रकार के माता मह और मातुल (मामा) भी है, वह किस तरह अहङ्कारी हो गया है ॥६॥ मैं शिव-शेष-विष्णु धर्म और महान् विराट् हम सब जिसके अंश स्वरूप हैं तथा अनय हैं उनका पुष्प तू ने कैसे अपमानित कर दिया था ? ॥७॥ हे सुर ! शिव ने जिस पुष्प के द्वारा चरण कमल का पूजन किया था और वह पुष्प दुर्वासा मुनि ने दैव से तुझे दिया था, उसका तूने तिरस्कार कर दिया था ॥८॥

तत् पुष्पमस्तके कृष्णपादाब्जप्रच्युतम् ।
सर्वपापञ्च सुराणाञ्च तत्पूजा पुरतो भवेत् ॥९॥
दैवेन वञ्चितस्त्वञ्च दैवञ्च बलवत्तरम् ।
भाग्यहीनं जनं मूढ कोवा रक्षितुमीश्वरः ॥१०॥
कृष्णनैवेद्यतो हि श्रीनाथं सर्ववन्दितम् ।
प्रयाति रुष्टा तद्दासी महालक्ष्मीर्विहायताम् ॥११॥
शतयज्ञेनयालब्धा दीक्षितेन त्वयापुरा ।
साश्रीर्गताधुना कोपात् कृष्णनिर्माल्यवर्जनात् ॥१२॥
अधुनागच्छ वैकुण्ठं मयाच गुरुणा सह ।
निषेव्यतत्रश्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि तद्वरात् ॥१३॥

इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैःसह ।
शीघ्रं जगाम वैकुण्ठंयत्र श्रीशस्तया सह ॥१४॥

श्रीकृष्ण के चरण कमल से च्युत वह पुष्प जिसके मस्तक में रहता है, समस्त सुरों के आगे उसकी पूजा होती है ॥९॥ दैव ने तुम्हें वञ्चित कर दिया है क्यों कि दैव तो सबसे अधिक बलवान होता है। जो मनुष्य भाग्य से हीन और मूढ़ हो उसकी रक्षा करने में कौन समर्थ हो सकता है ॥१०॥ जो सबके द्वारा वन्दित श्री के स्वामी कृष्ण को मानता है। उनकी दासी महालक्ष्मी रुष्ट होकर उसका त्याग कर चली जाती है ॥११॥ तुम ने दीक्षित होकर सौ यज्ञ के द्वारा जिसको प्राप्त किया था वही लक्ष्मी श्रीकृष्ण के निर्माल्य के तिरस्कारपूर्वक त्याग कर देने के कारण कोप से चली गई है ॥१२॥ अब तुम मेरे और गुरु के साथ वैकुण्ठ में जाओ वहाँ श्री के स्वामी की सेवा करके उनके वरदान से श्री की प्राप्ति करोगे ॥१३॥ इस तरह से यह कह कर वह ब्रह्मा जी समस्त देवगणों के साथ शीघ्र ही वैकुण्ठ लोक को चले गये थे जहाँ पर श्री के स्वामी उस श्री के साथ विराजमान थे ॥१४॥

तत्र गत्वा परं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ।
दृष्ट्वा तेजस्वरूपञ्च प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥१५॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डशतकोटिसमप्रभम् ।
शान्तञ्चानादिमध्यान्तं लक्ष्मीकान्तमनन्तकम् ॥१६॥
चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या स्तुतं नतम् ।
भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गङ्गया परिसेवितम् ॥१७॥
त प्रणमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः ।
भक्तिनम्रा साश्रुनेत्रास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥१८॥
वृत्तान्तं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृताञ्जलिः ।
रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकारच्युताश्चताः ॥१९॥
स ददर्श सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम् ।
वस्त्रभूषणशून्यञ्च वाहनादिविवर्जितम् ॥२०॥

शोभाशून्य हतश्रीकमतिनिष्प्रतिभं परम् ।
उवाच कातरं दृष्ट्वा विपन्नभयभञ्जनः ॥२१॥

वहां पर जाकर पर ब्रह्म सनातन भगवान का दर्शन किया था जो तेज के स्वरूप वाले अपने तेज से प्रज्वलित हो रहे थे ॥१५॥ भगवान ग्रीष्म काल के मध्याह्न के सौ सूर्य के समान प्रभा से युक्त थे—उनका परम शान्त स्वरूप था और आदि मध्य, एवं अन्त से रहित थे । अनन्त स्वरूप वाले और लक्ष्मी के कान्त-चार भुजाओं वाले पार्षदों से युक्त-सरस्वती के द्वारा स्तुत-भक्तिभाव से चारों वेदों के द्वारा प्रणाम किये गये एवं गङ्गा से परिसेवित थे ॥१६॥१७॥ ब्रह्मा को आगे करके समस्त देवों ने शिर से उन भगवान को प्रणाम किया था । भक्ति से नम्र होते हुए आंखों में अश्रु भरकर सब देवों ने पुरुषोत्तम को प्रणाम किया था ॥१८॥ ब्रह्मा ने स्वयं हाथ जोड़कर समस्त वृत्तान्त कह दिया था । सब देवगण अपने अधिकार से च्युत होकर दुःखित होकर रोने लगे ॥१९॥ उन भगवान ने विपत्ति से ग्रस्त-भय से आकुल-वस्त्र और भूषणों से गन्ध-वाहन आदि से-रहित शोभा से शून्य श्रीहत-अत्यन्त प्रतिभा से वर्जित और कातर सुरगण को देखकर उनसे वह कहने लगे क्योंकि वे विपत्ति के भञ्जन करने वाले थे ॥२०॥२१॥

माभैर्ब्रह्मन् हे सुराश्च भयं किंवो मयि स्थिते ।
दास्यामि लक्ष्मीमचला परमैश्वर्यवर्द्धिनीम् ॥२२॥
किञ्च मद्वचनं किञ्चित् श्रूयतां समयोचितम् ।
हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम् ॥२३॥
जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्च सन्ततम् ।
यथा तथाहं मद्भक्तैः पराधीनः स्वतन्त्रकः ॥२४॥
ये यो रुष्टो मद्भक्तो मत्परे हि निरङ्कुशः ।
तद् गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम् ॥२५॥
दुर्वासा शङ्करांशश्च वैष्णवो मत्परायणः ।
तत् शापादागतोऽहञ्च सश्रीकोऽपि गृहादपि ॥२६॥

यत्र शङ्खध्वनिर्नास्ति तुलसीच शिलार्चनम् ।
न भोजनञ्च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति ॥२७॥
मद्भक्तानाञ्च सन्निन्दा यत्र यत्र भवेत् सुराः ।
महारुष्टा महालक्ष्मी-स्ततोयाति पराभवात् ॥२८॥

नारायण ने कहा—हे ब्रह्मन ! उरोमत, हे देवगण मेरे स्थित हूं ने पर आप सब को क्या भय है ? मैं आप सबको परम ऐश्वर्य के बढ़ाने वाली अचल लक्ष्मी दे दूँगा ॥२२॥ किन्तु कुछ समय तक उचित मेरा वचन आप लोग श्रवण करो जोकि हितकर-सत्य-सारभूत और परिणाम में सुख देने वाला है ॥२३॥ इस विश्व में रहने वाले असंख्य जन हैं जो सर्वदा मेरे ही अधीन रहा करते हैं। जैसा मैं स्वतन्त्र हूं वैसा ही मैं भक्तों के द्वारा पराधीन रहता हूँ ॥२४॥ जो-जो मुक्त में परायण रहने वाले भक्त पर रुष्ट रहता है और निरंकुश हो जाता है उसके घर में मैं श्री के सहित कभी नहीं स्थित रहता हूं ॥२५। दुर्वासा ऋषि शङ्कर का अंश हैं परम वैष्णव है और सर्वदा मुझ में ही परायण रहने वाले हैं। उन्हीं के शाप से श्री के सहित आपके घर से आ गया हूँ ॥२६। जहाँ पर शंख की ध्वनि नहीं है-तुलसी का वृक्ष नहीं है और शालग्राम शिला का अर्चन नहीं होता है तथा जहां विप्रों का भोजन नहीं होता है वहां पद्मा कभी भी स्थिर नहीं रहा करती है। २७॥ हे देव गणों ! जहाँ-जहाँ पर मेरे भक्तों की निन्दा होती है वहाँ अत्यन्त रुष्टा होकर महालक्ष्मी पराभव के कारण वहाँ से चली जाया करती है। २८।

इत्युक्त्वा च सुरान सर्वान् रमामाह रमापतिः ।
क्षीरोदसागरेजन्मकन्ययाचलभेतिच ॥२९॥
इत्युक्त्वा तान् जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराहच ।
मथित्वासागरंलक्ष्मीदेवेभ्योदेहि पद्मज ॥३०॥
इत्युक्त्वा कमलाकान्तो जगामाभ्यन्तरं मुने ।
देवाश्चिरेण-कालेनययुः क्षीरोदसागरम् ॥३१॥

मन्थानं मन्दरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा च भाजनम् ।
कृत्वा शेषमन्थपाशमुराश्चक्रुश्च घर्षणम् ॥३२॥
धन्वन्तरिञ्च पीयूषमुच्चैःश्रवसमीप्सितम् ।
नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्म्याश्च दर्शनम् ॥३३॥
वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने ।
सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवे वैष्णवी सती ॥३४॥
देवैः स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शङ्करेण च ।
ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमोचने ॥३५॥
प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैत्यग्रस्तं भयङ्करं ।
महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद ॥३६॥

रमा के स्वामी ने इस प्रकार से समस्त देवगणों से कहकर फिर रमा से कहा था कि तुम अपनी कला से क्षीरोद सागर में जन्म धारण करो ॥२९॥ यह उन लोगों से कहकर जगत् के नाथ फिर ब्रह्मा जी से बोले—हे पद्मज ! समुद्र का मन्थन करके इस लक्ष्मी को देवों के लिये दे देना ॥३०॥ हे मुने ! कमला के कान्त ने यह कहकर फिर वे मन्दर चले गये थे । देवगण फिर काल से क्षीरोद सागर को चले गये थे ॥३१॥ वहाँ मन्दर पर्वत का मन्थान बना कर तथा कूर्म को भाजन और शेष को मन्थन का पाश बना कर उस सागर के मन्थन की क्रिया से उन्होंने सब घर्षण किया था ॥३२॥ उस समय में उन्होंने धन्वन्तरि अमृत-अभीष्ट उच्चैः श्रवा अश्व—अनेक प्रकार के रत्न हस्तिरत्न और लक्ष्मी के दर्शन प्राप्त किये थे ॥३३॥ हे मुने ! उस लक्ष्मी ने क्षीर सागर में शयन करने वाले-सबके ईश्वर परमरम्य विष्णु के लिये वनमाला दे दी थी जो लक्ष्मी स्वयं परम वैष्णवी और सती थी ॥३४॥ वह देवों के द्वारा स्तुत ब्रह्मा और शङ्कर के द्वारा पूजित हुई थी और फिर ब्रह्म शाप के विमोचन सुरों के गृह में उसने दृष्टि डाली थी ॥३५॥ हे नारद ! देवताओं ने उस समय महालक्ष्मी के प्रसाद तथा वरदान से भयङ्कर दैत्यों के द्वारा ग्रस्त अपना विषय पुनः प्राप्त कर लिया था ॥३६॥

३५—स्वाहोपाख्यानम् ।

स्वाहादेवहविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु ।
पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा ॥१॥
एतासां चरितं जन्म फल प्राधान्यमेव च ।
श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्रात्-वदवेदविदांवर ॥२॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः ।
कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम् ॥३॥
सृष्टेः प्रथमतो देवाश्चाहारार्थं ययुः पुरा ।
ब्रह्मलोके ब्रह्मसभामगम्यां सुमनोहराम् ॥४॥
गत्वा निवेदनञ्च-क्रुराहारहेतुकं मुने ।
ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय सिषेवे श्रीहरेः पदम् ॥५॥
यज्ञरूपो हि भगवान् कलया च बभूव सः ।
यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च ब्रह्मणा ॥६॥
हविर्ददति विप्राश्च भक्तया च क्षत्रियादयः ।
सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दान मुनिपुङ्गव ॥७॥

इस अध्याय मे स्वाहा के उपाख्यान का वर्णन किया गया है। नारद जी ने कहा—स्वाहा ही इसके द्वारा हवि का दान किया जाने मे प्रशस्त समस्त कर्मो मे मानी गई है। पितृदान में स्वाधा प्रशस्त कही गई है और दक्षिणा तो सभी जगह श्रेष्ठ होती है ॥१॥ हे वेदों के वेत्ताओ में श्रेष्ठ! तीनों का चरित्र-जन्म-फल और प्रधानता के विषय मे आपके मुख से मैं श्रवण करना चाहता हूँ ॥२॥ सौति ने कहा—नारद देवर्षि के इस वचन को सुनकर मुनि श्रेष्ठ हंस गये और हंसकर पुराणों में कही हुई पुरानी कथा का कहना आरम्भ कर दिया था। नारायण बोले—सृष्टि के आरम्भ में आदि में देवगण आहार के लिये पहिले ब्रह्म लोक में परम अगम्य और अति मनोहर ब्रह्म सभा में गये थे। ॥४॥ हे मुने! वहाँ पहुँच कर आहार के हेतु वाला निवेदन

किया था। ब्रह्मा ने उन्हें सुनकर प्रतिज्ञा की और श्री हरि के पद का सेवन किया था ॥५॥ वह भगवान कला से यज्ञ रूप वाले हुए थे। यज्ञ में ब्रह्मा ने जो २ हविष्य दान उनके लिये दिया था। विप्र और क्षत्रिय आदि सब भक्ति से हवि देते थे। हे मुनि श्रेष्ठ! देवगण उस हवि के दान को प्राप्त नहीं करते थे ॥६॥७॥

देवा विषण्णाम्ने सर्वे तत्सभाञ्च पुनर्ययु।
गत्वा निवेदनञ्चक्रुराहाराभाव हेतुकम् ॥८॥
ब्रह्माश्च वा तु ध्यानेन श्रीकृष्ण शरणं ययौ।
पूजयामास प्रकृतिं ध्यानेनैव तदाज्ञया ॥९॥
प्रकृति कलया चैव सर्व शक्तिस्वरूपिणी।
बभूव दाहिकाशक्तिरग्ने स्वाहास्वरूपिणी ॥१०॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाच्छादनकारिणी।
शतीव सुन्दरी रामा रमणीया मनोहरा ॥११॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा।
उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरवरा ॥१२॥
विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा सम्भ्रमात् समुवाच ताम् ॥१३॥

वे समस्त देवगण बहुत विषाद युक्त हुए और वे फिर सभा में गये थे और उस सभा में पहुँच कर उन्होंने आहार के हेतु वाला फिर निवेदन किया था कि आहार का सर्वदा अभाव है ॥८॥ ब्रह्मा जी ने बड़े ध्यान से उनके निवेदन को श्रवण किया था और फिर वे श्री-कृष्ण की शरण में गये थे। उसकी आज्ञा से ध्यान से ही प्रकृति की पूजा की थी ॥९॥ समस्त शक्तियों के स्वरूप वाली प्रकृति ही कला से अग्नि की स्वाहा स्वरूप वाली दाहिका शक्ति हुई थी ॥१०॥ यह ग्रीष्म काल के दोपहर में रहने वाले सूर्य की प्रभा को पराजित करने वाली थी—अत्यन्त सौन्दर्य से युक्त रमणीय एवं मन को हरण करने वाली रामा थी ॥११॥ थोड़े से हास्य से प्रसन्न मुख वाली- अपने भक्तों पर अनुग्रह करने में कातर थी। वह विधाता के आगे वाली—हे पद्मयोनि!

वर का श्रवण करो ॥१२॥ विधाता ने उसका वचन श्रवण कर सम्भ्रम से उससे बोले ॥१२-१३॥

त्वमग्नेर्दाहिका शक्तिर्भवपत्नी च सुन्दरी ।
दग्धुं न शक्तस्त्वकृती हुताशश्च त्वयाचिना ॥१४॥
त्वन्नामोच्चार्य्य मन्त्रान्ते यद्दास्यति हविर्नरः ।
सुरेभ्यस्तत् प्राप्नुवन्ति सुराः सानन्दपूर्वकम् ॥१५॥
अग्नेः सम्पत् स्वरूपा च श्रीरूपा च गृहेश्वर ।
देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवाम्बिके ॥१६॥
ब्रह्मणश्चः वचः श्रुत्वासाविपण्णा बभूवह ।
तमुवाच स्वयं देवी स्वाभिप्रायं स्वयम्भुवम् ॥१७॥
अहंकृष्णंभजिष्यामि तपसासुचिरेणच ।
ब्रह्मन् तदन्यत्यत्किञ्चित् स्वप्नवत्भ्रममेवच ॥१८॥
विधाताजगतांत्वञ्चशम्भुर्मृत्युञ्जयःप्रभु ।
विभर्त्तिशेपो विश्वञ्चधर्म्मःसाक्षीचदेहिनाम् ॥१९॥
सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेपुच गणेश्वरः ।
प्रकृतिः सर्वसूः सर्व पूजिता यत्प्रसादत ॥१०॥
ऋपयोमुनयश्चैव पूजिता यं निपेव्य च ।
तत्पादपद्मं पद्मकं भावेन चिन्तयाम्यहम् ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—आप अग्नि की दाहिका शक्ति हैं और भव की सुन्दर पत्नी हैं। आपके बिना अग्नि अकृती है और दाह करने में समर्थ नहीं होती है।॥१४॥ मन्त्र में तुम्हारे नाम को अन्त में उच्चारण करके जो मनुष्य हवि देगा वह सुरों को प्राप्त होगा और सुर उसे आनन्द के साथ प्राप्त किया करते हैं ॥१५॥ अग्नि की सम्पत् स्वरूप वाली और श्री रूप गृह की ईश्वर-देवों की पूजित हे अम्बिके ! तू निरन्तर नर आदि की हो जा ॥१६॥ ब्रह्मा के वचन को सुन कर वह विपाद,से युक्त हो गई थी और वह देवी स्वयं स्वयंभू से अपने अभिप्राय को कहने लगी थी ॥१७॥ स्वाहा ने कहा— मैं अधिकाल वाले तप से श्रीकृष्ण का भजन करूँगी। हे ब्रह्मन ! और जो कुछ भी है वह स्वप्न की भांति भ्रम ही है ॥१८॥

आप तो जगत के सृजन करने वाले हैं-शम्भु प्रभु मृत्यु को भी जीत लेने वाले हैं,शेष विश्व को धारण करते हैं और धर्म देहधारियों का साक्षी है ॥१६॥ गणेश्वर देवों का और गणों में सबसे प्रथम पूज्य है। जिसके प्रसाद से प्रकृति उसको प्रसूत करने वाली और सबकी पूजित है ॥२०॥ जिसका निषेवण करके ऋषि और मुनि वर्ग पूजित होते हैं। उसके पाद पद्म को भाव पूर्वक मैं चिन्तन किया करती हूँ ॥२१॥

पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मलाभानुसारतः ।
जगाम तपसा पद्मे पद्मासीनस्य पद्मजा ॥२२॥
तपस्तेपे लक्षवर्षमेकपादेन पाद्मजा ।
तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥२३॥
अतीव कमनीयञ्च रूपं दृष्ट्वा च सुन्दरी ।
मूर्च्छां सम्प्राप कामेन कामेशस्य च कामुकी ॥२४॥
विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाच सः ।
समुत्थाप्य च स्वक्रोडे क्षीणाङ्गीं तपसा चिरम् ॥२५॥
वराहे च त्वमंशेन मम पत्नी भविष्यति ।
नाम्ना नाग्नजिती कन्या कान्ते नग्नजितस्य च ॥२६॥
अधुनाऽग्नेर्दाहिका त्वं भव पत्नी च भाविनी ।
मन्त्राङ्गरूपा पूता च मत्प्रसादाद् भविष्यति ॥२७॥
वह्निस्त्वां भक्तिभावेन सम्पूज्य च गृहेश्वरीम् ।
रमिष्यते त्वया सार्द्धं रामया रमणीयया ॥२८॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो देवीमाश्वास्य नारद ।
तत्राजगाम सन्त्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः ॥२९॥

वह पद्म के समान मुख वाली पाद्म से यह कहकर पद्म लाभ के अनुसार पद्मजा पद्म से ईश के पाद्म में तप के द्वारा चली गई थी ॥२२॥ पद्मजा ने एक लाख वर्ष तक एक पाद से खड़े होकर तप किया था। तब प्रकृति से पर निर्गुण श्रीकृष्ण का उसने दर्शन प्राप्त किया

था ।।२३।। उस सुन्दरी ने अत्यन्त कमनीय रूप को देखकर उस कमेश्वर के सौन्दर्य से वह कामुकी काम के कारण मूर्छा को प्राप्ति हो गई थी ।।२४।। उसका अभिप्राय समझकर सर्वज्ञ वह उससे बोले और उन्होंने चिरकाल तक तपस्या से क्षीण अङ्ग वाली उसको उठाकर अपनी गोद में बिठा लिया था ।।२५।। श्रीकृष्ण ने कहा—वराह में तुम अंश से मेरी पत्नी होओगी । हे कान्ते ! तुम्हारा नाम नाग्नजिती होगा और नग्नजित के यहाँ कन्या के रूप मे उत्पन्न होओगी ।।२६।। इस समय में तुम अग्नि की दाहिका और होने वाली भव की पत्नी-मन्त्रों की अङ्ग-रूप वाली और पवित्र मेरे प्रसाद से होओगी ।।२७।। अग्नि तुमको भक्ति के भाव से सम्पूजित कर रमणीय रामा तुम्हारे गृहेश्वरी के साथ रमण करेगो ।।२८।। हे नारद ! इतना कहकर और देवी को पूर्ण आश्वासन देकर देव वहाँ से अन्तर्हित हो गये थे । वहाँ फिर ब्रह्मा के निर्देश से सन्त्रस्त (डरा हुआ) अग्नि आ गया था ।।२६।।

ध्यानैश्च सामवेदोक्तैर्ध्यात्वा तां जगदम्बिकाम् ।
सम्पूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मन्त्रतः ।।३०।।
तदा दिव्यं वर्पशतं स रेमे रामया सह ।
अतीव निर्जने रम्ये सम्भोगसुखदे सदा ।।३१।।
बभूव गर्भ स्तस्याश्च हुताशस्य च तेजसा ।
तद्दधारच्च सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम् ।।३२।।
ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान् ।
दक्षिणाग्निगर्हिपत्यहवनीयान् क्रमेण च ।।३३।।
ऋषयोमुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः ।
स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य्यं हविर्ददति नित्यशः ।।३४।।
स्वाहायुक्तञ्च मन्त्रञ्चयो गृह्णाति प्रशस्तकम् ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य ब्रह्मन् ग्रहणमात्रतः ।।३५।।

सामवेद में कहे हुए ध्यान से उस जगदम्बिका का ध्यान करके और भलीभाँति पूजन करके स्तुति की थी और मंत्रों के द्वारा उसका

पाणि ग्रहण उसने कर लिया था ॥३०॥ उस समय दिव्य सौ वर्ष तक रामा के साथ सदा सम्भोग का सुख देने वाले अत्यन्त निर्जन एवं रम्य स्थान में उसने रमण किया था ॥३१॥ हुताशन के तेज से उसके गर्भ हुआ था। उस देवी ने उस गर्भ को दिव्य बारह वर्ष तक धारण किया था ॥३२॥ इसके अनन्तर उसने बहुत ही सुन्दर मन के हरण करने वाले पुत्रों को प्रसूत किया था, जिनके क्रम से दक्षिणाग्नि गार्हपत्याग्नि और हवनीयाग्नि ये नाम थे ॥३३॥ ऋषि और मुनिगण ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि स्वाहा मन्त्र वाले मन्त्रों का उच्चारण करके नित्य ही हवि दिया करते हैं ॥३४॥ हे ब्रह्मन्! जो स्वाहा से युक्त को प्रशस्त रूप में ग्रहण करता है उसको ग्रहण मात्र से ही समस्त सिद्धि होती है ॥३५॥

विषहीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः।
पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथा नरः ॥३६॥
फलशाखाविहीनश्च यथावृक्षो हि निन्दितः।
स्वाहात्यक्तस्तथा मन्त्रो न हुतः फलदायकः ॥३७॥
परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः सम्प्रापुराहुतिम्।
स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वकर्म च ॥३८॥
इत्येवं कथितं सर्वं स्वाहाख्यानमनुत्तमम्।
सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३९॥
स्वाहापूजाविधानञ्च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर।
सम्पूज्य वह्निस्तामाथ येन वा वद मम प्रभो ॥४०॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं स्तोत्रं पूजाविधानकम्।
वदामि श्रयतां ब्रह्मन् सावधानं निशामय ॥४१॥
सर्वयज्ञारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा।
स्वाहां सम्पूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात् फलाप्तये ॥४२॥
स्वाहां मन्त्राङ्गयुक्ताञ्च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम्।
सिद्धाञ्च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां भजे ॥४३॥

इति ध्यात्वाचमूलेन दत्वापाद्यादिकंनरः ।
सर्वसिद्धि लभेत् स्तुत्वामूलंस्तोत्रंमुनेशृणु ॥४४॥
ओं ह्रीं श्री वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेनघ ।
यः पूजयेच्चतां देवींसर्वेष्टं लभते ध्रुवम् ॥४५॥
स्वाहाद्या प्रकृतेरंशा मन्त्रतन्त्राङ्गरूपिणी ।
मन्त्राणां फलदात्रीच धात्रीच जगतां सती ॥४६॥
सिद्धिस्वरूपा सिद्धा च सिद्धिदा सर्वदा नृणाम् ।
हुताश दाहिकाशक्तिस्तत्प्राणाधिकरूपिणी ।४७॥
संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी ।
देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥४८॥
षोडशैतानि नामानि यः पठेत् भक्तिसंयुतः ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य चेहलोके परत्र च ॥४९॥
नाङ्गहीनो भवेत्तस्य सर्वकर्मसु शोभनम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रमभार्य्यो लभते प्रियान् ॥५०॥

जिस तरह विष से हीन सर्प और वेद से रहित विप्र पति की सेवा से हीन स्त्री तथा विद्या से हीन नर होता है ॥३६॥ और फल और शाखाओं से हीन वृक्ष निंदित होता है, उसी तरह स्वाहा से हीन मन्त्र शीघ्र फलदायक नहीं होता है ॥३७॥ तब समस्त द्विज पूर्णतया तुष्ट हो गये थे और देवगण आहुति प्राप्त करने लगे थे। स्वाहान्त मंत्र से ही समस्त कर्म सफल होते थे ॥३८॥ इस प्रकार से यह उत्तम स्वाहा का उपाख्यान मैंने सम्पूर्ण वर्णन कर दिया है। यह परम सुख तथा मोक्ष का प्रदान करने वाला एवं उसका सार है। अब बताओ, और आगे आप लोग क्या श्रवण करना चाहते हैं ॥३९॥ नारद जी ने कहा—हे मुनीश्वर! स्वाहा की पूजा का विधान उसका ध्यान और स्तोत्र जिससे अग्नि ने पूजा की थी तथा उसका स्तवन किया था उसको हे प्रभो! मुझे बताइये ॥४०॥ नारायण ने कहा इसका ध्यान सामवेद में कहा गया है। इसका स्तोत्र और पूजा का विधान मैं बताता हूँ। इसका श्रवण तुम सावधान होकर करो ॥४१॥ समस्त प्रकार के

यज्ञों के आरम्भ में शालग्राम में अथवा घर में स्वाहा का भलीभांति पूजन करके यत्न पूर्वक फल की प्राप्ति के लिये यज्ञ करना चाहिए ॥४२॥ स्वाहा मन्त्र की अङ्गस्वरूप पवित्र है और मन्त्र सिद्धि के स्वरूप वाली है। यह स्वयं सिद्ध है तथा सिद्धियों के प्रदान करने वाली एवं मनुष्यों के कर्मों के फल देने वाली है, ऐसी स्वाहा का मैं भजन करता हूँ ॥४३॥ यही स्वाहा का ध्यान है, इस प्रकार से ध्यान करके फिर मूल मन्त्र से मनुष्यों को अर्घ्य-पद्य देना चाहिए। इसकी स्तुति करके मानव सब तरह की सिद्धियों का लाभ करता है। हे मुने! अब तुम मूल स्तोत्र का श्रवण करो ॥४४॥ "ओम् ह्रीं श्रीं वह्निजायै देव्यै स्वाहा"—इसके द्वारा जो मनुष्य उस देवी की पूजा करता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट की निश्चय ही प्राप्ति किया करता है ॥४५॥ अग्नि ने कहा—स्वाहा के आद्य वाली-प्रकृति का अंश-मन्त्र और तन्त्र के अङ्ग रूप वाली-मन्त्रों के फल को देने वाली-जगतों की धात्री और सती है। आप सिद्धि के स्वरूप वाली-सिद्ध-सर्वदा मनुष्यों को सिद्धियाँ प्रदान करने वाली हैं। अग्नि की दाहिका (दाह करने वाली) शक्ति है और उसके प्राणों की अधिक रूप वाली हैं ॥४६-४७॥ संसार में सार रूप वाली और घोर संसार से तारण करने वाली हैं ॥४८॥ जो अग्नि देव के सोलह शुभ नामों को जो कोई भक्ति के भाव से युक्त होकर पढ़ता है, उसकी इस लोक में सर्व सिद्धि होती है और परलोक में भी उत्तम पद की प्राप्ति करता है ॥४९॥ उसको कभी अङ्गहीनता नहीं होती है और सम्पूर्ण कर्मों में शोभन होता है। जो कोई पुत्र रहित होता है, वह इसके पुण्य एवं प्रभाव से पुत्र प्राप्त कर लेता है और जो भार्या से रहित हो, वह प्रिय भार्या का लाभ कर लेता है ॥५०॥

३६—स्वधोपाख्यानम् ।

शृणुनारदवक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् ।
पितृणाञ्चतृप्तिकरं श्राद्धानां फलवर्द्धनम् ॥१॥
सृष्टेरादौ पितृगणान् ससर्जजगतांविधिः ।
चतुरश्च मूर्त्तिमतस्त्रींश्च तेजस्वरूपिणः ॥२॥
दृष्ट्वा सप्तपितृगणान् सिद्धिरूपान्मनोहरम् ।
आहारं ससृजे तेषां श्राद्धतर्पणपूर्वकम् ॥३॥
स्नानंतर्पणपर्य्यन्तंश्राद्धान्तं देवपूजनम् ।
आह्निकञ्चत्रिसन्ध्यान्तं विप्राणञ्चश्रुतौश्रुतम् ॥४॥
नित्यंनकुर्य्याद्योविप्रस्त्रिसन्ध्यंश्राद्धतर्पणम् ।
बलिवेदध्वनिसोऽपिविषहीनोयथोरगः ॥५॥
हरिसेवा विहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक् ।
भस्मान्तं सूतकं तस्य न कर्मार्हः स नारद ॥६॥
ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे ।
न प्राप्नुवन्ति पितरो ददतिब्राह्मणादयः ॥७॥

इस अध्याय में स्वधा के उपाख्यान का निरूपण किया जाता है। नारायण ने कहा—हे नारद! अब मैं सुधा के उपाख्यान को बता दूँ तुम उसको सुनो। यह उपाख्यान अति उत्तम-पितृगण की तृप्ति को करने वाला और श्राद्धों के फल को बढ़ाने वाला है ॥१॥ सृष्टि के आदि में विधाता ने-जिसने समस्त जगतों की रचना की थी पितृगणों का भी सृजन किया था। ये चतुर अर्थात् चार तो मूर्तिमान् थे और तीन तेजके स्वरूप वाले थे ॥२॥ इन सात पितृगणों को देख कर जो सिद्धि के रूप वाले थे इनके लिये विधाता ने श्राद्ध तर्पण पूर्वक मनोहर आहार का सृजन किया था ॥३॥ स्नान-तर्पण पर्यन्त,श्राद्धान्त देव पूजन-आह्निक और त्रिकाल सन्ध्यान्त कर्म विप्रों का श्रुति में श्रुत

होता है ॥४॥ जो विप्र त्रिसन्ध्या और श्राद्धतर्पण नित्य नहीं किया करता है तथा बलि और वेद ध्वनि नहीं करता है, वह ब्राह्मण विष हीन सर्प की भाँति ही होता है ॥५॥ जो हरि की सेवा से विहीन और श्रीहरि को निवेदन न करके अर्थात् भगवान् का भोग न लगाकर खाने वाला होता है, हे नारद ! उसका सूतक भस्म होने तक रहता है अर्थात् मरकर दाह से भस्म जब तक हो तब तक रहा करता है। वह ब्राह्मण किसी भी कर्म करने के योग्य नहीं होता है ॥६॥ ब्रह्मा जी ने पितृगण के लिये श्राद्ध आदि का सृजन कर दिया था और फिर वे वहीं गए तो देखा था कि ब्राह्मण आदि जो कुछ भी उन्हें देते हैं, उसे वे प्राप्त नहीं करते हैं ॥७॥

सर्वे प्रजग्मुः क्षुधिता विषण्णा ब्रह्मणः सभाम् ।
सर्वनिवेदनं चक्रुस्तमेव जगतां विधिम् ॥८॥
ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे तां मनोहराम् ।
रूपयौवनसम्पन्नां शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ॥९॥
विद्यावतीं गुणवतीमतिरूपवतीं सतीम् ।
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥१०॥
विशुद्धां प्रकृतेरंशां सस्मितां वरदां शुभाम् ।
स्वधाभिधानां सुदतीं लक्ष्मीं लक्षणसंयुताम् ॥११॥
शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मं च बिभ्रतीम् ।
पत्नीं पितॄणां पद्मास्यां पद्मजां पद्मलोचनाम् ॥१२॥
पितृभ्यस्तां ददौ कन्यां तुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणीम् ।
ब्राह्मणांश्चोपदेशं च चकार गोपनीयकम् ॥१३॥
स्वधान्तं मन्त्रमुच्चार्य पितृभ्यो देहि चेति च ।
क्रमेण तेन विप्राश्च पितृदानं ददुः पुरा ॥१४॥

वे सभी पितृगण भूखे और अत्यन्त विषाद से पूर्ण हो कर ब्रह्मा जी की सभा में गये थे और उन सब ने जगतों के सृष्टा से अपना दुःख निवेदित किया था ॥८॥ उस समय ब्रह्मा जी ने एक मानसी परम

सुन्दरी कन्या की रचना की थी। यह कन्या रूप यौवन से सम्पन्न थी और शरत्काल के चन्द्रमा के समान प्रभा वाली थी ॥९॥ यह विद्या वाली-गुणों से समन्वित-अत्यन्त रूप-लावण्य से युक्त-सती-श्वेत चम्पक के पुष्प के तुल्य आभा वाली और रत्नों से भूपित थी ॥१०॥ यह कन्या परम विशुद्ध-प्रकृति की अंश रूपा-स्मित से युक्त-वरदान देने वाली-शुभा-सुन्दर दाँतों से संयुक्त, समस्त सुलक्षणों से समन्वित लक्ष्मी स्वधा नामवली थी ॥११॥ शरत्कालीन पद्म जिसके चरणों में न्यस्त थे ऐसे चरण कमलों वाली थी—पद्मा के तुल्य मुख वाली-पद्म से समुत्पन्न-पद्मों के समान नेत्रों वाली पितृगण की पत्नी थी ॥१२। ब्रह्म ने उस कन्या को जो तुष्टि के रूप वाली थी, परितुष्ट पितृगण को दे दी थी और उस ने ब्राह्मणों को अत्यन्त गोपनीय उपदेश दिया था ॥१३॥ पितृगणों को जो भी कुछ समर्पित करो वह मन्त्र के अंत में स्वधा शब्द का उच्चारण करके ही किया करो। इसी क्रम से विप्रलोग पहिले पितृगण को दान देते थे ॥१४॥

स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा वरा।
सर्वत्रदक्षिणाशस्ताहृतयज्ञस्त्वदक्षिणः ॥१५॥
पितरो देवता विप्रा मुनयोमानवास्तथा।
पूजाञ्चक्रुःस्वधांशान्तांतुष्टावपरमादरम् ॥१६॥
देवादयश्च सन्तुष्टता परिपूर्णमनोरथाः।
विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवींवरेण च ॥१७॥

देवों के दान में स्वाहा प्रशस्त है, और पितृगण के लिये अर्पित दान में स्वधा श्रेष्ठ होती है। दक्षिणा तो सर्वत्र समस्त कर्मों में ही परम प्रशस्त हुआ करती है। इसके विना तो कभी कोई कर्म होता ही नहीं है। जो भी कुछ किया जावे दक्षिणा उसमें परम आवश्यक एक अङ्ग है। जो याग-यज्ञ दक्षिणा से रहित होता है, वह निष्फल होता है ॥१५॥ तब पितरों ने, देवों ने और मुनिगण तथा मनुष्यों ने सबमें शान्त स्वरूप वाली स्वधा देवी की परम-समादर के साथ पूजा की थी

और उनका स्तवन भी किया था ॥१६॥ तब देवता आदि सब बहुत ही सन्तुष्ट हो गये थे और विप्र आदि सब परिपूर्ण मनोरथ वाले हो गये थे तथा पितृगण भी स्वधा देवी के वरदान से परम प्रसन्न थे ॥१७॥

---

३७. षष्ठ्युत्पत्तिवर्णनम् ।

षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा षष्ठी प्रकीर्त्तिता ।
बालकाधिष्ठातृदेवी विष्णुमाया च बालदा ॥१॥
मातृकासु च विख्याता देवसेनाभिधा च सा ।
प्राणाधिकप्रिया साध्वी स्कन्दभार्या च सुव्रता ॥२॥
आयुःप्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी ।
सततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धियोगिनी ॥३॥
तस्याः पूजाविधौ ब्रह्मन्नितिहासविधिं शृणु ।
यत् श्रुतं धर्मवक्त्रेण सुखदं पुत्रदं परम् ॥४॥
राजा प्रियव्रतश्चासीत् स्वायम्भुवमनोः सुतः ।
योगीन्द्रो नोद्वहेद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा ॥५॥
ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव सः ।
सुचिरं कृतदारश्च न लभेत्तनयं मुने ॥६॥
पुत्रेष्टियज्ञं तञ्चापि कारयामास कश्यपः ।
मालिन्यै तस्य कान्तायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ ॥७॥

इस अध्याय में षष्ठी की उत्पत्ति के विषय का निरूपण किया जाता है। नारायण ने कहा—प्रकृति का जो छठा अंश था वह षष्ठी इस शुभ नाम से कीर्त्तित हुई थी। यह बालकों की अधिष्ठात्री देवी

थी। और बालों को प्रदान करने वाली विष्णु की माया थी ॥१॥ यह देवसेना नामवाली मातृकाओं में विख्यात हुई हैं जोकि सुव्रत वाली स्वामि कार्तिकेय की प्राणों से अधिक, प्रिय साध्वी पत्नी हुई थी ॥२॥ यह देवी बालकों को आयु के प्रदान करने वाली, उनकी धात्री और उनका रक्षण करने वाली है। यह निरन्तर सिद्धयोगिनी योग के द्वारा छोटे शिशुओं के पास ही स्थित रहा करती है ॥३॥ हे ब्रह्मन् ! इसकी पूजा की विधि में एक इतिहास है, उसका श्रवण करो जोकि मैंने धम के मुख से सुना है। यह परम सुख तथा पुत्र के प्रदान करने वाला होता है ॥४॥ पहिले स्वायम्भुव मनुका पुत्र एक राजा प्रियव्रत था। यह बड़ा योगीन्द्र था और सदा तपस्या में रति रखने वाला हो गया था। इसने अपनी कोई भार्या नहीं बनाई थी ॥५॥ बड़े यत्नों से जब ब्रह्मा जी की आज्ञा हुई तो वह भार्या वाला हुआ था। हे मुने ! बहुत समय व्यतीत हो गया किन्तु दारा के ग्रहण करने वाला वह कोई भी पुत्र न प्राप्त कर सका था। ६॥ उस समय कश्यप मुनि ने उससे एक पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। उसकी जो मालिनी नाम वाली पत्नी थी उसको मुनि ने यज्ञ का चरु दिया था ॥७॥

भुक्त्वा चरुञ्च तस्याश्च सद्यो गर्भो बभूव ह।
दधार तञ्च सा देवी दैवंद्वादशवत्सरम् ॥८॥
ततः सुषाव सा ब्रह्मन् कुमारं कनकप्रभम्।
सर्वावयवसम्पन्नं मृतमुत्तारलोचनम् ॥९॥
तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्य्यश्च बान्धवस्त्रियः।
मूर्च्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेनसुव्रता ॥१०॥
श्मशानञ्च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने।
रुरोद तत्र कान्तारे पुत्रं कृत्वास्ववक्षसि ॥११॥
नोत्सृज्यबालकंराजाप्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः।
ज्ञानयोगंविसस्मार पुत्रशोकात्सुदारुणात् ॥१२॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानञ्च ददर्श ह ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं मणिराजविराजितम् ॥१३॥
तेजसाज्वलितशश्वत्शोभितक्षौमाववसा ।
नानाचित्रविचित्राढ्यं पुष्पमालाविराजितम् ॥१४

उसने जब उस चरु को खा लिया तो तुरन्त ही उसके गर्भ हो गया था। किन्तु उस देवी ने उस गर्भ के तेज को बारह वर्ष तक धारण किया था ॥८॥ इसके अनन्तर उस देवी ने सुवर्ण के समान प्रभा वाले एक सुन्दर कुमार को प्रसूत किया। हे ब्रह्मन् ! यह कुमार समस्त अङ्गों के अवयवों से सम्पन्न था किन्तु उत्तारलोचनों वाला मृत था ॥९॥ उसे इस दशा में देखकर समस्त बान्धवों की स्त्रियाँ और नारियाँ रुदन करने लगी थीं। उसकी माता मालिनी तो पुत्र के शोक से बेहोश हो गई थी जोकि सुव्रता थी ॥१०॥ हे मुने ! फिर राजा उस बालक को लेकर श्मशान में गया था। वहाँ वन में जाकर राजा अपने वक्षःस्थल पर उस पुत्र को रख कर रोने लगा ॥११॥ राजा उस मृत बालक को अपने वक्षःस्थल से नहीं हटाता था और स्वयं भी मरने के लिये उद्यत हो गया था। वह परम ज्ञानी भी सम्पूर्ण ज्ञान योग को उस समय सुदारुण पुत्र के शोक में भूल गया था ॥१२॥ इसी बीच में वहाँ उसने एक विमान को देखा था जो परम विशुद्ध स्फटिक मणि के सदृश और मणियों में दे दीप्यमान था ॥१३॥ वह विमान तेज से जाज्वल्यमान हो रहा था और एक क्षौम वस्त्र से वह शोभायुक्त था। अन्य अनेक प्रकार की चित्र-विचित्र वस्तुओं से युक्त तथा पुष्प मालाओं से शोभित था ॥१४॥

ददर्श तत्र देवीञ्च कमनीयां मनोहराम ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥१५॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ।
कृपामयीं योगनिद्रां भक्तानुग्रहकातराम् ॥१६॥

है। कर्म से ही गुणवान् तथा अङ्ग हीन हुआ करते हैं ॥२७॥ इस लिये हे राजन् ! सभी कुछ में कर्म की ही प्रधानता होती है और सभी से श्रुति में यही सुना गया है। भगवान कर्म के रूप वाले हैं, जोकि उसी कर्म के द्वारा फलों के देने वाले होते हैं ॥२८॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने ।
महायज्ञानेन सहसा जीवयामास लीलया ॥२९॥
राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम् ।
देवसेना च पश्यन्तं नृपोमम्बरमेव च ॥३०॥
ग्रहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुद्यता ।
पुनस्तुष्टाव तां राजा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥३१॥
नृपतास्त्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह ।
उवाच तं नृपं ब्रह्मन् वेदोक्तं कर्मनिर्मितम् ॥३२॥
त्रिषु लोकेषु राजा त्वं स्वायम्भुवमनोः सुतः ।
मम पूजाञ्च सर्वत्र कारयित्वाम्वयकुरु ॥३३॥
तदा दास्यामि पुत्रन्ते कुलपद्मं मनोहरम् ।
सुव्रतं नामविख्यातं गुणवन्तं सुपंडितम् ॥३४॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ ।
राजा चकार स्वीकारं तत्पूजार्यञ्चसुव्रतः ॥३५॥
जगाम देवी स्वर्गञ्च दत्वा तस्मै शुभं ।
आजगाम महाराजा स्वगृहंहृष्टमानसः ॥
आगत्य कथयामास वृतान्त पुत्रहेतुकम् ॥३६॥

इतना इस प्रकार से कहकर हे मुने ! इस देवी ने उस बालक को ग्रहण कर लिया था और तुरन्त ही महा ज्ञान के द्वारा लीला से ही उसे जीवित कर दिया था ।२९। वह देवी उस बालक को लेकर आकाश में जाने को उद्यत होगई थी । उस समय सूखे हुये कण्ठ तालु और होठों वाले राजा ने उसकी पुनः स्तुति की थी । राजा ने स्वयं उस समय स्मित से युक्त-सुवर्ण के समान कान्ति वाले - देव - से - राजा और अम्बर को देखने वाले बालक को देखा था ॥३०-३१॥ राजा के स्तोत्र से वह देवी परितुष्टा हो गई थी । हे ब्रह्मन् ! फिर ब्रह्मने उस

राजा से वेद मे कहा हुआ निमित कर्म कहा था ॥३२॥ देव सेना ने कहा—हे नृप ! तू तीनो लोको मे राजा है और स्वायम्भुव मनु का पुत्र है। तुम मेरी सर्वत्र पूजा करा और स्वय भी मेरा अर्चन कर॥३३॥ मैं तुझको कुल का कमल परम मनोहर पुत्र दूंगी जो सुव्रत-विख्यात नाम वाला-गुणवान् और बहुत अच्छा पण्डित होगा ॥३४॥ इस प्रकार से उससे देवी ने कहकर फिर उस बालक को उसे दे दिया था। सुव्रत राजा ने उसकी पूजा का करना स्वीकार कर लिया था ॥३५॥ वह देवी उस राजा को शुभ वरदान देकर स्वर्ग को चली गई थी। राजा हृष्ट मन वाला होकर अपने घर को आगया था। और वहाँ आकर उसने पुत्र के कारण वाला सम्पूर्ण वृत्तान्त कह दिया था ॥३६॥

हे नारद ! वहा समस्त नर और नारियाँ अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये थे और उस पुत्र के निमित्त सर्वत्र मङ्गल कराया था। देवी का पूजन कराया था और ब्राह्मणो को धन का दान दिया था ॥३७॥

कन्या साच भगवती कश्यपस्यच मानसी।
तेनेय मनसादेवी मनसा या च दीव्यति ॥३८॥
मनसा ध्यायते या वा परमात्मानमीश्वरम्।
तेन सा मनसादेवी योगेन तेन दीव्यति। ३९॥
आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी।
त्रियुगञ्च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मन ॥४०॥
जरत्कारु शरीरञ्च दृष्ट्वा या क्षीणमीश्वर ।
गोपीपतिर्नामचक्रे जरत्कारुरिति प्रभु ॥४१॥
वाञ्छितञ्चददौ तस्यै कृपयाच कृपानिधि ।
पूजाञ्च कारयामास चकार च पुन स्वयम् ॥४२।

अब मनसा देवी के उपाख्यान का निरूपण किया गया है। नारायण ने कहा—वह भगवती कश्यप ऋषि की मानसी

कन्या थी। इसी से यह मनसा देवी नाम वाली हुई थी जो मन से दीप्ति वाली थी ॥३८॥ अथवा जो मन से परमात्मा ईश्वर का ध्यान किया करती थी। इससे उस योग के द्वारा वह मनसा देवी दीप्त हुई थी ॥३९॥ वह देवी आत्मा में रमण करने वाली-सिद्ध योगिनी एवं परम वैष्णवी थी। उसने तीन युग पर्यन्त परमात्मा श्रीकृष्ण के लिये तपस्या की थी ॥४०॥ ईश्वर ने उसको देखा था जिसका जरत्कारु एवं क्षीण शरीर हो गया था। गोपी पति प्रभु ने उसका जरत्कारु-यह नाम कर दिया था ॥४१॥ कृपा की खान प्रभु ने कृपा करके उसको उसका इच्छित वरदान दे दिया था और अपनी पूजा कराई थी। फिर स्वयं भी पूजा की थी ॥४२॥

स्वर्गेच नागलोकेच पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः।
भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरीच मनोहरा ॥४३॥
जगद्गौरीतिविख्यातातेन सापूजितासती।
शिवशिष्याच सा देवी तेनशैवीतिकीर्त्तिता ॥४४॥
विष्णुभक्तातीव शश्वद्वैष्णवी तेन नारद।
नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे जन्मेजयस्य च ॥४५॥
नागेश्वरीतिविख्याता सा नागभगिनीतथा।
विषं संहर्त्तुमीशासा तेन विषहरोतिसा ॥४६॥
सिद्धं योगं हरात् प्राप तेनातिसिद्धयोगिनी।
महाज्ञानञ्च गोप्यञ्चमृतसञ्जीविनींपराम् ॥४७॥
महाज्ञानयुतां ताञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः।
आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सा च तपस्विनः ॥४८॥
आस्तिकमाताविख्याता जगत्सुसुप्रतिष्ठिता।
प्रियामुनेर्जरत्कारोर्मुनीन्द्रस्यमहात्मनः ॥४९॥
योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारोः प्रियाः ततः ॥५०॥

स्वर्ग लोक में-नाग लोक में-ब्रह्म लोक से पृथिवी में जगतीतल

मे वह गौरी अत्यन्त अधिक सुन्दरी और मनोहर थी ॥४३॥ वह जगद्गौरी इस नाम से प्रसिद्ध थी और इस नाम से ही वह सती पूजित हुई थी। वह देवी शिवकी शिष्या थी अतएव शैवी- इस नाम से भी कही गई है ॥४४॥ हे नारद ! वह अत्यन्त अधिक विष्णु की भक्त थी इसीलिये उसका नाम वैष्णवी था। वह नागो के जन्मेजय के यज्ञ मे प्राणो की रक्षा करने वाली थी ॥४५॥ इसीलिये नागेश्वरी- इस नाम से विख्यात हुई थी। तथा वह नाग भगिनी थी। वह विष का हरण करने मे समर्थ थी इसीलिये वह विषहरी इस नाम से प्रसिद्ध हुई थी ॥४६॥ इस देवी ने सिद्ध योग शिव से प्राप्त किया था। इस कारण से इसका सिद्ध योगिनी यह शुभ नाम हो गया था। इसमे महान ज्ञान था और गोप्य था एवं पर अमृत सजीविनी भी थी ॥४७॥ महामनीषी लोग इस देवी को महाज्ञान से युक्त कहते हैं। वह परम तपस्वी मुनिशिरोमणि आस्तीक की माता थी ॥४८॥ यह जगती मे आस्तीक की माता प्रसिद्ध है और इस नाम से सुप्रति- ष्ठित है। महान आत्मा वाले मुनीन्द्र जरत्कारु की यह प्रिया थी ॥४९॥ तब से ही विश्व में पूजने के योग्य योगी जरत्कारु की प्रिया प्रसिद्ध थी ॥५०॥

जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धियोगिनी।
वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरीतथा ॥५१॥
जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरीति च।
महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता ॥५२॥
द्वादशैतानिनामानि पूजाकालेच य पठेत्।
तस्य नागभय नास्तितस्य वंशोद्भवस्यच ॥५३॥
नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे।
नागक्षते महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥५४॥
इद स्तोत्र पठित्वा तु मुच्यते नात्रसंशय.।
नित्य पठेत् यस्त्त दृष्ट्वा नागवर्गं पलायते ॥५५॥

दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।
स्तोत्र सद्धोभवेद् यस्यसविषंभोक्तु मीश्वरः ॥५६॥
नागौघं भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः ।
नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः ॥५७॥

अब उस देवी के द्वादश नामों का उल्लेख किया जाता है– ओं मनसा देवी के लिये नमस्कार है - आप जरत्कारु-जगद्गौरी-मनसा-सिद्धि योगिनी-वैष्णवी-नाग भगिनी-शैवी तथा नागेश्वरी हैं ॥५१॥ आप जरत्कारु की प्रिया है–आस्तीक की माता- विषहरी-महाज्ञानयुता और विश्व पूजिता देवी हैं ॥५२॥ इन उक्त बारह नामों को जो पूजा के समय में पढ़ता है, उसको और उसके वंश में होने वाले को नागों का कोई भय नहीं होता है ॥५३॥ नाग से भीत शय्या में–नाग से ग्रस्त मन्दिर में– नाग से क्षत में–महा दुर्ग में जिसका नागों के द्वारा विग्रह वेष्ठित हो ॥५४॥ इस स्तोत्र का पाठ करके मुक्त हो जाता है–इसमें तनिक भी संशय नही है। जो इसको नित्य ही पढ़ता है, उसे देखकर ही नाग समूह भाग जाया करता है ॥५५॥ यदि इस द्वादश नामों वाले स्तोत्र का दस लाख जाप कर लिया जावे तो मनुष्यों को स्तोत्र की सिद्धि हो जाती है। जिसको यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है, वह उसके विष को खाने में भी समर्थ हो जाता है ॥५६॥ वह नागों के समूह का भूषण बनाकर नाग वाहन हो जाया करता है अर्थात् उसमें इतनी शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि नागों का विष का उस पर कुछ भी रक्षक मात्र भी प्रभाव नहीं होता है। वह नागों के आसन बनाकर स्थित हो सकता है और नागों की शय्या पर शयन करने की क्षमता उसमें होती है। फिर वह मनुष्य एक महान् सिद्ध हो जाता है ॥५७॥

३८— सुरम्युपाख्यानम् ।

का वा सा सुरभीदेवी गोलोकादागताचया ।
तज्जन्मचरितब्रह्मञ्श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥१॥
गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः ।
गवां प्रधाना सुरभी गोलोके च समुद्भवा ॥२॥
सर्वादिसृष्टेः कथन कथयामि निशामय ।
बभूव तेन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने ॥३॥
एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकात् ।
गोपाङ्गनापरिवृतः पुण्य वृन्दावन ययौ ॥४॥
सहसा तत्र रहसि विजहार च कौतुकात् ।
बभूव क्षीरपानेच्छा तदा स्वेच्छामयस्य च ॥५॥
ससृजे सुरभी देवो लीलया वामपार्श्वतः ।
वत्सयुक्ता दुग्धवती वत्सानाञ्च मनोरमाम् ॥६॥
दृष्ट्वा सवत्सा सुदामा रत्नभाण्डे दुदोह च ।
क्षीर सुधातिरिक्तञ्च जन्ममृत्युहर परम् ॥७॥

इस अध्याय मे सुरभि के उपाख्यान का निरूपण दिया गया है। नारद ने कहा—हे ब्रह्मन् ! वह सुरभी देवी कौन थी जोकि गोलोक से आई थी ! उसका जन्म और चरित्र मैं तत्व पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥१॥ नारायण ने कहा—यह सुरभी गौओ की अधिष्ठात्री देवी है। गौओ में यह आदि मे होने वाली है और गौओं मे ही इसका जन्म हुआ है। गौओ म यह प्रधान है और इस सुरभी की उत्पत्ति गोलोक मे हुई थी ॥२॥ मैं समस्त आदि की सृष्टि का कथन करता हूँ। आप श्रवण करें। पहिले वृन्दावन के वन मे उसका जन्म हुआ था ॥३॥ एक बार श्री राधिका नाथ राधा के साथ कौतुक से गोपाङ्गना से परिवृत होकर परम पवित्र वृन्दावन को गये थे ॥४॥ वहाँ पर पहुँच

कर उन्होंने एकान्त में कौतुक से विहार किया था। उस समय में स्वेच्छा से परिपूर्ण की क्षीर का पान करने की इच्छा हुई थी ॥५॥ उसी समय में लीला से उन्होंने अपने वाम पार्श्व से सुरभी का सृजन किया था। वह सुरभी वत्स से युक्त थी—दुग्ध देने वाली थी और वत्सों को परम मनोहर थी ॥६॥ वत्स के सहित सुरभी को देखकर सुदामा नामक श्रीराधिका नाथ के सखा ने रत्नों से निर्मित पात्र में दोहन किया था। वह क्षीर भी सुधा से भी कहीं अधिक मधुर था और जन्म-मृत्यु के हरण करने वाला था ॥७॥

तदुष्णञ्च पयः स्वादु पपौ गोपपतिः स्वयम्।
सरो बभूव पयसा भाण्डविस्रंसनेनच ॥८॥
दीर्घे च विस्तृते चैव परितः शतयोजनम्।
गोलोकेषु प्रसिद्धश्च स च क्षीरसरोवरः ॥९॥
गोपिकानाञ्च राधायाः क्रीड़ावापीबभूवसा।
रत्नेन रचिता तूर्णं भूता वापीश्वरेच्छया ॥१०॥
बभूव कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः।
तावन्तो हि च वत्साश्च सुरभी लोमकूपतः ॥११॥
तासां पुत्राश्च पौत्राश्च संबभूवुरसंख्यकाः।
कथिता च गवां सृष्टिस्तयाचपूरितं जगत् ॥१२॥
पूजाञ्चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने।
ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥१३॥
दीपान्वितापरदिने श्रीकृष्णस्याज्ञया भवे।
बभूव सुरभी पूजा धर्म्मवक्त्रादितिश्रुतम् ॥१४॥

उस उष्ण और स्वाद युक्त दूध को गोपों के पति ने स्वयं पिया था। उस भाण्ड अर्थात् पात्र के विस्रस्त हो जाने से दूध से एक सर हो गया था ॥८॥ दीर्घता और विस्तृताओं में सब ओर से एक सौ योजन था। वह क्षीर सरोवर गो लोक में प्रसिद्ध है ॥९॥ वह

गोपिकाओ की और राधा की क्रीडा करने की वापी थी। वापी के स्वामी की इच्छा से शीघ्र ही वह रत्नों से रचित हो गई थी ॥१०॥ सुरभी के लोमा के छिद्रो से सहसा लाख करोड कामधेनु उतने ही वत्सो के सहित हो गई थी ॥११॥ उनक पुत्र और पौत्र फिर असख्य हो गये थे। यह गौओ की सृष्टि है। उसके द्वारा यह जगत पूरित हो गया है ॥१२॥ हे मुने ! पहिले भगवान् ने सुरभी की पूजा की थी। इसके अनन्तर उसकी दुर्लभ पूजा तीनो लोको म हुई थी ॥१३॥ दीपावली (दिवाली) क दूसरे दिन मे श्री कृष्ण की आज्ञा से ससार मे सुरभी की पूजा हुई थी—यह धर्म के मुख से सुना था ॥१४॥

ध्यान स्तोत्र मूलमन्त्रयद्यत् पूजाविधिक्रमम्।
वेदोक्तञ्चमहाभाग निबोधकथयामिते ॥१५॥
ओ सुरभ्यैनम इति मन्त्रस्य च षडक्षर ।
सिद्धो लक्षजपेनैव भक्ताना कल्पपादप ॥१६॥
ध्यानञ्च यजुर्वेदोक्त पूजन सर्वसम्मतम् ।
ऋद्धिदा वृद्धिदाञ्चैव मुक्तिदा सर्वकामदाम् ॥१७॥
लक्ष्मीस्वरूपा परमा राधासहचरी पराम् ।
गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवा प्रसूम् ॥१८॥
पवित्ररूपा पूज्याञ्च भक्ताना सर्वकामदाम् ।
यया पूत सर्वविश्व ता देवी सुरभी भजे ॥१९॥
घटे वा धेनुशिरसि बद्धस्तम्भे गवाञ्च वा ।
शालग्रामे जलेऽग्नौ वा सुरभीपूजयेद्द्विज ॥२०॥
दीपान्वितापरदिने पूर्वाह्णे भक्तिसयुत ।
य पूजयेत्र सुरभी स च पूज्या भवेद्भुवि ॥२१॥

इसका ध्यान स्तोत्र-मूल मन्त्र और जो-जो पूजा की विधि का क्रम जोकि वेद म कहा गया है-मैं तुमको बताता हू। हे महा भाग! उसे तुम समझ लो ॥१५॥ "ओ सुरभ्यै नम." अर्थात् सुरभी के लिये

नमस्कार है। यह छः अक्षरों वाला मन्त्र होता है। यह मन्त्र एक लाख जप करने से सिद्ध हो जाता है जोकि भक्तों के लिये कल्प वृक्ष है अर्थात् समस्त मन की इच्छाओं को पूर्ण करने वाला था ॥१६॥ इसका ध्यान और पूजन यजुर्वेद में कहा हुआ सबका सम्मत है। यह सुरभी ऋद्धि प्रदान करने वाली—वृद्धि के देने वाली-मुक्ति देने वाली-समस्त कामनाओं को देने वाली है ॥१७॥ यह सुरभी लक्ष्मी के परम स्वरूप वाली और राधा की पर सहचरी-गौओं की अधिष्ठात्री देवी-गौओं की आद्य और गौओं की प्रसूत है ॥१८॥ यह पवित्र स्वरूप वाली-भक्तों की पूज्य तथा समस्त कामों की देने वाली है। जिस के द्वारा सम्पूर्ण विश्व पूत हुआ है या हो रहा है, उस देवी सुरभी का मैं भजन करता हूँ ॥१६॥ ब्राह्मण को घट में—धेनु के मस्तक में अथवा गौओं के बांधने के स्तम्भ में-शालग्राम में-जल में-अथवा अग्नि में सुरभी देवी की पूजा करनी चाहिए ॥२०॥ दीपावली के दूसरे दिन में दोपहर के पूर्व भक्तिभाव से युक्त होकर जो कोई सुरभी की पूजा करता है, वह भूतल में पूज्य होता है ॥२१॥

एकदा त्रिपु लोकेपु वाराहे विष्णुमायया।
क्षीरं जहार सहसा चिन्तिताश्च सुरादय; ॥२२॥
ते गत्वा ब्रह्मलोकञ्च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा।
तदाज्ञया च सुरभीं तुष्टाव पाकशासन; ॥२३॥
नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः।
गवां बीजस्वरूपायै नमस्तेजगदम्बिके ॥२४॥
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः।
नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः
कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेपां सन्ततं परम् ॥२५॥
श्रीदायै धनदायै च वृद्धिदायै नमो नमः।
शुभदायै प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः ॥२६॥

यशोदायै कीर्त्तिदायै धर्म्मज्ञायै नमो नमः ।
स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसू. ॥२७॥
आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी ।
महेन्द्राय वर दत्वा वाञ्छितञ्चापि दुर्लभम् ॥२८॥

एक बार वाराह में विष्णु की माया के द्वारा सहसा क्षीर का हरण हुआ था उस समय सुर आदि सब बड़े चिन्तित हो गये थे ॥२२॥ उस समय वे सब ब्रह्म लोक मे जाकर ब्रह्मा की स्तुति उन्होंने की थी । ब्रह्मा की आज्ञा से इन्द्र ने सुरभी स्तुति की थी ॥२३॥ महेन्द्र ने कहा—सुरभी देवी को मेरा नमस्कार है-महा देवी सुरभी के लिये मेरा वार-वार नमस्कार है । गौओ के बीच स्वरूप वाली है जगत् की माता ! तेरे लिये नमस्कार है ॥२४॥ राधा की प्रिया को मेरा नमस्कार है । पद्मा के अंशरूप वाली के लिये वार—वार नमस्कार है । कृष्ण की प्रिया के लिये मेरा नमस्कार है तथा गौओ की माता के लिये वार—वार नमस्कार है । निरन्तर सबके लिये परम कल्प वृक्ष के स्वरूप वाली के लिये नमस्कार है ॥२५॥ श्री प्रदान करने वाली-धन देने वाली और वृद्धि देने वाली के लिये वार-वार नमस्कार है । शुभ प्रदान करने वाली-प्रसन्न स्वरूप वाली-और गौओ को प्रदान करने वाली के लिये वार-वार नमस्कार है ।२६। यश देने वाली कीर्ति देने वाली और धर्म को जानने वाली के लिये वार-वार नमस्कार है । वह जगत् को प्रसूत करने वाली सुरभी देवी इन्द्र द्वारा कहे हुए स्तोत्र के श्रवण मात्र से ही परम सन्तुष्ट हुई और प्रसन्न हुई थी ।२७। यह सनातनी वहा पर ही ब्रह्म लोक मे प्रकट हुई थी और महेन्द्र के लिये वरदान दिया था तथा सुदुर्लभ वाञ्छित भी प्रदान किया था ।२८।

जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम् ।
बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णञ्च नारद ॥२९॥
दुग्धात् घृत ततो यज्ञस्ततःप्रीति सुरस्य च. ।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्चयःपठेत् ॥३०॥
स गोमान् धनवांश्चैवकीर्त्तिमान् पुण्यमान्भवेत् ।
सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुदीक्षितः ॥३१॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम् ।
सुचिरं निवसेत्तत्र करोतिकृष्णसेवनम् ॥३२॥
न पुनर्भवनं तस्य ब्रह्मपुत्र भवे भवेत् ॥३३॥

इसके अनन्तर वह गो लोक को चली गई थी । देवगण आदि अपने घर चले गये थे । हे नारद् ! फिर सहसा समस्त विश्व दुग्ध से पूर्ण हो गया था ॥२६॥ दुग्ध से घृत हुआ और उससे यज्ञ हुये और यज्ञों से देवों की प्रीति हुई थी । यह स्तोत्र महान् पुण्य पूर्ण है । जो इसको भक्ति-भाव से युक्त पढता है ॥३०॥ वह गौओं वाला धन वाला कीर्तिमान और पुण्य वाला होता है । वह पाठ करने वाला समस्त तीर्थों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त कर लेने वाला तथा सम्पूर्ण यज्ञों में दीक्षा प्राप्त करने के फल वाला होता है ॥३१॥ वह स्तोत्र के पाठ करने वाला इस लोक में सुखों का उपभोग करके अन्त में श्रीकृष्ण के स्थान को प्राप्त करता है । वहाँ पर अधिक समय तक निवास करता है और श्रीकृष्ण की सेवा किया करता है ॥३२॥ हे ब्रह्मपुत्र ! फिर उस का इस संसार में पुनर्जन्म नहीं होता है ॥३३॥

३६- राधिकाख्यानम् ।

आगमं निष्कलं नम्य श्रुतं सर्वमनुत्तमम् ।
पञ्चरात्रादिकं नीतिशास्त्रं योगञ्चयोगिनाम् ॥१॥
सिद्धानांसिद्धिशास्त्रञ्चनानातन्त्रंमनोहरम् ।
भक्तानांभक्तिशास्त्रञ्चकृष्णस्यपरमात्मनः ॥२॥

देवीनामपिसर्वासांचरितंत्वन्मुखाम्बुजात् ।
अधुनाश्रोतुमिच्छामिराधिकाख्यानमुत्तमम् ।३।
श्रुतौ श्रुत प्रशंसा च राधायाश्च समासतः ।
त्वन्मुखात् काण्वशाखाया व्यासेन तां वदाधुना ।४।
आगमाख्यानकाले च भवता स्वीकृत पुरा ।
नहीश्वरव्याहृतिश्च मिथ्या भवितुमर्हति ।५।
तदुत्पत्तिञ्च तद्ध्यान नाम्नोमाहात्म्यमुत्तमम् ।
पूजाविधानचरितस्तोत्रकवचमुत्तमम् ।६।
आराधन विधानञ्च पूजापद्धतिमीप्सितम् ।
साम्प्रत ब्रूहि भगवन्मामभक्ता भक्तवत्सल ।।७।।

इस अध्याय मे श्री राधिका का उपाख्यान निरूपित किया है । श्री पार्वती ने कहा हे नाथ ! सम्पूर्ण अत्युतम आगमपञ्चरात्रादिक-नीति शास्त्र और योगियों का योग यह सब सुन लिया है ।१। सिद्धों का सिद्धि शास्त्र–मनोहर अनेक अन्य-भक्तो का भक्ति शास्त्र जोकि परमात्मा श्री कृष्ण का है यह भी श्रवण किया है ।२। समस्त देवों का चरित भी आपके मुख कमल से सुना है । अब मैं सर्वोत्तम श्री राधिका देवी का उपाख्यान श्रवण करना चाहती हूँ ।३। श्री राधिका महा देवी की प्रशंसा मैंने श्रुति (वेद) मे बड़ी सुनी है किन्तु वह सक्षेप से ही श्रवण की है जोकि व्यास देव के द्वारा काण्ट शाखा मे की गई है । अब आपके मुख रूपी कमल से उसका निरूपण कीजिए ।४। आगमों के आख्यान करने के समय मे आपने पहिले यह स्वीकार किया है कि ईश्वर की व्याहृतियाँ कभी भी मिथ्या होने के योग्य नहीं होती हैं ।५। उसकी उत्पत्ति–उसका ध्यान–उसके नाम का माहात्म्य-उत्तम पूजा का विधान-चरित-स्तोत्र और उत्तम कवच बताइए ।६। श्री-राधिका का आराधन-आराधना करने की विधि और अभीष्ट अर्चन करने की पद्धति, हे भक्तो पर कृपा करने वाले ! भक्त मुझको अब यह

सम्पूर्ण बताने का अनुग्रह कीजिए ॥७॥

कथं न कथितं पूर्वमागमाख्यानकालतः ।
पार्वतीवचनं श्रुत्वानम्रवक्त्रो बभूव सः ॥८॥
पञ्चवक्त्रश्च भगवान् शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ।
स्वसत्यभङ्गभीतश्चमौनीभतोहिचिन्तितः ॥९॥
सस्मार कृष्णंध्यानेनाभीष्टदेवंकृपानिधिम् ।
तदनुज्ञाञ्चसंप्राप्यस्वार्द्धाङ्गींतामुवाचसः ॥१०॥
निषिद्धोऽहं भगवता कृष्णेन परमात्मना ।
आगमारम्भसमये राधाख्यानप्रसङ्गतः ॥११॥
मदर्द्धाङ्गस्वरूपा त्वं न मद्भिन्ना स्वरूपतः ।
अतोऽनुज्ञां ददौ कृष्णः मंह्यं वक्तुं महेश्वरि ॥१२॥
मदीष्टदेवकान्तायाराधायाश्चरितंसति ।
अतीव गोपनीयञ्च सुखदं कृष्णभक्तिदम् ॥१३॥

हे भगवन् ! पहिले आगमों के कथन करने के समय में यह सब आपने क्यों नहीं बताया था—इसका क्या कारण है ? पार्वती के इस वचन को सुनकर नेत्र रहित मुख वाले वह हो गये थे ।८। भगवान् पञ्चवक्त्र के कण्ठ—ओष्ठ और तालु शुष्क होगये थे । वे अपने सत्य के भङ्ग होने से डरे हुए थे और मौन होकर चिन्तित हो गये थे ।९। शिव ने कृपा के निधि अपने अभीष्ट देव श्री कृष्ण का ध्यान के द्वारा स्मरण किया था और फिर उनकी अनुज्ञा को प्राप्त करने के पश्चात् वह अपनी ही अर्द्धाङ्गिनी पार्वती से बोले ।१०। परमात्मा भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा मुझे उसे कहने के लिये निषेध कर दिया गया था जिस समय आगमों का आख्यान कर रहा था और प्रसंग से श्री राधा का आख्यान प्राप्त हुआ था ।११। किन्तु आप तो देवी मेरे ही आधे अंग के स्वरूप वाली हो । अतः स्वरूप से मुझ से भिन्न नहीं हो । हे महेश्वरी ! इसीलिये अब भगवान कृष्ण ने मुझे वह सब तुमको बता

देने की आज्ञा दे दी है ।१२। हे सति ! श्री राधा देवी मेरी इष्ट देव की कान्ता हैं । उनका चरित्र अत्यन्त ही गोपनीय है । वह परम सुख प्रदान करने वाला और श्रीकृष्ण की भक्ति के देने वाला है ॥१३॥

जानामि तदहं दुर्गे सर्वं पूर्वापरं वरम् ।
यज्जानामि रहस्यञ्च न तत् ब्रह्मा फणीश्वरः ।१४।
न तत् सनत्कुमारश्च न च धर्म्मः सनातनः ।
न देवेन्द्रो मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः सिद्धपुङ्गवाः ।१५।
मत्तो वलवती त्वञ्च प्राणास्त्यक्तुं समुद्यता ।
अतस्त्वां गोपनीयञ्च कथयामि सुरेश्वरि ।१६।
शृणु दुर्गे प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ।
चरितं राधिकायाश्च दुर्लभञ्च सुपुण्यदम् ।१७।
पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले ।
शतशृङ्गैकदेशे च मालतीमल्लिकावने ।१८।
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पतिः ।
स्वेच्छामयश्च भगवान् वभूवरमणोत्सुकः ।१९।
रमणं कर्त्तुमिच्छा च तद्बभूव सुरेश्वरि ।
इच्छया च भवेत् सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च ।२०।
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो वभूव सः ।
दक्षिणाङ्गञ्च श्रीकृष्णः वामार्द्धाङ्गश्च राधिका ।२१।
वभूव रमणी रम्या रासेशा रमणोत्सुका ।
अमूल्यरत्नभरणा रत्नसिंहासनस्थिता ।२२॥

हे दुर्गे ! उसे मैं बहुत ही अच्छा पूर्वा पर सब जानता हूँ । जिस रहस्य को मैं जानता हूँ, उसे ब्रह्मा और फणीश्वर शेष भी नहीं जानते हैं ॥१४॥ उतना उस रूप में सम्पूर्ण सनत्कुमार और सनातन धर्म भी नहीं जानते हैं । न कोई श्रेष्ठ शिरोमणि मुनि–देवेन्द्र–सिद्धेन्द्र-और सिद्धों मे परम शिरोभूषण ही कोई जानते हैं ॥१५॥ हे देवी !

तुम तो मुझसे भी बल वाली हो जोकि प्राणों को त्याग करने के लिये समुद्यत हो गई थी। हे सुरेश्वरी ! इस लिये तुमको उस अत्यन्त गोपनीय चरित के रहस्य को बताता हूँ ॥१६॥ हे दुर्गे ! अब तुम श्रवण करो, मैं परम अद्भुत रहस्य श्री राधिका देवी का सुपुण्य प्रदान करने वाला अति दुर्लभ चरित बताऊँगा ॥१७॥ बहुत पहिले प्राचीन समय में वृन्दावन में जोकि परम रम्य है—गोलोक के रास मण्डल में—शतशृङ्ग के एक स्थल में जहाँ कि मालती की लताओं का विशाल वन है, एक रत्नों से विनिर्मित सिंहासन पर वहाँ जगतों के स्वामी स्थित थे। भगवान अपनी इच्छा से परिपूर्ण हैं। अतः उस समय उनकी रमण करने की उत्सुकता उत्पन्न हुई थी ॥१८—१९॥ रमण करने की इच्छा हुई कि वह सुरेश्वरी हुई थी। उन स्वेच्छामय भगवान की इच्छा मात्र से ही सभी कुछ हो जाया करता है और उसमें किंचित् भी विलम्ब नहीं होता है ॥२०॥ हे दुर्गे ! इसी अन्तर मे वह स्वयं प्रभु दो रूप वाले हो गये थे। उनका जो दाहिना अङ्ग का भाग था, वह श्रीकृष्ण के रूप वाला होगया था और बाँया आधा अङ्ग का भाग श्री राधिका के रूप वाला हो गया था ॥२१॥ वह श्री राधिका परम रम्य रमणी रूप की ईश्वरी रमण करने के लिये समुत्सुक हो गई थीं। वह अमूल्य रत्नों के आभूषणों से विभूषित थीं तथा रत्नों के सिंहासन पर स्थित हो गई थीं ॥२२॥

दृष्ट्वाचैवं सुकान्तञ्च सा दधार हरेःपुरः।
तेन राधासमाख्याता पुराविद्भिर्महेश्वरि ॥२३॥
राधा भजति श्रीकृष्णं सवैताञ्चपरस्परम्।
उभयःसर्वसाम्यञ्चसदासन्तोवदन्ति च ॥२४॥
भवनं धावनं रासे स्मरत्यालिंगनं जपेत्।
तेन जल्पतिशङ्केतांशस्यां राधां मदीश्वरः ॥२५॥
राशब्दोच्चारणाद्भक्तो याति मुक्तिं सुदुर्लभाम्।

धाशब्दोच्चारणात् दुर्गे धावत्येव हरेःपदम् ॥२६॥
कृष्णवामांशसम्भूता राधा रासेश्वरीपुरा ।
तस्याश्चांशांशकलया बभूवुर्देवयोषितः ॥ ७॥
राइत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचकः ।
ततोऽवाप्नोतिमुक्तिञ्चसाचराधाप्रकीर्त्तिता ॥२८॥
बभूव गोपीसंघश्च राधाया लामकूपतः ।
श्रीकृष्णलोमकूपेभ्य बभूवु सर्ववल्लवाः ॥२९॥

उस रासेश्वरी देवी श्री राधिका ने इस प्रकार से रास के लिये समुत्सुक परम सुन्दर अपने कान्त को देखा था और उसने अपने आपसे श्रीहरि के आगे रख दिया था अर्थात् वह हरि के सामने उपस्थित हो गई थी। हे महेश्वरी ! इसी से पुरावेत्ता विद्वानों के द्वारा वह राधा इस नाम से प्रसिद्ध हुई थीं या कही गई थी ॥२३॥ श्रीराधा श्री कृष्ण का सेवन करती है और श्री कृष्ण राधा का सेवन करते हैं। इस तरह से परस्पर म दोनों की समता है। यही सदा सन्त कहते हैं ॥२४॥ रास मे भवन मे धावन करती हैं। स्मरण करती हैं और आलिङ्गन का जाप करती हैं इसीमे मेरे स्वामी उसको राधा कहते हैं। उस प्रशस्ता का यह नाम इसी से पड़ा है ऐसा समझा जाता है ॥२५॥ राधा इस नाम के 'रा'— इसके उच्चारण से भक्त सुदुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है और 'धा'—इसके उच्चारण से हे दुर्गे ! हरि के पद को दौडकर चला जाता है ॥२६॥ कृष्ण के वामांश से समुत्पन्न राधा पहिले रास की ईश्वरी थी। उसके अंशों की कला से फिर देवों की अङ्गना हुई थी ॥२७॥ 'रा'—यह आदान का वाचक है और 'धा'—यह निर्वाण का वाचक है। उससे मानव मुक्ति को प्राप्त होता है। वह राधा कही गई है ॥२८॥ राधा के लोमों के छिद्रों से गोपियों का एक समुदाय समुत्पन्न हुआ था और श्री कृष्ण के लोम कूपों से समस्त

उनके वल्लभ हुए थे ॥२९॥

राधावामांशभागेन महालक्ष्मीर्वभूव सा ।
शस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्वभूव सा ॥३०॥
चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी ।
तदंशा राजलक्ष्मीश्च राजसम्पत्प्रदायिनी ॥३१॥
तदंशा मर्त्यलक्ष्मीश्च गृहिणाञ्च गृहे गृहे ।
शस्याधिष्ठातृदेवी च सा एव गृहदेवता ॥३२॥
स्वयं राधाकृष्णपत्नीकृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।
प्राणाधिष्ठातृदेवीचतस्यैव परमात्मनः ॥३३॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पार्वति ।
भजसत्यंपरंब्रह्मराधेशंत्रिगुणात्परम् ॥३४॥
परं प्रधानं परम परमात्मानमीश्वरम् ।
सर्वाद्यं सर्वपूज्यञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥३५॥

राधा के वामांश भाग से वह-महा लक्ष्मी हुई थी । वह-शस्यों की अधिष्ठात्री देवी है और वह गृह लक्ष्मी हुई थी ॥३०॥ वह चार भुजा वाले देव की पत्नी थी जो कि वैकुण्ठ में निवास करती है । उसके अंश से राज लक्ष्मी हुई थी जो राज सम्पत् को प्रदान करने वाली थी ॥३१॥ उसके अंश स्वरूपा मनुष्यों की लक्ष्मी है जोकि गृहस्थियों के घर-घर में स्थित है । वह शस्यों की अधिष्ठात्री देवी और वह ही गृहकी भी देवता होती है ॥३२॥ राधा स्वयं-कृष्ण की पत्नी हैं जो कृष्ण के वक्षः-स्थल में स्थित रहती है । और वह उस परमात्मा के प्राणों की भी अधिष्ठात्री देवी है ॥३३॥ हे पार्वती ! आब्रह्म स्तम्ब पर्यन्त जो भी सब है वह मिथ्या ही है । त्रिगुण से पर-परं ब्रह्म-सत्य स्वरूप राधा के ईश को भजो ॥३४॥ वह परम प्रधान-परमात्मा-ईश्वर सबके आदि सबके पूज्य निरीह और प्रकृति से परे हैं ॥३५॥

स्वेच्छामय नित्यरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् ।
तद्भिन्नानाञ्चदेवानां प्राकृत रूपमेव च ॥३६॥
तस्य प्राणाधिकाराधावहु सौभाग्यसयुता ।
महद्विष्णोः प्रसू.साचमूलप्रकृतिरीश्वरी ॥३७॥
मानिनीराधिकासन्तः सदासेवन्तिनित्यशः ।
सुलभयत्पदाम्भोजब्रह्मादीनासुदुर्लभम् ॥३८॥
स्वप्ने राधा पदाम्भोज न हि पश्यन्ति वल्लवाः ।
स्वय देवी हरेः क्रोडे छायारूपेण कामिनी ॥३९॥
स च द्वादश गोपाना रायाणः प्रवरः प्रिये ।
श्रीकृष्णाशश्च भगवान् विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥४०॥
सुदामशापात् सा देवी गोलोकादागता महीम् ।
वृषभानुगृहे जाता तन्माता च कलावती ॥४१॥

श्री कृष्ण का स्वरूप नित्य स्वेच्छा से परिपूर्ण और भक्तो के ऊपर अनुग्रह करने वाले विग्रह से युक्त हैं। इससे भिन्न जो भी देव हैं उनका 'प्राकृत' ही रूप होता है ॥३६॥ श्री कृष्ण के प्राणो पर पूर्ण अधिकार होने से राधा बहुत बड़े सौभाग्य से युक्त है। यह मह विष्णु से समुत्पन्न और वह मूल प्रकृति ईश्वरी है ॥३७॥ इस मानिनी राधिका का सन्त पुरुष सदा नित्य ही सेवन किया करते हैं। जिस के पद कमल सुलभ हैं तथा ब्रह्मादि को सुदुर्लभ है ॥३८॥ वल्लभ स्वप्न मे राधा के चरण कमल को नही देखते हैं। यह देवी स्वयं हरि की गोद मे छाया रूप से उनकी कामिनी रहा करती हैं ॥३९॥ हे प्रिये ! यह द्वादश गोपो के शिरोमणि सर्वश्रेष्ठ थे। श्री कृष्ण का अंश भगवान् विष्णु के तुल्य पराक्रम वाले थे ॥४०॥ सुदामा के शाप से वह देवी गोलोक धाम से यहा भूमि मे आई थी। वह राजा वृषभानु के घर में उत्पन्न हुई थी और उसकी माता का नाम कलावती था ॥४१॥

४० हरगौरीसंवादे राधोपाख्यानम् ।

कथं सुदामाशापञ्च सा च देवी ललाभ ह ।
कथ शशाप भृत्यो हि स्वाभीष्टदेवकामिनीम् ॥१॥
शृण देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ।
गोप्यं सर्वपुराणेषु शुभदंभक्तिमुक्तिदम् ॥२॥
एकदा राशिकेशश्च गोलोके रासमण्डले ।
शतशृंगपर्वतैकदेशे वृन्दावने वने ॥३॥
गृहीत्वा विरजां गोपीं सौभाग्यां राधिकासमाम् ।
क्रीड़ाञ्चकार भगवान् रत्नभूषणभूषितः ॥४॥
मन्वन्तराणां लक्षश्च कालः परमितोगतः ।
गोलोकस्यस्वल्पकालेजन्मादिरहितस्यच ॥४॥
दूत्यश्चतस्रो ज्ञात्वा च कथयामासुः राधिकाम् ।
श्रुत्वा परमरुष्टा सा तत्याज हारमीश्वरी ॥६॥
प्रबोधिता च सखिभिः कोपरक्तास्यलोचना ।
विहायरत्नालंकारं वह्निशुद्धांशुकेशुभे ॥७॥

इस अध्याय में हर गौरी सम्वाद में राधा के उपाख्यान का निरूपण किया गया है। पार्वती ने कहा—उस देवी को सुदामा का शाप क्यों प्राप्त हुआ था ? उस सेवक सुदामा ने अपने अभीष्ट देव श्री कृष्ण की कामिनी को कैसे शाप दे दिया था ॥१॥ श्री भगवान ने कहा– हे देवी ! मैं इस अत्यन्त अद्भुत रहस्य को बताता हूँ तुम इसका श्रवण करो। यह रहस्य समस्त पुराणों परम गोपनीय है– शुभ के प्रदान करने वाला तथा भक्ति और मुक्ति दोनों को देने वाला है ॥२॥ एक वार राधिकेश गोलोक धाम में रासमण्डल में शतभृङ्ग पर्वत के एक भाग में वृन्द्रावन के वन में विरजा नाम की

सौभाग्य वाली गोपी को जोकि राधिका के ही समान थी, लेकर रत्नभूषणों से विभूषित भगवान् ने उसके साथ क्रीड़ा की थी ।।३।।४।। एक लाख मन्वन्तरों के समान समय व्यतीत हो गया था किन्तु जन्मादि से रहित गोलोक धाम का वह स्वल्प ही काल था ।।५।। चार दूतियों ने यह जान कर इस वृत्तान्त को राधिका से कह दिया था । इसका श्रवण करके वह बहुत ही अधिक रुष्ट हो गई और उस ईश्वरी ने हार का त्याग कर दिया था ।।६।। साथ में रहने वाली सखियों ने बहुत कुछ उसे समझाया था किन्तु कोपसे लाल मुख और नेत्रों वाली ने वह्नि के समान शुद्ध शुभ वस्त्र और रत्नों के समस्त अलङ्कारों का त्याग कर दिया था ।।७।।

क्रीडापद्मञ्च सद्रत्ना मूल्यदर्पणमुज्ज्वलम् ।
चकार लोप वस्त्रेणसिन्दूर चित्रपत्रकम् ।।८।।
प्रक्षाल्य तोयाञ्जलिभिर्मुखरागमलक्तकम् ।
विस्रस्तकवरीभारामुक्तकेशीप्रकम्पिता ।।९।।
शुक्लवस्त्रपरीधाना रूक्षावेशादिवर्जिता ।
ययौ यानान्तिक तूर्णं प्रियालीभिर्निवारिता ।।१०।।
आजुहावसखीसपरोपविस्फुरिताधरा ।
शश्वत्कम्पान्विताँगोसागोपीभि परिवारिता ।।११।।
ताभिर्भंकरथायुताभिश्च कातराभिश्च सस्तुता ।
आरुरोहरथ दिव्यममूल्यरत्ननिर्मितम् ।।१२।।
दशयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये च योजन शतम् ।।१३।।
सहस्रचक्रयुक्त च नानाचित्रसमन्वितम् ।
नानाविचित्रवसनैः सूक्ष्मैः क्षौमैर्विराजितम् ।।१४।।

सदगुनो वाली उसने क्रीडा का पद्म और उज्ज्वल मूल्य वाला दर्पण का भी त्याग कर दिया था । उसने मुख पर बनी हुई चित्र

पत्रावली और मस्तक लगा हुआ सिन्दूर को वस्त्र के द्वारा मिटा दिया था ॥८॥ मुखराग अलन्द से जल की अञ्जलि से धो डाला था। जिसकी कवरी का भार विस्तस्त हो रहा है ऐसी वह केशों को खोलकर कांपती हुई, शुक्ल वस्त्रों का परिधान करके रूक्षा वेशादि से वर्जित हुई अपनी प्यारी सहेलियों के द्वारा रोकी गई गई थी वह बहुत शीघ्र यान के समीप में चली गई थी ॥९॥१०॥ रोष से अधरों को फड़काते हुए उसने सखियों के समुदाय को बुलाया था। निरन्तर कम्प से युक्त अङ्गःवाली वह गोपियों के द्वारा परिवारित की गई थी ॥११॥ भक्ति से युक्त उन कातर सखियों के द्वारा उसकी स्तुति की गई थी ऐसी राधिका परम दिव्य–अमूल्य एवं रत्नों से निर्मित रथ पर समारूढ़ हो गई थी। वह रथ दश योजन के विस्तार वाला तथा सौ योजन लम्बा था ॥१२॥१३॥ उस रथ में एक सहस्त्र चक्र (पहिए) थे और वह अनेक प्रकार के चित्रों से समन्वित था। नाना प्रकार के चित्र-विचित्र वस्त्रों से तथा सूक्ष्म क्षौमों से वह वह शोभित था ॥१४॥

ययौ रथेन तेनैव सुमनोमालिना प्रिये।
श्रुत्वा कोलाहलं गोप। सुदामा कृष्णपार्षदः ॥१५॥
कृष्णं कृत्वा सावधानं गोपैः सार्द्धं पलायितः।
भयेन कृष्णः सन्त्रस्तो विहाय विरजां सतीम् ॥१६॥
स्वप्रेमभग्नो कृष्णोऽपि तिरोधानं चकार सः।
सा सती समयं ज्ञात्वा विचार्य्य स्वहृदि क्रुधा ॥१७॥
राधाप्रकोपभीता च प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम्।
विरजालिगणास्तत्र भवविह्वलकातराः ॥१८॥
प्रययुः शरणं साध्वीं विरजां तत्क्षणं भिया।
गोलोकेसासरिद्रूपा बभूव शैलकन्यके ॥१९॥
कोटियोजनविस्तीर्णा दीर्घे शतगुणा तथा।

गोलोकं वेष्टयामास परिखेव मनोहरा ॥२०॥
बभूवुः क्षुद्रनद्यश्च तदान्या गोप एव च ।
सर्वा नद्यस्तदंशाश्च प्रतिविश्वेषु सुन्दरि ॥२१॥
इमे सप्तसमुद्राश्च विरजानन्दना भुवि ।
अथागत्य भगवती राधा रासेश्वरी परा ॥२२॥

हे प्रिये ! उसी सुमनो माली रथ के द्वारा वह गई थी । कृष्ण के पार्षद सुदामा नाम धारी गोप ने इसका कोलाहल सुना था ॥१५॥ वह श्री कृष्ण को सावधान करके स्वयं गोपों के साथ भाग गया था। भय से कृष्ण भी सन्त्रस्त (डरे हुये) हो गये थे और उन्होंने सती विरजा का त्याग कर दिया था ॥१६॥ अपने प्रेम से भग्न होकर कृष्ण भी छिप गये थे। उस सती विरजा ने भी समय को जानकर अपने हृदय में क्रुध हो विचार किया और राधा के कोप से डरी हुई होकर उसने उसी समय प्राणों का त्याग कर दिया था। विरजा की जो सहेलियां थीं वे सब वहां पर भय से विह्वल एवं कातर हो गई थीं। ॥१७॥१८॥ वे सब उस समय में भय से साध्वी विरजा की शरण में गई थी। वह शैलकन्या गोलोक में एक सरित् के रूप वाली हो गई थी ॥१९॥ जिसका विस्तार एक करोड़ योजन था और लम्बाई में इससे सौ गुनी थी। उसने मनोहर परिखा की (खाई की) भांति गोलोक को वेष्टित कर लिया था ॥२०॥ हे सुन्दरि ! उससे अन्य गोपियां थी वे सब छोटी छोटी नदियां हो गई थीं। समस्त नदियां उसी का अंश स्वरूप हैं जो प्रतिविम्बों में हैं। ॥२१॥ ये जो सात समुद्र भूतल में हैं वे सब विष्णु के पुत्र हैं। इसके अनन्तर परा भगवती रास की स्वामिनी राधा वहां आई थी ॥२२॥

न दृष्ट्वा विरजां कृष्ण स्वगृहञ्च पुनर्ययौ ।
जगाम कृष्णस्तां राधागोपालैरष्टभिः सह ॥२३॥
गोपीभिर्द्वारियुक्ताभिर्वारितश्च पुनः पुनः ।
दृष्ट्वाकृष्णश्चसादेवी भर्त्सनञ्च चकारतम् ॥२४॥

सुदामा भर्त्सयामास तामेव कृष्णसन्निधौ ।
क्रुद्धाशशापसादेवीसुदामानं सुरेश्वरी ॥२५॥
गच्छ त्वमासुरीं योनिं गच्छदूरमतोद्रुतम् ।
शशापतांसुदामाचत्वमितोगच्छभारतम् ॥२६॥
भव गोपीगोपकन्यागोपीभिःस्वाभिरेवच ।
तत्रतेकृष्णविच्छेदोभविष्यतिशतंसमाः ॥२७॥
तत्रभारावतरणं भगवांश्च करिष्यति ।
इत्येवमुक्त्वा सुदामा प्रणम्य मातरं हरिम् ।
साश्रुनेत्रो मोहयुक्तस्ततश्च गन्तुमुद्यतः ॥२८॥
राधा जगाम तत्पश्चात् साश्रुनेत्रातिविह्वला ।
वत्स क्व यासीत्युच्चार्य्य पुत्रविच्छेदकातरा ॥२९॥

जब वहां उसने विरजा और श्री कृष्ण को नहीं देखा तो वह फिर अपने घर को चली गई थीं । फिर आठ गोपालों के साथ कृष्ण उस राधा के पास गये थे ॥२३॥ वहां जो द्वार पर नियुक्त गोपियाँ थीं उनके द्वारा वार-वार निवारण किया गया था । उस देवी ने कृष्ण को देखकर उनको वहुत अधिक फटकार दी थी ॥२४॥ उस समय सुदामा ने कृष्ण की सन्निधि में उस देवी को ही भर्त्सना दी थी । तव सुरेश्वरी उस देवी ने क्रुद्ध होकर सुदामा को शाप दिया था ॥२५॥ देवी ने यह शाप दिया था कि तू आसुरी योनि में चला जा और यहाँ से शीघ्र ही दूर चला जा । उस समय सुदामा ने भी उस देवी को शाप दिया था कि तू यहाँ से भारत में चली जा ॥२६॥ तू वहां अपनी गोपियों के साथ गोप की कन्या गोपी होजा । वहां पर तेरा सौ वर्ष तक श्री कृष्ण से विच्छेद होगा ॥२७॥ वहां भगवान भूमि का भार का अवतरण करेंगे । इतना इस प्रकार से कहकर सुदामा ने माता को और हरि को प्रमाण किया था । वह फिर नेत्रों में अश्रु भरकर मोह से युक्त

होता हुआ जाने को उद्यत हुआ था ॥२८॥ इसके पश्चात् आँखों मे आँसू भरकर अत्यन्त विह्वल होती हुई राधा गई थी । हे वत्स ! तू कहा जाता है—ऐसा कहकर राधा पुत्र के वियोग से कातर हो गई थी ॥२९॥

कृष्णस्तां बोधयामास विद्यया कृपामयीम् ।
शीघ्रं संप्राप्स्यसिसुतमारुदेत्येवमेवच ॥३०॥
स चासुरः शङ्खचूडः बभूव तुलसीपतिः ।
मच्छूलभिन्नकायेनगोलोकञ्चजगामस ॥३१॥
राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारतं सती ।
वृषभानोश्चवैश्यस्यसाचकन्याबभूवह ॥३२॥
अयोनिसम्भवा देवी वायुगर्भा कलावती ।
सुषुवे मायया वायुं सा तत्राविर्बभूव ह ॥३३॥
अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम् ॥३४॥
सार्द्धं रायाणवैश्येन तत् सम्बन्धं चकार सः ।
छायां संस्थाप्य तद्देहे सान्तर्द्धानं चकार ह ॥३५॥

उस समय कृष्ण ने विद्या से कृपामयी उसको समझाया था कि शीघ्र ही इस सुत को प्राप्त करोगी—रुदन मत करो—इस प्रकार से प्रबोधन किया था ॥३०॥ वह तुलसी का पति शङ्खचूड असुर हुआ था । मेरे शूल से भिन्न काया वाला वह गोलोक गया था ॥३१॥ सती राधा वाराह मे भारत को गोकुल मे गई थी । वह वहाँ वृषभानु नाम वाले वैश्य की कन्या हुई थी ॥३२॥ यह देवी अयोनिसम्भवा थी अर्थात् इसकी उत्पत्ति योनि द्वारा नहीं हुई थी । कलावती वायु के गर्भ वाली थी । उसने माया से वायु का प्रसव किया था और वहाँ पर यह आविर्भूत हो गई थी ॥३३॥ बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर वह जब नव यौवन से युक्त हुई तो उसका रायाण वैश्य के साथ उसके पिता ने सम्बन्ध कर दिया था । उसके घर मे

राधा ने अपनी छाया को स्थापित कर दी थी और स्वयं अन्तर्ध्यान हो गयी थी॥३४॥३५॥

बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह ।
गते चतुर्दशाब्दे तु कंसभीतश्छलेन च ॥३६॥
जगाम गोकुलंकृष्णः शिशुरूपीजगत्पतिः ।
कृष्णमातायशोदा या रायाणस्तत् सहोदरः ॥३७॥
गोलोके गोपकृष्णांशः सम्बन्धात् कृष्णमातुलः ॥३८॥
कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने ।
विवाहंकारयामासविधिनाजगतां विधिः ॥३९॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहिपश्यन्तिवल्लवाः ।
स्वयंराधाहरेः क्रोड़े छायारायाणमन्दिरे ॥४०॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः ।
राधिकाचरणाम्भोजदर्शनार्थीचपुष्करे ॥४१॥
भारावतरणे भूमेर्भारते नन्दगोकुले ।
ददर्श तत् पदाम्भोजं तपसस्तत् फलेन च ॥४२॥

उस वैश्य का उसी छाया के साथ विवाह हुआ था। चौदह वर्ष व्यतीत हो जाने पर कंस से भीत होकर जगत्पति छल से कृष्ण शिशु के रूप वाले होकर गोकुल गाये थे। वहां कृष्ण की माता यशोदा थी जिसका रायाण वैश्य सगा भाई था॥३६॥३७॥ वह गोलोक में गोप कृष्ण का अंश था किन्तु इस सम्बन्ध से वह कृष्ण का मामा था॥३८॥ फिर जगतों के विधाता ने विधिपूर्वक कृष्ण के साथ राधा का परम पुण्य स्थल वृन्दावन में विवाह करा दिया था॥३९॥ वल्लभ स्वप्न में राधा के चरण कमल को नहीं देखते हैं। राधा स्वयं तो हरि की गोद में रहती थी और उसकी जो छाया थी वह रायाण के घर में रहा करती थी॥४०॥ विधाता ने पहिले साठ हजार वर्ष तक तपस्या की थी और वह राधा के चरण कमल के

दर्शन का चाहने वाला पुष्कर में था ॥४१॥ उस तप के फल से उसने भारत में भूमि के भार के अवतरण करने के समय से नन्द गोकुल उनके चरण कमल का दर्शन प्राप्त किया था ॥४२॥

किञ्चित्कालञ्च श्रीकृष्णः पुण्ये वृन्दावने वने ।
रेमे गोलोकनाथश्च राधया सह भारते ॥४३॥
ततः सुदामशापेन विच्छेदश्च बभूव ह ।
तत्र भारावतरणं भूमेः कृष्णश्चकार सः ॥४४॥
शताब्दे समतीते तु तीर्थयात्राप्रसंगतः ।
ददर्श कृष्ण सा राधा स चताञ्च परस्परम् ॥४५॥
ततो जगाम गोलोक राधया सह तत्त्ववित् ।
कलावती यशोदा चजगामराधयासह ॥४६॥
वृषभानुश्च नन्दश्च ययौ गोलोकमुत्तमम् ।
सर्वे गोपाश्च गोप्यश्च ययुस्ता याः समागताः ॥४७॥
छायागोपाश्च गोप्यश्च प्रापुर्मुक्तिश्च सन्निधौ ॥४८॥
रेमुरेताश्च तत्रैव सार्द्धं कृष्णेन पार्वति ।
षट्त्रिंशल्लक्षकोटयश्चगोप्योगोपाश्चतत्समाः ।
गोलोकं प्रययुर्मुक्ताः सार्द्धं कृष्णेन राधया ॥४९॥

कुछ समय तक श्रीकृष्ण पुण्यस्थल वृन्दावन के वन में गोलोक धाम के स्वामी ने भारत में राधा के साथ रमण किया था ।४३। इसके पश्चात् सुदामा के शाप से उन दोनों का वियोग हो गया था । वहा पर उस कृष्ण ने भूमि के भार का अवतरण किया था ।४४। एक सौ वर्ष के व्यतीत हो जाने पर तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग से राधा ने कृष्ण को और कृष्ण ने राधा को परस्पर में देखा था ।४५। इसके अनन्तर फिर वह तत्व वेत्त राधा के साथ गो लोक धाम को चले गये थे । कलावती और यशोदा भी राधा के साथ ही चली गई थी ।४६। वृषभानु और नन्द ये भी उत्तम गो लोक को चले गये थे और अन्य

सभी गोपी और गोप जो वहाँ से यहाँ आये थे गो लोक को चले गये थे ।४७। छाया गोप तथा गोपियों में सन्निधि में मुक्ति को प्राप्त कर लिया था ।।४८।। हे पार्वति ! इन सब ने कृष्ण के साथ वहाँ पर ही रमण किया था । छत्तीस करोड़ गोप और गोपी उनके ही समान थे । सब मुक्त होकर कृष्ण तथा राधा के साथ गो लोक नित्य धाम को प्राप्त हो गये थे ।।४६।।

द्रोण: प्रजापतिर्नन्दो यशोदा तत्प्रिया धरा ।
संप्राप पूर्वतपसा परमात्मानमीश्वरम् ।।५०।।
वसुदेवः कश्यपश्च देवकीचादितिः सती ।
देवमाता देवपिता प्रतिकल्पे स्वभावतः ।।५१।।
पितृणां मानसीकन्या राधामाता कलावती ।
वसुदामापि गोलोकात् वृषभानुः समाययौ ।।५२।।
इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम् ।
सम्पत्करं पापहरं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ।।५३।।
श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठेगोलोकेद्विभुजः स्वयम् ।।५४।।
चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मीः सरस्वती ।
गंगाचतुलसीचैवदेव्योनारायणप्रियाः ।।५५।।
श्रीकृष्णपत्नी सा राधा तदर्द्धांगसमुद्भवा ।
तेजसा वयसासाध्वीरूपेणचगुणेनच ।।५६।

प्रजापति द्रोण नन्द था और उसकी प्रिय पत्नी धरा यशोदा थी । इन्होंने पूर्व तपस्या के प्रभाव से परमात्मा ईश्वर की प्राप्ति की थी ।।५०।। वसुदेव कश्यप मुनि थे और सती अदिति ने देवकी का शरीर प्राप्त किया था । ये देवों की माता तथा वह देवों के पिता थे जो प्रत्येक कल्पों में स्वभाव से ही होते हैं ।।५१।। पितृगण की

मानसी कन्या राधा की माता कलावती थी। सुदामा भी गो लोक से आकर वृषभानु हुआ था ॥५२॥ हे दुर्गे! यह इस प्रकार से राधिका का उत्तम आख्यान मैं कह दिया है। यह सम्पत्ति का करने वाला-पापों का हरण करने वाला और पुत्र पौत्रों का विवर्द्धन करने वाला है ॥५३॥ श्रीकृष्ण के दो प्रकार के रूप थे एक दो भुजा वाला और दूसरा चार भुजा वाला स्वरूप था। चतुर्भुज स्वरूप वैकुण्ठ में और द्विभुज स्वयं गो लोक में विराजमान रहता था ॥५४॥ चतुर्भुज की पत्नी महालक्ष्मी और सरस्वती थी तथा गङ्गा तुलसी देवियां नारायण की प्रिया थी ॥५५॥ श्रीकृष्ण की उनके आधे अङ्ग से समद्भूत वह राधा थी जो कि तेज पद रूप और गुण सबसे साध्वी उ के ही समान थी ॥५६॥

आदौ राधा समुच्चार्य्यपश्चात्कृष्णंवदेद्वुध ।
व्यतिक्रमेब्रह्महत्यांलभतेनात्रसंशय ॥५७॥
कार्तिकीपूर्णिमायाञ्चगोलोकेरासमण्डले ।
चकारपूजांराधायातत्सम्बन्धिमहोत्सवम् ॥५८॥
सद्रत्नगुटिकायाञ्च कृत्वा तत् कवच हरि ।
दधार कण्ठे वाहौ च दक्षिणे सह गोपकै ॥५९॥
राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान् प्रभु ।
परस्पराभीष्टदेवो भेदकृन्नरकं व्रजेत् ॥६०॥

आदि में राधा का उच्चारण कर पीछे कृष्ण का शुभ नाम बुध को बोलना चाहिये। इसके उच्चारण में व्यति क्रम करने से ब्रह्म हत्या प्राप्त होती है—इस में तनिक भी संशय नहीं है ॥५७॥ कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि में गो लोक के रास मण्डल में राधिका की पूजा और उसका सम्बन्धित महोत्सव किया था ॥५८॥ हरि ने रत्नों के निर्मित गुटिका में उसके कवच को करके गोपों के सहित कण्ठ में तथा दाहिनी बाहु में धारण किया था ॥५९॥ राधा कृष्ण की पूज्य

थी और वह भगवान प्रभु उस राधा के पूज्य थे। ये दोनों ही परस्पर में एक दूसरे के अभीष्ट देव थे। इनमें भेद करने वाला नरक गामी होता है ॥३०॥
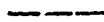
४१— दुर्गोपाख्यानम् ।

सर्वाख्यानं श्रुतं ब्रह्मन्नतीव परमाद्भुतम् ।
अधुना श्रोतुमिच्छामिदुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ॥१॥
दुर्गा नारायणीशाना विष्णुमायाशिवासती ।
नित्यासत्याभगवतीसर्वाणीसर्वमंगला ॥२॥
अम्बिका वैष्णवी गौरी पार्वतीचसनातनी ।
नामानिकौथमोक्तानिसर्वेषांशुभदानिच ॥३॥
अर्थं षोड़शनाम्नां च सर्वेषामीप्सितं वरम् ।
ब्रूहि वेद वदां श्रेष्ठ वेदोक्त सर्वसम्मतम् ॥४॥
केन वा पूजिता सादौ द्वितीये केन वा पुरा ।
तृतीये वा चतुर्थे वा केनसर्वत्रपूजिता ॥५॥

इस अध्याय में दुर्गा का उपाख्यान वर्णित किया गया है। देवर्षि नारद जी ने कहा – हे ब्राह्मन् ! अब तक मैंने सब के परम अद्भुत आख्यानों का श्रवण किया है। अब मैं दुर्गा देवी का सत्युत्तम आख्यान सुनना चाहता हूं ॥१॥ दुर्गा-नारायणी-ईशाना विष्णु माया-शिवा-नित्या-सत्या-भगवती सर्वाणी-सर्व मंगला-अम्बिका-गौरी-पार्वती-शिवा-सनातनी ये शुभ नाम कौथमोक्त हैं जो कि सब को शुभ प्रदान करने वाले हैं ॥२॥३॥ इन सोलह नामों का सबको ईप्सित और वर अर्थ है वेदों के वेत्ताओं में श्रेष्ठ बताइये ! जो कि वेद में कहे हुये

अर्थ से सम्मत अर्थ हो ॥४॥ इसका आदि मे किस ने पूजन किया था तथा पहिले समय मे दूसरी बार किस के द्वारा यह पूजित हुई है तीसरी और चौथे समय मे किसके द्वारा यह सर्वोत्र समचित हुई थीं ।५।

अर्थं षोड़शनाम्नाञ्च विष्णुर्वेदे चकारसः ।
पुनःपृच्छसिजानन्त्वांकथयामियथागमम् ॥६॥
दुर्गो दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धे चकर्म्मणि ।
शोके दुःखे च नरके यमदण्डेच जन्मनि ॥७॥
महाभयेऽतिरोगेचाप्याशब्दोहन्तृवाचकः ।
एतान्हन्त्येवयादेवीसादुर्गा परिकीर्त्तिता ॥८॥
यशसा तेजसा रूपैर्नारायणसमा गुणैः ।
शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता ॥९॥
ईशानः सर्वसिद्धयर्थेचाशब्दोदातृवाचकः ।
सर्वसिद्धिप्रदात्रीयासापीशानाप्रकीर्त्तिता ॥१०॥
सृष्टा माया पुरा सृष्टो विष्णुना परमात्मना ।
मोहितं मायया विश्वं विष्णुमाया प्रकीर्त्तिता ॥११॥
शिवे कल्याणरूपा च शिवदा च शिवप्रिया ।
प्रिये दातरि चा शब्दो शिवा तेन प्रकीर्त्तिता ॥१२॥
सद्बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी विद्यमाना युगे युगे ।
पतिव्रतासुशीलाचसासतीपरिकीर्त्तिता ॥१३॥
यथा नित्योहि भगवान् नित्या भगवती तथा ।
स्वमायया तिरोभूता तत्रेशे प्राकृतेलये ॥१४॥

नारायण ने कहा—भगवान विष्णु ने इन सोलह नामों का अर्थ वेद में किया था । तुम जान-बूझकर पुनः अब मुझसे पूछते हो तो मै आगम के अनुसार उसे बताता हूं ॥६॥ दुर्ग-यह शब्द दैत्य-

महान् विघ्न-भव के वन्धन करने वाला कर्म-शोक-दुःख-नरक-यमराज का दण्ड-जन्म-महाभय-अत्युग्र रोग और हनन इतने अर्थों का वाचक होता है। इन सबका जो देवी हनन किया करती है वही दुर्गा इस शुभ नाम से कही गई है ॥७॥८॥ यह देवी यश-तेज-रूप लावण्य और गुण-गण से नारायण के ही तुल्य है और नारायण की ही यह शक्ति है। इसी लिये इस का शुभ नारायणी-यह नाम कहा गया है। ईशान-यह शव्द समस्त सिद्धियों के अर्थ का वाचक है और दातृ वाचक है। यह देवी सब प्रकार की सिद्धियों की प्रदात्री है इस लिए इसका ईशाना-यह नाम कहा गया है ॥९॥१०॥ पहिले परमात्मा विष्णु ने सृष्टि में माया का सृजन किया था। यह समस्त विश्व उस माया से मोहित हो गया था। इसी लिए इसका विष्णु माया यह नाम संसार में प्रसिद्ध हुआ है ॥११॥ शिव में कल्याण रूप वाली-शिव के प्रदान करने वाली और शिव की प्रिया है। शिव शव्द प्रिय और दाता के अर्थ वाचक हैं। इसी से यह शिवा इस शुभ नाम से कही गई हैं ॥१२॥ यह सद् वुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है जो युग-युग में विद्यमान रहती हैं। वह पतिव्रता और सुशीला है इस से वह सती कही गई है ॥१३॥ जैसे भगवान नित्य है वैसे ही भगवती नित्या हैं। प्राकृतलय में वह अपनी माया से उस ईश में ही तिरोभूत हो गई थी ॥१४॥

आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं सर्वं मिथ्यैवकृत्रिमम्।
दुर्गासत्यस्वरूपासाप्रकृतिर्भगवान्यथा। १५॥
सिद्धैश्वर्य्यादिकं सर्वं यस्यामस्ति युगे युगे।
सिद्धादिकेभगोज्ञेयस्तेनभगवतीस्मृता ॥१६॥
सर्वान्मोक्षंप्रापयतिजन्ममृत्युजरादिकम्।
चराचरांश्चविश्‍वस्थान्सर्वाणीतेनकीर्त्तिता ॥१७॥
मंगलं मोक्षवचनं चा शव्दोदातृवाचकः।
सर्वान्मोक्षान्याददातिसाएव सर्वमंगला ॥१८॥

हर्षे सम्पदि कल्याणे मंगलं परिकीर्त्तितम् ।
तान् ददाति या देवीसाएव सर्वमंगला ॥१९॥
अम्बेति मातृवचनो वन्दने पूजने सदा ।
पूजिता वन्दिता माता जगतातेन साम्बिका ॥२०॥
विष्णुभक्ताविष्णुरूपाविष्णो शक्तिस्वरूपिणी ।
सृष्टौचविष्णुनासृष्टावैष्णवीतेनकीर्त्तिता ॥२१॥

आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्त यह सब कृत्रिम और मिथ्या ही है। वह प्रकृति दुर्गा सत्य स्वरूप वाली है जैसे भगवान सत्य हैं ॥१५॥ सिद्धो के ऐश्वर्य आदि सब जिसमे युग-युग मे होते हैं। सिद्धादि में भग जानना चाहिए इससे यह भगवती इस नाम से कही गई है। विश्व मे स्थित समस्त चर और अचरो को जन्म-मृत्यु और जरा आदि से छुटकारा दिला कर यह मोक्ष को प्राप्त करा देती है। अतएव यह क्षत्राणी-इस नाम से प्रसिद्ध हुई है ॥१६॥१७॥ मंगल मोक्ष का वचन है और यह शब्ददा तृ वाचक भी है। अतएव यह देवी सबको मोक्ष देती है इसी लिए इसको सर्व मंगला नाम से कहा गया है ॥१८॥ मंगल शब्द हर्ष-सम्पत् और कल्याण मे कहा गया है। इन हर्षादि को जो देती है वही सर्व मंगला कही जाती है ॥१९॥ अम्बा यह शब्द माता के लिए आता है जो सदा वन्दन मे और पूजन मे कहा जाता है। यह समस्त जगतो की माता वन्दित और पूजित है। अतएव वह अम्बिका कही जाती है ॥२०॥ यह विष्णु की भक्त है-विष्णु के रूप वाली है और विष्णु की शक्ति स्वरूप वाली है। विष्णु के द्वारा सृष्टि में सृजन की गई है इसी कारण से यह वैष्णवी-इस नाम से कीर्त्तित हुई हैं ॥२१॥

गौर. पीते च निर्लिप्ते परे ब्रह्मणि निर्म्मले ।
तस्यात्मनः शक्तिरियं गौरी तेन प्रकीर्त्तिता ॥२२॥
गुरुः शम्भुश्च सर्वेषां तस्य शक्तिः प्रिया सती ।

गुरुः कृष्णश्च तन्माया गौरी तेन प्रकीर्त्तिता ॥२३॥
तिथिभेदे सर्वभेदे कल्पभेदेप्रभेदतः
ख्यातौ तेषु च विख्यातापार्वतीतेन कीर्त्तिता ॥२४॥
महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति प्रकीर्त्तिता ।
तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्त्तिता ॥२५॥
पर्वतस्य सुता देवी साविर्भूता च पर्वते ।
पर्वताधिष्ठातृदेवि पार्वती तेन कीर्त्तिता ॥२६॥
सर्वकाले सना प्रोक्ता विद्यमाने तनीति च ।
सर्वत्र सर्वकाले चविद्यमाना सनातनी ॥२७॥
अर्थः षोड़शनाम्नानश्च कर्त्तितश्च महामुने ।
यथागमञ्च वेदोक्तोपाख्याञ्च निशामय ॥२८॥

पति-निर्मल और निर्लिप्त पर ब्रह्म में गौर है उस आत्मा की यह शक्ति है इससे यह गौरी कही गई है ॥२२॥ शम्भु सब के गुरू हैं' उसकी यह प्यारी सती शक्ति है और कृष्ण गुरू हैं उसकी माया है, इसी से गौरी कार्त्तित हुई है ॥२३॥ तिथि के भेद में सर्वभेद में और कल्प के भेद-प्रभेद से ख्याति में उनमें यह विख्याति है इसी से यह पार्वती कही गई है ॥२४॥ महोत्सव विशेष में पर्वत-यह शब्द कहा गया है। उस पर्व की यह अधिदेवी है अतएव वह पार्वती कही गई है ॥२५॥ यह हिमाचल पर्वत राज की पुत्री है और यह देवी पर्वत आविर्भूत हुई थी। यह पर्वतों की अधिष्ठात्री देवी है, इसीसे पार्वती नाम से कही गई है ॥२६॥ सर्वकाल में 'सना'—यह शब्द कहा गया है और विद्यमान अर्थ में तनी—यह आता है। जो सर्वत्र और सब काल में विद्यमान रहती है वह सनातनी है ॥२७॥ हे महामुने ! देवी के सोलह नामों का अर्थ कह दिया है। आगम के अनुसार, वेद में कहे गये उपाख्यान का श्रवण करो ॥२८॥

प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना ।

वृन्दावनेचसृष्ट्यादौगोलोकेरासमण्डले ॥२९॥
मधुकैटभभीते च ब्रह्मणा सा द्वितीयतः ।
त्रिपुरप्रेरितेनैव तृतीये त्रिपुरारिणा ॥३०॥
भ्रष्टश्रिया महेन्द्रेण शापाद् दुर्वाससः पुरा ।
चतुर्थे पूजिता देवीभक्त्याभगवती सती ॥३१॥
तदा मुनीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैर्देवैश्च मुनिपुङ्गवैः ।
पूजिता सर्वविश्वेषु बभूव सर्वतः सदा ॥३२॥
तेजः सु सर्वदेवाना साविर्भूता पुरा मुने ।
सर्वेदेवा ददुस्तस्यै शस्त्राणि भूषणानि च ॥३३॥
दुर्गादयश्च दैत्याश्च निहता दुर्गया तया ।
दत्त स्वराज्य देवेभ्यो व ःश्चयदभीप्सितम् ॥३४॥
कल्पान्तरे पूजिता सा सुरथेन महात्मना ।
राज्ञा मेधसशिष्येणमृण्मय्याश्च सरित्तटे ॥३५॥

सब से प्रथम वह परमात्मा कृष्ण के द्वारा वृन्दावन मे सृष्टि के आदि मे गो लोकधाम के रास मण्डल मे पूजित हुई है ॥२९॥ दूसरी बार मधु-कैटभ के द्वारा भयभीत ब्रह्मा के द्वारा इसकी अर्चना की गई थी । तीसरी बार त्रिपुर शत्रु से प्रेरित होकर त्रिपुरारि शिव के द्वारा पूजा इसको की गई थी ॥३०॥ चौथीवार पहिले दुर्वासा मुनि के शाप से श्री से भ्रष्ट महेन्द्र के द्वारा यह सती भगवती देवी भक्ति पूर्वक पूजी गई थी ॥३१॥ उस समय मुनीन्द्र सिद्धेन्द्र देव और मुनि पुङ्गवों के द्वारा सभी ओर सदा समस्त विश्वो म पूजित हुई थी ॥३२॥ हे मुने ! पहिले यह समस्त देवो के तेजो मे आ-विर्भूत हुई थी । समस्त देवों ने उसको अपने २ शस्त्र और भूषण समर्पित किये थे ॥३३॥ दुर्गादि और दैत्य दल दुर्गा के द्वारा निहत हुये थे । इसने देवो को उनका स्वराज्य दिया था और जो उनका अभीप्सित वरदान था वह भी दिया था ॥३४॥ कल्पान्तर मे वह

महात्मा सुरथ के द्वारा पूजी गई थी जो मेधस का शिष्य राजा था। इसने नदी के तट पर भृण्मयी में इसका अर्चन किया था ॥३५॥

वेदोक्तानि व दत्वैवमुपचाराणि षोड़श।
ध्यात्वा च कवचंधृत्वासंपूज्यच विधानतः ॥३६॥
राजा कृत्वा परीहारं वरं प्राप यथेप्सितम्।
मुक्ति संप्राप वैश्यश्चसंपूज्यच सरित्तटे ॥३७॥
तुष्टाव राजा वैश्यश्च साश्रुनेत्रः पुटाञ्जलिः।
विससर्ज मृण्मयीं तां गभीरेनिर्मले जले ॥३८॥
मृण्मयीं तादृशीं दृष्ट्वा जलधौतां नराधिपः।
रुरोद च तदा वैश्यस्ततः स्थानान्तरंययौ।
त्यक्त्वा देहञ्च वैश्यश्च पुष्करे दुष्करं तपः ॥३९॥
कृत्वा जगाम गोलोकंदुर्गादेवीवरेणसः।
राजाययौस्वराज्यञ्चपूज्योनिष्कण्टकंवली ॥४०॥
भोगञ्च वुभुजे भूपः षष्टिवर्षसहस्रकम्।
भार्य्यां स्वराज्यंसंन्यस्यपुत्रेच कालयोगतः ॥४१॥
मनुर्वभूव सावर्णिस्तप्त्वा च पुष्करे तपः।
इत्येवं कथितं वत्स समासेन यथागमम् ॥४२॥

इसने वेदों में वताये हुये सोलह उपचार उसको समर्पित किये थे। इस राजा ने इसके कवच का ध्यान कर उसे विधि विधान से भलि भाँति पूज कर धारण किया था ॥३६॥ राजा ने परीहार करके जो भी चाहता था वर प्राप्त किया था। सरित् के तट पर विधि के साथ भली भांति इसकी अर्चना कर के वैश्य ने मुक्ति प्राप्त की थी ॥३७॥ राजा और वैश्य दोनों ने अश्रुपूर्ण नेत्र वाले होकर हाथों का जोड़ते हुए इसकी स्तुति की थी। फिर उसकी भृण्मयी मूर्ति को उस नदी के गहरे जल में विसर्जित कर दिया था ॥३८॥ भृण्मयी

उस को जल से धौत उसको देखकर वह राजा और वैश्य उस समय मे रुदन करने लगे थे। इसके अनन्तर वे दोनों अन्य स्थल को चले गये थे। वैश्य ने पुष्कर में दुष्कर तपस्या की थी और फिर इस देह का त्याग करके वह सद् गति को प्राप्त हुआ था ॥३९॥ दुर्गा देवी के वरदान से वह फिर गोलोक धाम को चला गया था। वह राजा अपने राज्य मे चला गया था। वहाँ वह बली पूज्य हुआ और उसने निष्कण्टक राज्य के सुखों का उपभोग साठ हजार वर्ष तक किया था फिर काल के योग से उस राजा ने अपनी भार्या और अपने राज्य को पुत्र के सुपुर्द कर दिया था ॥४०॥४१॥ पुष्कर में तप करके फिर सावर्णि मनु हुआ था। हे वत्स! जैसा आगम ने कहा है वह मैंने इस प्रकार से यह संक्षेप मे तुझ से दुर्गाख्यान कह दिया है। हे मुनि श्रेष्ठ! अब आगे क्या श्रवण करना चाहते हो? ॥४२॥

४९-- राज्ञः सुरथस्य वैश्यसमाधेश्च विवरणम्।

कथं राजा महाज्ञानसंप्राप मुनिसत्तमात्।
वैश्यो मुक्ति मेधसाच्चतन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥
ध्रुवस्यपौत्रो बलवान् नन्दिरुत्कलनन्दनः।
स्वायम्भुवमनोर्वंशः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥२॥
अक्षौहिणीनां शतकं गृहीत्वा सैन्यमेवच।
लोकाश्च वेष्टयामास सुरथस्य महामते ॥३॥

युद्धं बभूव नियतं पूर्णमब्दञ्च नारद ।
चिरजीवी वैष्णवश्च जिगाय सुरथं नृपः ॥४॥
एकाकी सुरथो भीतो नन्दिना च बहिष्कृतः ।
निशायाँ हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥५॥
ददर्श तत्र वैश्यञ्च पुष्पभद्रानदीतटे ।
तयोर्बभूव संप्रीतिः कृतबान्धवयोर्मुने ॥६॥
वैश्येन सार्द्धं नृपतिर्जगाम मेधसाश्रमम् ।
पुष्करं दुष्करं पुण्यक्षेत्रञ्च भारते सताम् ॥७॥

इस अध्याय में सुरथ राजा का और समाधि वैश्य का विवरण दिया जाता है । देवर्षि नारद ने कहा—उस राजा ने मुनियों में श्रेष्ठ से किस तरह ज्ञान प्राप्त किया था और उस वैश्य ने मेधस से मुक्ति किस प्रकार प्राप्त की थी ? यह कृपा कर व्याख्या करने के आप योग्य होते हैं ॥१॥ श्री नारायण ने कहा—ध्रुव का पौत्र उत्कल का पुत्र नन्दि बड़ा ही बलवान था । यह स्वायम्भुव मनु के वंश में था और जितेन्द्रिय तथा सत्यवादी हुआ था ॥२॥ इसने सौ अक्षौहिणी सेना को लेकर महामतिमान् सुरथ के लोकों को घेर लिया था ।३॥ हे नारद ! वह युद्ध नियत रूप से पूरे एक वर्ष तक हुआ था । चिरजीवी और वैष्णव नन्दि नृपति ने सुरथ को जीत लिया था ।४। जब नन्दि ने उसे बहिष्कृत कर दिया था तो अकेला राजा सुरथ भयभीत होकर रात्रि में घोड़े पर समारूढ़ होकर गहन वन में चला गया था ॥५॥ वहाँ पर पुष्पभद्रा नदी के तट पर उसने वैश्य को देखा था । हे मुने ! वहां पर बन्धुभाव कर लेने वाले उन दोनों की बड़ी प्रीति हो गई थी ॥६॥ वह राजा सुरथ उस वैश्य के साथ मेधस के आश्रम में गया था जोकि भारत में सत्पुरुषों का पुण्य क्षेत्र है और परमदुष्कर पुष्कर था ॥७॥

ददर्श तत्र नृपतिर्मुनि तं तीव्रतेजसम् ।
शिष्येभ्यश्च प्रवोचन्त ब्रह्मतत्त्वं सुदुर्लभम् ॥८॥
राजानमामवैश्यश्च शिरसामुनिपुङ्गवम् ।
मुनिस्तौपूजयामास ददौ ताभ्यां शुभाशिषम् ॥९॥
प्रश्न चकार कुशल जाति नाम पृथक् पृथक् ।
ददौ प्रत्युत्तर राजा क्रमेण मुनिपुङ्गवम् ॥१०॥
राजाऽहं सुरथो ब्रह्मश्चैत्रवंश समुद्भवः ।
वहिर्भूत स्वराज्याच्च नन्दिना बलिनाधुना ॥११॥
किमुपायकरिष्यामि कथ राज्यभवेन्मम ।
तन्मा ब्रूहि महाभाग त्वय्येवशरणागतम् ॥१२॥
अथ वैश्यः समाधिश्च स्वगृहाच्च वहिष्कृत. ।
पुत्रै कलत्रैर्दैवेन धनलोभेन धार्मिकः ॥१३॥
ब्राह्मणाय ददौ नित्य रत्नकोटिं दिने दिने ।
निषिद्धमानः पुत्रैश्च कलत्रैर्बन्धिवैरयम् ॥१४॥

वहां राजा ने तीव्र तेज वाले मुनि का दर्शन किया था जो अपने शिष्यों को सुदुर्लभ ब्रह्म तत्त्व को बता रहे थे ॥८॥ राजा ने और वैश्य ने उस श्रेष्ठ मुनि को शिर टेककर प्रणाम किया था। मुनि ने उन दोनों का आतिथ्य सत्कार किया था और उन दोनो के लिये शुभ आशीर्वाद दिया था ॥९॥ फिर उन दोनो से पृथक पृथक् कुशल प्रश्न करके उनकी जाति और नाम जानने का मुनि ने प्रश्न किया था। इसके अनन्तर राजा ने उस मुनि पुङ्गव को क्रम से उनके प्रश्न का उत्तर दिया था ॥१०॥ सुरथ ने कहा– हे ब्रह्मन् ! चैत्र वंश में समुत्पन्न होने वाला सुरथ नाम का राजा हूं। इस समय अति बलवान् नन्दि के द्वारा मैं अपने राज्य से बाहर निकाल दिया गया हूं ॥११॥ अब मैं क्या उपाय करूं ? मेरा यह राज्य कैसे प्राप्त होगा ? हे महाभाग ! आप यही मुझे बताइये। मैं आपके ही

शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ। ॥१२॥ यह समाधि नामक वैश्य है। यह भी अपने घर से बहिष्कृत कर दिया गया है। यह धार्मिक है इसे इसके धन के लोभ से देव के द्वारा, पुत्रों वान्धवों और कलत्रों ने इस विचारे को घर से बाहर भगा दिया है। यह धार्मिक वृत्ति होने के कारण नित्य ही ब्राह्मणों को रत्न कोटि दिया करता था इसके पुत्र वान्धव और स्त्रियों ने इसे रोका था ॥१३॥१४॥

> कोपान्निराकृतस्तैश्च पुनरन्वेषितः शुचा।
> अयं गृहश्चन ययौ विरक्तो ज्ञानवान् शुचिः ।१४।
> पुत्राश्च पितृशोकेनगृहं त्यक्त्वा ययुर्वनम्।
> दत्त्वा धनानि विप्रेभ्योविरक्ता. सर्वकर्मसु ।१६।
> सुदुर्लभ हरेर्दास्यवैश्यस्यास्य च वाञ्छितम्।
> कथंप्राप्नोति निष्कामस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।१७।
> करोतिमायया च्छन्नंविष्णुमायादुरत्यया।
> निर्गुणस्यचकृष्णस्य त्रिगुणाविश्वमाज्ञया ।१८।
> कृपांकरोतियेषांसा धर्मिणाश्चकृपामयी।
> तेभ्यो ददाति कृपया कृष्णभक्तिसुदुर्लभाम् ।१९।

उन्होंने क्रोध से इसका निरादर कर दिया था फिर इसका अन्वेषण किया तो यह चिन्ता से आपने घर नहीं गया था और ज्ञान वान् एवं शुचि यह विरक्त हो गया है ॥१५॥ इसके पुत्र भी पिता के शोक से गृह का त्याग कर वन में चले गये थे। वे भी धनों को विप्रों को दान देकर सम्पूर्ण कर्मो में विरक्त हो गये थे ॥१६॥ इस वैश्य का वाञ्छित हरि का दास भाव अत्यन्त दुर्लभ है। यह उसे निष्काम कैसे प्राप्त करे—यह आप बताने के योग्य होते है ॥१७॥ श्री मेधस ने कहा—यह निर्गुण कृष्ण की तीन गुणो वाली माया है। यह विष्णु की माया बहुत ही दुरत्यय है। यह अत्यन्त कठिन है। विष्णु की आज्ञा से इसने इस समस्त विश्व को आच्छन्न कर

रक्खा है । १८॥ वह जिन धार्मिक पुरुषा पर कृपामयी अपनी कृपा करती है उन्ही को कृपा के द्वारा अत्यन्त सुदुर्लभा कृष्ण की भक्ति को देती है ॥१९॥

येषा मायाविनामाया न करोति कृपा नृप ।
माययातान्निबन्धनधाति मोहजालेनदुर्गतान ।२०।
नश्वरे नित्यससारे भ्रमेण वर्वर सदा ।
कुर्वन्ति नित्यबुद्धिञ्च विहाय परमेश्वरम् ॥२१॥
देवमन्त्रनिषेवन्ते त-मन्त्रञ्च जपन्ति च ।
मिथ्याकिञ्चिन्निमित्तञ्च कृत्वा मनसिलोभत: ।२२।
हरे. कला: देवताश्च निषेव्य जन्म सप्त च ।
तदा प्रकृत्या कृपया सेवन्ते प्रकृतिं तदा ॥२३॥
निषेव्य विष्णुमायाञ्च सप्तजन्म कृपामयीम् ।
शिवे भक्ति लभन्ते ते ज्ञानानन्दे सनातने ॥२४॥
ज्ञानाधिष्ठातृदेवञ्च निषेव्य शङ्कर हरे. ।
अचिराद्विष्णुभक्तञ्च प्राप्नुवन्ति महेश्वरात् ।२५।
सेवन्ते सगुण सत्त्व विष्णु विषयिण तदा ।
सत्वज्ञानाच्चपश्यन्ति ज्ञानञ्चनिर्मलनरा ॥२६॥
निषेव्य सगुण विष्णु सात्त्विका वैष्णवा नरा. ।
लभन्तेनिर्गुणेभक्ति श्रीकृष्णेप्रकृते. परे । २७॥
कुर्वन्ति ग्रहण सन्तो मन्त्र तस्य निरामयम् ।
निषेव्य निर्गुणदेव ते भवन्ति च निर्गुणा ॥२८॥

हे नृप ! जिन मायावियो की माया कृपा नही करती है मोह जाल से दुर्गति वाले उनको माया से बाँध लेत हैं ॥२०॥ यह ससार तो नाशवान है किन्तु इस नित्य नश्वर ससार मे वर्वर लोग सर्वदा नित्य बुद्धि बना लिया करते हैं और परमेश्वर का त्याग कर देते हैं ॥२१॥ परमेश्वर का त्याग करके अन्य देव का भजन किया करते हैं

और उसके ही मन्त्र का जाप करते हैं। ऐसा प्राय: मन में लोभ करके कोई मिथ्या निमित्त बनाकर किया करते हैं ॥२२॥ हरि की कला के स्वरूप वाले देवता हैं उनका सात जन्म तक सेवन करने से प्रकृति की कृपा होती है। फिर प्रकृति की कृपा से उसका सेवन करते हैं ॥२३॥ उस कृष्ण मयी विष्णु की माया की सात जन्म प्रर्यन्त उपासना करने से शिव की भक्ति प्राप्त होती है। जोकि शिव ज्ञान का आनन्द स्वरूप है और सनातन हैं।२४। ज्ञान के अधिष्ठान्ह देव शङ्कर की सेवा से शीघ्र हरि की विष्णु भक्ति का लाभ महेश्वर से ही प्राप्त होता है।२५। तव सगुण-सत्त्व स्वरूप विपया नुरक्त विष्णु का सेवन कर सत्त्व के ज्ञान से मनुष्य निर्मल ज्ञान की प्राप्ति करता है।२६। सात्विक नर जो वैष्णव है सगुण विष्णु की उपासना करके प्रकृति से पर निर्गुण श्री कृष्ण में भक्ति का लाभ किया करते है।२७। सन्त पुरुप उसके निरामय मन्त्र को ग्रहण करते हैं। निर्गुण देव का सेवन करके वे फिर स्वयं भी निर्गुण हो जाते हैं ॥२८॥

असंख्यब्रह्मणः पातं ते च पश्यन्ति वैष्णवाः।
दास्यं कुर्वन्तिसततंगोलोके च निरामये ॥२९॥
कृष्णभक्तात् कृष्णमन्त्र यो गृह्णाति नरोत्तमः।
पुरुषाणांसहस्रञ्चस्वपितृणां समुद्धरेत् ॥३०॥
मातामहानां पुरुषं सहस्रं मातर तथा।
दासादिकं समुद्धृत्य गोलोक स प्रयाति च ॥३१॥
भवार्णवे महाघोरे कर्णधारस्वरूपिणी।
पार करोति दुर्गतान्कृष्णभक्त्या च नौकया।३२।
स्वकर्म्मबन्धन छत्तुं वैष्णवानाञ्च वैष्णवी।
तीक्ष्णशस्त्रस्वरूपासाकृष्णस्यपरमात्मनः ॥३३॥

विवेचनाचावरणी शक्तेः शक्तिर्द्विधा नृप ।
पूर्वं ददाति भक्ताय चेतराय परा परा ॥३४॥
सत्यस्वरूपः श्रीकृष्णस्तस्मात सर्वञ्च नश्वरम् ।
बुद्धिर्विवेचनेत्येव वैष्णवानांसनातनी ॥३५॥

वे वैष्णव लोग असत्य ब्रह्माओं का पतन देखा करते हैं और निरामय गो लोक मे निरन्तर दास्य कर्म करते हैं ॥२६॥ जो नरों मे उत्तम कृष्ण के भक्त से कृष्ण मन्त्र की दीक्षा लेता है वह सहस्र पुरुषो के पितृगण का उद्धार कर देता है ।३०। माता यह आदि के भी सहस्र पुरुषो का तथा माता का और दास आदि का सब का समुद्धार करके वह स्वयं गो लोक धाम में चला जाता है ।३१। इस महान् घोर ससार रूपी सागर मे कर्ण धार के स्वरूप वाली कृष्ण की भक्ति की नौका के द्वारा समस्त दुर्गति वालो को वह पार लगा देता है ॥३२॥ वैष्णवो के अपने कर्मों का बन्धन छेदन करने के लिये श्री कृष्ण परमात्मा की वैष्णवी भक्ति तीक्ष्ण शस्त्र के स्वरूप वाली होती है ॥३३॥ हे नृप ! वह शक्ति दो प्रकार की है । शक्ति की आवरणी विवेचना जो है वह भक्त के लिये देती है और इस शक्ति पासा दी जाती है ।३४। सत्य स्वरूप केवल श्री कृष्ण हैं इससे अन्यत् सभी नश्वर हैं । इस प्रकार की विवेचना की बुद्धि वैष्णवो को सनातनी होनी है ॥३५॥

नित्यरूपा मयेय श्रीरिति चावरणी च धी. ।
अवैष्णवानामसता कर्म्मभोगभुजामहो ॥३६॥
अह प्रचेतस. पुत्र. पौत्रश्च ब्रह्मणो नृप ।
भजामि कृष्णमात्मान ज्ञान सप्राप्य शङ्करात् ॥३७॥
गच्छ राजन् नदीतीर भज दुर्गां सनातनीम् ।
बुद्धिमावरणी तुभ्य देवी दास्यति कामिने ॥३८॥
निष्कामाय च वैश्याय वैष्णवायच वैष्णवी ।
बुद्धि विवेचना शुद्धादास्यत्येवकृपामयी ॥३९॥

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठोददौताभ्यां कृपानिधिः ।
पूजाविधानं दुर्गाया: स्तोत्रञ्चकवचंमनुम् ॥४०॥
वैश्यो मुक्तिञ्च संप्रापतांनिषेव्यकृपामयीम् ।
राजा राज्यं मनुत्वञ्चपरमैश्वर्य्यमीप्सितम् ॥४१॥
इत्येवं कथितं सर्वं दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ।
सुखदं मोक्षदं सारंकि भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४२॥

यह श्री मेरे द्वारा नित्य रूप वाली है–यह आवरणी वुद्धि है जो अवैष्णव असत् और कर्मों के भोगों का भोग करने वालों को होती है। हे नृप ! मैं प्रचेता का पुत्र और ब्रह्मा का पौत्र हूं, भगवान् शङ्कर से ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा कृष्ण का भजन करता हूँ ॥३६॥३७॥ हे राजन् ! तुम नदी के तट पर जाकर सनातनी दुर्गा का भजन-स्मरण करो। कामना वाले तुमको वही देवी आचरणी बुद्धि का प्रदान करेगी ॥३८॥ यह जो वैश्य है वह कोई भी कामना हृदय में नहीं रखता है अतः पूर्णतया निष्काम है। इसके लिये जोकि परम वैष्णव है वह कृपा से परिपूर्ण अतिशय शुद्धा विवेचना वुद्धि का प्रदान कर देगी ॥३९॥ इतना कहकर उस कृपा के निधि मुनि ने उन दोनों के लिये दुर्गा देवी के पूजा का विधान–स्तोत्र और कवच दे दिया था ॥४०॥ वह वैश्य उस कृपा मयी की उपासना करके मुक्ति को प्राप्त हो गया था और राजा ने अपना भ्रष्ट हुआ राज्य मनुत्व और अभीप्सित परम ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था ॥४१॥ इस प्रकार से यह सम्पूर्ण श्री दुर्गा देवी का पवित्र उपाख्यान तुमको वता दिया है जो अतिउत्तम है-सुख देने वाला–मोक्ष प्रदायक और साररूप है। अव आगे फिर और मुझसे क्या श्रवण करने की इच्छा रखते हो ? ॥४२॥

४३-सुरथसमाधिमेधससंवादे प्रकृतिवैश्यसंवादः

नारायण महाभाग वद वेदविदांवर।
राजा केन प्रकारेण सिषेवे प्रकृति पराम् ।१॥
समाधिर्नामवैश्यो वा निष्काम निर्गुण विभुम्।
भेजे केन प्रकारेण प्रकृतेरुपदेशतः ॥ ॥
कि वा पूजाविधानञ्च ध्यान वा मनुमेव च।
कि स्तोत्र कवचकिंवा ददौराज्ञेमहामुनि ॥३॥
तस्मै वैश्याय प्रकृतिः किंवा ज्ञान ददौ परम्।
साक्षाद् बभूव सहसा केनवाप्रकृतिस्तयोः ॥४॥
ज्ञान सम्प्राप्य वैश्यश्च कि पदप्राप दुर्लभम्।
गतिर्बभूव राज्ञश्च का वा ताञ्चश्रृणोम्यहम् ।५।
राजा मन्त्रञ्चसप्राप्यवैश्यश्चमेधसान् मुने।
स्तोत्रञ्च कवच देव्याध्यानञ्चैवपुरस्क्रियाम्
जजाप परमं मन्त्र राजा वैश्यश्च पुष्करे ॥६॥
स्नात्वा त्रिकाल वर्षञ्च ततः शुद्धो बभूव सः।
साक्षाद् बभूव तत्रैव मूलप्रकृतिरिश्वरी ॥७॥

इस अध्याय मे सुरथ- समाधि-मेधस सम्वाद मे प्रकृति वैश्य के सम्वाद का निरूपण किया जाता है। देवर्षि नारद ने कहा-हे वेदो के वेत्ताओ मे परम श्रेष्ठ! हे महा भाग! हे नारायण! राजा ने किस प्रकार से परा प्रकृति का सेवन किया था? ॥१॥ समाधि नामधारी वैश्य ने प्रकृति के उपदेश से निष्काम-निर्गुण और विभु का किस प्रकार से सेवन किया था? ॥ २ ॥ उसकी पूजा का विधान क्या है तथा ध्यान और मन्त्र क्या है। कौन सा स्तोत्र है तथा कवच क्या है जोकि मुनि देव ने राजा

उसने उस राजा को राज्य प्राप्ति का वरदान-मनुत्व अर्थात् सावर्णि मनु के रूप मे जन्म लेना और इच्छित सुख प्रदान किया था। और उस निष्काम वैश्य के लिये अति दुर्लभ निगूढ ज्ञान प्रदान किया था।८। परमात्मा श्रीकृष्ण ने पहिले जो शूली शिव के लिये दिया था वही ज्ञान दिया था। कृपामयी ने विना आहार वाले और अत्यन्त क्लेश से युक्त वैश्य को देख करके उसे अपनी गोद मे रख लिया था जो चेष्टा रहित श्वास मे वर्जित था और वह रो उठी। उसने कहा—हे वत्स ! होश सभालो और चेतना करो—ऐसा उस वैश्य से देवी ने बार-बार कहा।९।१०। फिर उस स्वय चैतन्य रूपवाली ने उसे चेतना प्रदान की थी। जब वैश्य ने चेतना प्राप्त करली तो वह प्रकृति देवी के रो गया था ॥११॥ फिर वह परम प्रसन्न हुई। कृपामयी उसने वैश्य के ऊपर महान अनुग्रह करके वह उससे बोली ॥१२॥ प्रकृति ने कहा—हे वत्स ! मुझसे तुम जो भी चाहते हो वरदान माँगलो जो कुछ तुम्हारे मन मे हो मैं देने को प्रस्तुत हूँ। जो तुम ब्रह्मत्व चाहते हो तो वह या अमरत्व यह अथवा इस से भी अधिक जो भी कुछ चाहे वह कैसा भी सुदुर्लभ क्यो न हो। ॥१३॥ इन्द्रत्व-मनुत्व या सर्वसिद्धकरत्व ये सब मैं तुम को देने मे समर्थ हूँ। कोई नाशवान् तुच्छ वरदान बालक की वञ्चना जैसा मैं नहीं दूंगी ॥१४॥

ब्रह्मत्वममरत्वं वा मातर्मे नहि वाञ्छितम् ।
ततोऽतिदुर्लभं किंवा न जानेतदभीप्सितम् ॥१५॥
त्वय्येव शरणापन्नो देहि यद्वाञ्छितं तव ।
अनश्वरं सर्वसारं वरं मे दातुमर्हसि ॥१६॥
अदेयं नास्ति मे तुभ्यं दास्यामिममवाञ्छितम् ।
यतो यास्यसि गोलोकपदमेवसुदुर्लभम् ॥१७॥
सर्वसारञ्च यज्ज्ञानं सुरर्षीणां सुदुर्लभम् ।
तद्गृह्यतां महाभाग गच्छ वत्स हरेः पदम् ॥१८॥

स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्त्तनम् ।
श्रवणं भावनं सेवा सर्वं कृष्णे निवेदितम् ॥१६॥
एतदेव वैष्णवानां नवधाभक्तिलक्षणम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधियमताड़नखण्डनम् ॥२०॥
आयुर्हरति लोकानां रविरेव 'ह सन्ततम् ।
नवधाभक्तिहीनानामसतां पापिनामपि ॥२१॥

वैश्य ने कहा—हे माता ! ब्रह्मत्व और अपरत्व यह मेरा कोई भी इच्छित नहीं है । इससे भी अति दुर्लभ अभीप्सित क्या हो सकता है—यह भी मैं नहीं जानता हूँ । मैं तो तुम्हारे चरणों की शरण में प्राप्त होगया हूँ अब आपका जो भी कुछ इच्छित हो वही मुझे प्रदान कीजिए । मुझे अनश्वर और सबका सार स्वरूप वर आप देने के योग्य हैं ॥१५॥१६॥ प्रकृति ने कहा-मुझे ऐसा कोई भी वरदान नहीं है जो तुझे न देने के योग्य हो अर्थात् मैं तुझे तो सभी कुछ देने को तैयार हूँ । अब जब कि तू मेरे ही ऊपर छोड़ता है तो मेरा वाञ्छित ही दूँगी जिससे कि तू अति दुर्लभ गोलोक के पद को प्राप्त करेगा ॥१७॥ सब का सार स्वरूप जो ज्ञान है जोकि सुरर्षियों को भी अति दुर्लभ है । हे महाभाग ! तू अब मुझसे उसे ग्रहण करले । हे वत्स ! फिर तू हरि के पद को प्राप्त कर ॥१८॥ स्मरण-वन्दना-ध्यान-अर्चन-गुणों का कीर्त्तन-श्रवण-भावना-सेवा यह सब कृष्ण में निवेदित करना चाहिए ॥१६॥ यह ही वैष्णवों की नौ प्रकार की भक्ति का लक्षण होता है । यह जरा-जन्म-मृत्यु-व्याधि-यम का ताड़न या खण्डन करने वाला है ॥२०॥ सूर्य ही मनुष्यों की आयु का निरन्तर हरण किया करता है । जोकि हरि की नौ प्रकार की भक्ति से हीन एवं असत् पापी पुरुष होते हैं ॥२१॥

भक्तास्तद्गतचित्ताश्च वैष्णवाश्चिरजीविनः ।
जीवन्मुक्ताश्च निष्पापा जन्मादिपरिवर्जिताः ॥२२॥

शिव: शेपश्च धर्मश्च ब्रह्मा विष्णुर्महान् विराट् ।
सनत्कुमार: कपिल. सनकश्चसनन्दन: ॥२३॥
वोढु: पञ्चशिखो दक्षो नारदश्च सनातन. ।
भृगुर्मरीचिर्दुर्वासा. कश्यप: पुलहोऽङ्गिरा. ॥२४॥
मेधसो लोमश: शुक्रो वशिष्ठ: क्रतुरेव च ।
बृहस्पति: कर्दमश्च शक्तिरत्रि: पराशर: ॥२५॥
मार्कण्डेयो बलिश्चैव प्रह्लादश्च गणेश्वर: ।
यम: सूर्यश्च वरुणो वायुश्चन्द्रो हुताशन: ॥२६॥
अकूपार उलूकश्च नाडीजङ्घश्च वायुज: ।
नरनारायणौ कूर्म्म इन्द्रद्युम्नो विभीपण: ॥२७॥
नवधा भक्तियुक्तश्च कृष्णस्य परमात्मन: ।
एते महान्तो धर्मिष्ठा भक्ताना प्रवरास्तथा ॥२८॥

जो विष्णु के भक्त हैं और विष्णु मे ही अपना चित्त लगाये हुऐ सर्वदा रहा करते हैं वे वैष्णव तो चिरजीवी हुआ करते हैं। वे जीवित दशा मे ही मुक्त होते हैं—पापो से रहित और जन्म-मरण आदि आवागमन के दु ख से वर्जित रहा करते हैं ॥२२॥ शिव शेप-धर्म ब्रह्मा-विष्णु महान विराट् सनत्कुमार-सनन्दन-वोढु-पञ्च शिख-दक्ष-नारद-सनातन-भृगु-मरीचि-दुर्वासा-कश्यप-पुलह—अङ्गिरा मेधस-लोमश--शुक्र-वसिष्ठ—क्रतु-बृहस्पति--कर्दम-शक्ति-अत्रि-पराशर-मार्कण्डेय--बलि-प्रह्लाद-गणेश्वर-यम-सूर्य--वरुण—वायु—चन्द्र--हुताशन—अकूपार--उलूक-नाडीजङ्घ-वायुज--नर--नारायण--कूर्म-इन्द्रद्युम्न--विभीपण—ये सभी परमात्मा कृष्ण की नौ प्रकार की भक्ति से युक्त थे। ये सब महान धर्मिष्ठ और भक्तो मे परम श्रेष्ठ महानुभाव थे ॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥

ये तद्भक्तास्ते तदंशा जीवन्मुक्ताश्च सन्ततम् ।
पापापहारास्तीर्थानां पृथिव्याश्च विशाम्पते ॥२९॥

ऊर्द्ध्वे च सप्त स्वर्गाश्चसप्तद्वीपावसुन्धरा ।
अधः सप्तः च पाताला एतद्ब्रह्माण्डमेवच ॥३०॥
एवं विधानां विश्वानां संख्यानास्त्येव पुत्रक ।
एवञ्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥३१॥
देवा देवर्षयश्चैव मनवो मानवादयः ।
सर्वाश्रमाश्च सर्वत्र सन्ति बद्धाश्च मायया ॥३२॥
महद्विष्णोर्लोमकूपे सन्ति विश्वानि यस्य च ।
स षोड़शांशः कृष्णस्य चात्मनश्च महान् विराट् ॥३३॥
भज सत्यं परं ब्रह्म नित्यं निर्गुणमच्युतम् ।
प्रकृतेःपरमीशानंकृष्णमात्मानमीप्सितम् । ३४॥
निरीहञ्च निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
निष्कामं निर्विरोधञ्च नित्यानन्दं सनातनम् ॥३५॥

जो उस परमात्मा कृष्ण के भक्त होते हैं वे उसी के एक अंशावतार हुआ करते हैं। वे जीवन्मुक्त ही निरन्तर हुआ करते हैं। हे विशाम्वते ! वे पृथिवी के और तीर्थों के भी पापों का अपहरण करने वाले होते हैं ॥२९॥ ऊपर में सात स्वर्ग हैं और सात द्वीपों वाली यह वसुन्धरा है। इसके नीचे सात पाताल हैं। यह सबका मिलकर एक ब्रह्माण्ड होता है ॥३०॥ हे पुत्र ! इस प्रकार के ब्रह्माण्डों विश्वों की कोई सख्या नहीं है अर्थात् ऐसे ब्रह्माण्ड अनन्त कोटि होते हैं। इसी प्रकार से प्रत्येक विश्व में पृथक् २ ब्रह्मा की ही भाँति विष्णु और शिव आदि भी अलग-अलग हैं ॥३१॥ इसी प्रकार से देवगण-देवर्षि वर्ग-मनु मण्डल और मानव आदि सब पृथक् २ हैं। समस्त आश्रम सर्वत्र होते हैं और सभी माया से वद्ध भी रहते हैं ॥३२॥ जिस महाविष्णु के लोमों के कूपों (छिद्रों) में अनेक विश्व हैं वह महाविष्णु भी श्रीकृष्ण भगवान को सोलहवाँ अंश ही होता है और आत्मा का महान विराट् होता है ॥३३॥ अतएव सत्य स्वरूप-परम

ब्रह्म-नित्य निर्गुण-अच्युत-प्रकृति से पर-ईशान-आत्मा-ईप्सित कृष्ण का भजन करो ॥३४॥ यह निरीह-निराकार-निर्विकार-निरंजन-निष्काम-निर्विरोध-नित्यानन्द और सनातन है ॥३५॥

स्वेच्छामयं सर्वरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् ।
तेजःस्वरूपं परमं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥३६॥
ध्यानासाध्यदुराराध्यशिवादीनाञ्चयोगिनाम् ।
सर्वेश्वरसर्वपूज्यसर्वस्य सर्वकामदम् ॥३७॥
सर्वाधारञ्च सर्वज्ञं सर्वानन्दकरं परम् ।
सर्वधर्मप्रदं सर्वं सर्वेषां प्राणरूपिणम् ॥३८॥
सर्वधर्मस्वरूपञ्च सर्वकारणकारणम् ।
सुखदं मोक्षदं सारं पररूपञ्च भक्तिदम् ॥३९॥
दास्यदं धर्मदञ्चैव सर्वसिद्धिप्रदं सताम् ।
सर्वं तदतिरिक्तञ्च नश्वरं कृत्रिमं सदा ॥४०॥
परात्परतरं शुद्धं परिपूर्णतमं शिवम् ।
यथासुखं गच्छ वत्स भगवन्तमधोक्षजम् ॥४१॥
कृष्णेति द्व्यक्षरं मन्त्रं ग्रहाण कृष्णदास्यदम् ।
पुष्करं दुष्करं गत्वा दशलक्षमिमं जप ॥४२॥
दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तव ।
इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत ॥४३॥
वैश्यो नत्वा च तां भक्त्या जगाम पुष्करं मुने ।
पुष्करे दुस्तरं तप्त्वा सम्प्राप कृष्णमीश्वरम् ।
भगवत्याः प्रसादेन कृष्णदासो बभूव सः ॥४४॥

श्री कृष्ण स्वेच्छामय हैं। सबका रूप-भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये विग्रह धारी हैं। तेज का स्वरूप समस्त सम्पदाओं के परम दाता हैं ॥३६॥ ध्यान के द्वारा न साधना के योग्य-दुराराध्य जो कि शिव आदि बड़े योगियों के द्वारा भी कठिनता से आराधना करने

योग्य हैं। सर्वेश्वर-सबके पूज्य, सबको सब कामनाओं के देने वाले हैं ॥३७॥ सबके आधार-सभी कुछ के ज्ञाता-सबको परम आनन्द करने वाले-सर्व धर्म के प्रदान करने वाले-सर्व-सर्वज्ञ-प्राणरूपी हैं ॥३८॥ समस्त धर्मों के स्वरूप-सम्पूर्ण कारणों के कारण-सुख देने वाले-मोक्ष दाता-सार-पर रूप-भक्ति के देने वाले हैं ॥३९॥ दास्य के देने वाले धर्म के दाता -सत्पुरुषों को समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले-सर्व-तदतिरिक्त-नश्वर और सदा कृत्रिम हैं ॥४०॥ हे वत्स ! पर से भी पर तर-शुद्ध-परिपूर्ण तम-शिव-भगवान अधोक्षम के निकट यथा सुख जाओ ॥४१॥ "कृष्ण"—यह दो अक्षर वाला कृष्ण के दास्य को देने वाला मन्त्र ग्रहण करो। पुष्कर में जाकर इस दुष्कर मन्त्र का दशलाख जाप करो ॥४२॥ इस मन्त्र के दशलाख जप से ही तुझे इस मन्त्र की सिद्धि हो जायगी। इतना यह कहकर वह भगवती वहीं पर अन्तर्ध्यान होगई थी ॥४३॥ हे मुने ! उस वैश्य ने भक्ति भाव से उस देवी को प्रणाम किया और फिर वह पुष्कर में चला गया था। पुष्कर में उसने दुष्कर तपस्या करके ईश्वर कृष्ण की प्राप्ति की थी। वह फिर भगवती के प्रसाद से श्री कृष्ण का दास होगया था ॥४४॥

४४-श्रीकृष्णकृतदुर्गास्तोत्रम् ।

श्रुतं सर्वं नावशिष्टं कश्चिदेवं हि निश्चितम् ।
प्रकृतेः कवचं स्तोत्रं ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥१॥
पुरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना ।
संपूज्य मधुमासे च प्रीतेन रासमण्डले ।
मधुकैटभयोर्युद्धे द्वितीये विष्णुना पुरा ॥२॥

तत्रैव काले सा दुर्गा ब्रह्मणा प्राणसङ्कटे ।
चतुर्थे संस्तुता देवी भक्त्या च त्रिपुरारिणा ।।३।।
पुरा त्रिपुरयुद्धेन महाघोरतरे मुने ।
पञ्चमे संस्तुता देवी वृत्रासुरवधे तथा ।।४।।
शक्रेण सर्वदेवैश्च घोरे च प्राणसङ्कटे ।
तदा मुनीन्द्रैर्मनुभिर्मानवैः सुरथादिभिः ।।५।।
संस्तुता पूजिता सा च कल्पे कल्पे परात्परा ।
स्तोत्रञ्च श्रूयतां ब्रह्मन् सर्वविघ्नविनाशनम् ।
सुखदं मोक्षदं सारं भवाब्धिपारकारणम् ।।६।।

इस अध्याय मे श्री कृष्ण के द्वारा किया हुआ दुर्गा के स्तोत्र को निरूपित किया गया है। देवर्षि नारद ने कहा-हे मुनि सत्तम ! मैंने सभी कुछ का श्रवण किया है अब सुनने के लिये कुछ भी अवशिष्ट नही रह गया है। यह निश्चय है। अब आप कृपया प्रकृति का कवच तथा स्तोत्र मुझे बताइये ।।१।। नारायण ने कहा—पहिले समय मे वह देवी परमात्मा कृष्ण के द्वारा गोलोक मे स्तुत हुई थी। वहा श्री कृष्ण ने परम प्रसन्न होकर रास मण्डल मे मधु मास म इस देवी का भली भाँति पूजन किया था। दूसरी बार भगवान विष्णु ने पहिले समय मे ही मधु कैटभ के युद्ध मे इसकी स्तुति की थी ।।२।। उसी समय ब्रह्म सकट आने पर ब्रह्मा के द्वारा भगवती दुर्गा पूजी गई थी। चौथी बार पहिले त्रिपुरारी शिव के द्वारा भक्ति भाव से जबकि हे मुने त्रिपुर-नसुर शत्रु के साथ शिव का महान घोर युद्ध हुआ था। पाच वी बार वृत्रासुर के युद्ध क समय मे भी देवी की सस्तुति की गई थी जबकि घोर प्राणो का सकट आ गया था तब शक्र ने और देवो ने दुर्गा की पूजा की थी। उस समय में मुनीन्द्र गण—मनुओ के समुदाय और सुरथ आदि के द्वारा देवी का अर्चन किया गया था ।।३।।४।।५।। यह पर से भी पर तर देवी इस प्रकार से समय-समय पर सस्तुत तथा

समर्पित होती रही है और कल्प-कल्प में इसकी पूजा हुई थी। हे ब्रह्मन्! अब इसके स्तोत्र का श्रवण करो जोकि समस्त विघ्नों का नाश करने वाला है। यह सुख देने वाला-मोक्ष का दाता-सबका सार रूप और संसार रूपी समुद्र से पार कर देने का कारण स्वरूप है ॥६॥

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ।७।
कार्य्यार्थे सगुणा त्वञ्च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।
परब्रह्मस्वरूप त्वं सत्या नित्या सनातनी ।८।
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा ।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ।९।
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ।१०।
सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी ।११।
त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वधास्वयम् ।
दक्षिणासर्वदानेचसर्वशक्तिस्वरूपिणी ।१२।
निद्रा त्वञ्च दयात्वं च तृष्णा त्वञ्च ात्मनश्च मे ।
क्षुत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च कान्तिः सृष्टिश्च शाश्वती १३।

श्री कृष्ण ने कहा—हे देवी! आपही सबकी जननी हैं। आप मूल प्रकृति और ईश्वरी हैं। इस सृष्टि की विधि में आप ही सबसे पहिले होने वाली हैं। आप अपनी ही इच्छा से त्रिगुण स्वरूप वाली हैं ॥७॥ आप कार्यों के सम्पादन करने के लिये ही सगुण हो जाती हैं वैसे वास्तव में स्वयं आप त्रिगुण हैं। आप परब्रह्म के स्वरूप वाली नित्य और सनातनी हैं ॥८॥ आपका स्वरूप तेजोमय है और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये ही शरीर धारण करने वाली परमा

देवी हैं। आप सर्व स्वरूपा-सबकी स्वामिनी-समस्तों की आधार तथा पर से भी पर हैं ॥९॥ आप सबकी बीज स्वरूप वाली-सर्व पूज्य-निराश्रय-सर्वज्ञ-सर्वतो भद्र और सम्पूर्ण मंगलों करने वाली मंगला हैं ॥१०॥ आप सबकी बुद्धि के स्वरूप वाली-सर्व शक्ति स्वरूपा-सबको ज्ञान प्रदान करने वाली सर्वज्ञा तथा सर्व भाविनी हैं ॥११॥ देवों के दान देने में आप स्वाहा और पितृगण के लिये समर्पण करने में स्वधा के स्वरूप वाली स्वयं होती हैं एवं सबके दान में दक्षिणा के स्वरूप से युक्त और सर्व शक्ति स्वरूपिणी हैं ॥१२॥ आप ही निद्रा-दया-तृष्णा और परमात्मा मेरी क्षुधा की शान्ति-ईशा-शान्ति और शाश्वती सृष्टि हैं ॥१३॥

श्रद्धा पुष्टिश्च तन्द्रा च लज्जा शोभा दया सदा।
सतासम्पत्स्वरूपाश्रीविपत्तिरसतामिह ॥१४॥
प्रीतिरूपा पुण्यवतां पापिनां कलहाङ्कुरा।
शश्वत्कर्ममयीशक्तिःसर्वदा सर्वजीविनाम् ॥१५॥
देवेभ्यः स्वपद दात्री धातु धात्री कृपामयी।
हिताय सर्वदेवानां सर्वासुरविनाशिनी ॥१६॥
योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम्।
सिद्धिस्वरूपा सिद्धाना सिद्धिदा सिद्धियोगिनी ॥१७॥
माहेश्वरी च ब्रह्माणी विष्णुमाया च वैष्णवी।
भद्रदा भद्रकालीचसर्वलोकभयङ्करी ॥१८॥
ग्रामे ग्रामे ग्रामदेवी गृहदेवी गृहे गृहे।
सता कीर्ति प्रतिष्ठा च निन्दा त्वमसता सदा ॥१९॥
महायुद्धे महामारी दुष्ट संहाररूपिणी।
रक्षास्वरूपा शिष्टाना मातेव हितकारिणी ॥२०॥
वन्द्या पूज्या स्तुतात्वञ्चब्रह्मादीनाञ्च सर्वदा।
ब्राह्मण्यरूपाविप्राणां तपस्याचतपस्विनाम् ॥२१॥

आप सदा श्रद्धा-पुष्टि-तन्द्रा-लज्जा-शोभा-दया-सत्पुरुषों की

सम्पत्ति के स्वरूप वाली और असत्तों की विपत्ति इस संसार में होती हैं ।।१४।। आप पुण्य वालों की प्रीति के रूप वाली हैं और जो पापी हैं उनके लिये कलह का अंकुर हैं। समस्त जीवियों के लिये सर्वदा शाश्वत् कर्मों से परिपूर्ण शक्ति हैं ।।१५।। देवों के लिये अपने पद को प्रदान करने वाली हैं और धाता को भी कृपामयी धात्री हैं। समस्त देवों के हित के लिये सम्पूर्ण असुरों के विनाश करने वाली हैं ।।१६।। आप योग निद्रा-योग रूपा-योगदात्री हैं जो कि योगियों को योग प्रदान किया करती हैं। आप सिद्धों को सिद्धियों के देने वाली हैं। आप सिद्धिश और सिद्धियों की योगिनी हैं ।।१७।। आप माहेश्वरी-ब्राह्माणी-विष्णुमाया-वैष्णवी-भद्रों के प्रदान करने वाली-भद्रकाली और समस्त लोगों को भय के करने वाली हैं. ।।१८।। आप ग्राम-ग्राम में ग्राम देवी है और घर-घर में गृह देवी हैं। आप सत्पुरुषों की कीर्त्ति और प्रतिष्ठा हैं तथा असतों की निन्दा सर्वदा होती है ।।१९।। आप महान युद्ध में महान दुष्टों के संहार करने वाली महामारी हैं। जो शिष्ट पुरुष हैं उनको माता की भाँति आप रक्षा के स्वरूप वाली होती हैं ।।२०।। आप सर्वदा ब्रह्मादि देवों की वन्दनीया-पूज्या और स्तुत हैं। आप ब्राह्मणों की ब्रह्मण्य रूप वाली और तपस्वियों की तपस्या के रूप वाली हैं ।।२१।।

विद्याविद्यावतांत्वञ्च बुद्धिर्बुद्धिमतांसताम् ।
मेधास्मृतिस्वरूपाचप्रतिभाप्रतिभावताम् ।२२।
राज्ञां प्रतापरूपा च विशां वाणिज्यरूपिणी ।
सृष्टिस्वरूपा सृष्टौ त्वं रक्षारूपाच पालने ।२३।
तथान्ते त्वंमहामारी विश्वस्यविश्व पूजिते ।
कालरात्रिर्म्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी ।२४।
दुरत्यया मे माया त्वं यया समाहितंजगत् ।
ययामुग्धाहिविद्वांश्चमोक्षमार्गंनपश्यति ।२५।

इत्यात्मना कृतं स्तोत्रं दुर्गायादुर्गनाशनम् ।
पूजाकालेपठेद्योहिसिद्धिर्भवतिवाञ्छिते ।२६।
वन्ध्या व काकवन्ध्या च मृतवत्सा च दुर्भगा ।
श्रुत्वा स्तोत्र वर्षमेक सुपुत्र लभते ध्रुवम् ।२७।
कारागारे महाघोरे यो वद्धो दृढबन्धने ।
श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेक बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ।२८।

आप विद्वानों की विद्या और बुद्धिमान् सत्पुरुषों की बुद्धि हैं। जो प्रतिभा वाले पुरुष हैं उनकी आप मेधा-स्मृति और प्रतिभा के स्वरूप वाली हैं।२२। आप राजाओं की प्रताप के रूप वाली और वैश्यों के वाणिज्य के स्वरूप वाली हैं। सृजन के समय में आप सृष्टि के रूप वाली और पालन के अवसर में रक्षा के रूप वाली है।२३। हे विश्व पूजिते ! अन्त समय में आप इस विश्व की महामारी हैं। आप काल रात्रि-महारात्रि-मोहरात्रि और मोहिनी हैं।२४। आप मेरी दुरत्यया माया हैं जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत मोहित हो रहा है। जिस माया के द्वारा मोहित एवं मुग्ध हुआ विद्वान भी मोक्ष के मार्ग को नहीं देखा करता है ।२५। यह इस प्रकार का परमात्मा के द्वारा किया हुआ स्तोत्र दुर्गा देवी का है जो दुर्गों के नाश करने वाला है। जो कोई पूजा के समय में इसका पाठ करता है उसको उसके इच्छित मनोरथ में अवश्य ही सिद्धि होती है ।२६। जो स्त्री वन्ध्या-काक वन्ध्या- मृत वत्स और दुर्भाग्य हैं वह इस स्तोत्र का श्रवण कर एक वर्ष में निश्चय ही सुपुत्र की प्राप्ति कर लेती है ।२७। जो पुरुष महान घोर कारागार के दृढ बन्धन में बद्ध हो वह एक मास में इस स्तोत्र के पठन एवं श्रवण से बन्धन से मुक्त हो जाता है-यह सुनिश्चित है ।।२८।।

यक्ष्माग्रस्तो गलत्कुष्ठी महाशूली महाज्वरी ।
श्रुत्वा स्तोत्र वर्षमेक सद्यो रोगात् प्रमुच्यते ।२९।

पुत्रभेदे प्रजाभेदे पत्नीभेदे च दुर्गतः ।
श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं लभते नात्रसंशयः ।३०।
राजद्वारे श्मशाने च महारण्ये रणस्थले ।
हिंस्रजन्तुसमीपे च श्रुत्वा स्तोत्रं प्रमुच्यते ।३१।
गृहदाहे च दावाग्नौ दस्युसैन्यसमन्विते ।
स्तोत्रश्रवणमात्रेण लभते नात्र संशयः ३२।
महादरिद्रो मूर्खश्च वर्षं स्तोत्रं पठेत्तु यः ।
विद्यावान् धनवांश्चैव सभवेन्नात्रसंशयः ।३३।

जो यक्ष्मा रोग से ग्रस्त हो जो गलित कुष्ठ वाला-महान शूल वाला-महान ज्वर से युक्त हो वह एक वर्ष पर्यन्त इस देवी के स्तोत्र का श्रवण करने से तुरन्त ही रोग से मुक्त हो जाया करता है ।२६। पुत्र भेद में-प्रजा के भेद में और पत्नी के भेद में दुर्ग से इस स्तोत्र का एक मास तक श्रवण करने से अभीष्ट का लाभ करता है-इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।३०। राज द्वार में-श्मशान में-महारण्य में-रणस्थल में और किसी हिंस्त्र जन्तु के समीप आने में इस स्तोत्र का श्रवण करने से वह भय से मुक्त हो जाता है ।३१। गृह दाह में-दावाग्नि में-दस्यु सेना से समन्वित होने में इस स्तोत्र के श्रवण मात्र से ही मुक्ति होती है-इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।३२। जो महा दरिद्री-महा मूर्ख हो वह इस स्तोत्र को एक वर्ष तक पाठ करे तो निश्चय ही विद्यावान और धनवान हो जाता है-इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ।३३।

गणपतिखण्डम्-३

४५-गणेशजन्मविषयकप्रश्नविचारः ।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
श्रुतं प्रकृतिखण्डं तदमृतार्णवमुत्तमम् ।
सर्वोत्कृष्टमीप्सितञ्च मूढानां ज्ञानवर्द्धनम् ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि गणेशखण्डमीश्वर ।
तज्जन्मचरितं नृणां सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥३॥
कथं जज्ञे सुरश्रेष्ठः पार्वत्या उदरे शुभे ।
देवी केन प्रकारेण ललाभ तादृशं सुतम् ॥४॥
सचांशः कस्य देवस्य कथं जन्म ललाभ सः ।
अयोनिसम्भवं किंवाऽसौ चाऽयोनिसम्भवः ॥५॥
किं वा तद् ब्रह्मतेजो वा किं तस्य च पराक्रमः ।
का तपस्या च किं ज्ञानं किं वा तन्निर्मलं यशः ॥६॥
कथं तस्य पुरः पूजा विश्वेषु निखिलेषु ।
स्थिते नारायणे शम्भौ जगदीशे च ब्रह्मणि ॥७॥

इस अध्याय में गणेश के जन्म के विषय से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों का विचार निरूपित किया गया है। वन्दना सर्व-प्रथम नरायण को और नर तथा नरोत्तम को नमस्कार करके इसके अनन्तर देवी सरस्वती को प्रणाम करके फिर जय शब्द का उच्चारण करना चाहिये ॥१॥ नारद ने कहा—मैंने प्रकृति खण्ड का भली भाँति श्रवण किया है जो कि अति उत्तम अमृत का सागर है। यह सबसे अच्छा

अभीष्ट और मूढ़ों के ज्ञान का वर्धन करने वाला है ॥२॥ हे ईश्वर ! अब मैं गणेश खण्ड के श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ। उस गणपति का जन्म तथा चरित मनुष्यों के लिये समस्त मङ्गलों का भी मङ्गल है ॥३॥ वह सुरों में श्रेष्ठ पार्वती के शुभ उदर में कैसे उत्पन्न हुये थे और उस पार्वती देवी ने ऐसे सुत का लाभ किस प्रकार से किया था ॥४॥ वह गणपति किस देव के अंश थे और उन ने कैसे जन्म का लाभ प्राप्त किया था ? यह योनि से जनन ग्रहण करने वाले थे या अयोनि सम्भव थे ? ॥५॥ उनका ब्रह्म तेज किस प्रकार् का था और पराक्रम क्या था। उनकी तपस्या ज्ञान गरिमा और निर्मल यश क्या था ॥६॥ उनकी पहिले समस्त विश्वों में पूजा कैसे आरम्भ हुई थी ? जबकि जगत् के ईश ब्रह्म नरायण और शंभु स्थित थे ॥७॥

पुराणेषु निगूढ़श्च तज्जन्म परिकीर्तितम् ।
कथं वा गजवक्त्रोऽयमेकदन्तो महोदरः ।८॥
एतत् सर्वं समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम ।
सुविस्तीर्णं महाभाग तदतीव मनोहरम् ॥९॥
शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ।
पापसन्तापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥१०॥
सर्वमङ्गलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम् ।
सुखदं मोक्षबीजञ्च पापमूलनिकृन्तनम् ॥११॥
दैत्यार्दितानां देवानां तेजोराशिसमुद्भवा ।
देवी संहृत्य दैत्यौघान् दक्षकन्या बभूव ह ॥१२॥
सा च नाम्नासती देवीस्वामिनोनिन्दया पुरा ।
देहं संत्यज्य योगेन जाताशैलप्रियोदरे ॥१३॥
शङ्कराय ददौ ताञ्च पार्वतीं पर्वतो मुदा ।
तां गृहीत्वा महादेवो जगाम निर्जनं वनम् ॥१४॥

पुराणों में उनका जन्म बहुत ही निगूढ़ कहा गया है। यह

हाथी के समान मुख वाला एक दांत वाला और महान उदर वाला किस प्रकार से हुए थे ? ॥८॥ यह समस्त वृत्तान्त आप कहिए। मुझे इसके श्रवण करने का बडा भारी कौतूहल होता है। हे महा-भाग ! यह सुविस्तृत है और अत्यन्त ही मन को हरण करने वाला सुन्दर है ॥९॥ श्री नरायण ने कहा–हे नारद ! सुनो, मैं एक परम् अद्भुत रहस्य बताता हूँ जो पापों के सन्ताप को हरण करने वाला और सम्पूर्ण विघ्नों के विनाश करने वाला है ॥१०॥ समस्त मङ्गलों का सार तथा सब मङ्गलों का दाता सबकी श्रुति मे मनोहर सुख देने वाला-मोक्ष का बीज और पापो के मूल का काट देने वाला है। ॥११॥ दैत्यो के द्वारा सताये हुये देवो के तेज के समूह से समुत्पन्न देवी ने दैत्यों के समुदायो का संहार कर दिया था और फिर वह दक्ष के यहाँ कन्या के रूप में उत्पन्न हुई थी ॥१२॥ उसका नाम सती था। उसने पहिले अपने स्वामी की निन्दा से अपने देह का त्याग कर दिया था और फिर योग से हिमाचल की प्रिया के उदर आ गई थी ॥१३॥ पर्वत राज हिमाचल ने उस पार्वती को भगवान शंकर को दे दिया था। उनका पाणिग्रहण करके शंकर निर्जन वन मे चले गये थे ॥१४॥

शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् ।
स रेमे नर्म्मदातीरे पुष्पोद्याने तया सह ॥१५॥
सहस्रवर्षपर्य्यन्तं देवमानेन नारद ।
तयोर्बभूव शृङ्गारं विपरीतादिकं परम् ॥१६॥
दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण कामेन मूर्च्छितः शिवः ।
मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद् बुबुधे न दिवानिशम् ॥१७॥
हंसकारण्डवाकीर्णे पुंस्कोकिलरुतश्रुते ।
नानापुष्पविकसिते भ्रमरध्वनिसंयुते ॥१८॥
सुगन्धिकुसुमासक्तेन वायुना सुरभीकृते ।
अतीव सुखदे तत्र सर्वजन्तुविवर्जिते ॥१९॥

दृष्ट्वा तयोस्तच्छृङ्गारं चिन्तांप्रापुःसुराःपराम् ।
ब्रह्माणञ्चपुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम् ।२०।
तं नत्वा कथयामास ब्रह्मावृत्तान्तमीप्सितम् ।
संतस्थुर्देवताः सर्वाश्चित्रपुत्तलिकायथा ॥२१॥

वहां नर्मदा के तट पर पुष्पों के उद्यान में पुष्पों और चन्दन से चर्चित रति करने वाली शय्या का निर्माण कराकर भगवान् शंकर ने उसके साथ रमण किया था ॥१५॥ हे नारद ! देवों के मान से एक सहस्त्र वर्ष पर्य्यन्त उन दोनों का विपरीतादिक परम् शृङ्गार हुआ था ॥१६॥ दुर्गा के अंग के स्पर्श मात्र से ही काम के द्वारा शिव मूच्छित हो गये थे और वह शिव के शरीर के स्पर्श से मूच्छित हो गई थी कि रात्रि दिन का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा था ॥१७॥ हंस और कारण्डव पक्षियों से समाकीर्ण (घिरा हुआ) तथा कोकिल की मधुर ध्वनि से पूर्ण विविध पुष्पों से शोभित-भ्रमरों की ध्वनि से समन्वित वह वन था ॥१८॥ सुगन्धित पुष्पों से अक्त वायु से सुवासित अत्यन्त सुख देने वाला सब प्रकार के जन्तुओं से रहित उस वन में इस प्रकार से उन दोनों शिव पार्वती के शृंगार को देखकर देवगण बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे। वे सब ब्रह्मा को अपने साथ लेकर नरायण के आश्रम में गये थे ॥१९॥२०॥ वहां नारायण को नमस्कार करके ब्रह्माजी ने अपना अभीप्सित वृत्तान्त उन से कह दिया था। सब देवता चित्र में लिखी हुई पुस्तिका की भाँति स्थित हो गये थे ॥२१॥

सहस्रवर्षपर्य्यन्तं देवमानेन शङ्करः ।
रतौ रतश्च निश्चेष्टो न योगी विरराम ह ॥२२॥
मैथुनस्य विरामे च दम्पत्योर्जगदीश्वर ।
किं भूतं भवितापत्यं तथ्यं कथितुमर्हसि ॥२३॥

चिन्ता नास्ति जगद्धातः सर्वं भद्रं भविष्यति ।
मयि ये शरणापन्नास्तेषां दु खकुतोविधे ॥२४॥
येनोपायेन तद्वीर्य्यं भूमौ पतति निश्चितम् ।
तत्कुरुष्व प्रयत्नेन सार्द्धं देवगणेन च ॥२५॥
यदा च शम्भोर्वीर्य्यन्तत्पार्वत्या उदरे पतेत् ।
ततोऽपत्यञ्च भविता सुरासुरविमर्दकम् ॥२६॥
ततः शक्रादयः सर्वे सुरा नारायणाज्ञया ।
प्रययुर्नर्म्मदातीरं ययौ ब्रह्मा निजालयम् ॥२७॥
तत्रैव पर्वतद्रोणी वहिर्देशे सुराः पराः ।
विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्भयकातराः ॥२८॥
शक्रोराजा कुबेरञ्च कुबेरो वरुणन्तथा ।
समीरणं च वरुणो यम समीरणस्तथा ॥२९॥
हुताशन यमश्चैव भास्करञ्च हुताशन. ।
चन्द्रं तथा भास्करश्च ईशानं चन्द्र एव च ॥३०॥
एवं देव प्रेरयन्ति देवाश्च रतिभञ्जने ।
हरश्शृगारं भगञ्च कुर्वित्युक्त्वा परस्परम् ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा–भगवान शकर देवो के मान से एक सहस्त्र वर्ष से रत मे रति हो गये हैं और बिल्कुल मैथुन के विरूम मे, हे जगदीश ! क्या सन्तान होगी ? यह सब कहने के योग्य होते हैं ॥२२॥ २३॥ श्री भगवान ने कहा-हे ब्रह्मन् ! हे जगत के दाता ! कुछ भी चिन्ता नही है । सब अच्छा ही होगा । जो मेरे शरण मे आये हैं । हे विधे ! उनको दु.ख कैसे हो सकता है ॥२४॥ जिसभी किसी उपाय से उसका वीर्य भूमि मे निश्चित रूप से गिर जावे वही अब देव गण के साथ आप करिये ॥२५॥ शिवशम्भु का उसका वीर्य पार्वती के उदर मे पतित होवे गा तो फिर ऐसा ही पुत्र होगा जो सुर और असुर सबका विमर्दन करने वाला होगा ॥२६॥ इसके उपरान्त इन्द्र आदि,समस्त देवगण नारायण की आज्ञा से नर्मदा के तट

पर चले गये थे और ब्रह्मा अपने आश्रम में चले गये थे ।।२७।। वहां पर ही पर्वत की श्रेणी पर बाहिर के भाग में समस्त सुर बहुत ही दुःखित मुख वाले भय से कातर हो गये थे ।२८। इन्द्र कुबेर से कुबेर वरुण से वरुण वायु से वायु यम से-यम अग्नि से-अग्नि सूर्य से सूर्य चन्द्र से चन्द्रमा ईशान से इस प्रकार से शिव की रति के भञ्जन करने के कार्य में किसी तरह से शिव के शृंगार का भंग करो आपस में कह रहे थे ।।२९।।३०।।३१।।

द्वारस्थितो वक्रशिराः शक्रः प्राह महेश्वरम् ।।३२।।
किङ्करोपि महादेव योगीश्वर नमोऽस्तु ते ।
जगदीश जगद्बीज भक्तानां भयभञ्जन ।।३३।।
हरिर्जगामेत्युक्त्वैवमाजगाम च भास्करः ।
उवाच भीतो द्वारस्थो भयार्त्तो वक्रचक्षुषा ।।३४।।
किङ्करोपि महादेव जगतां परिपालक ।
सुरश्रेष्ठ महाभाग पार्वतीश नमोऽस्तुते ।।३५।।
इत्येवमुक्त्वा श्रीसूर्यः प्रजगाम भयात्ततः ।
आजगाम तथा चन्द्र उवाच वक्रकन्धरः ।।३६।।

द्वार पर स्थित होकर वक्रशिर वाला इन्द्र ने महेश्वर से कहा ।।३२।। इन्द्र ने कहा—हे महादेव ! हे योगीश्वर ! आप क्या कर रहे हैं ? आपसे मेरा नमस्कार है। आपतो समस्त जगत् के ईश हैं, इस जगत् के बीज हैं और भक्तों के भय का भंजन करने वाले हैं ।।३३।। इन्द्र यह कहकर चला गया था फिर वहां सूर्य आ गया था और वह भी डरा हुआ द्वार पर स्थित होकर भय से दुःखित होता हुआ तिरछी नजर से युक्त होकर बोला—सूर्य ने कहा—हे जगतों के परिपालन करने वाले ! हे महादेव ! आप क्या कर रहे हैं ? आप तो देवों में परम श्रेष्ठ—महान् भाग वाले-पार्वती के स्वामी हैं। आपको मेरा नमस्कार है ।।३४।।३५।। इतना ही कहकर सूर्य भी भय से वहां से शीघ्र चला गया था। इसके पश्चात वहां चक्र कन्धरा वाला होकर चन्द्रमा आ गया था और बोला—।।३६।।

किङ्करोपि त्रिलोकेश त्रिलोचन नमोऽस्तुते ।
आत्माराम पूर्णकाम पुण्यश्रवणकीर्त्तन ॥३७॥
इत्येवमुक्त्वा भीतश्च विरराम निशापतिः ।
मवीक्ष्योवाच द्वारस्थः स्वयमेव समीरण ॥३८॥
किङ्करोपि जगन्नाथ जगद्वन्धो नमोऽस्तु ते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा वीजरूप सनातन ॥३६॥
इत्येव स्तवन श्रुत्वा योगज्ञानविशारद ।
त्यक्तुकामो न तत्याजश्रृगारपार्वतीभयात् ॥४०॥
दृष्ट्वा सुरान् भयार्त्ताश्चपुन स्तोतुसमुद्यतान् ।
विजहौ सुखसम्भोगकण्ठलग्नाञ्चपार्वतीम् ॥४१॥
उत्तिष्ठतो महेशस्य त्रस्तस्य लज्जितस्य च ।
भूमौ पपात तद्वीर्य्यं ततः स्कन्दो बभूव ह ॥४२॥
पश्चात्ता कथयिष्यामिकथामतिमनोहराम् ।
स्कन्दजन्मप्रसङ्गे च साम्प्रतवाञ्छितश्रृणु ॥४३॥

चन्द्र देव ने कहा—हे त्रिलोकी के स्वामिन् ! हे तीन नेत्रो वाले ! आप क्या कर रहे हैं ? आपको मेरा प्रणाम है । आपतो स्वय अपनी ही आत्मा मे रमण करने वाले हैं—पूर्ण काम हैं और पुण्य श्रवण तथा कीर्तन वाले हैं । वस, इतना ही इस प्रकार से कह कर भीत होता हुआ निशा का स्वामी चन्द्र विरत हो गया था । फिर इसके अनन्तर द्वार पर स्थित होकर वायु देव स्वय वोले—॥३७।३८॥ पवन ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! आप इस समय मे क्या कर रहे हैं ? हे जगत् के वन्धो ! आपको मेरा प्रणाम है । आप तो धर्म अर्थ काम और मोक्ष के वीज रूप वाले हैं और सनातन हैं । इस प्रकार से उनका स्तवन श्रवण करके योग के ज्ञान के महा मनीषी शिव रति दान को छोड देने की इच्छा वाले भी हो गये किन्तु पार्वती के भय से उस श्रृङ्गार का उस समय उन्होंने त्याग नहीं किया था

॥३६॥४०॥ फिर भय से आर्त्त और पुनः स्तुति करने को समुद्यत देवों को देखकर उन्होंने अपने सुख सम्भोग को तथा कण्ठ में संलग्न पार्वती को छोड़ दिया था ॥४१॥ उस समय रति क्रिया से उठते हुये त्रस्त और लज्जित महेश का वीर्य भूमि पर गिर पड़ा था, उससे स्कन्द हुये थे ॥४२॥ इस परम सुन्दर कथा को मैं फिर बाद में कहूँगा। इस समय स्कन्द के जन्म के प्रसङ्ग में जो वाञ्छित है उसका श्रवण करो ॥४३॥

४ क्रीड़ाविरतेन शिवेन देवदर्शनम्।

त्यक्त्वा रतिं महादेवो ददर्श पुरतः सुरान्।
पलायध्वमित्युवाच कृपया पार्वतीभयात् ॥१॥
देवाः पलायिता भीता पार्वतीशापहेतुना।
ब्रह्माण्डसर्वसंहर्त्ता चकम्पे पार्वतीभयात् ॥२॥
तल्पादुत्थाय सा दुर्गा न च दृष्ट्वा पुरः सुरान्।
समुत्थितं कोपवह्निस्तम्भयामासदेहतः ॥३॥
अद्य प्रभृति ते देवा व्यर्थवीर्य्या भवन्त्विति।
शशाप देवी तान्देवानतिरुष्टा बभूव ह ॥४॥
ततः शिवः शिवां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम्।
रुदन्तीं नम्रवदनां लिखन्तीं धरणीतलम् ॥५॥
शिवस्तां दुःखितां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम्।
हस्तेगृहीत्वा देवेशो वासयामासवक्षसि ॥६॥
अतीव भीतः संत्रस्त उवाच मधुरं वचः ॥७॥

इस अध्याय में क्रीड़ा से विरत शिव के द्वारा देव दर्शन का निरूपण किया गया है। नारायण ने कहा—महादेव ने रति का त्याग

करके सामने स्थित देवगण को देखा था। वह पार्वती के भय से कृपा कर भाग जाओ'—यह बोले थे ॥१॥ देवता लोग भी पार्वती के शाप के भय से डरे हुये होकर भाग गये थे। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सहार करने वाले शिव भी पार्वती के भय से काँप गये थे ॥२॥ तल्प (शय्या) से उठकर उस दुर्गा ने सुरो को सामने न देखकर जो कोप की अग्नि उत्थित हुई थी उसका उसने स्तम्भन कर दिया था ॥३॥ आज से लेकर वे समस्त देवता व्यर्थ वीर्य वाले हो जावें—यह देवी ने उन देवो को शाप दे दिया था और वह अत्यन्त रुष्ट हो गई था ॥४॥ इसके अनन्तर शिव ने क्रोध से लाल नेत्रो वाली रुदन करती हुई नम्र मुख से युक्त तथा धरणी तल को लिखती हुई शिवा को देखा था ॥५॥ शिव ने इस प्रकार से अत्यन्त दुःखित और क्रोध से रक्त नेत्रो वाली उसको हाथ से पकड़ कर फिर देवेश ने उसे वक्षःस्थल मे लगा लिया था। अत्यन्त भीत और सन्त्रस्त होकर शिव उससे मधुर वचन बोले—॥६।७॥

कथ रुष्टा गिरिश्रेष्ठकन्ये धन्ये मनोहरे।
मम सौभाग्यरूपे च प्राणाधिष्ठातृदेवते॥
किन्तेऽभीष्ट करिष्यामि वद मा जगदम्बिके॥८॥
ब्रह्माण्डखण्डनिखिले किमसाध्यमिहावयो।
अहो निरपराध मा प्रसन्ना भव सुन्दरि॥९॥
दैवादज्ञातदोषस्य शान्ति मे कर्त्तुमर्हसि।
त्वया युक्त शिवोऽहञ्च सर्वेषा शिवदायक॥१०॥
त्वयाविनाहीश्वरश्चशवतुल्योऽशिव सदा।
प्रकृतिस्त्वञ्चबुद्धिस्त्वशक्तिस्त्वञ्चसमादया॥११॥
तुष्टिस्त्वञ्च तथापुष्टि शान्तिस्त्व क्षान्तिरेवच।
क्षुत्त्व छायातथानिद्रातन्द्राश्रद्धासुरेश्वरी॥१२॥
सर्वाधारस्वरूपा त्व सर्वबीजस्वरूपिणी।
स्मितपूर्वं वद वचः साम्प्रत सरस शिवे॥१३॥

त्वत्कोपविषसंदग्धं तेन जीवय मां मृतम् ।।१४।।

शङ्कर ने कहा – हे गिरि श्रेष्ठ की कन्ये ! हे धन्ये ! हे मान्ये आप मेरे सौभाग्य के स्वरूप वाली हैं । हे प्राणों की अधिष्ठातृ देवते ! हे जगदम्बिके ! आप मुझे बताओ, मैं क्या अभीष्ट है, उसे आपके लिये सम्पादन करू ? ।।८।। हे ब्रह्माण्ड संघ निखिले ! यहां हम दोनों को क्या असाध्य है ? हे सुन्दरि । मैं तो अपराध से रहित हूं । मुझ पर आप प्रसन्न हो जाइये ।।९।। दैवात् अज्ञात दोष वाले मेरी आप शान्ति करने के योग्य हैं । मैं तो तुम्हारे साथ होकर ही शिव हूं और (मङ्गल) के प्रदान करने वाला हूं ।।१०।। तुम्हारे बिना तो ईश्वर एक शव के तुल्य सदा ही अशिव होता है । आप ही प्रकृति हैं—बुद्धि-शक्ति-क्षमा और दया भी आप हैं ।।११।। आप तुष्टि-पुष्टि शान्ति-क्षान्ति हैं । आप ही क्षुत्-छाया-निद्रा-तन्द्रा श्रद्धा और सुरेश्वरी हैं ।।१२।। आप सबके आधार स्वरूप वाली तथा बीज स्वरूप वाली हैं । हे शिवे ! अब स्मित के साथ सरस वचन बोलो ।।१३।। आपके कोप रूपी विष से मैं संदग्ध हूं । इसलिये मधुर वचन द्वारा मृत मुझको जीवित करो ।।१४।।

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा कोपयुक्ता च पार्वती ।
उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता ।।१५।।
किन्वाहं कथयिष्यामि सर्वज्ञं सर्वरूपिणम् ।
आत्मारामं पूर्णकामं सर्वदेहेष्ववस्थितम् ।।१६।।
कामिनी मानसं काममप्रज्ञं स्वामिनं वदेत् ।
सर्वेषां हृदयज्ञञ्च हृदीष्टं कथयामि किम् ।।१६।।
सुगोप्यं सर्वनारीणां लज्जाजनककारणम् ।
अकथ्यमपि सर्वासां तथापि कथयामि ते ।।१८।।
तद्भङ्गे न च यद्दुःखंतत्समंनास्ति च स्त्रियाः ।
कान्तानांकान्तविच्छेदःशोकःपरमदारुणः ।।१९।।
कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षीयमाणो दिने दिने ।
तथा कान्तं विना कान्ता क्षणा कान्ती क्षणे क्षणे ।२०।

शङ्कर के इस वचन को सुनकर कोप से युक्त पार्वती देवी विद्रूयमान हृदय स मधुर वचन बोली ॥१५॥ पार्वती ने कहा—मैं आपसे क्या कहूँ। आपता स्वय सर्वज्ञ और सर्व रूपी हैं। आप आत्माराम पूर्ण काम और सबके देहो मे अवस्थित हैं ॥१६॥ जो किसी का कोई अप्रज्ञ (बुद्धि रहित) स्वामी होता है तो उसको उसकी कामिनी अपने मनका अभिप्राय कहती हैं। आपता सबके हृदय हैं और हृदय के अधिष्ठाता देव हैं ऐसे आपस मैं अपने हृदय म स्थित अभीष्ट को क्या कहूँ ॥१७॥ यह विषय ऐसा ? जो बहुत ही गोपनीय है और समस्त नारिया के लिये यह लज्जा जनक कारण है यह सब कथन के योग्य नही है ता भी मैं आपस कहती हूँ ॥१८। पुरुष सङ्ग के भङ्ग होने से जो दुःख होता है उसके समान स्त्री के लिये अन्य कोई भी दुःख नही है। कान्ताओ को अपन कान्त का विच्छेद परम दारुण शोक होता है ॥१९॥ हे कान्त ! जिस तरह कृष्ण पक्ष मे चद्रमा दिनो दिन क्षीयमाण होता है उस प्रकार से विना कान्त के कान्ता क्षीण होती है ॥२०॥

त्रैलोक्यकान्त कान्तत्वाल्लब्ध्वापिनचमेसुत ।
या स्त्री पुत्रविहीनाचजीवनतन्निरर्थकम् ॥२१॥
जन्मान्तरसुख पुण्य तपोदानसमुद्भवम् ।
सद्वंशजातपुत्रश्च परत्रेह सु प्रद ॥२ ॥
सुपुत्र स्वामिनोऽशश्च स्वामितुल्यसुखप्रद ।
कुपुत्रश्च कुलागारो, मनस्तापायकेवलम् ॥२३॥
स्वामी स्वाशेन स्वस्त्रीणा गर्भे जन्म लभेद् ध्रुवम् ।
साध्वी स्त्री मातृतुल्या च सतत हितकारिणी ।२४।
असाध्वी वैरितुल्याचशश्वत्सन्तापदायिनी ।
मुखदुष्टायोनिदुष्टाचैवासाध्वीतिहिस्मृता ॥२५॥

किमुपायं करिष्यामि वद योगीश्वरेश्वर ।
उपायसिन्धो तपसांसर्वेषाञ्च च फलप्रद ।।
इत्युक्त्वा पार्वतीदेवी नम्रवक्त्रा बभूव ह ।।२६।।
प्रहस्य शङ्करोदेवो बोधयामास पार्वतीम् ।
सत्पुत्रबीजं सुखदं सन्तापनाशकारणम् ।।२७।।
मितं स्निग्धं सुरुचिरं प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।२८।।

तीन लोकों के कान्त आपको अपना कान्त प्राप्त करके भी मेरे कोई पुत्र नहीं है। जो स्त्री पुत्र से विहीन होती है उसका सम्पूर्ण जीवन ही निरर्थक होता है ।।२१।। तप और धन से समुत्पन्न पुण्य दूसरे जन्म में सुख देने वाला है किन्तु सद्वंश मे समुत्पन्न पुत्र इस लोक और पर लोक दोनों में सुख प्रदान करने वाला होता है ।।२२।। सुपुत्र अपने स्वामी का ही अंश होता है अतः वह स्वामी के समान ही सुख प्रद भी हुआ करता है। जो कुपुत्र होता है वह कुल का अङ्गारा होता है जोकि केवल मन के ताप के लिये ही होता है ।।२३।। स्वामी ही अपने एक अंश से अपनी स्त्रियों के गर्भ में निश्चय ही जन्म प्राप्त किया करता है। वह साध्वी स्त्री मातृ तुल्या होती है जो निरन्तर हित के सम्पादन करने वाली होती है ।।२४।। जो असाध्वी स्त्री होती है वह वैरी के तुल्य होती है और वह निरन्तर सन्ताप के देने वाली होती है। मुख से दुष्टा और योनि से दुष्टा स्त्री ही असाध्वी यहां पर कही गई है ।।२५।। हे योगीश्वरेश्वर ! आप ही बतलाइये, मैं क्या उपाय करूंगी। हे उपायों क सागर ! आपतो समस्त तपों के फलों के प्रदान करने वाले हैं ।२६। इस प्रकार से इतना कहकर पार्वती नीचे की ओर मुख करने वाली होती हुई चुप हो गई थीं। देव शङ्कर हंसकर पार्वती को समझाने लगे थे। सत्पुत्र का बीज सुख देने वाला और सन्ताप के नाश का कारण होता है ।। २६।।-२७।। इसके अनन्तर शिव परिमित-स्निग्ध और प्रति रुचिर कहने लगे थे ।।२८।।

४७-पार्वतीम्प्रति हरिव्रतकरणाय शिवस्योपदेशः

श्रृणु पार्वति वक्ष्यामि तव भद्रं भविष्यति ।
उपायतः कार्य्यसिद्धिर्भवेदेव जगत्त्रये ॥१॥
सर्ववाञ्छितसिद्धेस्तु बीजरूपं सुमङ्गलम् ।
मनसः प्रीतिजननमुपायं कथयामि ते ॥२॥
हरेराराधनं कृत्वा व्रतं कुरु वरानने ।
व्रतञ्च पुण्यकं नाम वर्षमेकं करिष्यसि ॥३॥
महाकठोरबीजञ्च वाञ्छाकल्पतरुं परम् ।
सुखदं पुण्यदं सारं पुत्रदं सर्वसम्पदम् ॥४॥
नदीनाञ्च यथा गङ्गा देवानाञ्च हरिर्यथा ।
वैष्णवानां यथाहञ्च देवीनां त्वं यथाप्रिये ॥५॥
आश्रमाणां यथा विप्रस्तीर्थानां पुष्करो यथा ।
पुष्पाणां पारिजातञ्च पत्राणां तुलसी यथा ॥६॥
यथा पुण्यप्रदानाञ्च तिथिरेकादशी स्मृता ।
रविवारश्च वाराणां यथा पुण्यप्रदः शिवे ॥७॥

इस अध्याय में पार्वती के प्रति हरि व्रत करने के लिये शिव के उपदेश का निरूपण किया जाता है। श्री महादेव ने कहा—हे पार्वति ! आप श्रवण करो, मैं कहता हूँ। आपकी इससे भलाई होगी। तीनों भुवन में उपाय करने से कार्य की सिद्धि होती ही है ॥१॥ समस्त वाञ्छितों की सिद्धि होने का बीज रूप सुमंगल हुआ करता है। मैं आपसे मन की प्रीति का जन्माने वाला उपाय बताता हूँ ॥२॥ हे वरानने ! पहिले हरि का आराधन करके फिर व्रत करो। इस व्रत का नाम पुण्यक है जिसको कि तुम एक वर्ष तक करोगी ॥ ॥

यह व्रत महा कठोर बीज है, अपनी हार्दिक इच्छा को पूर्ण करने के लिये परम कल्प वृक्ष के तुल्य है—सुखद-पुण्यद-पुत्रद और समस्त सम्पदाओं का देने वाला सार रूप है ॥४॥ जिस तरह नदियों में गंगा है और देवों में हरि हैं—वैष्णवों में मैं हूं और हे प्रिय ! देवियों में आप हैं। आश्रमों में जैसे विप्र हैं और तीर्थों में पुष्कर है। पुष्पों में जिस तरह पारिजात का पुष्प है और पत्रों में तुलसी पत्र है। पुण्य प्रदान करने वाली तिथियों में जैसे एकादशी तिथि कही गई है और वारों में जैसे रविवार हे शिवे ! पुण्य प्रद होता है ॥५॥६॥७॥

मासानां मार्गशीर्षश्चऋतूनांमाधवोयथा ।
संवत्सरोवत्सराणांयुगानाञ्चकृतंयथा ।८।
विद्याप्रदश्च पूज्यानां गुरूणां जननी यथा ।
साध्वी पत्नी यथाप्तानां विश्वस्तानां मनो यथा ६।
यथा धनानां रत्नञ्च प्रियाणाञ्च यथा पतिः ।
यथापुत्रश्च बन्धूनां वृक्षाणां कल्पपादप. ।१०।
चूतफलं फलानाञ्च वर्षाणां भारतं यथा ।
वृन्दावनं वनानाञ्च शतरूपाच योषिताम् ।११।
यथाकाशी पुरीणाञ्च सूर्यस्तेजस्विनांयथा ।
यथेन्दुःसुखदानाञ्च सुन्दराणाञ्चमन्मथः ।१२।
शास्त्राणाञ्च यथा वेदाः सिद्धानां कपिलो यथा ।
हनूमान् वानराणाञ्च क्षेत्राणां ब्रह्मणाननम् ।१३।
यशोदानाँ यथा विद्या कविताच मनोहरा ।
आकाशोव्यापकानाञ्च ह्यङ्गानां लोचनं यथा ।१४।

समस्त मासों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में माधव (वसन्त) जिस तरह है। वत्सरों में सम्वत्सर और युगों में कृत युग जिस प्रकार से श्रेष्ठ है ॥८॥ पूज्य वर्गों में जो विद्या के प्रदान करने वाला है वह श्रेष्ठ है गुरुओं में जननी सर्वोत्तम गुरु है। जैसे साध्वी पत्नी ही

प्राप्ता मे श्रेष्ठ होती है और विश्वस्तों मे मन उत्तम होता है ॥९॥ जिस प्रकार धनो म रत्न और प्रियो मे पति श्रेष्ठ है। बन्धुओं मे पुत्र जैसे होता है और वृक्षो मे कल्प वृक्ष श्रेष्ठ होता है ॥१०॥ फलो में सर्वोत्तम फल आम का होता है और जिस तरह वर्षो मे भारत श्रेष्ठ है। वनो मे वृन्दावन और स्त्रियो मे शतरूपा श्रेष्ठ है ॥११॥ जैसे पुरियो मे काशी तथा तेजस्वियो मे सूर्य एव सुख देने वालो मे चन्द्र और सुन्दरो म कामदेव श्रेष्ठ होता है ॥१२॥ शास्त्रा म जैसे, वेद सर्वश्रेष्ठ हैं–सिद्धो मे कपिल सर्वोत्तम हैं–वानरो म हनुमान सबसे श्रेष्ठ हैं तथा क्षेत्रा मे ब्राह्मण का मुख सर्वश्रेष्ठ होता है ॥१३॥ जिस प्रकार से यश के प्रदान करने वालो मे विद्या और मनोहर कविता श्रेष्ठ है। व्यापक पदार्थों मे आकाश और शरीर के अङ्गों मे लोचन सर्वश्रेष्ठ होते हैं ॥१४॥

विभवाना हरिकथासुखानां हरिचिन्तनम् ।
स्पर्शानापुत्रसस्पर्शो हिंस्रानाञ्च यथा खल ।१४।
पापानाञ्चयथामिथ्यापापिनापुंश्चलीयथा ।
पुण्यानाञ्चयथा सत्य तपसा हरिसेवनम् ।१६।
यथाघृतञ्च गव्यानांयथा ब्रह्मातपस्विनाम् ।
अमृत भक्ष्यवस्तूना शस्याना धान्यकयथा ।१७।
पुण्यदाना यथा तोय शुद्धानाच हुताशनः ।
सुवर्णं तेजसानाञ्च मिष्टाना प्रियभाषणम् ।१८।
गरुड. पक्षिणाञ्चैव हस्तिनामिन्द्रवाहनः ।
योगिनञ्च कुमारश्चदेवर्षीणाञ्च नारद. ।१६।
गन्धर्वाणा चित्ररथो जीवो बुद्धिमता यथा ।
सुकवीना यथा शुक्र काव्यानाञ्च पुराणकम् ।२०।
स्रोतस्वतीनां समुद्रश्च यथा पृथ्वी क्षमावताम् ।
लाभानाञ्च यथा मुक्तिर्हरिभक्तिश्च सम्पदाम् ।२१।

जैसे विभवों में हरि की कथा का वैभव ही सर्वोत्तम होता है और और सुखों में हरि का चिन्तन करना ही परम श्रेष्ठ सुख है। जिस प्रकार से पुत्र के अंग का स्पर्श समस्त स्पर्शों में अधिक उत्तम होता है। हिंसकों में खल ही सबसे अधिक हिंसक होता है ॥१५॥ सम्पूर्ण प्रकार के पापों में मिथ्या कथन सबसे महान् पाप जिस प्रकार से होता है और पापियों में पुश्चली का होना सबसे अधिक पापी का हो जाना है। पुण्यों में श्रेष्ठ सत्य है और तपों में जैसे सर्वश्रेष्ठ तप हरि के चरणों की सेवा है ॥१६॥ गन्धों में घृत श्रेष्टतम है और तपस्वियों में सबसे महान् तपस्वी ब्रह्मा है। भक्ष्य वस्तुओं में सर्वोतम अमृत है तथा शस्यों में धान्य सर्वश्रेष्ठ होता है ॥१७॥ पुण्यदों में सर्वश्रेष्ठ जल है तथा शुद्धों में अग्नि श्रेष्ठ शुद्ध है। तेजसों में सुवर्ण सर्वोत्तम होता है और मिष्ठपदार्थों में श्रेष्ठ प्रिय भाषण है ॥१८॥ पक्षियों में गरुड और हाथियों में इन्द्र को वाहन ऐरावत तथा योगियों में कुमार एवं देवर्षियों में नारद परम श्रेष्ठ हैं ॥१९॥ जिस प्रकार से गन्धर्वों में चित्ररथ बुद्धिमानों में बृहस्पति-सुकवियों में शुक्र और काव्यों में पुराण सर्वोत्तम एवं शिरोमणि हैं ॥२०॥ स्रोतसों में समुद्र और क्षमा वारियों में पृथ्वी-लाभों में मुक्ति और सम्पदाओं में भक्ति सर्व शिरोमणि होते हैं ॥२१॥

पवित्राणांवैष्णवाश्चा वर्णानां प्रणवोयथा।
विष्णुमन्त्रश्चामन्त्राणां बीजानांप्रकृतिर्यथा ॥२२॥
विदुषाञ्चायथा वाणीगायत्री छन्दसां यथ।
यथा कुवेरोयक्षाणां सर्पाणां वासुकिर्यथा ॥२३॥
यथा पिता ते शैलानां गवाञ्च सुरभिर्यथा।
वेदानां सामवेदश्च तृणानाञ्च यथा कुशः ॥२४॥
सुखदानां यथा लक्ष्मीर्मनश्च शीघ्रगामिनाम्।
अक्षराणामकारश्च हितैषिणांपितायथा ॥२५॥

शालग्रामश्च यन्त्राणां पशूनां विष्णुपञ्जरः।
चतुष्पदानापञ्चास्यो मानवो जीविनां यथा ।२६।
यथा स्वान्तमिन्द्रियाणां मन्दाग्निश्चरुजां यथा ।
वलिनाञ्च यथाशक्तिरहशक्तिमतां यथा ।२७।
महान्विराट्च स्थूलाना सूक्ष्माणापरमाणुकः ।
यथेन्द्रश्चादितेयाना दैत्यानाञ्चबलिर्यथा ।२८।
प्रह्लादश्चैवमाधूना दातृणादधीचिर्यथा ।
ब्रह्मास्त्रञ्चयथास्त्राणां चक्राणाञ्चसुदर्शनम् ।२९।
नृणाराजारामचन्द्रो धन्विना लक्ष्मणो यथा ।
सर्वाधारः सर्वसेव्य सर्वबीजञ्चसर्वदः
सर्वसारो यथा कृष्णो व्रताना पुण्यक यथा ।३०।
व्रत कुरु महाभागे त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
सर्वसारश्च पुत्रस्ते व्रतादेव भविष्यति ।३१।
व्रताराध्यश्च श्रीकृष्ण सर्वेषां वाञ्छितप्रदः ।
जनो यत्सेवनान्मुक्त पितृभि कोटिभि. सह ।३२।

जिस प्रकार से पवित्रो मे वैष्णव सबसे अधिक पवित्र होते हैं तथा वर्णों मे प्रणव सर्वश्रेष्ठ हैं । मन्त्रो मे विष्णु का मन्त्र श्रेष्ठतम है और बीजो मे प्रकृति जैसे सर्वश्रेष्ठ एव प्रधान है ।।२२।। विद्वानो मे वाणी (सरस्वती) छन्दो मे गायत्री-यक्षो मे कुबेर और सर्पो मे वासुकि श्रेष्ठ हैं ।।२३।। हे देवि ! शैलो मे आपके पिता हिमाचल सर्वश्रेष्ठ हैं तथा गौओ मे सुरभि परम श्रेष्ठ कही गई है । वेदो मे साम वेद और तृणो मे कुश सर्वोत्तम होता है ।।२४।। सुख के प्रदान करने वालो मे लक्ष्मी जिस तरह अति उत्तम सुखदानी होती है तथा शीघ्र गमन करने वालो मे मन प्रधान है अक्षरो म अकार अर्थात् 'अ' यह परम श्रेष्ठ है एव हित के चाहने वालो मे पिता के समान अन्य कोई हितैषी नही होता है-यही सर्वश्रेष्ठ है ।।२५।। शालग्राम यन्त्रो मे-पशुओं मे विष्णु

पञ्जर चतुष्पदों में सिंह और जीव धारियों में मानव-श्रेष्ठ होता है ॥२६॥ इन्द्रियों में सर्व प्रधान स्वान्त (मन) है और रोगों में मन्दाग्नि प्रधान रोग है। वलियों में शक्ति जैसे श्रेष्ठ है तथा शक्तिमानों में अहं सर्वश्रेष्ठ है ॥२७॥ स्थूलों में महान् विराट् सर्व प्रधान होता है। तथा सूक्ष्मों में परमाणु सबसे अधिक सूक्षतम है। देवों में इन्द्र और दैत्यों में उत्तम एवं प्रधान राजा वलि होता है ॥२८॥ साधु पुरुषों में प्रह्लाद और दाताओं में सर्वश्रेष्ठ दधीचि मुनि हैं जिसने प्राणदान दिया था। अस्त्रों में ब्रह्मास्त्र प्रधान है और चक्रों में सर्वश्रेष्ठ सुदर्शन चक्र होता है ॥२९॥ मनुष्यों में सर्व शिरोमणि मर्यादा के पूर्ण पालक राजा रामचन्द्र हैं और धनुष धारियों में सर्व शिरोमणि लक्ष्मण हैं। सबके आधार-सबके सेव्य-सबके बीजरूप-सब कुछ प्रदान करने वाले और सबके सार स्वरूप जिस प्रकार से कृष्ण है उसी प्रकार से यह पुण्यक नाम वाला व्रत होता है ॥३०॥ हे महा भागे ! इस व्रत को आप करो। यह व्रत तीनों लोकों में अति दुर्लभ है। इस व्रत से ही सबका सार स्वरूप तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होगा ॥३१॥ इस व्रत के द्वारा आराधना करने के योग्य श्रीकृष्ण ही हैं जो कि सबको वांच्छित फल प्रदान करने वाले हैं जिनके सेवन करने से मनुष्य अपने करोड़ों पितृगण के सहित मुक्त हो जाया करता है ॥३२॥

हरिमन्त्रं गृहीत्वाच हरिसेवां करोति यः।
भारते जन्मसफलं स्वात्मनः स करोति च ।३३।
उद्धृत्य कोटिपुरुषान् वैकुण्ठं याति निश्चितम्।
श्रीकृष्णपार्षदो भूत्वा सुखंतत्र वमोदते ।३४।
सहोदरान्स्वभृत्यांश्च स्वबन्धून्सहचारिणम्।
स्वाश्रियञ्च समुद्धृत्यभक्तोयातिहरेः परम् ।३५।
तस्माद् गृहाण गिरिजे हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम्।
जामन्त्रं व्रतेतत्र पितृणां मुक्तिकारणम् ।३६।

इत्युक्त्वा शङ्करो देवो गत्वा गिरिजया सह ।
शीघ्रञ्च जाह्नवीतीरं हरेर्मन्त्रं मनोहरम् ।३७।
तस्यै ददौ च सप्रीत्या कवचं स्तोत्रसंयुतम् ।
पूजाविधाननियमं कथयामास तां मुने ।३८।

श्री हरि के मन्त्र की दीक्षा ग्रहण करके जो हरि की सतत सेवा किया करता है वह भारतवर्ष में अपना जन्म ग्रहण करना सफल कर लेता है ॥३३॥ ऐसा सेवा परायण पुरुष अपने करोड़ों पुरुषों का उद्धार करके निश्चित रूप से वैकुण्ठ लोक को जाया करता है। वहाँ वह श्रीकृष्ण का पार्षद होकर सुख पूर्वक सेवा का आनन्द प्राप्त कर प्रसन्न रहता है ।३४॥ हरि का सच्चा भक्त अपने सगे भाइयों को-अपनी भृत्यों को-अपने बन्धुजनों को अपने सहचारियों को-अपनी स्त्रियों को सबको संसार के कर्म बन्धन छुडाकर तथा नरकों से उद्धार करके हरि के परम धाम को प्राप्त किया करता है ॥३५॥ इसलिये हे गिरिराज पुत्रि ! आप हरि के मन्त्र की दीक्षा ग्रहण करो। यह अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है। उस व्रत में मन्त्र का जाप करो। यह त्रिगुण की मुक्ति कराने का एकमात्र कारण होता है ॥३६॥ इतना कहकर देव शंकर ने गिरिजा को अपने साथ लेकर शीघ्र ही जाह्नवी के तट पर जाने का प्रस्थान किया था। वहाँ पर परम मनोहर हरि के मन्त्र की दीक्षा पार्वती को दी थी मन्त्र के साथ बडी प्रीति के साथ उसका कवच और स्तोत्र भी प्रदान किया था। हे मुने ! शिव ने पार्वती से उसकी पूजा का पूर्ण विधान एवं नियम आदि सभी भलीभांति बता दिया था ॥३७॥३८॥

४८-स्तवप्रीतेन कृष्णेन पार्वत्यै निजरूपप्रदर्शनं वरप्रानञ्च

पार्वतीस्तवनं श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः ।
स्वरूपं दर्शयामास सर्वादृश्यं सुदुर्लभम् ।१।
स्तुत्वा देवी ध्यानलग्ना कृष्णैकतानमानसा ।
ददर्श तेजसां मध्ये स्वरूपं सारमोहनम् ।२।
सद्रत्नसारनिर्माणे हीरकेण परिष्कृते ।
युक्ते माणिक्यमालाभी रत्नपूर्णे मनोरथे ।३।
वह्निसंशुद्धपीतांशुधरं वंशीकरं परम् ।
वनमालागलं श्यामं रत्नभूषणभूषितम् ।४।
किशोरवयसं वेशविचित्रं चन्दनाङ्कितम् ।
चारुस्मितास्यमाढयं तच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ।५।
मालतीमाल्यसंयुक्तमयूरपुच्छचूड़कम् ।
गोपाङ्गनापरिवृतं राधावक्षःस्थलोज्ज्वलम् ।६।
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् ।
अतीव हृष्टं सर्वेष्टं भक्तानुग्रहकारकम् ।७।

इस अध्याय में स्तव से प्रसन्न कृष्ण के द्वारा पार्वती के लिये अपने रूप का दर्शन और वरदान प्रदान करने का वर्णन किया जाता है । नारायण ने कहा —पार्वती के स्तवन का श्रवण कर करुणा के निधि श्रीकृष्ण ने सबके न देखने के योग्य अति दुर्लभ अपना स्वरूप पार्वती को दिखा दिया था अर्थात् साक्षात् रूपसे पार्वती के सामने आकर दर्शन दिया था ।।१।। तब देवी ने ध्यान में संलग्न होकर कृष्ण में ही एक नाम मनवाली पार्वती ने उनकी स्तुति की थी और तेजों के मध्य में सार मोहने स्वरूप का दर्शन किया था ।। ।। रत्नों में स्तर से

अर्थात् परमोत्तम रत्नों के द्वारा निर्माण वाले हीरों से सम्मानित और माणिक्य की मालाओं से परिष्कृत (सजाये हुए) मनोरथ में विराजमान प्रभु थे ॥,॥ श्रीकृष्ण का स्वरूप अग्नि के समान शुद्ध पीताम्बर धारण करने वाला हाथ में वंशी लिये हुए गले में वन माला धारण करने वाले-श्यामवर्ण से युक्त और रत्नों के द्वारा निर्मित आभूषणों से भूषित थे ॥४॥ उनकी उस समय किशोर अवस्था थी-विचित्र वेश वाले-चन्दन से चर्चित सुन्दर स्मित से युक्त मुख वाले जो कि शरत्कालीन चन्द्र को भी पराजित करने वाला था श्रीकृष्ण का सुन्दर स्वरूप पार्वती ने देखा था ॥५॥ मालती लता के पुष्पों की मालाओं से संयुक्त और मोर की पंख को मस्तक में धारण करने वाले-गोपों की अङ्गनाओं से परिवृत और राधा को वक्षस्थल में धारण करने से अति उज्ज्वल स्वरूप वाले श्रीकृष्ण दिव्य स्वरूप था ॥६॥ पार्वती ने श्रीकृष्ण का स्वरूप करोड़ों कामदेवों के लावण्य की लीला का धाम-अति मनोहर-परम हृष्ट सबको इष्ट और भक्तों पर अनुग्रह करने वाला देखा था ॥७॥

दृष्ट्वा रूप रूपवती पुत्र तदनुरूपकम् ।
मनसा वरयामास वर संप्राप्य तत्क्षणम् ।८।
वर दत्त्वा वरेशस्तु यद्यन्मनसि वाञ्छितम् ।
दत्त्वाभीष्ट सुरेभ्यश्च तत्रैवाऽन्तरधीयत ।९।
कुमार बोधयित्वा तु देवा देव्यै दिगम्बरम् ।
ददुर्निरुपम तत्र प्रहृष्टायै कृपान्विता. ।१०।
ब्राह्मणेभ्योददौदुर्गारत्नानिविविधानि च ।
सुवर्णानि चभिक्षुभ्योवन्दिभ्योविश्वनन्दिता ।११।
ब्राह्मणान् भोजयामास देवांश्च पर्वतांस्तथा ।
शङ्कर पूजयामास चोपहारैरनुत्तमैः ।१२।
दुन्दुभि वादयामास कारयामास मङ्गलम् ।
सङ्गीत गाययामास हरिसम्बन्धि सुन्दरम् ।१३।

व्रतं समाप्य सा दुर्गा दत्वा दानानि सस्मिता ।
सर्वांश्च भोजयित्वा तु बुभुजे स्वामिना सह ।१४।

ऐसे श्रीकृष्ण के स्वरूप को देखकर रूपवती पार्वती देवी ने उन्हीं के अनुरूप अपना पुत्र मन से वर चाहा था और उसी क्षण में ऐसा ही वरदान प्राप्त कर लिया था ।।८।। वरेश श्रीकृष्ण ने ऐसा ही वर देकर जो-जो भी मन में इच्छित था और देवों के लिये अभीष्ट वर देकर उनका वह तेज वहीं अन्तर्ध्यान हो गया था ।।६।। देवों ने दिगम्बर और निरुपम कुमार का देवी के लिये बोध कराकर जोकि परम प्रहृष्ट थी, वहाँ कृपा से युक्त होकर उन्होंने कुमार को दे दिया था ।।१०।। उस समय दुर्गा देवी ने विविध रत्नों का दान ब्राह्मणों को दिया था और भिकारियों को-बन्दियों को भी विश्वनन्दिता देवी ने सुवर्ण का दान प्रदान किया था ।।११।। उस समय देवी ने ब्राह्मणों को-देवों को और पर्वतों को भोजन कराया था । तथा अत्युत्तम उपहारों से उनने भगवान् शंकर की पूजा की थी ।।१२।। उस परम मंगल के अवसर पर देवी पार्वती ने दुन्दुभि बजवाई थी और बहुत सा मंगलोत्सव कराया था । तथा हरि का सम्बन्धी संगीत भी कराया था ।।१३।। इस प्रकार से उस दुर्गा देवी ने इस पुण्यक व्रत को समाप्त किया था तथा स्मित से युक्त होकर दान दिये थे एवं सबको भोजन कराके फिर स्वयं भी अपने परम पूज्य स्वामी भगवान् शंकर के साथ उन्होंने भोजन किया था ।।१४।।

ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ।
क्रमात् प्रदाय सर्वेभ्योबुभुजेतेन कौतुकात्
पय फेननिभां शय्यां रम्यां सद्रत्ननिर्मिताम् ।
पुष्पचन्दनसंयुक्तां कस्तूरीकुङ्कुमान्विताम्
रहसि स्वामिना सार्द्धं सुष्वाप परमेश्वरी ।१६।
कैलासस्यैकदेशे च रम्ये चन्दनकानने ।
सुगन्धिकुसुमाक्तेन वायुना सुरभीकृते ।१७।

भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते ।
विजहार सुरसिका तत्र तेन सहाम्बिका ।१८।
रेतः पतनकाले च स विष्णुर्विष्णुमायया ।
विधाय विप्ररूपन्तु आजगाम रतेर्गृहम् ।।१६।
रुक्षमवन्त विना तैल कुचैल भिक्षुक मुने ।
अतीव शुक्लदशन तृष्णया परिपीडितम् ।२०।
अतीव कृशमाङ्गञ्च बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ।
वहुकाकुस्वर दीन दन्यात्कुत्सितमूर्त्तिमत् ।२१।
आजुहाव, महादेवमतिवृद्धोऽन्नयाचक. ।
दण्डावलम्बन कृत्वा रतिद्वारेऽतिदुर्वल. ।२२।

इसके अनन्तर पार्वती देवी ने कर्पूर आदि से सुवासित परम श्रेष्ठ एवं सुन्दर ताम्बूल क्रम से सबको प्रदान करके कौतुक के साथ उसे स्वयं भी खाया था ।।१५।। इसके अनन्तर दूध के फेन के समान शुभ्र-सद्रत्ना से निर्मित-अतीव सुन्दर-पुष्प और चन्दन से संयुक्त एवं कस्तूरी कुंकुम से समन्वित शय्या पर एकान्त मे अपने स्वामी के साथ परमेश्वरी ने शयन किया था ।।१६।। उस परम रम्य-चन्दन के वन में सुगन्धित पुष्पो से युक्त वायु के द्वारा परम सुरभित-भ्रमरो की ध्वनि स परिपूर्ण पुंस्कोकिल की ध्वनि से युक्त कैलास के एक देश म परम रसिका आम्बिकाने अपने स्वामी के साथ वहाँ विहार किया था ।।१७।।१८।। उस विहार के समय मे जब वीर्य का पतन काल था तब विष्णु की माया से वहा विष्णु विप्र का रूप धारण करके उस रति के गृह मे आगये थे ।।१६।। उस ब्राह्मण का स्वरूप सुक्ष्मवान् था-बिना तैल वाला-बुरे वस्त्रो वाला वह भिक्षुक था। जिसक अति शुक्ल दांत थे-तृष्णा से पीडित हो रहा था । बहुत ही अधिक दुबला-उज्ज्वल तिलक धारण करने वाला-बहुत काकु स्वर वाला दीन और दीनता स कुत्सित मूर्ति वाला वह उस समय हो रहा था । वह अत्यन्त वृद्ध था-

शंकर ने उससे कहा—हे विप्रर्षे ! हे वेदों के वेत्ताओं में प्रवर ! यह बताओ कि आपका घर कहां पर है ? आपका नाम क्या है ? मैं बहुत ही शीघ्र यह सब जानना चाहता हूँ ॥३२॥ पार्वती ने कहा—हे विप्र ! आप कहाँ से आये हैं जोकि इस समय यहां मेरे सौभाग्य से आकर उपस्थित हो गये हैं ? मेरा आज जन्म सफल हो गया है कि मेरे घर पर एक ब्राह्मण अतिथि आप आगये हैं ॥३३॥ जिसने अपने द्वार पर आये हुए अतिथि की पूजा करली है उसने तीनों लोकों की पूजा करली है। हे द्विज ! वहीं पर देवगण ब्राह्मण और गुरु वर्ग सब स्थित रहा करते हैं। समस्त तीर्थ अतिथि के चरणों में निरन्तर निश्चित रूप से स्थित रहा करते हैं। गृही उसके चरणों के धौत जल से सिश्रित तीर्थों का लाभ किया करता है ॥३४॥३५॥

सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
अतिथिः पूजितोयेन स्वात्मशक्त्या यथोचितम् ॥३६॥
महादानानि सर्वाणि कृतानि तेन भूतले।
अतिथिः पूजितो येने भारते भक्तिपूर्वकम् ॥३७॥
नानाप्रकारपुण्यानि वेदोक्तानिचयानिच।
अन्येवातिथिसेवायाःकलां नार्हन्तिषोड़शीम् ॥३८॥
अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्त्तते।
पितृदेवाग्नयः पश्चाद्गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥३९॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
तानि सर्वाणि लभते नाऽभ्यच्चर्यातिथिमीप्सितम् ॥४०॥

जिसने अपनी शक्ति से अतिथि की पुजा यथा विधि करली है वह समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका है और सभी यज्ञों में दीक्षित भी हो गया है। उस प्रतिथि के सत्कार करने वाले ने इस भूतल में महादान पूर्ण कर लिये हैं जिसने इस भारत में विधि के साथ भक्ति पूर्वक अपने द्वार पर आये हुए अतिथि की पुजा की है ॥३६॥३७॥

अन्य अनेक प्रकार के पुण्य जोकि वेदो मे कह गये हैं अथवा अन्य हैं वे सभी अतिथि की सेवा की सोलहवी कला के भी योग्य नही होते हैं ॥३८॥ जिसके घर से बिना पूजा हुआ अतिथि वापिस चला जाता है तो उसके पीछे पितृ-देव-अग्नि और गुरुगण भी सब अपूजित ही लौट जाया करते हैं ॥३९॥ जो भी कोई ब्रह्म हत्या आदि पाप हैं उनको अभीष्ट अतिथि की अर्चना करने से मनुष्य कभी नही भोगता है अर्थात् अतिथि की पूजा से बडे मह पापो का क्षय हो जाता है ॥४०॥

जनासि वेदान् वेदज्ञे वेदोक्तं कुरुपूजनम् ।
क्षुत्तृड्भ्यां पीडितोमात्तर्वचनञ्च श्रुतौश्रुतम् ।४१।
व्याधियुक्तो निराहारो यदा वाऽनशनव्रतो ।
मनोरथेनोपहार भोक्तुमिच्छति मानव ।४२।
भोक्तुमिच्छसि किं विप्र त्रैलोक्ये चेत् सुदुर्लभम् ।
दास्यामि भक्तं त्वामद्य मज्जन्म सफल कुरु ।४३।
व्रते सुव्रतया सर्वमुपहार समाहृतम् ।
नानाविध मिष्टमिष्ट भोक्तु श्रुत्वा समागतः ।४४।
सुव्रते तव पुत्रोऽहमग्रे मा पूजयिष्यसि ।
दत्वामिष्टानि वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानिच ।४५।
ताताः पञ्चविधाः प्रोक्ता मातरो विविधा स्मृताः ।
पुत्रः पञ्चविध साध्वि कथितो वेदवादिभिः ।४६।
विद्यादाताऽन्नदाताच भयत्राताच जन्मद. ।
कन्यादाताच वेदोक्त नराणा पितर.स्मृताः ।४७।
गुरुपत्नीगर्भधात्री स्तनदात्रीपितु· स्वसा ।
स्वसा मातुः सपत्नीच पुत्रभार्य्याऽन्नदायिका ।४८।
भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्य्यज शरणागतः ।
धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्य्यजो धनभागिति ।४९।

ब्राह्मण ने कहा—हे वेदज्ञे ! आप तो स्वयं वेदो को खूब अच्छी तरह

जानती हैं अतः जो वेद में कहा है उसी पूजन को करो। हे माता ! मैं भूख और प्यास से पीड़ित हूँ। श्रुति में वचन सुना हैं कि व्याधि से युक्त बिना आहार वाला अथवा अनशन व्रत वाला जब होता है सो मानव मनोरथ से उपहार को खाने की इच्छा करता है ।४१।४२। पार्वती ने कहा—हे विप्र ! आप क्या खाना चाहते हे ? यदि वह तीन लोक में भी दुर्लभ होगा तो भी मैं आपको दूंगी। आज आप मेरा जन्म सफल करिए ।।४३।। ब्राह्मण ने कहा सुन्दर व्रत वाली आपने अपने इस व्रत में समस्त उपहार समाहृत किये हैं जोकि अनेक प्रकार के हैं उन्हें ही जो मिष्ट हैं और इष्ट भी हैं मैं सुनकर भोजन करने को आगया हूं ।।४४।। हे सुव्रते ! मैं आपका पुत्र हूं। अब सबसे पूर्व मेरा ही पूजा आप करेंगी और उस पूजा में मिष्ट पदार्थ जोकि त्रैलोक्य में दुर्लभ हो उन्हें मुझे समर्पित करेंगी।४ । पिता तो पांच प्रकार के बताये गये हैं किन्तु माताएँ अनेक प्रकार की कही गयीं हैं। हे साध्वि ! पुत्र भी पांच तरह का कहा गया है जोकि वेद वादियों के द्वारा कहा गया है।४५।४६। विद्या के दान करने वाला-अन्न के दान वाला-भय से रक्षा करने वाला-जन्म देने वाला और वह जो अपनी कन्या का दान करता है। ये मनुष्यों के पांच प्रकार के पिता वेदों में कहे गये हैं।४७। गुरु की पत्नी-गर्भधारण करने वाली-स्तन का दूध पिलाने वाली—पिता की वहिन—माता की वहिन माता की सपत्नी-पुत्र भार्या-अन्न देने वाली ये माताएँ हे।४८ भृत्य—शिष्य-पोष्य-वीर्य से उत्पन्न-शरण में आया हुआ ये चार धर्म पुत्र हैं तथा जो अपने वीर्य से समुत्पन्न होता है वह पिता के धन का भागी होता है ।।४६।।

क्षुत्तृड्भ्यांपीड़ितो मातर्वृद्धोऽहं शरणागतः।
साम्प्रततव वन्ध्याया अनाथः पुत्रएवच ।५०।
पिष्टकं परमान्नञ्च सुपक्वानि फलानि च।
नानाविधानि पिष्टानि कालदेशोद्भवानिच।५१।

पक्वान्न स्वस्तिक क्षीरमिक्षुमिक्षुविकारजम् ।
घृत दधि च शाल्यन्न घृतपक्वञ्चव्य जनम् ।५२।
लड्डुकानि तिलानाञ्च भृष्टान्नै: सगुडानिच ।
ममाज्ञातानि वस्तूनि सुधयातुल्यकानिच ।५३।
ताम्बूलञ्चावर रम्य कर्पूरादिसुवासितम् ।
जलसुनिर्म्मलस्वादु द्रव्याण्येतानिवासितम् ।५४।
द्रव्याणि यानि भुक्त्वा मे चारु लम्बोदर भवेत् ।
अनन्तरत्नोद्भवजे तानि मह्य प्रदास्यसि ।५५।
स्वामी ते त्रिजगत्कर्त्ता प्रदाता सर्वसम्पदाम् ।
महालक्ष्मीस्वरूपात्व सर्वैश्वर्य्यं प्रदायिनी ।५६।

हे माता ! मैं तो भूख-प्यास से पीड़ित हू-वृद्ध हू और शरण मे आया हुआ हू । इस समय आप वन्ध्या हैं और मैं अनाथ हू इस लिये आपका पुत्र ही हू ॥५०॥ पिष्टक-परमान्न-सुपक्व फल-अनेक तरह के पिष्ट जो जिस समय मे और देश मे उत्पन्न हो-पक्व अन्न-स्वस्तिक-क्षीर-ईख-ईख के विकार (खाड-मिश्री-गुड़) से बने हुए पदार्थ घृत-दधि-शाल्यन्न-घृत मे पका हुआ व्यञ्जन-तिल के लड्डू भुने हुए अन्न के गुड के सहित मोदक ये वस्तुएँ मेरा अज्ञात हैं और मुझे सुधा के समान प्रिय लगती हैं ।५१।५२।५३। श्रेष्ठ ताम्बूल जोकि कर्पूर आदि से सुवासित हो मुझे बहुत प्रिय लगता है निमल-स्वादु जल जो सुगन्धित द्रव्यो से सुवासित हो मुझे प्रिय है जिन उपर्युक्त द्रव्यो को खाकर मेरा उदर लम्बा हो जायगा । हे अनन्त रत्नोद्भवजे ! आप उन्हे मुझे प्रदान करेंगी । आपका स्वामी तो तीनो जगत के करने वाले हैं और सम्पूर्ण सम्पदाओ के प्रदान करने वाले हैं । आप भी महा लक्ष्मी के स्वरूप वाली हैं जोकि समस्त ऐश्वर्यों के देने वाली हैं ॥५४॥५५॥५६॥

रत्नसिंहासनं रम्यममूल्यं रत्नभूषणम् ।
वह्निशुद्धांशुकं चारु प्रदास्यसि सुदुर्लभम् ।५७।
सुदुर्लभं हरेर्मन्त्रं हरौ भक्तिं दृढां सति ।
हरिप्रिया हरेः शक्तिस्त्वमेव सर्वदा सदा ।५८।
ज्ञानं मृत्युञ्जयं नाम दातृशक्तिं सुखप्रदाम् ।
सर्वसिद्धिञ्च किं मातरदेयं स्वसुताय च ।५९।
मनः सुनिर्मलं कृत्वा धर्मे तपसि सन्ततम् ।
श्रेष्ठे सर्वं करिष्यामि न कामे जन्महेतुके ।६०।
स्वकामात् कुरुते कर्म कर्मणो भोग एव च ।
भोगौ शुभाशुभौ ज्ञेयौ तौ हेतू सुखदुःखयोः ।६१।
दुःखं न कस्माद्भवति सुखं वा जगदम्बिके ।
सर्वं स्वकर्मणो भोगस्तेन तद्विरतो बुधः ।६२।
कर्म निर्मूलयन्त्येव सन्तो हि सततं मुदा ।
हरिभावनबुद्ध्या तत्तपसा भक्तसङ्गतः ।६३।

मुझे आप परमरम्य रत्नों से निर्मित एकसिंहासन दो-रत्नों के भूषण और अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र जो सुन्दर हों एवं दुर्लभ हों उनको मुझे प्रदान करेंगी ॥५७॥ हे सति ! हरिका मन्त्र सुदुर्लभ है और हरि में दृढ़ भक्ति सुदुर्लभ होती है । आपतो हरि की प्रिया और हरि की शक्ति साक्षात् सदा स्वयं ही है ।५८। मृत्युञ्जय नाम वाला ज्ञान-सुख प्रदा दतृशक्ति और आप सर्व सिद्धि स्वरूपिणी हैं । हे माता ! माता आपको अपने पुत्र के लिये क्या अदेय है अर्थात् कुछ भी अदेय नहीं है ।५९। मन को सुनिर्मल करके श्रेष्ठ धर्म में-तप में निरन्तर सब कुछ करूंगा जन्म हेतुक काम में नहीं ।६०। मानव अपने काम से कर्म करता है और भोग कर्म का ही होता है । भोग शुभ और अशुभ दो प्रकार का होता है । ये दोनों ही सुख और दुःख के हेतु होते है ।६१। हे जगदम्बिके ! किससे दुःख नहीं होता है अथवा

सुख होता है। सब अपने कर्म का भोग है। इससे बुध उस से विरत होता है।६१। सन्त पुरुष प्रसन्नता से निरन्तर कर्म का निर्मूलन कर दिया करते है और यह निर्मूलन हरि की मानना की बुद्धि से-तप से और भक्तो के सग से ही होता है ॥६२॥६३॥

इन्द्रियद्रव्यसयोगसुखं विध्वसनावधि ।
हरिसलापरूपञ्च सुख तत्सर्वकालिकम् ।६४।
हरिस्मरणशीलानां नायुर्याति सता सति ।
न तेषामोश्वर. कालो नचमृत्युञ्जयो ध्रुवम् ।६५।
चिर जोवन्ति ते भक्ता भारतेचिरजोविन: ।
सर्वसिद्धिञ्च विज्ञाय स्वच्छन्दसर्वगामिन: ।६६।
जातिस्मरा हरेर्भक्ता ज्ञानन्तिकोटिजन्मन. ।
कथयन्ति कथा जन्म लभन्तेस्वेच्छयामुदा ।६७।
पर पुनन्ति ते पूतास्तीर्थानि स्वावलीलया ।
पुण्यक्षेत्रेऽत्र सेवार्थं परार्थश्च भ्रमन्ति ते ।६८।
वैष्णवाना पदस्पर्शात् सद्य: पूता वसुन्धरा ।
काल गोदोहनमात्र तीर्थं यत्र वनन्तित ।६९।
गुरोरास्याद्विष्णुमन्त्र: श्रुतो यस्य प्रविश्यति ।
तं वैष्णवं तीर्थपूत प्रवदन्ति पुराविदा ।७०।

इन्द्रिय और द्रव्य के सयोग के होने वाला सुख विध्वसन की अवधि तक ही होता है। हरि के सलाप रूप वाला सुख सर्व काल मे होने वाला होता है ॥६४॥ हे सति! हरि के स्मरण करने के स्वभाव वाले सत्पुरुषो की आयु नही जाया करती है। भक्तो का काल ईश्वर नही होता है और मृत्युञ्जय भी निश्चय ही नही होता है ।६५। हरि के वे भक्त भारत मे चिरजीवो बहुत अधिक समय तक जीवित रहा करते हैं। वे समस्त सिद्धि को जानकर स्वच्छन्दता पूर्वक सर्व-गामी हुआ करते हैं ।६६। जातिस्मर हरि के भक्त कोटिजन्म को जानते

हैं और कथा को कहते हैं तथा अपनी इच्छा से आनन्द पूर्वक जन्म का लाभ किया करते हैं ।६७। ऐसे परम पवित्र भक्तगण अपनी लीला से तीर्थों को पवित्र किया करते हैं। वे यहां पर पुण्यक्षेत्र में सेवा के लिये और पर-उपकार के लिये भ्रमण किया करते हैं। ।६८। वैष्णव गण के चरण स्पर्श से यह वसुन्धरा तुरन्त ही पवित्र हो जाती है जहां कि तीर्थ में वे गोदोहन मात्र समय तक ही निवास करते हैं ।६९। गुरु के मुख से सुना हुआ विष्णु मन्त्र जिसके अन्दर प्रवेश करता है उस वैष्णव को पुरावेत्ता विद्वान तीर्थ पूत कहते हैं ।७०।

पुरुषाणां शतं पूर्वमुद्धरन्ति शतं परम् ।
लीलया भारते भक्त्या सोदरान्मातरं तथा ।७१।
मातामहानां पुरुषान् दशपूर्वान् दशापरान् ।
मातुः प्रसूमुद्धरन्ति दारुणात् यमताड़नात् ।७२।
भक्तदर्शनमाश्लेषं मानवाः प्राप्नुवन्ति ये ।
ते याताः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षिताः ।७३।
न लिप्ताः पातके भक्ताः सन्ततं हरिमानसाः ।
यथाग्नयः सर्वभक्ष्या यथाद्रव्येषु वायवः ।७४।
त्रिकोटि जन्मनोजन्तुः प्राप्नोतिजन्ममानवम् ।
प्राप्नोतिभक्तसङ्गं स मानुषेकोटिजन्मनः ।७५।
भक्तसङ्गात् भवेत् भक्तेरङ्कुरो जोविनः सति ।
अभक्तदर्शनादेव सच प्राप्नोतिशुष्कताम् ।७६।
पुनः प्रफुल्लतां याति वैष्णवालापमात्रतः ।
अङ्कुरश्चाविनाशी च वर्द्धते प्रतिजन्मनि ।७७।

ऐसे महापुरुष भक्त पहिले और आगे होने वाले सौ-सौ पुरुषों का उद्धार कर देते हैं। भारत में वे अपनी लीला से ही सगे भाइयों और माता का उद्धार कर देते हैं ।७१। माता यह के दशपूर्व और दश पर-पुरुषों का उद्धार कर देते हैं। माता को जननी को दारुण यम की

ताडना से उद्धृत कर देते हैं ।७२। जो मानव भक्तों के दर्शन तथा माइलेश को प्राप्त करते हैं वे समस्त तीर्थों के गमन एवं स्नान का फल प्राप्त कर लेते हैं और सब प्रकार के यज्ञों की दीक्षा प्राप्त करने के पुण्य का लाभ किया करते हैं ।७३। भक्त लोगों का मन निरन्तर हरि के चरणों में संलग्न रहता है अतः वे कभी भी पातकों से लिप्त नहीं होते हैं। जिस तरह अग्नि सबका भक्षण करने वाला होता है और उस पर कुछ भी प्रभाव किसी का नहीं होता है और वायु द्रव्यों में रहता है उसी तरह भक्त होते हैं ।७४। तीन करोड़ जन्मों के अनन्तर यह जन्तु मानव का जन्म ग्रहण करता है। इस मानुष जीवन में भी कोटि जन्म के अनन्तर वह भक्तों का संग पाता है ।७५। भक्तों के संग से भक्ति का अंकुर जीव के हृदय में उत्पन्न हुआ करता है। हे सति ! वह अंकुर अभक्तों के दर्शन से ही शुष्कता को प्राप्त करता है। ७६। वैष्णवों के साथ आलाप मात्र से ही वह अंकुर पुनः प्रफुल्लता को प्राप्त कर लेता है। यह अंकुर अविनाशी होता है और प्रत्येक जन्म में बढ़ा करता है ।।७७।।

तत्तरोर्वर्द्धमानस्य हरिदास्य फलं सति ।
परिणामे भक्तिपाके पार्षदश्च भवेद्धरे ।७८।
महति प्रलये नाशो न भवेत्तस्य निश्चितम् ।
सर्वसृष्टेश्च संहारे ब्रह्मलोकस्य ब्रह्मणः ।७९।
तस्मान्नारायणे भक्तिं देहिमामम्बिके सदा ।
न भवेद्विष्णुभक्तिश्च विष्णुमाये त्वयाविना ।८०।
तद्वन्त लोक शिक्षार्थं स्वतपस्तवपूजनम् ।
सर्वेषां फलदातो त्वं नित्यरूपा सनातनी ।८१।
गणेशरूपा श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवात्मज ।
त्वत्क्रोडमागत क्षिप्रमित्युक्त्वान्तरधीयत ८२।
कृत्वान्तर्द्धानमीशश्च बालरूपं विधाय सः ।
जगाम पार्वतीतल्पं मन्दिराभ्यन्तरस्थितम् ।८३।

तल्पस्थे शिववीर्य्ये च मिश्रितः स बभूव ह ।
ददर्श गेहशिखरं प्रसूतो बालको यथा ।८४।

हे सति ! इस तरह बढ़े हुए इस भक्ति के वृक्ष का फल हरि का दास्य भाव होता है । जब यह भक्ति पाक के परिणाम होने पर वह फिर हरि का पार्षद हो जाता है ।७८। उसका महान् प्रलय में भी नाश निश्चित रूप से नहीं होता है जबकि समस्त सृष्टि का संहार होता है उस में ब्रह्मा के ब्रह्म लोक का भी नाश हो जाया करता है ।७६। हे अम्बिके ! उस नारायण में भक्ति मुझे आप दीजिए । हे विष्णुमाये ! आपकी कृपा के बिना विष्णु में भक्ति नहीं हुआ करती है ।८०। विष्णु की भक्ति वाले को लोक की शिक्षा के लिये अपना तप-आपका पूजन इन सबके फलों को देने वाली नित्य रूप से संयुत सनातनी आप ही हैं ।८१। गणेश के रूप वाले श्रीकृष्ण कल्प-कल्प में आपके पुत्र होंगे जोकि इसी समय तुम्हारी गोद में आगया है-इतना कहकर वह अन्तर्धान हो गया था ।८२। ईश ने अपना अन्तर्धान किया था और बाल रूप धारण करके पार्वती की शय्या पर मन्दिर के अन्दर स्थित होने के लिये चले गये थे ।।८३।। उस शय्या में जो शिव का वीर्य पड़ा हुआ था उसमें वह मिश्रित हो गया था । जिस तरह कोई प्रसूत बालक हो वैसे ही गेह के शिखर को उसने देखा था ।।८४।।

शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः ।
सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षूरश्मिविवर्द्धकः ।८५।
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः ।
मुखं निरुपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ।८६।
सुन्दरे लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दके ।
ओष्ठाधरपुटं बिभ्रत् पक्वबिम्बविनिन्दकम् ।८७।
कपालञ्च कपोलञ्च परमं सुमनोहरम् ।
नासाग्रं रुचिरं बिभ्रत् खगेन्द्रचञ्चुनिन्दकम् ।८८।

त्रैलोक्येषु निरुपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम् ।
शयानः शयने रम्ये प्रेरयन् हस्तपादकम् ।८६।
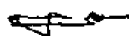
इस बालक की शुद्ध चम्पक के पुष्प के समान आभा थी और यह कोटि चन्द्रों के तुल्य प्रभा वाला था । सब जनों के द्वारा सुख दृश्य था जोकि चक्षुओं की रश्मियों का वर्धन करने वाला था ॥८५॥ इस बालक का शरीर अत्यन्त सुन्दर था तथा कामदेव को भी अपने सौन्दर्य की छटा से मोहित करने वाला था । इसका मुख शरद् काल के चन्द्रमा को पराजित करने वाला निरुपम सुन्दर था ॥८६॥ यह सुन्दर पद्मा को विनिन्दित करने वाले सुन्दर नेत्रों को धारण करने वाला था । पके हुए बिम्ब के फल के समान रक्त इसके ओष्ठ और सुधर थे ॥८७॥ इस नवजात शिशु के कपाल और कपोल बहुत ही मनोहर थे । गरुड़ की चोंच से भी कहीं अधिक सुन्दर इसकी नासिका का अग्र भाग था । यह त्रिलोकी में निरुपम उत्तमशरीर के धारण करने वाला था । जोकि उस समय परम सुन्दर शय्या में अपने हाथ-पैरों को इधर उधर फेंकता हुआ सो रहा था ॥८८॥

४९-हरौ तिरोहिते पार्वत्या ब्राह्मणान्वेषणम् ।

हरौ तिरोहिते भूते दुर्गा च शङ्करस्तदा ।
ब्राह्मणान्वेषणं कृत्वा बभ्राम परितो मुने ।१
अये विप्रेन्द्रातिवृद्ध क्व गतोऽसि क्षुधातुरः ।
हे तात दर्शनं देहि प्राणांश्च रक्ष मे विभो ।२।
शिव शीघ्रं समुत्तिष्ठ ब्राह्मणान्वेषणं कुरु ।
क्षणमुन्मनसोरेषः प्रत्यक्षमावयोर्गतः ।३।

अगृहीत्वा गृहात् पूजां गृहिणोऽतिथिरीश्वर ।
यदि याति क्षुधार्त्तश्च तस्य किं जीवनं वृथा ।४।
पितरस्तन्न गृह्णन्ति पिण्डदानञ्च तर्पणम् ।
तस्याहुतिं न गृह्णन्ति वह्निः पुष्पं जलं सुराः ।५।
हव्यं पुष्पं जलं द्रव्यमशुचेश्च सुरासमम् ।
अमेध्यसदृशः पिण्डः स्पर्शनं पुण्यनाशनम् ।६।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी ।
कैवल्ययुक्ता सा दुर्गा तां शुश्राव शुचातुरा ।७।
शान्ता भव जगन्मातः स्वसुतं पश्य मन्दिरे ।
कृष्णं गोलोकनाथं तं परिपूर्णतमं परम् ।८।
सुपुण्यकव्रततरोः फलरूपं सनातनम् ।
यत्तेजो योगिनः शश्वत् ध्यायन्ते सन्ततं मुदा ।९।

इस अध्याय में हरि के तिरोहित हो जाने पर पार्वती के द्वारा ब्राह्मण के अन्वेषण का वर्णन किया जाता है । नारायण ने कहा—हे मुने ! हरि के तिरोहित हो जाने पर उस समय दुर्गा और शंकर ब्राह्मण का अन्वेषण करने के लिये चारों ओर भ्रमण करने लगे थे ॥१॥ पार्वती ने कहा—हे अतिवृद्ध विप्रेन्द्र ! आप क्षुधा से बहुत आतुर थे इस समय कहाँ चले गये हैं ? हे तात ! हे विभो! आप अपना दर्शन दो और प्राणों की रक्षा करो ॥२॥ हे शिव ! आप शीघ्र उठिये और उस ब्राह्मण की खोज करिये । एक क्षण के लिये उन्मनस्क यह हम दोनों को प्रत्यक्ष हुआ था ॥३॥ हे ईश्वर ! गृही के घर से यदि कोई अतिथि उसकी पूजा को ग्रहण न करके यों ही भूखा चला जाता है तो उस गृही का क्या जीवन है अर्थात् उसका जीवन व्यर्थ ही है ॥४॥ उस गृही के पितृगण पिण्डदान और तर्पण को ग्रहण नहीं किया करते हैं—अग्नि उसकी दी हुई आहुति को और देवगण पुष्प तथा जल आदि को स्वीकार नहीं करते हैं ॥५॥ जो

अशुचि होता है उसका हव्य-पुष्प और जल यह सब सुरा के समान होता है। उसका दिया हुआ पिण्ड भी अमेध्य के सदृश होता है और उसका स्पर्श करने से पुण्य का नाश होता है ॥६॥ इसी बीच म वहाँ पर आकाशवाणी हुई थी। शोक से आतुर कैवल्य युक्ता दुर्गा देवी ने उसका श्रवण किया था ॥७॥ आकाशवाणी ने कहा—हे जगत की माता ! आप शान्त हो जाइये। मन्दिर म आकर अपने पुत्र के स्वरूप मे उस परिपूर्ण तम-गोलोक के नाथ परम कृष्ण को देखो। यह सुपुण्यक नाम वाले वृत रूपी वृक्ष का ही फल है-जो सनातन है और जिस तेज को योगी लोग बडे आनन्द से निरन्तर ध्यान किया करते हैं ॥८।६॥

ध्यायन्तेवैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
यस्यपूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पेच पूजनम् ।१०।
यस्य स्मरणमात्रे " सर्वविघ्ना विनश्यति।
पुण्यराशिस्वरूपञ्च स्वसुत पश्य मन्दिरे ।११।
कल्पे कल्पे ध्यायसे य ज्योतिरूप सनातनम्।
पश्यत्व मूक्तिद पुत्र भक्तानुग्रहविग्रहम् १२।
तव वाञ्छापूर्णवीज तपः कल्पतरो फलम्।
सुन्दर स्वसुत पश्य कोटिकन्दर्पनिन्दकम् ।१३।
नाय विप्रः क्षुधार्तश्च विप्ररूपी जनार्दनः।
किं वा विलपसे दुर्गे क्ववावृद्ध.क्वचातिथिः
सरस्वतीत्येवमुक्त्वा विरराम च नारद ।१४।

इसी तेज का वैष्णव देवगण ब्रह्मा—विष्णु और शिव आदि ध्यान किया करते हैं और जिस पूज्य का पूजन कल्प-कल्प मे सबसे आगे होता है ।१०। जिसके स्मरण मात्र से समस्त विघ्न विनष्ट हो जाते हैं। ऐसे पुण्य की राशि क स्वरूप वाले अपने पुत्र को मन्दिर म जाकर देखो ।११। प्रति कल्प मे जिस ज्योतिरूप सनातन का तू ध्यान

किया करती है उस भक्त के ऊपर अनुग्रह करके विग्रह धारण करने वाले मुक्तिदाता पुत्र का दर्शन करो ।१२। यह तेरी वाञ्छा का पूर्ण बीज तथा तपस्या रूपी कल्प वृक्ष का फल है। ऐसे करोड़ों कन्दर्पों को पराजित करने वाला यह तुम्हारा पुत्र है इस परम सुन्दर पुत्र का दर्शन करो ।१३। यह कोई क्षुधा से आर्त्त ब्राह्मण नहीं है। यह तो विप्र के रूप को धारण करने वाला जनार्दन ही था। हे दुर्गे ! तू यह क्या विलपन कर रही है कि वह वृद्ध अतिथि कहाँ चला गया है। हे नारद ! इस प्रकार से सरस्वती कह कर उस समय शान्त हो गई थी ।।१४।।

त्रस्ता श्रुत्वाऽकाशवाणीं जगामस्वालयं सती ।
ददर्श बालं पर्य्यङ्के शयानसस्मितंमुदा ।।१५।।
पश्यन्तं गेहशिखरं शतचन्द्रसमप्रभम् ।
स्वप्रभापटलेनैव द्योतयन्तं महीतलम् ।।१६।।
कुर्वन्तं भ्रमणं तल्पे पश्यन्तं स्वेच्छया मुदा ।
उमेति शब्दं कुर्वन्तंरुदन्तं तं स्तनार्थिनम् ।।१७।।
दृष्टवा तमद्भुतं रूपं त्रस्ता शङ्करसन्निधिम् ।
गत्वेत्युवाच प्राणेशं मङ्गलं सर्वमंगला ।।१८।।
गृहमागच्छ प्राणेश तपसां फलदायकम् ।
कल्पे कल्पे ध्यायसे यं तं पश्यागत्यमन्दिरम् ।१९।
शीघ्रं पुत्रमुखं पश्य पुण्यबीजं महोत्सवम् ।
पुन्नामनरकत्राणं कारणं भवतारणम् ।।२०।।
स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् ।
पुत्रसुदर्शनस्यास्य कलां नार्हति षोड़शीम् ।।२१।।

इसके अनन्तर इस आकाश वाणी का श्रवण कर वह सती त्रस्त होती हुई अपने मन्दिर में चली गई थी और उसने स्मित से युक्त आनन्द के सहित शिशु को पर्यङ्क पर शयन करते हुये देखा था ।।१५।।

जो बालक अपने गृह के शतचन्द्र तुल्य शिखर को देख रहा था और अपनी प्रभा के समूह के द्वारा उस महीतल को द्योतित कर रहा था ॥१६॥ पार्वती ने शय्या पर आनन्द पूर्वक स्वेच्छा से भ्रमण करते हुये तथा 'उमा'—इस शब्द को कहकर स्तन का पान करने के लिये रुदन करने वाले शिशु का वहां पर दर्शन किया था ॥१७॥ उस समय वहां पर ऐसे परम अद्भुत शिशु को देखकर वह त्रस्त हो गई थी और शङ्कर के समीप में जाकर सर्व मंगला दुर्गा अपने प्राणों के नाथ मंगल स्वरूप शिव से बोली ॥१८॥ पार्वती ने कहा—हे प्राणेश ! घर में आइये, जिसका आप प्रति कल्प में ध्यान किया करते हैं उस तपों के फलों के प्रदान करने वाले को अपने मन्दिर में आकर दर्शन करिये ॥१९॥ पुण्य के बीज महान् उत्सव के रूप वाले पुत्र का मुख देखिये। यह पुन्नाम वाले नरक से तारण करने वाला और संसार से उद्धार करने का कारण स्वरूप है ॥२०॥ समस्त तीर्थों में स्नान तथा सम्पूर्ण यज्ञों में दीक्षित होना पुत्र के दर्शन से होने वाले पुण्य की सोलहवीं कला के योग्य भी नहीं है ॥२१॥

सर्वदानेन यत्पुण्यं यत्पृथिव्याः प्रदक्षिणात् ।
पुत्रदर्शनपुण्यस्य कला नार्हति षोड़शीम् ॥२२॥
सर्वैस्तपोभिर्यत्पुण्यं यदेवानशनैर्व्रतैः ।
सत्पुत्रोद्भवपुण्यस्य कला नार्हति षोडशीम् ॥२३॥
यद्विप्रभोजनैः पुण्यं यदेव सुरसेवनैः ।
सत्पुत्रप्राप्तिपुण्यस्य कला नार्हति षोड़शीम् ॥२४॥
पार्वती वचनं श्रुत्वा शिवः प्रहृष्टमानसः ।
आजगाम स्वभवनं क्षिप्रं स कान्तया सह ॥२५॥
ददर्श तल्पे स्वसुतं तप्तकाञ्चनसन्निभम् ।
हृदयस्थं च यद्रूपं तदेवाति मनोहरम् ॥२६॥
दुर्गा तल्पात् समादाय कृत्वावक्षसि तं सुतम् ।
चुचुम्बानन्दजलधौ निमग्नासेत्युवाचह ॥२७॥

प्राप्ति होने पर जो महान् आनन्द होता है वैसा ही इस समय मेरा मन आनन्द मग्न है ॥३३॥ प्यास से सूखे हुए गले वालों को अधिक समय के पश्चात् शीतल एवं सुवासित जल प्राप्त कर जो खुशी होती है वैसी ही प्रसन्नता मेरे मन को हो रही है ॥३४॥ दावाग्नि में पतित और निराश्रय में स्थितों को बिना अग्नि वाला आश्रय प्राप्त करके जो आनन्द होता है वैसा ही आज मुझ को हो रहा है ॥३५॥ चिरकाल तक भूखे और व्रत-उपवास करने वाले लोगों को सामने अच्छा अन्न देखकर जैसी प्रसन्नता होती है वैसी ही इस समय मेरे मन को हो रही है। इतना कहकर पार्वती ने उस अपने नव-जात बालक को गोद में ले लिया था ॥३६॥ परम आनन्द से पूर्ण मनवाली देवी ने प्रीति के साथ उसे स्तन दिया था। भगवान शंकर ने भी उस बालक को गोद में बिठा लिया और बहुत प्रसन्न मन वाले हुए थे ॥३७॥

५०-गणेशदर्शनार्थं शनैश्चरागमनम्।

हरिस्तमाशिषं कृत्वा रत्नसिंहासने वरे।
देवैश्च मुनिभिः सार्द्धमुवास तत्र संसदि ॥१॥
दक्षिणे शङ्करस्तस्य वामे ब्रह्मा प्रजापतिः।
पुरतो जगतां साक्षी धर्मो धर्मवतां वरः ॥२॥
आवां धर्मसमीपे च सूर्य्य शक्रः कलानिधिः।
देवश्चमुनयोब्रह्मन्नूपुःशैलाःसुखासने ॥३॥
ननर्त्त नर्त्तकश्रेणी जगुर्गन्धर्वकिन्नराः।
श्रुतिसारं श्रुतिसुखं तुष्टुवुः श्रुतयो हरिम् ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र द्रष्टुं शङ्करनन्दनम्।
आजगाम महायोगी सूर्य्यपुत्रः शनैश्चरः ॥५॥

अत्यन्तनम्रवदन ईषन्मुद्रितलोचनः।
अन्तर्बहिः स्मरन् कृष्ण कृष्णैकगतमानसः ॥६॥
तपःफलाशी तेजस्वी ज्वलदग्निशिखोपमः।
अतीवसुन्दरः श्याम पीताम्बरधरो वर ॥७॥
प्रणम्य विष्णु ब्रह्माण शिव धर्म रवि सुरान्।
मुनीन्द्रान् बालक द्रष्टुं जगाम तदनुज्ञया ॥८॥

इस अध्याय मे गणेश के दर्शन के लिये शनैश्चर के आगमन का निरूपण किया जाता है। नरायण ने कहा हरि ने उसको आशीर्वाद देकर फिर श्रेष्ठ रत्नो के सिंहासन पर देवगण और मुनि मण्डल के साथ वहां ससद म निवास किया था।१। उनके दक्षिण मे शकर वाम भाग मे प्रजापति ब्रह्मा-सामने जगतो की साक्षी धर्म था जो धर्म वालो म सर्व श्रेष्ठ है ॥२॥ धम के समीप में सूर्य-इन्द्र और कलानिधि थे। हे ब्रह्मन्! देवगण-मुनि समूह तथा शैल सभी उस सुखासनपर स्थित होकर निवास करते थे ॥३॥ वहां पर नृत्य करने वालो की श्रेणी नृत्य करती थी—गन्धर्व और किन्नर गान करते थे तथा श्रुतियां श्रवण मे सार रूप एव सुख प्रद हरि की स्तुति कर रही थी ॥४॥ इसी बीच में वहा पर शकर के पुत्र का दर्शन करने के लिये महान् योगी सूर्य का पुत्र शनैश्चर आ गया था ॥५॥ यह अत्यन्त नम्र मुख वाला—थोडी आखो को मूंदे हुए—बाहिर और भीतर कृष्ण का स्मरण करने वाला कृष्ण ही में मन लगाने वाला था ॥६॥ यह तप के फल की आशा वाला था और तेजस्वी था जैसे जलती हुई अग्नि की शिखा हो—अत्यन्त सुन्दर श्याम वर्ण वाला और पीताम्बर को धारण करने वाला परम श्रेष्ठ था।७। उसने वहा आकर विष्णु-ब्रह्मा-शिव-धर्म-रवि समस्त सुर और सब मुनियो को प्रणाम किया था फिर उनकी आज्ञा से बालक को देखने के लिये गया था ॥८॥

प्रधानद्वारमासाद्य शिवतुल्यपराक्रमम् ।
द्वारिणं शूलहस्तञ्च विशालाक्षमुवाच ह ।।९।।
शिवाज्ञया शिशुं द्रष्टुं यामि शङ्करकिङ्कर ।
विष्णुप्रमुखदेवानां मुनीनामनुरोधतः ।।१०।।
आज्ञां देहि च मां गन्तुं पार्वतीसन्निधिं बुध ।
पुनर्यामि शिशुं दृष्ट्वा विषयासक्तमानसः ।।११।।
आज्ञावहो न देवानां नाहं शङ्करकिङ्करः ।
द्वारं दातुं न शक्तोऽहं विनाऽऽत्ममातुराज्ञया ।।१२।।
इत्युक्त्वाभ्यन्तरभ्येत्य प्रेरितः स शिवाज्ञया ।
ददौ द्वारं ग्रहेशायविशालाक्षो मुदा ततः ।।१३।।
शनिरभ्यन्तरं गत्वा ननाम नम्रकन्धरः ।
रत्नसिंहासनस्थाञ्च पार्वतीं सस्मितां मुदा ।।१४।।

यह शनैश्चर प्रधान द्वार पर पहुँचकर इसने शिव के ही तुल्य पराक्रम वाले-शूल हाथ में लिये हुये द्वारपाल विशालाक्षण को देखकर उससे यह बोला शनैश्चर—हे शङ्कर के सेवक ! मैं शिवकी आज्ञा से शिशु का दर्शन करने के लिये जा रहा हूँ। इस आशा में विष्णु प्रमुख देवों का तथा मुनियों का भी अनुरोध है ।।९।।१०।। हे वुद्ध ! मुझे आप अब पार्वती के समीप में जाने की आज्ञा दे दो। मैं विषयों में आसक्तमन वाला शिशु को देखकर चला जाऊंगा ।।११।। विशालाक्ष ने-कहा—मैं देवों की आज्ञा का वहन करने वाला नहीं हूँ और न मैं कोई शिव का ही सेवक हू। मैं अपनी माता की आज्ञा के विना द्वार के अन्दर जाने की आज्ञा देने में असमर्थ हूँ ।।१२।। इतना कहकर वह अन्दर गया और शिवा की आज्ञा से प्रेरित होते हुये उस विशालाक्ष ने प्रसन्नता से फिर उस ग्रहेश शनैश्चर के लिये द्वार खोल दिया था ।।१३।। शनि ने अन्दर प्रवेश करके नम्रमस्तक होकर प्रसन्नता से स्मित से युक्त और रत्नों के सिंहासन पर स्थित पार्वती को प्रणाम किया ।।१४।।

सखिभि.पञ्चभि.शश्वत्सेविताश्वेतचामरैः ।
सखिदत्तञ्चताम्बूलभुक्तवन्तीसुवासितम् ॥१५॥
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिताम् ।
पश्यन्ती नर्त्तकीनृत्य पुत्रकृत्वाचवक्षसि ॥१६॥
नत सूर्य्यसुत दृष्ट्वा दुर्गा सभाष्य सत्वरम् ।
शुभाशिषं ददौ तस्मैपृष्टातन्मङ्गलशुभम् ॥१७॥
कथमानम्रवक्त्रस्त्व श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।
कि न पश्यसि मा साधो बालक वा ग्रहेश्वर ॥१८॥
सर्वे स्वकर्मणा साध्वि भुञ्जते तपसः फलम् ।
शुभाशुभञ्चयत्कर्मकोटिकल्पैर्नलुप्यते ॥२०॥
कर्मणा जायते जन्तुर्ब्रह्मेन्द्रसूर्य्यमन्दिरे ।
कर्मणा नरगेहेषु पश्वादिषु च कर्मणा ॥२०॥
कर्मणा नरक याति वैकुण्ठ याति कर्मणा ।
स्वकर्मणाचराजेन्द्रोभृत्यश्चापि स्वकर्मणा ॥२१॥

वहा पर पांच सखियो के द्वारा पार्वती सेवित हो रही थी जो निरन्तर श्वेत चामरो के द्वारा उनकी सेवा मे तत्पर थी 'पार्वती देवी सखियो के द्वारा प्रदत्त सुवासित ताम्बूल का भक्षण कर रही थी ॥१५॥ वन्हि के समान शुद्ध वस्त्र धारण करने वाली और रत्नो के सुन्दर आभरणो से भूषित थी। वह अपने पुत्र को गोद में लिए हुये नर्त्तकियो के द्वारा किए हुये नृत्य को देख रही थी ॥१७॥ पार्वती दुर्गा ने अपने चरणों में सूर्य के पुत्र को नत देखकर शीघ्र ही उससे भाषण किया और शुभ आशीर्वाद देकर उससे उसका शुभ कुशल सम्वाद् पूछा था ॥१८॥ पार्वती ने कहा—हे ग्रहेश्वर ! हे साधो ! तुम क्यो नम्र मुख वाले हो रहे हो—मैं अब यह सुनना चाहती हूँ। क्या तुम मुझे अथवा मेरे बालक को नही देख रहे हो ? शनि ने कहा—हे साध्वि ! सब अपने कर्म से तप का फल भोगते हैं। शुभ या अशुभ जो भी कर्म होता है वह करोड

कल्पों में भी लुप्त नहीं होता है। कर्म से ही जन्तु ब्रह्मा इन्द्र और सूर्य के मन्दिर में जन्म ग्रहण किया करता है कर्म के द्वारा ही मनुष्य के घर में तथा पशु आदि में जन्म लेता है ॥१९॥२०॥ कर्म के कारण यह जीवात्मा नरक में पतित होता है और कर्म के अनुसार ही वैकुण्ठ का वास प्राप्त किया करता है। अपने कर्मों के फल से ही राजेन्द्र होता है तथा कर्म से यह मृत्य होता है ॥२१॥

कर्मणासुन्दरःशश्वद्व्याधियुक्तःस्वकर्मणा ।
कर्मणाविषयीमातर्निर्लिप्तश्चस्वकर्मणा ॥२२॥
कर्मणा धनवान्लोकोदैन्ययुक्तःस्वकर्मणा ।
कर्मणासत्कुटुम्बीचकर्मणाबन्धुकण्टकः ॥२३॥
सुभार्य्यश्चसुपुत्रश्चसुखीशश्वत्स्वकर्मणा ।
अपुत्रकश्चकुस्त्रीवान्निस्त्रीकश्च स्वकर्मणा ॥२४॥
इतिहासश्चातिगोप्य शृणु शङ्करवल्लभे ।
अकथ्यं जननीसाक्षाल्लज्जाजनककारणम् ॥२५॥
आबालात् कृष्णभक्तोऽहं कृष्णध्यानैकमानसः ।
तपस्यासु रतः शश्वत् विषये विरतः सदा ॥२६॥
पिता ददौ विवाहे तु कन्यांश्चित्ररथस्य च ।
अतितेजस्विनी शश्वत् तपस्यासु रता सती ॥१७॥
एकदा सा ऋतुस्नाता सुवेश स्व विधाय च ।
रत्नालङ्कारसंयुक्ता मुनिमानसमोहिनी ॥२८॥

कर्मों से यह परम सुन्दर तथा कर्म वश ही व्याधि से युक्त रहता है। हे माता ! कर्म के अनुसार ही विषयों में आसक्त यह जन्तु होता है और कर्म के द्वारा निर्लिप्त रहा करता है ॥२२॥ कर्मों के ही फल से धनी और दीनता युक्त हुआ करता है कर्म से ही अच्छे कुटुम्ब वाला तथा बन्धु कण्टक होता है ॥२३॥ अच्छी भार्या वाला अच्छे पुत्र वाला भी सर्वदा अपने कर्मों के अनुसार होता

है। बिना पुत्र वाला बुरी पत्नी वाला और बिना स्त्री वाला भी अपने कर्म से हुआ करता है ॥२४॥ हे शङ्कर वल्लभे ! अब आप एक अत्यन्त गोपनीय इतिहास का श्रवण करिये। यद्यपि वह न कहने के योग्य है और माता के साक्षात्कार में लज्जाकाजनक भी है ॥२५॥ मैं बचपन से ही श्री कृष्ण का भक्त था और कृष्ण के ध्यान में ही मेरा मन एक निष्ठ रहता था। मैं निरन्तर तपस्या में रत रहता था और सदा विषयों से विरत रहा करता था ॥२६॥ पिता ने विवाह में मुझे चित्ररथ की कन्या दे दी थी। वह अत्यन्त तेजस्विनी और निरन्तर सती तपस्या में रत रहा करती थी ॥२७॥ एक बार वह ऋतु स्नाता हुई और अपना सुन्दर वेश बनाकर रत्नों के अलङ्कारों से भूषित होती हुई मुनियों के भी मन को मोहित करने वाली बन गई थी ॥२८॥

हरेः पादं ध्यायमानं सा मां पश्येत्युवाच ह।
मत्समीपं समागत्य सस्मितालोललोचना ॥२९॥
शशाप मामपश्यन्तं ऋतुनष्टा स्वकोपतः।
बाह्यज्ञानविहीनञ्च ध्यानैकतानमानसम् ॥३०॥
न दृष्टाहं त्वया येन न कृतमृतुरक्षणम्।
त्वया दृष्टञ्च यद्वस्तु मूढ सर्वं विनश्यति ॥३१॥
अहञ्च विरते ध्यानेऽतोषयं तां तदा सतीम्।
शापं मोक्तुं न शक्तासा पश्चात्तापं चकार ह ॥३२॥
तेन मातर्न पश्यामि किञ्चिद्वस्तु स्वचक्षुषा।
ततः प्रभृति नम्रास्यः प्राणिहिंसाभयादहम् ॥३३॥
शनैश्चरवचः श्रुत्वा जहास पार्वती मुने।
उच्चैः प्रजहसुः सर्वा नर्त्तकीकिन्नरीगणाः ॥३४॥

मैं हरि के चरणों का ध्यान करने में तत्पर था उसने मुझ से कहा—'मेरी तरफ देखो'। वह मेरे पास स्मित से युक्त चंचल नेत्रों

वाली आ गई थी ॥२६॥ जब मैंने उसकी ओर नहीं देखा तो ऋतु के नष्ट हो जाने वाली उसने क्रोधित होकर मुझे शाप दे दिया था। जब कि मैं वाहिरी ज्ञान से रहित और उस समय ध्यान ही में एक तान मन वाला था ॥३०॥ उसने यह शाप दिया था कि तूने मुझे नहीं देखा है और मेरे ऋतु काल की रक्षा इस समय नहीं की है। हे मूढ़ ! अब तू जिस भी किसी को देखेगा वह सभी नष्ट हो जायेगा ॥३१॥ मैं जब ध्यान से विरत हुआ तो इसके बाद मैंने उस सती को उस समय सन्तुष्ट किया था। वह फिर उस दिए हुये शाप से मुक्त कराने में समर्थ न हो सकी थी और पीछे उसने बड़ा पश्चाताप किया था ॥३२॥ इससे हे माता ! अपने नेत्र से किसी भी वस्तु को नहीं देखता हूँ। तभी से मैं प्रकृति से ही नीचे मुख वाला रहता हूँ क्यों कि मुझे सर्वदा प्राणियों की हिंसा होने का भय बना रहता है ॥३३॥ शनैश्चर के इस वचन का श्रवण कर हे मुने ! पार्वती बहुत हँसीं थीं और वहां पर जो नर्त्तकी किन्नरी के गण थे वे भी सब बड़ी जोर से हंस गये थे ॥३४॥

५१-शनिना बालकदर्शनम्

दुर्गा तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार हरिमीश्वरम्।
ईश्वरेच्छावशीभूत जगदेवेत्युवाचह ।१।
साचदेवी वशीभूता शनिं प्रोवाच कौतुकात् ।
पश्यमां मच्छिशुमिति निषेकः केनवार्य्यते ।२।
पार्वतीवचनं श्रुत्वा शनिर्मेनेहृदा स्वयम्।
पश्यामि किंन पश्यामि पार्वतीसुतमित्यहो ।३।
यदि वा नो मया दृष्टस्तस्य विघ्नो भवेद् ध्रुवम्।३।

इत्येवमुक्त्वा धर्मिष्ठो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम् ।
बालं द्रष्टुं मनश्चक्रे न बालमातरं शनिः ।४।
विषण्णमानसः पूर्वं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ।
सव्यलोचनकोणेन ददर्श च शिशोर्मुखम् ।५।
शनेश्च दृष्टिमात्रेण चिच्छेद मस्तकं मुने ।
चक्षुर्निवारयामास तस्थौ नम्रानन. शनिः ।६।
तस्थौ च पार्वतीक्रोडे तत्सर्वाङ्गः सलोहितः ।
विवेश मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलोकमीप्सितम् ।७।

इस अध्याय मे शनि के द्वारा बालक के दर्शन का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा—दुर्गा ने उस शनि के वचन का श्रवण कर ईश्वर श्री हरि का स्मरण किया था। यह समस्त जगत् ही ईश्वर की इच्छा के वशीभूत है-ऐसा कहा था ॥१॥ उस देवी ने वशीभूत होते हुए कौतुक से शनि से कहा—तू मुझे देख या मेरे शिशु को देख ले क्योंकि निषेक (शाप) तो किसके द्वारा वरण किया जाता है अर्थात् उसे कोई भी हटा ही नहीं सकता है ॥२॥ पार्वती के इस वचन को सुनकर शनि ने स्वयं मन से विचार किया कि देखूँ या पार्वती के पुत्र को नहीं देखूं यदि मैंने इसे नहीं देखा तो उसका निश्चय ही विघ्न हो जायगा ॥३॥ इस प्रकार से इतना कहकर धर्मिष्ठ उसने धर्म को साक्षी करके बालक को देखने का मन मे विचार किया था बालक की माता को देखने का शनि ने विचार नहीं किया था ॥४॥ पहिले विषाद से युक्त मन वाला होकर सूखे हुए कण्ठ ओष्ठ और तालु वाले शनि ने अपने दाईंने लोचन के कोने से शिशु का मुख देखा था ॥५॥ शनि की दृष्टि मात्र से ही हे मुने ! उस शिशु का मस्तक छिन्न हो गया था। शनि ने तुरन्त ही नेत्र को हटा लिया था और नम्र मुख वाला होकर वहां स्थित हो गया था ॥६॥ उस बालक का समस्त अङ्ग रक्तपूर्ण होकर पार्वती की गोद में स्थित हो गया था और वह मस्तक अपने अभीष्ट गोलोक मे जाकर कृष्ण में प्रवेश कर गया था ॥७॥

मूर्च्छां संप्राप सादेवी विलप्यच भृशंमुहुः ।
मत्ताइव पृथिव्यान्तुकृत्वा वक्षसिबालकम् ।८।
विस्मितास्ते सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ।
देवयश्च शैला गन्धर्वाः शिवः कैलासवासिनः ।९।
तान् सर्वान् मूर्च्छितान् दृष्ट्वैवारुह्य गरुडं हरिः ।
जगाम पुष्पभद्रां स उत्तरस्याँ दिशि स्थिताम् ।१०।
पुष्पभद्रानदीतीरे ददर्श कानने स्थितः ।
गजेन्द्रं निद्रितं तत्र शयानं हस्तिनीयुतम् ।११।
दिश्युत्तरस्यां शिरसंमूर्च्छितं सुरतश्रमात् ।
परितः शावकान् कृत्वा परमानन्दमानसम् ।१२।
शीघ्रं सुदर्शनेनैव चिच्छेद तच्छिरोमुदा ।
स्थापयामास गरुड़े रुधिराक्तं मनोहरम् ।१३।
गजच्छिन्नाङ्गविक्षेपात् प्रबोध प्राप्य हस्तिनी ।
शावकान्बोधयामास चाशुभं वदतीतदा
रुरोद शावकैः सार्द्धं सा विलप्य शुचातुरा ।१४।

उस समय शिशु की ऐसी दशा से वह देवी अत्यन्त दारुण रुदन और विलाप करके मूर्च्छित हो गई थीं और उस बालक को वक्षस्थल में लगाकर पृथिवी में मत्त की भाँति भ्रमित हो गई थी ।।८।। उस समय समस्त सुर चित्रगत पुतली के भांति स्तम्भित हो गये थे । उस समय में देवियां-शैल-गन्धर्व-शिव-और सभी कैलाशवासी मूर्च्छित हो गये थे । उन सबको देखकर हरि गुरुड़ पर समारूढ होकर उत्तर दिशा में स्थित पुष्पभद्रा नदी पर गये थे ।।९।।१०।। पुष्पभद्रा नदी के तट पर वन में स्थित होकर हरि ने वहां पर निद्रित एक गजेन्द्र को देखा था जो शयन किये हुए था और हस्तिनी के सहित था ।।११।। सुरत के श्रम से उसका शिर मूर्च्छित और उत्तर दिशा में था, उसके सभी ओर बच्चे थे और वह परमानन्द से युक्त मन वाला था ।।१२।। हरि

ने शीघ्र सुदर्शन चक्र से आनन्द पूर्वक उसका शिर काट लिया था और रुधिर से अवक्त परम मनोहर उस शिर को गुरुड पर स्थापित कर दिया था ॥१३॥ गजेन्द्र के छिन्न भक के विक्षेप से हस्तिनी ने प्रबोध किया और अशुभ मुख से कहती हुई उसने बच्चों को जगाया था। वह फिर शोक से अत्यन्त दु खित होकर अपने बच्चों के साथ विलाप करके रोने लगी थी ॥१४॥

तुष्टाव कमलाकान्त शान्त सस्मितमीश्वरम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधर पीताम्बर परम् ।
गरुडस्थ जगत्कान्त भ्रामयन्त सुदर्शनम् ।१५।
निषेक खण्डितु शक्त निषेकजनक विभुम् ।
निषेकभोगदातार भोगनिस्तारकारणम् । १६।
प्रभुस्तत् स्तवनात्तुष्टस्तस्मै विप्रवरददौ ।
मुण्डान्मुण्ड विनिष्कृत्य युयुजेऽथगजस्यच ।१७।
जीवयामास त तत्र ब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मवित् ।
सर्वाङ्गे योजयामास गजस्य चरणाम्बुजम् ।१८।
त्व जीवाकल्पपर्य्यन्त परिवारैः समगज ।
इत्युक्त्वा च मनोयायी कैलासमाजगामसः ।१९।
आगत्य पार्वतीस्थान बाल कृत्वा स्ववक्षसि ।
रुचिर तच्छिर कृत्वा याजयामास बालके ।२०।
ब्रह्मस्वरूपो भगवान् ब्रह्मज्ञानेन लीलया ।
जीवन कारयामास हुङ्कारोच्चारणेन च ।२१।
पार्वती बोधयित्वा तु कृत्वा क्रोडे च त शिशुम् ।
बोधयामास ता कृष्ण आध्यात्मिकविबोधनैं ।२२।

उसने परम शान्त-स्मित से युक्त कमला के कान्त की स्तुति की थी जो शख-चक्र गदा और पद्म के धारण करने वाले एव पीताम्बर के धारण करने वाले थे। हरि उस समय गुरुड पर स्थित थे ऐसे

जगत् के कान्त-सुदर्शन को घुमाते हुए-शाप के खंडन करने में समर्थ और निपेक के जनक-विभु-निपेक के योग के प्रदान करने वाले और भोगों के निस्तार करने के कारण स्वरूप थे। ऐसे हरि का स्तवन किया था ॥१५॥१६॥ हे विप्र ! प्रभु उसके स्तवन से परम सन्तुष्ट होकर उनने उसे वर दिया था और किसी अन्य गज के मस्तक से मुण्ड को काटकर योजित कर दिया था ॥१७॥ ब्रह्म वेत्ता ने ब्रह्म ज्ञान के द्वारा वहां पर उसे जीवित कर दिया था और उस गज के सर्वाङ्ग में अपने चरणाम्वुज को योजित कर दिया था ॥१८॥ तू आकल्प पर्यन्त गज परिवारों के सहित जीवित रह-यह कहकर मन से ही गमन करने वाले हरि कैलाश में आगये थे ॥१९॥ यहां पर पार्वती के मन्दिर आकर उन्होंने उस वालक को अपने गोद में रख लिया था और उसके शिर को रुचिर बनाकर वालक में योजित कर दिया था ॥२०॥ ब्रह्म के स्वरूप वाले भगवान् ने लीला से ही ब्रह्म ज्ञान के द्वारा हुङ्कार के उच्चारण से जीवन कर दिया था ॥२१॥ फिर पार्वती को समझा-बुझाकर उस शिशु को उनकी गोद में रखकर कृष्ण ने आध्यत्मिक विशेष वोधनों के द्वारा उस देवी को ज्ञान करा दिया था ॥२२॥

ब्रह्मादिकीटपर्य्यन्तं जगद् भुंक्ते स्वकर्मणा।
जगद्बुद्धिस्वरूपासि त्वं न जानासि किं शिवे ।२३।
कल्पकोटिशतं भोगो जीविनां तत् स्वकर्मणा।
उपस्थितो भवेन्नित्यं प्रतियोनौ शुभाशुभैः ।२४।
इन्द्रः स्वकर्मणा कीटयोनौ जन्म लभेत् सति।
कीटश्चापि भवेदिन्द्रः पूर्वकर्मफलेनवै ।२५।
सिंहोऽपि मक्षिकां हन्तुमक्षमः प्राक्तनं विना।
मशको हस्तिनं हन्तुं क्षमःस्वप्राक्तनेनच ।२६।
सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणाः फलम्।
सुकर्मणः सुखं हर्षमितरे पापकर्मणः ।२७।

इहैव कर्मणो भोगः परत्र च शुभाशुभे ।
कर्मोपार्जनयोग्यञ्च पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम् ।२८।

विष्णु ने कहा-ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त यह समस्त जगत् अपने कर्म से भोगो को भोगा करता है। हे शिवे ! आप तो स्वयं इस जगत् की वुद्धि के स्वरूप वाली हैं। तुम क्या नही जानती हो ? अर्थात् सभी कुछ जानती ही हैं ।२३।। जीवो का अपने कर्म से भोग सैंकडा कल्पो तक हुआ करता है। और शुभ तथा अशुभ कर्मो से प्रत्येक योनि मे यह भोग नित्य ही उपस्थित रहा करता है ।।२४।। हे सति ! इन्द्र अपने कर्मो के प्रभाव से एक कीट की योनि मे जन्म का लाभ किया करता है और एक कीट भी अपने पूर्व जन्म के कृत कर्म के फलो के द्वारा इन्द्र हो जाता है ।।२५।। प्राक्तन कर्म के बिना एक सिंह भी मक्खी के हनन करने मे असमर्थ होता है। और अपने पूर्व जन्म के पहिले कर्म के प्रभाव से एक मशक हाथी के हनन करने मे समर्थ हो जाता है ।।२६।। सुख-दुःख-भय शोक और आनन्द ये सभी कर्मो के ही फल हुआ करते हैं। अच्छे कर्म के फल सुख और हर्ष होता है और अन्य पाप के कर्म फल हुआ करते हैं ।।२७।। यहा पर ही और परलोक मे शुभ एवं अशुभ कर्मो का भोग होता है। यह भारत देश कर्मो के उपार्जन करने के योग्य पुण्य क्षेत्र होता है ।।२८।।

कर्मणः फलदाताच विधाताच विधेरपि ।
मृत्योर्मृत्युः कालकालोनिषेकस्य निषेककृत् ।२९।
सहस्रं रपि सहस्रो पातुः पाताः परात्परः ।
गोलोकनाथः श्रीकृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम् ।३०।
वय यस्य कला पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
महाविराड्यदशश्च यल्लोमविवरे जगत् ।३१।
कलांशाः केऽपि तद्धर्मं कलांशांशाश्च केचन ।
चराचर जगत् सर्वं तत्रतस्योविनायकः ।३२।

श्रीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा परितुष्टा च पार्वती ।
स्तनं ददौ च शिशवे तं प्रणम्य गदाधरम् ।३३।
तुष्टाव पार्वती तुष्टा प्रेरिता शङ्करेण च ।
पुटाञ्जलियुता भक्त्या विष्णुं त कमलापतिम् ।३४।
आशिषं युयुजे विष्णुः शिशुञ्च शिशुमातरम् ।
ददौ गले बालकस्य कौस्तुभञ्चस्वभूषणम् ।३५।

विधि (ब्रह्मा का भी विधाता-मृत्यु का भी मृत्यु काल का भी काल-निषेक का भी निषेक करने वाला-कर्मों का फल देने वाला-संहारक का भी संहार करने वाला-पाता (पालन करने वाले) का भी रक्षक और पर से पर गोलोक के नाथ स्वयं परिपूर्ण तम श्रीकृष्ण ही हैं ।।२६।।३०।। जिस पुरुष की हम ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर सभी एक कला होते हैं । यह महा विराट् भी उसका ही एक अंश है जिसके लोम के छिद्रों में यह जगत् रहा करता है ॥३१॥ कुछ तो उसके धर्म में कलांश है और कुछ कलांश के भी अंश हैं । इसी प्रकार से यह सम्पूर्ण चराचर जगत है और उसमें विनायक स्थित थे ।।३२।। श्री विष्णु के इन वचनों का श्रवण करके पार्वती परितुष्ट हो गई थीं । फिर उस देवी ने गदाधर को प्रणाम करके उस अपने शिशु को स्तन दिया था ।।३३।। शंकर के द्वारा प्रेरित होकर फिर भक्ति के भाव से अपनी अञ्जलि का प्रद बजाकर तुष्ट हुई पार्वती ने कमला के पति विष्णु का स्तवन किया था ।।३४।। विष्णु ने शिशु को और शिशु की माता को आशीर्वाद दिया था और बालक के गले में अपना भूषण कौस्तुभ पहिना दिया था ।।३५।।

ब्रह्मा ददौ स्वमुकुटं धर्मश्च रत्नभूषणम् ।
क्रमेण देव्यो रत्नानि ददुः सर्वे यथोचितम् ।३६।
तुष्टाव तं महादेवश्चातीवहृष्टमानसः ।
देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः सर्वयोषितः ।३७।

दृष्ट्वा शिवः शिवाचैव बालकं मृतजीवितम् ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ तत्र कोटिरत्नानि नारद ॥३८॥
अश्वानाञ्च गजनाञ्च सहस्राणि शतानि च ।
वन्दिभ्यः प्रददौ तत्र बालके मृतजीविते ॥३९॥
हिमालयश्च महृष्ठो हृष्टा देवाश्च तत्र वै ।
ददुर्दानानि विप्रेभ्यो वन्दिभ्य. सर्वयोषितः ॥४०॥
ब्राह्मणान् भोजयामास कारयामास मङ्गलम् ।
वेदाश्च पाठयामास पुराणानि रमापतिः ॥४१॥
शनिं सलज्जितं दृष्ट्वा पार्वती कोपशालिनी ।
शशाप च सभामध्येऽप्यङ्गहीनो भवेति च ॥४२॥

ब्रह्मा ने अपना मुकुट दिया था और धर्म ने रत्न भूषण शिशु को दिया। इसी तरह क्रम से स्त्रियों ने यथोचित रत्न सबने दिये थे ॥३६॥ अत्यन्त प्रसन्न हृदय वाले महादेव ने उसकी स्तुति की थी। और देवगण-मुनि शैल-गन्धर्व और सब स्त्रियों ने उसका स्तवन किया था ॥३७॥ शिव और शिवा ने मृत बालक को जीवित हुआ देखकर हे नारद ! ब्राह्मणों को करोड़ों रत्नदान में दिये थे ।३८। बालक के मृत होने के पश्चात् पुन जीवित हो जाने पर सहस्रों और सैकड़ों अश्व और गज वन्दियों को दे दिये थे ॥३९॥ उस समय हिमालय परम प्रसन्न हुआ और वहा पर समस्त देवता भी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। समस्त स्त्रियों ने विप्रों के लिये तथा वन्दिगण के लिये दान दिये थे ॥४०॥ ब्राह्मणों को भोजन कराया गया था और मंगलोत्सव मनाया गया था। रमा के पति ने वेदों का और पुराणों का पाठ कराया था ॥४१॥ शनि को लज्जा से युक्त देखकर कोप शालिनी पार्वती ने उसे शाप दे दिया था कि तू सभा के मध्य मे अगहीन होजा ॥४२॥

दृष्ट्वा शप्तं शनिं सूर्य्यः कश्यपश्च यमस्तथा ।
तेऽतिरुष्टाः समुत्तस्थुर्गामुकाः शङ्करालयात् ।४३।

रक्ताक्षास्ते रक्तमुखाः कोपप्रस्फुरिताधराः ।
तां धर्मं साक्षिणंकृत्वा विष्णुञ्चशप्तुमुद्यताः ।४४।
ब्रह्मा तान्बोधयामास विष्णुनाप्रेरितैः सुरैः ।
रक्तास्यांपार्वतीञ्चैवकोपप्रस्फुरिताधराम् ।४५।
ब्रह्माणमूचुस्ते तत्र क्रमेण समयोचितम् ।
भीरवो देवताः सर्वे मुनयः पर्वतास्तथा ।४६।
दुर्दृष्टोऽयं प्राक्तनेन पत्नीशापेन सर्वदा ।
वालं ददर्श यत्नेन तस्यैव मातुराज्ञया ।४७।
तं धर्मं साक्षिणं कृत्वा पुत्रस्य मातुराज्ञया ।
मत्पुत्रोऽतिप्रयत्नेन ददर्श पार्वती सुतम् ।४८।
यथा निरपराधेन मत्पुत्रं सा शशाप ह ।
तत्पुत्रस्याङ्गभङ्गश्च भविष्यति न संशयः ।४९।

इस प्रकार से पार्वती के द्वारा शाप प्राप्त होने वाले शनि को देखकर सूर्य-कश्यप और यम अत्यन्त रुष्ट होकर शंकर के आवास स्थान से जाने वाले होते हुए खड़े हो गये थे ॥४३॥ इन सबकी आँखें लाल हो गईं थीं और क्रोध से होठ फड़क रहे थे । उन्होंने धर्म को साक्षी बनाकर उस पार्वती देवी को तथा विष्णु को शाप देने के लिये वे उद्यत हो गये थे ॥४४॥ ब्रह्मा ने उनको समझाया था । विष्णु के द्वारा प्रेरित सुरों से लाल मुख वाली और कोप से प्रस्फुटित होठों वाला पार्वती को भी समझाया था ॥४५॥ वहाँ पर वे सब देवगण ब्रह्मा जी से बोले जोकि क्रम से समय के उचित था । समस्त देवता मुनिगण और पर्वत डरे हुए थे ॥४६॥ कश्यप ने कहा—यह शनि बड़ा दुष्ट है जिसने पुराने अपनी पत्नी के शाप से ही सर्वदा यह दोष प्राप्त किया था । बालक को इसने उसकी माता की आज्ञा से ही यत्न के साथ देखा था ॥४७॥ श्री सूर्य ने कहा—उस धर्म को साक्षी बनाकर पुत्र की माता की आज्ञा से मेरे पुत्र शनि ने पार्वती के पुत्र को प्रयत्न से देखा

था ॥४८॥ बिना ही किसी अपराध के उसने मेरे पुत्र को शाप दे दिया था। अतएव उसके पुत्र का अंग भंग होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४९॥

प्रदाय स्वयमाज्ञञ्च शशाप चस्वयं कथम् ।
वयं शपामः कोऽधर्मो जिघांसोश्चविहिंसने ।५०।
शशाप पार्वती रुष्टा स्त्रीस्वभावाच्च चापलात् ।
सर्वेषां वचनेनैव क्षन्तुमर्हन्तु साधवः ।५१।
दुर्गे दत्वा त्वमाज्ञाञ्च पुत्रदर्शनहेतवे ।
कथं शपसि निर्दोषमतिथिं त्वद्गृहागतम् ।५२।
इत्युक्त्वा शनिमादाय बोधयित्वा तु पार्वतीम् ।
तां तं समर्पणं चक्रे शापमोचनहेतवे ।५३।
बभूव पार्वती तुष्टा ब्रह्मणो वचनान्मुने ।
शान्ता बभूवुस्ते तत्र दिनेशयमकश्यपाः ।५४।
उवाच पार्वती तत्र संतुष्टा तं शनैश्चरम् ।
प्रसादिता शिवेनैव ब्रह्मणा परिसेविता ।५५।

यम ने कहा—स्वयं ही पहिले आज्ञा देकर फिर स्वयं ही कैसे फिर शाप दे दिया था। हम शाप देते हैं तो जिघांसु के विहिंसन करने में क्या अधर्म की बात है ॥५०॥ ब्रह्मा ने कहा—पार्वती ने रुष्ट होकर स्त्री की स्वाभाविक चपलता वश शाप दिया था। सबके वचन से ही साधु लोग क्षमा कर देने के योग्य होते हैं। हे दुर्गे! तुमने पुत्र के दर्शन के लिये आज्ञा देकर फिर आप निर्दोष अतिथि को जो तुम्हारे घर पर आया था क्यों शाप दे रही हो? ॥५१॥५२॥ इस तरह कहकर शनि को वहां लाकर पार्वती को समझाया था और उसको पार्वती के शाप मोचन के लिये समर्पण किया था ॥५३॥ हे मुने! ब्रह्मा के वचन से पार्वती सन्तुष्टा हो गई थीं और फिर वहां पर दिनेश-यम और कश्यप भी शान्त हो गये थे ॥५४॥ तब पार्वती सन्तुष्ट होकर उस शनैश्चर से बोली

जोकि शिव के द्वारा प्रसन्न कर दी गई थी तथा ब्रह्मा के द्वारा परिसेवित की गई थीं ॥५५॥

ग्रहराजो भव शने मद्वरेण हरिप्रियः ।
चिरजीवी च योगीन्द्रो हरिभक्तस्य का विपत् ।५६।
अद्य प्रभृतिनिर्विघ्नाहरौभक्तिर्दृढ़ास्तु ते ।
मच्छापामोघते वत्सकिञ्चित्खञ्जोभविष्यति ।५७।
इत्युक्त्वा पार्वतीतुष्टाबालंकृत्वाचवक्षसि ।
उवास योषितां मध्ये तस्मैदत्त्वाशुभाशिषम् ।५८।
शनिर्जगाम देवानां समीपं हृष्टमानसः ।
प्रणम्य भक्त्या तां ब्रह्मन्नम्बिकां जगदम्बिकाम् ।५९।

पार्वती ने कहा—हे शने ! तुम मेरे वरदान से ग्रहों के राजा हो जाओ और हरि के प्रिय बन जाओ । और योगीन्द्र तथा चिरजीवी हो जाओ । हरि के भक्त को क्या विपत्ति है ? अर्थात् कोई विपत्ति नहीं होती है ॥५६॥ आज से लेकर हरि में तेरी भक्ति विघ्न रहित और दृढ़ होगी । हे वत्स ! मेरा शाप अमोघ है अतएव इस अमोघता के कारण तू कुछ खंज (लंगड़ा) हो जायगा ॥५७॥ इतना कहकर पार्वती तुष्ट हो गई थीं और फिर बालक को गोद में लेकर स्त्रियों के मध्य में उसको शुभ आशीर्वाद देकर निवास करने लगी थीं ॥५८॥ शनि प्रसन्न चित्त होकर उस जगत् की माता अम्बिका को भक्ति से प्रणाम करके देवों के समीप में चला गया था ॥५९॥

५१—विघ्नेशविघ्नकथनम्

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग ।
पृच्छामि त्वामहं किञ्चिदतिसन्देहमीश्वर ।१।

सुतस्य त्रिदशेशस्य शङ्करस्य महात्मनः ।
विघ्ननिघ्नस्य च ह्यनमीश्वरस्य कथं प्रभो ।२।
परिपूर्णतमः श्रीमान् परमात्मा परात्परः ।
गोलोकनाथः स्वांशेन पार्वतीतनयः स्वयम् ।३।
अहो भगवतस्तस्य मस्तकच्छेदनं विभो ।
ग्रहदृष्टया ग्रहेशस्य तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ।४।
सावधानं शृणु ब्रह्मन्नितिहासं पुरातनम् ।
विघ्नेशस्य विघ्नमिदं बभूव येन नारद ।५।
एकदा शङ्करः सूर्यं जघान परमक्रुधा ।
मालिसुमालिहन्तारं शूलेन भक्तवत्सलः ।६।
श्रीसूर्य्योऽप्यर्यशूलेन शिवतुल्येन तेजसा ।
जहार चेतनां सद्यो रथाच्च निपपात ह ।७।

इस अध्याय मे विघ्नो के ईश के विघ्न का कथन किया गया है। नारद ने कहा हे नारायण ! हे महाभाग ! हे वेदो के ज्ञाताओ मे परम श्रेष्ठ ! हे ईश्वर ! मुझे कुछ अत्यन्त सन्देह होता है। अतएव मैं आपसे पूछता हूँ ॥१॥ देवताओ के स्वामी महान् आत्मा वाले शकर के पुत्र का जोकि स्वय विघ्नो के विघ्न (नाशक) हैं ऐसे ईश्वर को जो यह विघ्न हुआ था। हे प्रभो ! यह क्यो और कैसे हुआ था ? ॥२॥ गोलोक के नाथ परिपूर्ण पर से भी पर-श्रीमान् परमात्मा हैं और यह पार्वती का पुत्र उनके ही स्वय अपने अंश से उत्पन्न हुए हैं ।३। हे विभो ! बडा आश्चर्य है उस भगवान् का ही ग्रहो के ईश शनि की दृष्टि से मस्तक का छेदन हो गया था। इसे आप बताने के योग्य होते हैं ॥४॥ नारायण ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब तुम सावधान चित्त वाले होकर श्रवण करो। यह एक पुरान इतिहास का विषय है। हे नारद ! जिस कारण से विघ्नो के स्वामी को यह विघ्न हुआ था वह इसमे बताया गया है ॥५॥ एक बार श्री शकर ने अत्य क्रोध मे आकर सूर्य का मार दिया था जो मालियो

में मालिका हनन करने वाला था उसे भक्त वत्सल शिव ने अपने त्रिशूल से मारा था ॥६॥ सूर्य ने तेज से शिव के तुल्य शूल से तुरन्त ही चेतना का हनन किया था जोकि रथ से नीचे गिर गई थी ॥७॥

ददर्श कश्यपः पुत्रं मृतमुत्तानलोचनम् ।
कृत्वा वक्षसि तं शोकात् विललाप भृशं मुहुः ।८।
हाहाकारं सुरास्त्रस्ताश्चक्रुर्विलपुर्भृशम् ।
अन्धीभूतं जगत्सर्वं बभूव तमसावृतम् ।९।
निष्प्रभं तनयं दृष्ट्वा शशाप कश्यपः शिवम् ।
तपस्वी ब्रह्मणः पौत्रः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ।१०।
मत्पुत्रस्य यथा वक्षश्छिन्नं शूलेन तेऽद्य च ।
त्वत्पुत्रस्य शिरश्छिन्नमेवम्भूतम्भविष्यति ।११।
शिवश्च गलितक्रोधः क्षणेनैवाशुतोषकः ।
ब्रह्मज्ञानेन तत्सूर्य्यं जीवयामास तत्क्षणात् ।१२।
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशश्च त्रिगुणात्मकः ।
सूर्य्यश्च चेतनां प्राप्य समुत्तस्थुः पितुः पुरः ।१३।
ननाम पितरं भक्त्या शङ्करं भक्तवत्सलः ।
विज्ञाय शम्भोः शापञ्च कश्यपञ्च चुकोप ह ।१४।

कश्यप ने उत्तान लोचन वाले मृत पुत्र को देखा था। कश्यप उसे गोद में लेकर शोक से बार-बार अत्यन्त करने लगे थे ॥८॥ उस समय देवगण बहुत त्रस्त हो गये थे और हाहाकार करने लगे थे तथा अत्यन्त विलाप किया था। यह समस्त जगत् एकदम अन्धकार से आवृत्त होकर अन्धीभूत हो गया था ॥९॥ अपने पुत्र को प्रभाहीन देखकर कश्यप ने शिव को शाप दिया था। जो कश्यप ब्रह्मा के पौत्र थे तथा परम तपस्वी एवं ब्रह्म तेज से जाज्वल्यमान हो रहे थे ॥१०॥ कश्यप ने कहा—जिस तरह मेरे पुत्र का वक्षःस्थल आज शूल से तुमने छिन्न किया है इसी तरह से तुम्हारे पुत्र का शिर भी छिन्न होगा ॥११॥

फिर शिव गलित क्रोध वाले हो गये थे और क्षण मात्र में ही प्रसन्न हो गये क्योंकि ये वाशु (शीघ्र) तोष (प्रसन्न) होने वाले हैं। फिर शिव ने उस सूर्य को ब्रह्म ज्ञान से तुरन्त ही जीवित कर दिया था।१२। ब्रह्मा विष्णु और महेश का अंश त्रिगुणात्मक सूर्य ने चेतना प्राप्त करली थी और वह पिता के आगे स्थित हो गया था ॥१३॥ उस सूर्य ने अपने पिता को और भक्ति भाव सदाशिव को नमस्कार किया था भक्त वत्सल ने शम्भु को दिये हुए शाप को जानकर कश्यप पर बड़ा क्रोध किया था ॥१४॥

विषयं नैव जग्राह कोपेनैवमुवाच ह ।
विषयञ्च परित्यज्य भजामि कृष्णमीश्वरम् ।१५।
सर्वं तुच्छमनित्यञ्च नश्वरं चेश्वरं विना ।
विहाय मङ्गलं सत्यं विद्वान्नेच्छेदमङ्गलम् ।१६।
देवैश्च प्रेरितो ब्रह्मा समागत्य ससम्भ्रमः ।
बोधयित्वा रविं तत्र युयोज विषये प्रभुः ।१७।
शिवस्तमाशिषं कृत्वा ब्रह्मा च स्वालयं मुदा ।
जगाम कश्यपश्चैव स्वराशिं रविरेव च ।१८।
अथ माली सुमाली च व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः ।
श्वित्रीगलितसर्वाङ्गौ शक्तिहीनौ हतप्रभौ ।१९।
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा युवाञ्च भजतां रविम् ।
सूर्य्यकोपेन गलितौ युवामेव हतप्रभौ ।२०।
सूर्य्यस्य कवचं स्तोत्रं सर्वपूजाविधिविधिः ।
जगाम कथयित्वा तौ ब्रह्मलोकसनातनः ।२१।
ततस्तौ पुष्करं गत्वा सिषेवाते रविं मुने ।
स्नात्वा त्रिकालं भक्त्या च जपन्तौ मन्त्रमुत्तमम् ।२२।
ततः सूर्य्याद्वरं प्राप्य निजरूपौ बभूवतुः ।
इत्येवं कथितं सर्वं किम्भूयः श्रोतमिच्छसि ।२३।

फिर सूर्य ने विषय को ग्रहण नहीं किया था और कोप से यह कहा—मैं अब विषय का त्याग करके ईश्वर कृष्ण का भजन करूंगा ॥१५॥ ईश्वर के विना यह सब तुच्छ-अनित्य और नश्वर है। मंगल और सत्य का त्याग करके विद्वान् कभी अमंगल की इच्छा नहीं करता है ॥१६॥ तब देवों के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके वहां सम्भ्रम के साथ ब्रह्मा जी आये थे और प्रभु ने सूर्य को समझाकर विषय में युक्त किया था ॥१७॥ शिव ने उसको आशीर्वाद देकर और ब्रह्मा ने भी आशीष करके ये दोनों अपने आलय को चले गये थे। कश्यप भी चले गये थे तथा अपनी राशि पर चला गया था ॥१८। इसके अनन्तर माली और सुमाली दोनों व्याधि से ग्रसित हो गये थे। इनके शिवत्र और गलित कुष्ठ सर्वाङ्ग में होगया था। ये शक्ति से हीन और प्रभा रहित हो गये ॥१९॥ उन दोनों से ब्रह्मा ने स्वयं कहा था कि तुम दोनों रवि का भजन करो क्योंकि तुम दोनों सूर्य के कोप से ही गलित रोगी और प्रभा से हीन हुए हो ॥२०॥ तब विधाता ने सूर्य का स्तोत्र-कवच और पूजा की विधि उनको कहकर सनातन ब्रह्मा अपने ब्रह्म लोक को चले गये थे ॥२१॥ इसके उपरान्त उन दोनों ने पुष्कर में जाकर हे मुने ! रवि की सेवा की थी। वे वहां त्रिकाल स्नान करके भक्ति पूर्वक उत्तम मन्त्र का जाप वहां करते थे ॥२२॥ इसके पश्चात् सर्य देव से वर प्राप्त कर वे अपने निज के रूप वाले हो गये थे। यह इस प्रकार से मैंने तुमको सब बता दिया है अब आगे और क्या सुनना चाहते हो ? ॥२३॥

५३—गजमुखयोजनहेतुकथनम्

हरेरंगसमुत्पन्नो हरितुल्यो भवान् धिया।
तेजसा विक्रमेणैव मत्प्रश्नं श्रोतुमर्हसि ॥१॥

विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्न श्रुत तत्परमाद्भुतम् ।
तद्विघ्नकारिणश्चैव विश्वकारणवक्त्रतः ।२।
अधुनाश्रोतुमिच्छामि स्वात्मसन्देहभञ्जनम् ।
त्रैलोक्यनाथतनये गजास्ययोजनाकथम् ।३।
स्थितेष्वन्येषु सर्वेषा जन्तूना जन्तुसम्भव ।
विशिष्टाना सुरूपेषु नानारूपेषु रूपिणाम् ।४।
गजास्ययोजनायाश्च कारण शृणु नारद ।
गोप्य सर्वपुराणेषु वेदेषु च सुलभम् ।५।
तारण सर्वदुखाना कारण सर्वसम्पदाम् ।
हारण विपदाञ्चैव रहस्य पापमोचनम् ।६।
महालक्ष्म्याश्च चरित सर्वमङ्गलमङ्गलम् ।
सुखदमोक्षदञ्चैव चतुर्वर्गफलप्रदम् ।७।

इस अध्याय मे गज के मुख के योजन करने का हेतु का कथन निरूपित किया गया है । नारद ने कहा—शिव के पुत्र के रूप मे हरि का अश उत्पन्न हुआ था और आप बुद्धि के वैभव से हरि के तुल्य ही थे—तेज और विक्रम मे भी बिल्कुल हरि की समानता थी—इसमें मेरा प्रश्न है उसे आप श्रवण करने योग्य हैं ॥१॥ विघ्नों के नाशक को जो विघ्न हुआ था उसका परम अद्भुत चरित मैंने सुन लिया है और उनके विघ्न करने वाले का भी श्रवण विश्व के कारण के मुख से सुन लिया है ॥२॥ अब मैं अपने हृदय मे कुछ सन्देह है उसका भञ्जन का श्रवण करना चाहता हूँ । त्रैलोक्य के नाथ के पुत्र मे हाथी के मुख का योजन कैसे हुआ था ? ॥३॥ हे जन्तु सम्भव ! जबकि अन्य बहुत से जन्तु उपस्थित थे जिनके कि नाना प्रकार के सुरूप विशेषता रखने वाले थे तो फिर गज के ही मुख के योजन करने का क्या विशेष कारण था ॥४॥ नारायण ने कहा—हे नारद ! गज के मुख की योजना का जो कारण था उसको सुनो । यह विषय समस्त पुराणों मे और वेदो मे भी गोप्य

हैं एवं दुर्लभ है ॥५॥ यह चरित्र समस्त दुःखों को छुड़ाने वाला सम्पूर्ण सम्पत्ति को देने वाला–विपत्तियों को हरण करने वाला तथा पापों का मोचन करने वाला है ॥६॥ महालक्ष्मी का चरित सम्पूर्ण मंगलों का भी मंगल होता है। यह सुख और मोक्ष के देने वाला तथा चारों वर्ग का प्रदान करने वाला है ॥७॥

शृणु तात प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
रहस्यं पाद्मकल्पस्य पुरा तातमुखाच्छ्रुतम् ।८।
एकदैव महेन्द्रश्च पुष्पभद्रां नदी ययौ ।
महासम्पन्मदोन्मत्तः कामो राजश्रियान्वितः ।९।
तत्तीरेऽतिरहःस्थाने पुष्पोद्याने मनोहरे ।
अतीवदुर्गमेऽरण्ये सर्वजन्तुविवर्जिते ।१०।
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते ।
सुगन्धिपुष्पसंश्लिष्टवायुना सुरभीकृते ।११।
ददर्श रम्भां तत्रैव चन्द्रलोकात् समागताम् ।
सुरतश्रमविश्रामकामुकीं कामकामुकीम् ।१२।
दृष्ट्वा तामतिवेशाढ्यां तत्कटाक्षेण पीड़ितः ।
इन्द्रोऽतोन्द्रियचापल्यात् प्रवक्तुमुपचक्रमे ।१३।
क्व गच्छसि वरारोहे क्वागतासि मनोहरे ।
मया दृष्टान (स) सुचिरं मत्प्रियाणि तवाधना ।१४।

हे तात ! तुम श्रवण करो, मैं अब इस पुराने इतिहास को बताता हूँ। यह पाद्म कल्प का रहस्य है जो कि मैंने अपने पिता के मुख से सुना था ॥८॥ एक वार महेन्द्र पुष्पभद्रानदी के तट पर गया था। यह इन्द्र अपनी महान् सम्पदा के मद से उन्मत्त हो रहा था और राजश्री से युक्त था ॥९॥ उस नदी के तट पर एकान्त स्थान में परम सुन्दर पुष्पोद्यान मे जहां कि अत्यन्त दुर्गम निर्जन अरण्ड (जंगल) था जिसमें कोई भी जीव जन्तु नहीं रहते थे ॥१०॥

यह स्थान भ्रमरों की गुञ्जार से युक्त और पुंस्कोकिल की मधुर ध्वनि से पूरित हो रहा था तथा सुगन्धित पुष्पों की सुवास से मिश्रित वायु से सर्वत्र सुगन्ध फैली हुई थी ॥११॥ वहा पर चन्द्र लोक से आई हुई रम्भा को इन्द्र ने देखा था जोकि सुरत के श्रम से विश्राम करने के लिये वह काम कामुकी वहा आई थी ।१२। वहा इन्द्र ने अतिवेश से युक्त उसको देखकर उसके कटाक्ष पात से वह अत्यन्त कामोत्पीडित हो गया था । फिर अत्यन्त इन्द्रियो की चपलता के कारण उससे इन्द्र ने कहना आरम्भ किया था ॥१३॥ इन्द्र ने कहा—हे वरारोहे ! आप अब कहा जा रही हैं ? हे सुन्दरि ! इस समय आप कहा से आई हैं ? मैंने बहुत समय मे आप को देखा है । अब आप मेरे प्रिय करो ॥१४॥

तवान्वेषणाकर्त्ताहं श्रुत्वा वाचिकवक्त्रतः ।
शश्वत्तवानुरक्तश्च कामन्यां गणयामि च ।
अदातारमविज्ञञ्च नैव वाञ्छन्तियोषितः ।१५।
का मूढा न च वाञ्छन्ति त्वामेव गुणसागरम् ।
तवाज्ञाकारिणी दासी गृहाणाद्य-यथासुखम् ।१६।
इत्युक्त्वा सस्मिता सा चतपपौवक्रचक्षुपा ।
कामाग्निदग्धाविगलल्लज्जातस्थौ समीपतः ।१७।
एतस्मिन्नन्तरे तेन वर्त्मना मुनिपुङ्गवः ।
सशिष्यो याति दुर्वासा वैकुण्ठाच्छङ्करालये ।१८।
तञ्च दृष्ट्वा मुनीन्द्रञ्च देवेन्द्रः स्तम्भमानसः ।
ननामग्गत्य सहसा ददौतस्मैसचाशिषः ।१९।
पारिजातप्रसून यद्दत्त नारायणेन वै ।
तच्च दत्त महेन्द्राय मुनीन्द्रेण महात्मना ।२०।
दत्त्वा पुष्प महाभागस्तमुवाचकृपानिधिः ।
माहात्म्यतस्ययत्किञ्चिदपूर्वमुनिसत्तमः ।२१।

वहां वाचिक के मुख से श्रवण कर मैं आपकी खोज करने वाला

हूं। मैं निरन्तर आप में अनुरक्त हो रहा हूँ। आप जैसी कामिनी को मैं चाहता हूँ ॥१५॥ रम्भा ने कहा–कौनसी मूढ सती है जो आप जैसे गुणों के सागर को नहीं चाहती है। मैं आपकी दासी हूँ आप यहां पर ही मुझे सुख पूर्वक ग्रहण करिये ॥१६॥ यह कहकर उस रम्भा ने उस इन्द्र को मुख और चक्षु से पान किया था। वह कामाग्नि से दग्ध होकर लज्जा हीन होती हुई उसके समीप में स्थित हो गई थी ॥१७॥ इसी बीच में वहां मुनियों में परम श्रेष्ठ दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों के सहित उसी मार्ग से वैकुण्ठ से शङ्कर के निवास स्थान को जा रहे थे। ॥१८॥ उस मुनीन्द्र को देखकर इन्द्र स्तम्भ मन वाले हो गये थे। उसने सहसा आकर वहां उनको प्रणाम किया था और ऋषि ने उसे आशीर्वाद दिया था ॥१९॥ नारायण ने जो पारिजात का पुष्प ऋषि को दिया था वह पुष्प महात्मा मुनीन्द्र ने महेन्द्र को प्रसन्न होकर दे दिया था ॥२०॥ महाभाग कृपा के निधि ने वह पुष्प देखकर उससे उस पुष्प का कुछ अपूर्व महात्म्य मुनि श्रेष्ठ ने कहा था ॥२१॥

सर्वविघ्नहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम् ।
मूर्द्ध्नीदं यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः ।२२।
पुरः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत् ।
तच्छायेव महालक्ष्मीर्न जहाति कदापि तम् ।२३।
ज्ञानेव तेजसा वुद्ध्या विक्रमेण वलेन च ।
सर्वदेवाधिकः श्रीमान्हरितुल्यपराक्रमः ।२४।
भक्त्या मूर्ध्नि न गृह्णाति योऽहङ्कारेण पामरः ।
नैवेद्यञ्च हरेरेवस भ्रष्टश्रीःस्वजातिभिः ।
इत्युक्त्वा शङ्करांशश्च जगाम शङ्करालयम् ।२५।
शक्रो रम्भान्तिके पुष्पं संस्थाप्य गजमस्तके ।
शक्रं भ्रष्टश्रियंदृष्ट्वा साजगामसुरालयम् ।
पुंश्चली योग्यमिच्छन्ती नापरं चञ्चलाधमा ।२६।

देवराज परित्यज्य गजराजो महावली ।
प्रविवेश महारण्यं तं निक्षिप्य स्वतेजसा ।२७।
तत्रैव करिणी प्राप्य मत्त.सबुभुजेवलात् ।
सातद्वभूववशगा योषिज्जातिः सुखार्थिनी ।
तयोर्बभूवापत्याना निवहस्तत्र कानने ।२८।
हरिस्तन्मस्तक छित्त्वा युयोजतेनवालके ।
इत्येवकथितवत्सकिंभूयः श्रोतुमिच्छसि ।।
गजास्ययोजनायाश्च कारण पापनाशनम् । ६।

दुर्वासा ने कहा—यह पुष्प समस्त विघ्नो के हरण करने वाला है ऐसा मुझ से नरायण ने कहा है । हे देवेन्द्र ! जिसके मस्तक पर यह विराजमान होता है उसका सर्वत्रजय ही होता है ।।२२।। उसकी देवों मे सबसे पूर्व पूजा होगी और वह सबका अग्रणी होगा । उसकी छाया को भाति महालक्ष्मी सर्वदा ही उसके साथ रहा करती है और कभी भी उसका त्याग नहीं किया करती है ।।२३।। ज्ञान-तेज बुद्धि-विक्रम और बल से वह सर्वदा ही श्रीमान् हरि के ही तुल्य हो जाता है ।।२४।। जो पामर इस पुष्प को भक्ति भाव से अपने शिर पर अहङ्कार के मद मे ग्रहण नही करता है जोकि हरि का ही नैवेद्य है वह अपनी जाति से भ्रष्ट श्री वाला हो जाता है । इतना यह कहकर वह शंकर का अंश ऋषि शंकर के निवास धाम को चले गये थे ।।२५।। इन्द्र ने रम्भा अप्सरा के समीप मे गज के मस्तक पर वह पुष्प सस्थापित कर दिया था । अतएव वह भ्रष्ट भी हो गया था । वह अप्सरा भी उसका त्याग कर सुरालय को चली गई थी पुंश्चली सती तो अपने ही योग्य पुरुष की इच्छा करने वाली होती है । वह चचल एव अधम अन्य किसी को नही चाहती है ।।२६।। वह गजराज भी देवराज का त्याग करके महारण्य मे महावली चला गया था क्योकि वह महा तेजस्वी हो गया था अतः अपने तेज से उसने इन्द्र को वही डाल दिया था ।।२७।। वहा

वन में उसने कारिणी प्राप्त करली थी और मत्त होकर उसका उपभोग करता था। वह भी योपित की जाति वाली उसके वश में हो गई थी क्योंकि सुख की इच्छा वाली वह हो रही थी ॥२८॥ हरि ने उसी हाथी का मस्तक को छिन्न करके उस बालक के मस्तक पर योजित किया था। हे वत्स! यह समस्त चरित मैं ने तुमको कहकर सुना दिया है। अब और क्या श्रवण करना चाहते हो! यह गज की मुख योजना का चरित महान् पापों के नाश करने वाला है ॥२९॥

ते देवा ब्रह्मशापेन निश्रीकाः केन वा प्रभो।
बभूवुस्तद्रहस्यञ्च गोपनीय सुदुर्लभम् ।३०।
कथं वा प्रापुरेते तां कमलां जगतां प्रसूम्।
किञ्चकार महेन्द्रश्च तद्भवान् वक्तुमर्हसि।
गजेन्द्रेण पराभूतो रम्भया च सुमन्दधीः।
भ्रष्टश्रीर्दैन्ययुक्तश्च स जगामामरावतीम् ।३२।
तां ददर्श निरानन्दो निरानन्दां पुरीं मुने।
दैन्यग्रस्तां वन्धुहीनां वैरिवर्गैःसमाकुलाम् ।३३।
सर्वं श्रुत्वा दूतमुखाज्जगाम मन्दिरं गुरोः।
तेन देवगणैः सार्द्धं जगामब्रह्मणःसभाम्।
गत्वा ननाम तं शक्रः सुरैः सार्द्धं तथा गुरुः ।३४।
तुष्टाव वेदविधिना स्तोत्रेण भक्तिसंयुतः।
प्रवृत्ति कथयामास वाक्पतिस्तं प्रजापतिम्
श्रुत्वा ब्रह्मा नम्रकवत्रः प्रवक्तुमुपचक्रमे ।३५।
मत्प्रपौत्रोऽसि देवेन्द्र शश्वद्राजन् श्रिया ज्वलन्।
लक्ष्मीसम शचीभर्त्ता परस्त्रीलालुपः सदा ।३६।

नारद ने कहा—हे प्रभो! वे देवता ब्रह्मशाप श्री हीन हुये थे अथवा किससे निःश्रकि हुये थे? यह बड़ा एक रहस्य है और गोपनीय तथा दुर्लभ हैं ॥३०॥ ये फिर किस प्रकार से उसे प्राप्त कर सके थे

जोकि कमला समस्त जगत् की जननी है। इन्द्र ने फिर क्या किया था यह सब आप बताने की कृपा करने के योग्य होते हैं ॥२९॥ नारायण ने कहा-वह इन्द्र जब गजेन्द्र के द्वारा पराभूत हो गया था तथा वह मन्द बुद्धि वाला रम्भा अप्सरा के द्वारा भी तिरस्कृत हो गया था तो भ्रष्ट श्री होकर दीनता से युक्त हो वह फिर अमरावती को गया था ॥३०॥ हे मुने ! बिना आनन्द वाले उसने वहाँ पर भी पुरी को भी आनन्द से हीन ही देखा था। वह पुरी दैन्य से ग्रस्त थी—बन्धुओं से रहित और शत्रुओं के समूह से घिरी हुई थी ॥३३॥ यह सब वृत्तान्त दूत के मुख से श्रवण कर फिर वह गुरु के समीप में गया था। उस गुरु को तथा देवगणों को साथ लेकर ब्रह्मा जी की सभा में गया था ॥३४॥ वहाँ पहुँचकर इन्द्र ने समस्त देवगण के साथ उनको प्रणाम किया था तथा गुरु बृहस्पति ने भी नमस्कार किया था ॥३५॥ भक्तिभाव से संयुत होकर वेद की विधि से स्तोत्र के द्वारा उनका स्तवन किया था और बालपति ने उस प्रजापति ब्रह्मा से समस्त प्रवृत्ति को कह सुनाया था। ब्रह्माजी ने सबका श्रवण कर मुख नीचे की ओर करके कहना आरम्भ किया था ॥३६॥

गौतमस्याभिशापेन भगाङ्ग सुरसंसदि।
पुनर्लज्जाविहीनस्त्वं परस्त्रीरतिलोलुपः ॥३७॥
यः परस्त्रीपुनिरतस्तस्य श्रीर्वा कुतो यशः।
स च निन्द्यः पापयुक्तः शश्वत् सर्वसभासु च ॥३८॥
नैवेद्यं श्रीहरेरेव दत्तं दुर्वाससा च ते।
गजमूर्ध्नि त्वया न्यस्तं रम्भया हृतचेतसा ॥३९॥
क्व सा रम्भा सर्वभोग्या क्वाधुना त्वं श्रिया हृतः।
पद्मा त्यक्ता यन्निमित्तं तादृगता त्वत्तः क्षणेन सा ॥४०॥
वेश्या सश्रीकमिच्छन्ती निःश्रीकं न च चञ्चला।
नवं नवं प्रार्थयन्ती परिनिन्द्य पुरातनम् ॥४१॥

यद्गतं तद्गतं वत्स निष्पन्नं न निवर्त्तते ।
भज नारायणं भक्त्या पद्मायाः प्राप्तिहेतवे ।४२।
इत्युक्त्वा तं जगत्स्रष्टुः स्तोत्रञ्च कवच ददौ ।
नारायणस्य मन्त्रञ्च नारायणपरायणः ।४३।

श्री ब्रह्माजी ने कहा - हे देवेन्द्र ! तुम मेरे ही प्रपौत्र हो, हे राजन् ! तुम निरन्तर श्री की शोभा से जाज्वल्यमान रहने वाले हो, लक्ष्मी के समान शची के स्वामी होकर भी सदा पराई स्त्री के लम्पट रहा करते हो ।।३७।। तुम गौतम के अभिशाप से देवों की संसद में भग के अंग वाले हो गये थे फिर भी तुम लज्जा से विहीन होरहा है और पर स्त्री के साथ रति करने में लम्पट है ।।३८।। जो पराई स्त्रियों में निरत रहने वाला पुरुष होता है । उसकी श्री अथवा यश कहां से हो सकता है ऐसा पुरुष निन्दा के योग्य होता है और निरन्तर सभी सभाओं में उसकी बुराई हुआ करती है तथा वह पाप से युक्त होता है ।३८। दुर्वासा के द्वारा दिया हुआ श्री हरि का नैवेद्य तूने गज के मस्तक पर रख दिया था क्यों कि रम्भा के द्वारा तेरा ज्ञान सब हत हो गया था ।।३९।। सबके द्वारा भोगने के योग्य वह रम्भा अब कहां है और श्री से हत हो जाने वाला तू कहाँ है । जिसके कारण से पद्मात्यक्त हो गई है और वह एक ही क्षण में तुझ से चली गई है ।।४०।। वेश्या श्री से युक्त की ही इच्छा करने वाली है वह निःश्रीक को चञ्चला कभी नहीं चाहती है । पुराने का त्याग करके वह सर्वदा नये-नये की प्रार्थना किया करती है ।।४१।। हे वत्स ! जो भी हो गया वह तो हो गया, अब वह वापिस नहीं आता है । अब तो पद्मा की प्राप्ति के लिये तुम भक्ति भाव से नारायण का भजन करो ।।४२।। नारायण में परायण ने यह कहकर जगत् के सृजन करने वाले का स्तोत्र-कवच और नारायण का मन्त्र उसको दिया था ।।४ ।।

स तैः सार्द्धञ्च गुरुणा जजाप मन्त्रमीप्सितम् ।
गृहीत्वा कवचं तेन तुष्टाव पुष्करेहरिम् ।४४ ।

वर्षमेकं निराहारो भारते पुण्यदे शुभे ।
सिषेव कमलाकान्तं कमलाप्राप्तिहेतवे ।४५।
आविर्भूय हरिस्तस्मै वाञ्छितञ्च वरं ददौ ।
लक्ष्मीस्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रमैश्वर्यवर्द्धनम् ।४६।
दत्त्वा जगाम वैकुण्ठमिन्द्रः क्षीरोदमेव च ।
गृहीत्वा कवचं स्तुत्वा प्राप पद्मालयं मुने ।४७।
सुरेश्वरोऽरिं जित्वा स ललाभामरावतीम् ।
प्रत्येकञ्च सुराः सर्वे स्वालयप्रापुरीप्सितम् ।४८।

इसके अनन्तर उसने उन सबके साथ और गुरु के साथ अभीष्ट मन्त्र का जप किया था और कवच ग्रहण करके उसने पुष्कर मे हरि की स्तुति की थी ॥४४॥ पुण्य प्रदान करने वाले शुभ भारत मे एक वर्ष पर्यन्त निराहार रहकर कमला की प्राप्ति के लिये उसने कमला कान्त का सेवन किया था ॥४५॥ तब हरि ने आविर्भूत (प्रकट) होकर उसको उसका वाञ्छित वरदान दिया था। लक्ष्मी का स्तोत्र-कवच और ऐश्वर्य के बढाने वाला मन्त्र दिया था ।४६। हरि ने यह सब इन्द्र को दिया और फिर वे वैकुण्ठ को चले गये थे। इन्द्र क्षीर सागर को चला गया था। हे मुने! वह कवच ग्रहण करके और स्तवन करके पद्मा को प्राप्त किया था ॥४७॥ फिर उस सुरेश्वर ने अपने शत्रु को जीत कर अमरावती को प्राप्त कर लिया था सब देवो मे प्रत्येक ने अपना अभीष्ट स्थान प्राप्त कर लिया था ।४८।

आविर्भूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ ।
महालक्ष्म्याश्च लक्ष्मीशस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ।४९।
पुष्करे च तपस्तप्त्वा विरराम सुरेश्वरः ।
आविर्बभूव तत्रैव क्लिष्टं दृष्ट्वा हरिः स्वयम् ।५०।
तमुवाच हृषीकेशो वरं वृणु यथेप्सितम्
स च वव्रे वरं लक्ष्मीमीशस्तस्मै ददौ मुदा ।५१।
वरं दत्त्वा हृषीकेशः प्रवक्तुमुपचक्रमे ।
हितं सत्यञ्च सारञ्च परिणामसुखावहम् ।५२।

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम् ।
परमैश्वर्य्यजनकं सर्वशत्रुविमर्दनम् ॥५३॥
ब्रह्मणे च पुरा दत्तं संसारे च जलप्लुते ।
यद्धृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्य्ययुतो विधः ॥५४॥
बभूवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्य्ययुता यतः ।
सर्वैश्वर्य्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः ॥५५॥
पङ्क्तिश्छन्दश्चसा देवो स्वयं पद्मालया सुर ।
सिद्धिश्वर्य्यजपेष्वेव विनियोगःप्रकीर्त्तितः
यद्धृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी भवेत् ॥५६॥
मस्तकं पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया ।
नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचनम् ॥५७॥

नारद ने कहा—हे तपोधन ! श्री हरि ने साक्षात् प्रकट होकर उस महेन्द्र के लिये कौनसा लक्ष्मी का स्तोत्र और कवच दिया था उसे कृपा करके मुझे बताइये ॥४९॥ नारायण ने कहा–सुरेश्वर पुष्कर में तप करके विराम को प्राप्त हो गया था। उस समय हरि ने इन्द्र को कष्ट से युक्त देखकर वहां पर ही अपना आविर्भाव किया था ॥५०॥ उस समय हृषीकेश ने उससे कहा था कि त अपना अभीष्टवरदान का वरण करले। उसने लक्ष्मी की प्राप्ति का वरदान मांगा था और लक्ष्मी के ईश ने प्रसन्नता पूर्वक उसे वही वरदान प्रदान कर दिया था ॥५१॥ वरदान देकर हृषीकेश ने फिर कहना आरम्भ किया था जोकि सत्य-हित-सार और परिणाम में सुख देने वाला था ॥५२॥ श्री मधु सूदन ने कहा— हे इन्द्र ! अब तुम समस्त प्रकार के दुखों का विनाश करने वाला कवच मुझसे ग्रहण करो। यह परम ऐश्वर्य का जनक और सब शत्रुओं का विमर्दन करने वाला है ॥५३॥ जिस समय यह सम्पूर्ण संसार जल में मग्न था तब पहिले समय में ब्रह्मा के लिये दिया

था। जिसको धारण करके जगतो के परम श्रेष्ठ विधि समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न हो गया था ॥५४॥ जिससे सब मनुगण ऐश्वर्य शाली हो गये थ। इस सब ऐश्वर्यों के प्रदान करने वाले कवच का ऋषि विधि है ॥५५॥ इस छद पङ्क्ति है और हेपुत्र! इसकी अधिष्ठानी देवी स्वयं पद्मालया देवी है। सिद्ध ऐश्वर्य के जपो म इस का विनियोग होता है ॥५६॥ इस कवच को धारण करके लोक सवत्र विजयी होता है ॥५७॥

केशान् केशवकान्ता च कपाल कमलालया।
जगत्प्रसूर्गण्डयुग्म स्कध सम्पत्प्रदा सदा ।५८।
ओ श्री कमलवासिन्योस्वाहा पृष्ठ सदाऽवतु।
ओ श्री पद्मालयायै स्वाहा वक्ष सदाऽवतु
पातु श्रीमम कङ्काल वाहुयुग्मञ्च श्री नम ।५९।
ओ ह्री श्री लक्ष्म्यै नम पादौ पातु मे सन्ततञ्चिरम्।
ओ ह्री श्री नम पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम् ।६०।
ओ श्री महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्ग पातु मे सद ।
ओ ह्री श्री क्ली महालक्ष्म्यै स्वाहा मा पातु सर्वत ।६१
इति ते कथित वत्स सर्वसम्पत्करपरम् ।
सर्वैश्वर्यप्रद नाम कवच परमाद्भुतम् ।६२।

अब यहा से विनियोग के पश्चात् कवच का आरम्भ होता है–मेरे मस्तक की पद्मा रक्षा करे–हरि प्रिया कण्ठ की रक्षा करे—मेरी नासिका की लक्ष्मी रक्षा करे और कमला लोचन की रक्षा करें ॥५८॥ केशव कान्ता केशो की और कमलालया कपाल की रक्षा करें। गण्डयुग की जगत्प्रसू रक्षा करे और सम्पद प्रदा देवी सदा मेरे स्कन्ध की रक्षा करें ॥५९॥ प्रथा कमल वासिनी के लिये स्वाहा है। यह मेरे पृष्ठ की सदा रक्षा करे। ओश्री पद्मालया के लिये स्वाहा यह मेरे वक्ष स्थल की सदा रक्षा करे ॥६०॥

श्री मेरे कङ्काल की सुरक्षा करें। श्री नमः—यह मेरी दोनों बाहुओं की रक्षा करें। ओं ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः—यह निरन्तर बहुत समय तक मेरे पैरों की रक्षा करें। ओं ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै—यह मेरे नितम्ब भाग की सदा रक्षा करें। ओं श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा-यह मेरे सर्वाङ्ग की सदा रक्षा करें। ओं ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा-यह मेरी सब ओर से रक्षा करें ॥६१॥ हे वत्स ! यह समस्त सम्पत्तियों का करने वाला और सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का प्रदान करने वाला परम अद्भुत कवच तुझे बता दिया है ॥६२॥

गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः ।
कण्ठेवा दक्षिणे बाहौ स सर्वविजयीभवेत् ।६३।
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन ।
तस्य छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि ।६४।
इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीं सुमन्दधीः ।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ।६५।
दत्त्वा तस्मै च कवचं मन्त्रञ्च षोड़शाक्षरम् ।
सन्तुष्टश्च जगन्नाथो जगतां हितकारणम् ।६६।
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वाहा ।
ददौ तस्मै च कृपया इन्द्राय च महामुने ।६७।
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं गोपनीयं सुदुर्लभम् ।
सिद्धैर्मुनीन्द्रैर्दुष्प्राप्यं ध्रुवं सिद्धिप्रदं शुभम् ।६८।

जो विधि के साथ पहिले अपने गुरु की अर्चना करके इस कवच को धारण करता है। चाहे इसे कण्ठ में तथा दक्षिण बाहु में धारण करे तो वह सबके ऊपर विजय प्राप्त करने वाला होता है ॥६३॥ उस कवच के धारण करने वाले को अर्थात् उसके घर को महालक्ष्मी कभी भी नहीं त्यागती है। यह उसके जन्म-जन्म में छाया की भांति निरन्तर रहा करती है ॥६४॥ इस कवच को न जानकर जो मन्द

बुद्धि वाला लक्ष्मी का भजन करता है वह चाहे सौ लाख भी जप करने वाला क्यों न हो उसको इसका मन्त्र सिद्धि दायक नहीं होता है ॥६५॥ यहाँ वह लक्ष्मी कवच समाप्त होता है। नारायण ने कहा—इस कवच को और सोलह अक्षर वाले मन्त्र को जोकि जगतों के हित का कारण है जगन्नाथ ने उसको दिया था और बहुत सन्तुष्ट हुए थे ॥६६॥ हे महामुने ! वह मन्त्र यह है—"ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महा लक्ष्म्यै हरि प्रियायै स्वाहा"—कृपा करके उस इन्द्र के लिये इस मन्त्र को दिया था ॥६७॥ साम वेद में कहा हुआ ध्यान अत्यन्त सुदुर्लभ और गोपनीय है। यह सिद्धों और मुनीन्द्रों के द्वारा भी दुष्प्राप्य तथा निश्चित सिद्धि प्रद और शुभ है ॥६८॥

श्वेतचम्पकवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभाम् ।
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ।६९।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकारकाम् ।
सहस्रदलपद्मस्था स्वस्थाञ्च सुमनोहराम् ॥
शान्ताञ्च श्रीहरेः कान्ता तां भजेज्जगतां प्रसूम् ।७०।
ध्यानेनानेनदेवेन्द्रध्यात्वालक्ष्मीं मनोहराम् ।
भक्त्यादास्यसि तस्यैचचोपचाराणिषोडश ।७१।
स्तुत्वानेन स्तवेनैव वक्ष्यमाणेन वासव ।
नत्वा वरंगृहीत्वा च लभिष्यसिचनिर्वृतिम् ।७२।

श्वेत चम्पक के पुष्प के समान आभा से युक्त है-शतचन्द्र के समान प्रभा वाली हैं-वन्हि के तुल्य शुद्ध व सत्त का परिधान करने वाली है तथा रत्नों के द्वारा निर्मित दिव्य भूषणों से विभूषित हैं ॥६९॥ मन्द हास्य से युक्त मुख वाली हैं-अपने भक्तों पर अनुग्रह करने वाली है। सहस्र दल वाले पद्म पर संस्थित हैं-परम स्वस्थ एवं सुमनोहर स्वरूप वाली हैं। अत्यन्त शान्त रूप वाली समस्त जगतों की जननी श्री हरि की कान्ता महालक्ष्मी का मैं भजन करता हूँ ॥७०॥ हे देवेन्द्र ! इस

प्रकार से देवी महालक्ष्मी का ध्यान करके जोकि अतीव मनोहर हैं। भक्ति की भावना से उस देवी के लिये षोड़श उपचारों को देना चाहिये ॥७१॥ हे वासन ! आगे बताये जाने वाले स्तोत्र से इस देवी की स्तुति करके फिर नमस्कार करके उसके पश्चात् वरदान प्राप्त करके तू निवृति को प्राप्त करेगा ॥७२॥

स्तवन शृणु देवेन्द्र महालक्ष्याः सुखप्रदम् ।
कथयामि सुगोप्यञ्च त्रिपु लोकेपु दुर्लभम् ।७३।
देवित्वांस्तोतुमिच्छामिनक्षमाःस्तोतुमीश्वराः ।
वुद्धे रगोचरांसूक्ष्मांतेजोरूपांसनातनीम्
अत्यनिवचनीयाञ्च को वा निर्वक्तुमीश्वरः ।७४।
स्वेच्छामयींनिराकारांभक्तानुग्रह विग्रहाम् ।
स्तौ मिवाङ् मनसोः पारांकिंवाऽहंजगदम्बिके ।७५।
परां चतुर्णां वेदानां पारवीजं भवार्णवे ।
सर्वशस्याधिदेवीञ्च सर्वासामपि सम्पदाम् ।७६।
योगिनाञ्चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनान्तथा ।
वेदानाञ्च वेदविदां जननीं वर्णयामि किम् ।७७।

हे देवेन्द्र ! अब तुम महालक्ष्मी का स्तवन सुनो जो सुख का प्रदान करने वाला है। मैं उसे कहता हूं। यह तीनों लोकों में सुगोप्य एवं अत्यन्त सुदुर्लभ है। नारायण ने कहा—हे देवि ! मैं आपका स्तवन करने की इच्छा करता हूँ। आपकी स्तुति करने में ईश्वर भी समर्थ नहीं होते हैं। आप वुद्धि के अगोचर हैं-परम सूक्ष्म हैं-तेजो रूप वाली और सनातनी हैं-आप अत्यन्त अनिर्वचनीय हैं। आपको कौन की सामर्थ्य है जो वर्णन कर सके। ७३॥७४॥ आप स्वेच्छा मयी हैं-निराकर हैं केवल भक्तों के ऊपर अनुग्रह करके शरीर धारण करने वाली हैं। हे जगदम्बिके ! वाणी और मनसे परे आपकी मैं क्या स्तुति करूं ॥७५॥ आप चारों वेदों के परे हैं और भवार्णव में पार होने

के लिये बीज स्वरूप हैं। आप सम्पूर्ण शस्त्रों की अधिष्ठात्री देवी हैं तथा समस्त सम्पदाओं की अधि देवी हैं ॥७६॥ हे देवि ! आप योगों की तथा योगियों की-ज्ञानों की और ज्ञानियों की-वेदों की और वेदों के वेत्ताओं की जननी हैं। मैं क्या वर्णन करूं ॥७७॥

यया विना जगत्सर्वमवस्तुनिष्फलं ध्रुवम् ।
यथा स्तनान्धबालानामात्रावस्तुत्वयासह ।७८।
प्रसाद जगतां माता रक्षास्मानतिकातरान् ।
वयं त्वच्चरणाम्भोजे प्रपन्ना: शरणं गता: ।७९।
नमः शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः ।
ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नम. ।८०।
हरिभक्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः
सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्म्यै नमो नमः ।८१।
कुपुत्रा: कुत्रचित् सन्ति न कुत्रचित्कुमातरः ।
कुत्र माता पुत्रदोषे त विहायचगच्छति ।८२।
हे मातर्दर्शनदेहि स्तनान्धान् बालकानिव ।
कृपां कुरु कृपासिन्धुप्रियेऽस्मान्भक्तवत्सले ।८३।

जिसके बिना यह सम्पूर्ण जगत् निश्चय ही अवस्तु और निष्फल है। जिस तरह स्तन पीने वाले छोटे शिशुओं की माता होती है वैसे ही आपसे यह जगत् सुखी है ॥७८॥ जगतों की माता प्रसन्न होओ और अत्यन्त कातर हमारी रक्षा करो। हम सब आपके चरण कमलों मे प्रसन्न होकर शरण मे आये हैं ॥७९॥ शक्ति की स्वरूप वाली आपके लिये नमस्कार है और जगत् की माता के लिये बार-बार नमस्कार है। ज्ञान के देने वाली, बुद्धि के प्रदान करने वाली और सभी कुछ देने वाली के लिये बार बार प्रणाम है ॥८०॥ हरि की भक्ति प्रदान करने वाली तथा मुक्ति के देने वाली के लिये नमस्कार है। सर्वज्ञा-सर्वदा महालक्ष्मी के लिये बार-बार नमस्कार है ॥८१॥ कहीं

पर कुपुत्र तो होते हैं किन्तु कहीं पर भी कुमातायें नहीं होती हैं। कहीं पर माता पुत्र के दोष होने पर उसका त्याग कर चली जाती हैं अर्थात् कहीं भी नहीं ऐसा होता है? ॥८२॥ हे माता! स्तन पान करने वाले दुध मुंहे शिशुओं की भांति हमको दर्शन दो। हे कृपा सिन्धु के प्रिये! हे भक्तों पर वत्सले! हमारे ऊपर कृपा करो ॥८३॥

इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम् ।
सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं सम्पदः पदम् ।८४।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत् ।
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन ।८५।
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तञ्च तत्रैवान्तरधीयत ।
देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्द्धं तदाज्ञया ।८६।

हे वत्स! यह इस प्रकार से पद्मा का सुख देने वाला-शुभा वह-मोक्षदाता-शुभ प्रद-सम्पदा का स्थान और सार स्तोत्र तुम को कह दिया है।८४। यह स्तोत्र महान् पुण्य वाला है अथवा पवित्र है। जो इसको पूजा के समय में पढ़ता है उसके घर को महा लक्ष्मी कभी भी नहीं त्यागा करती है।८५। उसको इतना कहकर हरि वहां पर ही अन्तर्हित हो गये थे। देव उसकी आज्ञा से अन्य देवताओं के साथ क्षीर सागर में चला गया था।८६।

५४-गणेशस्य एकदन्तत्वे विवरणम्

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
एकदन्तस्य चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ।१।
एकदा कार्त्तवीर्य्यश्च जगाम मृगयां मुने ।
मृगान्निहत्य बहुलान् परिश्रान्तो बभूव सः ।२।

निशामुखे दिनेऽतीते तत्र तस्थौ वने नृपः ।
जमदग्न्याश्रमाभ्यासे उपोष्य सैन्यसयुतः ।३।
प्रात सरोवरे राजा स्नातः शुचिरलकृतः ।
दत्तात्रयेण दत्तञ्च जजाप भक्तितो मनुम् ।४।
मुनिर्ददर्श राजान शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम् ।
प्रीत्या सम्भाषयामास पप्रच्छ कुशल मुनिः ।५।
ननाम सम्भ्रमाद्राजा मुनि सूर्य्यसमप्रभम् ।
सच तस्मै ददौप्रीत्या प्रणताय शुभाशिषम् ।६।
वृत्तान्त कथयामास राजा चानशनादिकम् ।
सम्भ्रमेणैव मुनिना त्रस्तं राजानिमन्त्रितः ।७।

इस अध्याय मे गणेश के एक दात होने का विवरण कहा जाता है । नारायण ने कहा—हे नारद ! तुम अब सुनो, मैं एक दन्त का समस्त मगलो का भी मगल परम पुरातन चरित एव इतिहास बताता हूँ ।१। हे मुने ! एक बार कार्त्तवीर्य शिकार करने के लिये गया था । वहा पर वह बहुत से मृगो का शिकार करके अत्यन्त थक गया था ।२। रात्रि के आरम्भ हो जाने पर और दिन के समाप्त होने पर वह राजा वहा बन मे ही ठहर गया था । सम्पूर्ण सेना से युक्त उपोषित होकर जमदग्नि के आश्रम के समीप मे ही रहा था ।३। प्रातः काल मे राजा ने सरोवर मे स्नान किया और पवित्र होकर विभूषित हुआ था । उस राजा ने वहाँ पर दत्तात्रेय मुनि का दिया हुआ मन्त्र का भक्ति से जाप किया था ।४। मुनि ने राजा को देखा था जिसके कण्ठ-ओष्ठ और तालु सूखे हुए थे । मुनि ने उससे बडी प्रीति के साथ सम्भाषण किया था और कुशल पूछा था ।५। सूर्य के समान प्रभा वाले मुनि को बडी शीघ्रता से राजा ने प्रणाम किया था । उस मुनि ने प्रणत उस राजा को प्रेम के साथ शुभ आशीर्वाद दिया था ।६। फिर राजा ने अनशन आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया था । मुनि ने सम्भ्रम से ही डर कर राजा का निमन्त्रण दे दिया था ।७।

विज्ञाप्य तं मुनिश्रेष्ठः प्रययौ स्वालयं मुदा ।
लक्ष्मीसमां कामधेनुं कथयामास मातरम् ।८।
उवाच सा मुनिं भीतं भयं किं ते मयि स्थिते ।
जगद्भोजयितुं शक्तस्त्वं मयाकोनृपोमुने ।६।
राजभोजनयोग्याहं यद् यद् द्रव्य प्रयाचसे ।
सर्वंतुभ्य प्रदास्यामि त्रिपुलोकेपुदुर्लभम् ।१०।
मुनि सम्भृतसम्भारो दत्त्वा द्रव्य मनोहरम् ।
भोजयामास राजान ससैन्यमवलीलया ।११।
यद् यत् सुदुर्लभ वस्तु परिपूर्णं नृपश्वरः ।
जगाम विस्मयं राजा दृष्ट्वा पात्रमुवाच ह ।१२।
द्रव्याण्येतानि सचिव दुर्लभान्यश्रुतानि च ।
ममासाध्यानि सहसा क्वागतान्यवलोकय ।१३।
नृपाज्ञया च सचिवः सर्वं दृष्ट्वा मुनेर्गृहे ।
राजानं कथयामास वृत्तान्त महदद्भुतम् ।१४।

मुनियों में परम श्रेष्ठ ने राजा को कहकर अपने आवास के आश्रम की ओर सानन्द गमन किया था। । वहां पर मुनि के आश्रम में स्थित कामधेनु माता से जोकि लक्ष्मी के समान थी प्रार्थना की थी ॥८॥ उस कामधेनु ने मुनि से कहा-मेरे स्थित रहते हुए आप इतने भय से भीत क्यों हो रहे हैं। हे मुने ! मेरे द्वारा तो आप यह राजा क्या चीज है, सम्पूर्ण जगत् को भोजन कराने के लिये समर्थ होते हैं ॥६॥ राजा के भोजन के योग्य जो-जो द्रव्य तुम याचना करोगे मैं तुमको उन सभी को दे दूंगी जोकि तीन लोक मे भी दुर्लभ है ॥१०॥ मुनि सभी प्रकार के सम्भार (सामान) से समन्वित हो गये और उसने लीला से ही सेना के सहित राजा को भोजन करा दिया था ॥११॥ जो-जो भी अति दुलभ वस्तुएँ थी उनसे वह नृपेश्वर परिपूर्ण हो गया था। राजा ने ऐसे पात्र को देखकर परम विस्मय किया था और वह बोला-राजा ने कहा ॥१२॥ हे सचिव ! ये समस्त द्रव्य दुर्लभ एव अश्रुत है जिनको

मैं भी सहसा साध्य नहीं कर सकता हूँ। ये कहाँ से आई है-यह तुम देखो ॥१३॥ राजा की आज्ञा से मन्त्री ने मुनि के गृह में जाकर सब देखा था और फिर राजा से आकर सम्पूर्ण महान् अद्भुत वृत्तान्त कह दिया था ॥१४॥

दृष्टं सर्वं महाराज निबोध मुनिमन्दिरे।
वह्निकुण्डयज्ञकाष्ठकुशपुष्पफलान्वितम् ।१५।
कृष्णचर्मवस्त्रुग्भि. शिष्यसङ्घैश्च सङ्कुलम् ।
तैजसाधारशस्यादि सर्वसम्पद्विवर्जितम्
वृक्षचर्मपरीधाना दृष्टा सर्वे जटाधरा. ।१६।
हैकदेशे दृष्टा सा कपिलैका मनोहरा ।
चार्वङ्गी चन्द्रवर्णाभा रक्तपङ्कजलोचना ।१७।
ज्वलन्ती तेजसा तत्र पूर्णचन्द्रसमप्रभा ।
सर्वसम्पद्गुणाधारा साक्षादिव हरिप्रिया ।१८।
सर्वथाराधितो राजा दुर्बुद्धि सचिवाज्ञया ।
मुनिं ययाचे तां धेनुं निबद्ध कालपाशतः ।१९।
भिक्षां देहि कल्पतरो कामधेनुञ्च कामदाम् ।
मह्यं भक्ताय भक्तेश भक्तानुग्रहकातर ।२०।
युष्मद्विधाना दातृणामदेयं नास्ति भारते ।
दधीचिर्देवताभ्यश्च ददौ स्वास्थि पुराश्रुतम् ।
भ्रूभङ्गलीलामात्रेण तपोराशे तपोधन ।
समूहं कामधेनूनां स्रष्टुं शक्तोऽसि भारते ।२१।

सचिव ने कहा–हे महाराज ! मैंने मुनि के गृह में सभी कुछ देख लिया है उसे आप समझ लेवें। मुनि का मन्दिर वह्नि कुण्ड-यज्ञ काष्ठ-कुश-पुष्प और फलों से समन्वित है ।१५। कृष्ण चर्म, स्रुक्, स्रुवा वाले शिष्यों के समूहों से वह सकुल है। तैजस आधार शस्य आदि सब प्रकार की सम्पदा से रहित है ॥१६॥ वहाँ आश्रम में मैंने सभी लोग

वृक्षों की छाल के वस्त्र धारण करने वाले जटाधारी लोग देखे थे ॥१६॥ मुनि के आश्रम में एक स्थान में एक परम सुन्दर-चारु अंगों वाली-चन्द्रमा के तुल्य आभा से युक्त लाल कमल के समान नेत्र धारिणी कपिला देखी थी ॥१७॥ वह तेज से जाज्वल्यमान थी और पूर्ण चन्द्र के समान प्रभा से समन्वित एवं सम्पूर्ण सम्पत्ति और गुणों की आधार साक्षात् हरि की प्रिया की ही भाँति थी ॥१८॥ सचिव की आज्ञा से सब प्रकार से आराधित दुष्ट बुद्धि वाले उस राजा ने काल के पाश में निवद्ध होते हुए उस धेनु की मुनि से याचना की थी ॥१६॥ राजा ने कहा—हे कल्प तरो ! हे भक्तेश ! हे भक्तों पर अनुग्रह करने में कातर ! मुझ अपने भक्त के लिये कामदा कामधेनु की भिक्षा दो ॥२०॥ आप जैसे दाताओं के लिये भारत में कुछ भी अदेय वस्तु नहीं है। दधीचि ने देवों को अपनी आस्थियाँ तक देदी थीं-यह पहिले सुना ही गया है ॥२१॥ हे तपो राशि वाले ! हे तपस्या के धन वाले ! आपके भ्रूभग की लीला से ही आप कामधेनुओं के समूह का सृजन भारत में करने में समर्थ हैं ॥२२॥

अहो व्यतिक्रमं राजन् ब्रवीषि शठ वञ्चक ।
दानं दास्यामि विप्रोऽहं क्षत्रियायनृपाधम् ।२३।
कृष्णेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना ।
कामधेनुरियं यज्ञे न देयाः प्राणतः प्रिया ।२४।
ब्रह्मणा भृगवे दत्ता प्रियपुत्राय भूमिप ।
मह्यं दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी मम ।२५।
गोलकजा कामधेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये ।
लीलामात्रात् कथमहं कपिलां स्रष्टुमोश्वरः ।२६।
नाहं रे हालिकोमूढ़स्त्वयानोत्यापितावुधः ।
क्षणेनभस्मसात् कर्त्तुं क्षमोऽहमतिथिं विना ।२७।
गृहं गच्छ गृहं गच्छ मत्कोपं नैव वर्द्धय ।
पुत्रदारादिकं पश्य दैववाधित पामर ।२८।

मुनि ने कहा-हे राजन् ! आप विपरीत बात बोल रहे हैं। आप शठ एव वञ्चक हैं। हे नृपाधम मैं ब्राह्मण होकर एक क्षत्रिय के लिये दान दूंगा-कैसी विपरीत बात है ! ॥२३॥ परमात्मा कृष्ण ने गोलोक मे ब्रह्मा के लिये यज्ञ मे यह कामधेनु दी थी। यह प्राण से भी अधिक प्रिया है, यह देने के योग्य नही है ॥२४॥ ब्रह्मा ने इसे भृगु को दी थी जोकि उनका प्रिय पुत्र थे। हे राजन् ! भृगु ने यह मुझे दी है। यह कपिला मेरी पैतृकी सम्पत्ति है ॥२५॥ यह कामधेनु गोलोक में समुत्पन्न हुई है और तीनो लोको मे दुर्लभ है। मैं लीला मात्र से ऐसी कपिला की सृष्टि करने मे कैसे समर्थ हो सकता हूँ ॥२६॥ हे मूढ ! मैं हालिक अर्थात् हल चलाने वाला नही हूँ। तूने यह वृथ उत्थापित नही किया है। मैं एक क्षण मे भस्म कर देने मे समर्थ हूँ। केवल अतिथि को ही समझ कर छोड रहा हूँ ॥२७॥ तुम अपने घर चले जाओ और शीघ्र चला जा-मेरे कोप को मत बढाओ। दैव से बाधित ! हे पामर ! अपने पुत्र और स्त्री आदि का ध्यान कर-क्यो विनष्ट होना चाहता है ॥२८॥

मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप स नराधिपः।
नत्वा मुनिं सैन्यमध्यं प्रययौ विधिबाधितः ।२९।
गत्वा सैन्यसकाशं स कोपप्रस्फुरिताधरः।
किङ्करान् प्रेषयामास धेनुमानयितुं बलात् ।३०।
कपिलासन्निधिं गत्वा रुरोद मुनिपुङ्गवः।
कथयामास वृत्तान्तं शोकेन हतचेतनः ।३१।
रुदन्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा सुरभिस्तमुवाच ह।
साक्षाल्लक्ष्मीः स्वरूपा सा भक्तानुग्रहकातरा ।३२।
इन्द्रोवाहालिकोवापि स्ववस्तुदातुमीश्वरः।
शास्ता पालयितादातास्ववस्तूनाञ्चसन्ततम् ।३३।
स्वेच्छया चेन्नृपेन्द्राय माददासि तपोधन।
तेनसार्द्धं गमिष्यामि स्वेच्छयाचतवाज्ञया ।३४।

अथवा न ददासि त्वं न गमिष्यामि ते गृहात् ।
मत्तोदत्तेन सैन्येन दूरीभूतं नृपं कुरु ।३५।

मुनि के उस वचन को सुनकर यह राजा बहुत क्रोधित हुआ था फिर वह विधि से बाधित होकर मुनि को प्रणाम कर सेना के मध्य में चला गया था ॥२९॥ सेना के समीप में जाकर कोप से प्रस्फुरित अधर वाले उस राजा ने धेनु को जबर्दस्ती से लाने के लिये किङ्करों को भेज दिया था ॥३०॥ उस समय कपिला के पास में जाकर मुनि ने रुदन किया था और शोक से हतबुद्धि वाला होकर सम्पूर्ण वृत्तान्त उस मुनि पुङ्गव ने कपिला से कह दिया था ॥३१॥ रुदन करते हुए उस विप्र को देखकर सुरभि उससे बोली जोकि कपिला साक्षात् लक्ष्मी का स्वरूप धारण करने वाली और भक्तों के अनुग्रह करने में अत्यन्त कातर अर्थात् आतुर थी ॥३२॥ सुरभि ने कहा–इन्द्र हो अथवा हालिक हो वह अपनी वस्तु को देने में समर्थ होता है। शास्ता (शासन करने वाला)-पालयिता भी अपनी वस्तुओं का निरन्तर दाता होता है ॥३३॥ हे तपोधन ! यदि आप अपनी इच्छा से राजा के लिये मुझे देना चाहते हों तो मैं उसके साथ आपकी आज्ञा से स्वेच्छा पूर्वक चली जाऊंगी ॥३४॥ यदि तुम मुझे नहीं दे रहे हो तो तुम्हारे घर से मैं नहीं जाउंगी। मेरे द्वारा दी हुई सेना से राजा को दूर करदो ॥३५॥

कथं रोदिषि सर्वज्ञ मायामोहितचेतनः ।
संयोगश्च वियोगश्च कालसाध्यो नचात्मनः ।३६।
त्वंवा कोमे तवाहं का सम्बन्धः कालयोजितः ।
यावदेव हि सम्बन्धोममत्वंतावदेवहि ।३७।
मनो जानाति यद्द्रव्यमात्मनश्चापिकेवलम् ।
दुःखञ्चतस्यविच्छेदात्यावत्स्वत्वञ्चतत्रवै ।३८।
इत्युक्तवाकामधेनुश्चसुपाविविधानि च ।
शस्त्राण्यस्त्राणि सैन्यानिसूर्य्यतुल्यप्रभाणिच ।३९।

हे सर्वज्ञ ! माया से मोहित चित्त वाला होकर तू क्यों रो रहा है ? यह संयोग और वियोग जो आत्मा का होता है वह काल साध्य होता है ॥३६॥ तुम मेरे कौन हो और मैं भी तुम्हारी कौन हूँ। यह सम्बन्ध काल के द्वारा ही योजित हुआ है। जब तक यह सम्बन्ध है मर तुम हो और तब तक मैं तुम्हारी हूँ ॥३७॥ जिस द्रव्य को मन अपना ही जानता है उसके विच्छेद होने से दुःख होता है क्योंकि उस द्रव्य में वह अपना स्वत्व समझता है। ३८। यह कहकर उस कामधेनु ने अनेक प्रकार के सूर्य के तुल्य प्रभा वाले शस्त्र और अस्त्र तथा सैन्यों को समुत्पन्न किया था ॥३९॥

निर्गताः कपिलावक्त्रात्त्रिकोटिखड्गधारिणः ।
विनिःसृता नासिकायाः शूलिनः पञ्चकोटयः ।४०।
विनिःसृता लोचनाभ्यां शतकोटिधनुर्द्धराः ।
कपालान्निःसृता वीरास्त्रिकोटिदण्डधारिणः ।४१।
वक्षःस्थलान्निःसृताश्च त्रिकोटिशक्तिधारिणः ।
शतकोटिगदाहस्ता पृष्ठदेशाद्विनिर्गताः ।४२।
विनिःसृता पादतलाद्वाद्यभाण्डाःसहस्रशः ।
जङ्घादेशान्निःसृताश्च त्रिकोटिराजपुत्रकाः ।४३।
विनिर्गता गुह्यदेशात्त्रिकोटि म्लेच्छजातयः ।
दत्त्वा सैन्यानि कपिला मुनये निर्भयं ददौ
युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्वं न यासीत्युवाच ह ।४४।
मुनिः सम्भृतसम्भारैर्हर्षयुक्तो बभूव ह ।
नृपेण प्रेरितो भृत्यो नृपं सर्वमुवाच ह ।४५।
कपिलासैन्यवृत्तान्तमात्मवर्गपराजयम् ।
तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलस्त्रस्तः कातरमानसः
दूतद्वारा च सैन्यानि चाजहार स्वदेशतः ।४६।

उस समय उस कपिला के मुख से तीन करोड़ खड्गधारी निक

थे। उसकी नासिका से पाँच करोड़ शूलधारी निकले थे ॥४ ॥ उस धेनु के नेत्रों से सौ करोड़ धनुधारी निकले और उसके कपाल से तीन करोड़ दण्डधारी निकले थे ॥४१॥ वक्षः स्थल से कामधेनु के तीन करोड़ शक्तिधारी भट निकले तथा सौ करोड़ गदा के धारण करने वाले वीर उसके पृष्ठ भाग से निकले थे ॥४ ॥ पैरों के तल से सहस्रों वाद्य भाण्ड निकल आये और जंघा के भाग से तीन करोड़ राजपुत्र निकले थे ॥४३॥ उस धेनु के गुह्य भाग से तीन करोड़ म्लेच्छ जाति वाले निकले थे इस तरह से एक महान् विशाल सेना देकर कपिला ने मुनि को निर्भय दिया था और उसने कहा था कि सैन्य युद्ध करें और तुम वहाँ मत जाना ॥४४॥ मुनि इस प्रकार के युद्ध के सम्भारों से समन्वित होकर बहुत ही हर्षित हुए थे। नृप के द्वारा भेजे हुए भृत्य ने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा से कह दिया था ॥४५॥ कपिला के इस सेना के वृत्तान्त और आत्म-वर्ग के पराजय को सुनकर वह नृप शार्दूल बड़ा त्रस्त हुआ और कातर मन वाला हो गया था। फिर उस राजा ने दूत के द्वारा अपने देश से विशेष सेना बुलवाई थी ॥४६॥

५५-ससैन्यस्य राज्ञोमुनितपोवने पुनर्गमनम्

हरिं स्मृत्वा गृहं गत्वा राजा विस्मितमानसः ।
पुनर्जगामारण्यञ्चजमदग्न्याश्रमंतदा ॥१॥
रथानाञ्च चतुर्लक्षं रथीनां दशलक्षकम् ।
अश्वेन्द्राणांगजेन्द्राणां पदातीनामसंख्यकम् ॥२॥
राजेन्द्राणां सहस्रञ्च महाबलपराक्रमम् ।
महासमृद्धियुक्तश्च त्रैलोक्यं जेतुमीश्वरः ॥३॥

समृद्ध्या वेष्टयामास जमदग्न्याश्रममुदा ।
रथस्थोवर्मंयुक्तश्चकार्त्तवीर्य्यार्जुन स्वयम् ।४।
सैन्यशब्दवाद्यशब्दमंहाकोलाहलैमुने ।
जमदग्न्याश्रमस्थाश्च मूर्च्छामापुर्भयेन च ।५।
पुरीं प्रविश्य बलवान् गृहीत्वा कपिलां शुभाम् ।
गृहं गन्तु मनश्चक्रे दुर्बुद्धिरसदाश्रय ।६।
समुत्तस्थौ मुनिश्रेष्ठो गृहीत्वा सशरं धनु. ।
एकाकी मुक्तगात्रश्चधेनुनत्वाहरिंस्मरन् ।७।

इस अध्याय मे सेना के सहित राजा का मुनि के तपोवन मे पुनर्गमन का वर्णन किया गया है। नारायण ने कहा–वह राजा घर मे जाकर हरि का स्मरण करके बहुत ही विस्मित मन वाला हो गया था। फिर वह राजा जमदग्नि के आश्रम मे गया था ॥१॥ राजा की सेना में चार लाख रथ थे और दश लाख रथी थे। हाथी-घोडे और पदातियो की तादाद इतनी अधिक थी कि उसकी कोई सख्या ही नही थी ॥२॥ महान् बल और पराक्रम से युक्त राजेन्द्र सहस्र सख्या वाले थे। राजा उस समय महान् समृद्धि से युक्त था कि तीन लोको को भी जीतने मे समर्थ थे ॥३॥ उस समय कार्त्तवीर्य रथ मे स्थित होकर वर्म से युक्त हो स्वय वहाँ आया था और अपनी सैन्य की समृद्धि से उसने प्रसन्नता से जमदग्नि के आश्रम को वेष्टित कर लिया था ॥४॥ हे मुने ! सैनिको के शब्दो से तथा वाद्यो की ध्वनियो से और महा कोलाहलो से जमदग्नि के आश्रम से स्थित लोग भय से उस समय मूर्च्छा को प्राप्त हो गये थे ॥५॥ उस बलवान् राजा ने पुरी मे प्रवेश करके उस शुभ कपिला को ग्रहण कर लिया था और असत् के आश्रय वाला वह गृह जाने की इच्छा करने लगा था ॥६॥ मुनि श्रेष्ठ ने शर के सहित धनुष लेकर उस समय युद्ध के लिये तैयारी की थी। वह उस समय अकेले ही थे और धेनु को नमस्कार करके हरि का स्मरण करते हुए मुक्तगात्र हो गये थे ॥७॥

आश्रमस्थान् जनान् सर्वान् समाश्वास्य च यत्नतः ।
आजगाम रणस्थानं निःशङ्को नृपतेः पुरः ।८।
चकार शरजालञ्च स मुनिर्मन्त्रपूर्वकम् ।
चच्छाद स्वाश्रमं तैश्च मानवं वर्मणा यथा ।९।
अपरं शरजालञ्च चकार मुनिपुङ्गवः ।
तैरेव वारयामास सर्वसैन्यं यथाक्रमम् ।१०।
मुनिना शरजालेन सर्वसैन्यं समावृतम् ।
तानिसर्वाणिगुप्तानिपत्राणिपञ्जरे यथा ।११।
राजा दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठमवरुह्य रथात् पुरः ।
सार्द्धं नृपेन्द्रैर्भक्त्या च प्रणनाम पुटाञ्जलिः ।१२।
नत्वा रुरोहयानं स मुनेः प्राप्य शुभाशिषम् ।
आरुरोह नृपेन्द्रश्चस्वयानं हृष्टमानसा ।१३
नृपैः सार्द्धं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप मुनिपुङ्गवम् ।
अस्त्रं शस्त्रं गदां शक्तिं जघानलीलयामुनिः ।१४।
मुनिश्चिक्षेप दिव्यास्त्रं चिच्छेद लीलया नृपः ।
शूलञ्चिक्षेपनृपतिर्जघान तत्तदामुनिः ।।
अपरं शरजालञ्च चिक्षेप मुनिपुङ्गवः ।१५।

मुनि ने आश्रम में स्थित समस्तजनों को यत्न पूर्वक आश्वासन देकर निःशङ्क होते हुये स्वयं राजा के आगे वह रण स्थान में आ गये थे ।।८।। उस मुनि ने भनजों के साथ वहां पर शरों का जाल कर दिया था । जिस तरह कवच से कोई मानव अपने शरीर को समाच्छादित किया करता है उसी भांति उन शरों से मुनि ने अपने आश्रम को आच्छादित कर दिया था ।९। इसके उपरान्त मुनि श्रेष्ठ ने एक दूसरा शरों का जाल किया था और उन्हीं शरों से यथाक्रम सम्पूर्ण सेना को वारण कर दिया था ।१०। इस तरह से मुनि ने अपने शरों के जाल से राजा की सम्पूर्ण सेना को समावृत कर दिया था । उस समय वे सब पञ्जर में पत्रों की भांति 'गुप्त' हो गये

थे ॥११॥ राजा ने मुनि श्रेष्ठ को देखा और वह रथ से उतर पडा था। उसने राजाओं के साथ हाथ जोडकर भक्तिभाव से मुनि को प्रणाम किया था ॥१२॥ वह नमस्कार करके और मुनि से आशीर्वाद प्राप्त कर पुन अपने यान पर समारूढ हो गया था। राजा उस समय बहुत प्रसन्नचित्त वाला होकर रथ पर चढ गया था ॥१३॥ फिर राजा ने अन्य नृपो के साथ मुनि श्रेष्ठ पर अस्त्र-शस्त्र-गदा और शक्ति के प्रहार किये थे किन्तु मुनि ने लीला से ही उनका हनन कर दिया था ॥ १४॥ फिर मुनि ने अपना दिव्यास्त्र का प्रक्षेप किया था जिसका छेदन राजा ने लील से ही कर दिया था। राजा ने शूल का क्षेपण किया था और मुनि ने उसका भी उस समय हनन कर दिया था। मुनि ने फिर दूसरा शरो के जाल का प्रक्षेपण किया था ॥१५॥

ब्रह्मास्त्रञ्च नृपश्रेष्ठ प्रचिक्षेप मुनौ तदा।
ब्रह्मास्त्रेण मुनीन्द्रस्य सद्यो निर्वाणतागतम् ।१६।
दिव्यास्त्रेण मुनिश्रेष्ठो नृपस्य सशर धनु ।
रथञ्च सारथिञ्चैव चिच्छेदवर्म दुर्वहम् ।१७।
अथ राजा महाक्रुद्धो ददर्श स्वसमीपत ।
दत्तेन दत्ता शक्ति तामेकपुरुषघातिनीम् ।१८।
जग्राह नत्वा दत्त त प्रणम्य शक्तिमुल्वणाम् ।
घूर्णयामास तत्रैव शतसूर्य्यसमप्रभाम् ।१९।
यत्तेज. सर्वदेवाना तेजो नारायणस्य च ।
शम्भोश्च ब्रह्मणश्चैव मायायाश्चैव नारद ।२०।
तत्रैवावाहयामास स योगी मन्त्रपूर्वकम् ।
तेजसा द्योतयामास गगनञ्चदिशोदश ।२१।

उस समय मे नृप श्रेष्ठ ने मुनि के ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रहार किया था जोकि मुनीन्द्र के ब्रह्मास्त्र से तुरन्त ही निर्वाणता को प्राप्त हो गया था।१६। फिर मुनि श्रेष्ठ ने अपने दिव्य अस्त्र के

द्वारा राजा के शर के सहित धनुष को रथ को सारथि को और दुर्वह वर्म को छिन्न कर दिया था ।१७। इसके पश्चात् राजा महान् क्रुध हो गया था जबकि उसने अपने समीप में यह देखा था। उसने फिर दत्तात्रेय के द्वारा दी हुई उस एक पुरुष के घात के करने वाली शक्ति को ग्रहण किया था ।१८। राजा ने उस समय दत्तात्रेय को प्रणाम किया था और सौ सूर्य के समान प्रभाशाली अत्यन्त मुलण शक्ति को घुमाया था ।१९। हे नारद ! समस्त देवों का तेज नारायण का तेज-शंभु और ब्रह्मा तथा माया का तेज जो है उसको वहां पर ही उस योगी ने मन्त्र पूर्वक आवाहन किया था और तेज के द्वारा दशों दिशाओं क द्योतित कर दिया था ॥२०॥२१॥

दृष्ट्वा क्षिपन्तीं तां देवा हाहाकारंचकारह ।
आकाशस्थाश्चसमरंपश्यन्तोदुःखिता हृदा ।२२।
चिक्षेपतांघूर्णयित्वाकार्त्तवीर्य्यार्जुनःस्वयम् ।
सद्यःपपातसाशक्तिर्ज्वलन्तीमुनिवक्षसि ।२३।
विदार्य्योरो मुनेः शक्ति र्जगाम हरिसन्निधिम् ।
दत्ताय हरिणा दत्तादत्तेनैवनृपायसा ।२४।
मूर्च्छां सम्प्राप्य स मुनिःप्राणां स्तत्याज तत्क्षणम् ।
तेजो ऽम्बरे भ्रमित्वा च ब्रह्मलोकं जगाम ह ।२५।
युद्धे मुनिं मृतं दृष्ट्वा रुरोद कपिला मुहुः ।
हे तात तातेत्युच्चार्य्य गोलोकंसा जगाम ह ।२६।
सर्वं सा कथयामासगोलोकेकृष्णमीश्वरम् ।
रत्नसिंहासनस्थंतं गोपैर्गोपीभिरावृतम् ।२७।
कृष्णेन ब्रह्मणे दत्ता ब्रह्मणा भृगवे पुरा ।
सा प्रीत्या पुष्करे ब्रह्मन् भृगुणा जमदग्नये ।२८।
नत्वा च कामधेनूनां समूहं सा जगाम ह ।
तदश्रुबिन्दुना मर्त्ये रत्नसङ्घो बभूव ह ।२९।

अथ राजा तं निहत्य बोधयित्वा स्वसैन्यकम् ।
प्रायश्चित्त विनिर्वर्त्य जगाम स्वालय मुदा ।३०।

उस शक्ति को क्षेपण करते हुये देखकर समस्त देवों ने हाहाकार किया था और आकाश मे स्थित उन्होंने उस युद्ध को देखा था। उस समय सभी देवता हृदय मे अत्यन्त दुःखित हुए थे ।२२ कार्त्तवीर्या मुनि ने स्वयं उस शक्ति को घुमाकर फेंक दिया था और वह शक्ति जलती हुई मुनि के वक्ष स्थल मे गिरी थी ।।२३।। उस शक्ति ने मुनि के उर स्थल को विदीर्ण कर दिया था और इसके पश्चात् वह हरि की सन्निधि मे चली गई थी। इस शक्ति को हरि ने दत्तात्रेय को दिया था और उस दत्त ने इसे राजा को दिया था ।२४। मुनि ने उसी समय मूर्छा प्राप्त की थी और इसके अनन्तर उसने अपने प्राणों का त्याग कर दिया था। वह तज अम्बर मे भ्रमण करके फिर ब्रह्म लोक मे चला गया था ।२५। उस युद्ध मे मुनि को मृत देखकर कपिला ने बार-बार रुदन किया था। हे तात, हे तात,—ऐसा उच्चारण करके वह फिर गोलोक मे चली गई थी ।।२६।। उसने गोलोक मे ईश्वर श्री कृष्ण से सारा वृत्तान्त कह सुनाया था। वहाँ पर श्री कृष्ण भगवान रत्नों के निर्मित सिंहासन पर विराजमान थे और गोप तथा गोपियों से आवृत थे ।।२७।। वह कपिला पहिले कृष्ण ने ब्रह्मा को दी थी और ब्रह्मा ने भृगु ऋषि को प्रदान की थी, फिर पुष्कर मे भृगु ने प्रीति के साथ जमदग्नि ऋषि को दी थी ।।२८।। उसने श्री कृष्ण को प्रणाम किया और वह कामधेनुओं के समुदाय मे वहाँ से चली गई थी। उसके अश्रुओं के जो विन्दु गिरे थे वे मनुष्य लोक मे रत्नों का समूह बन गया था ।।२९।। इसके अनन्तर राजा ने उस जमदग्नि को मारकर अपनी सेना को बोध कराके वह प्रायश्चित्त से निवृत्त होकर अपने आवासस्थान को आनन्द चला गया था ।।३०।।

प्राणनाथं मृतं श्रुत्वा जगाम रेणुकासती ।
मुनिवक्षसिसंस्थाप्यक्षणं मूर्च्छामवाप सा ।३१।
तदा सा चेतनां प्राप्य न रुरोद पतिव्रता ।
एहि वत्स भृगोराम राम रामेत्युवाच ह ।३२।
आजगाम भृगुस्तूर्णं क्षणेन पुष्करादहो ।
ननाम मातरं भक्त्या मनोयायोचयोगवित् ।३३।
दृष्ट्वा रामो मृतं तातं शोकार्त्तां जननीं सतीम् ।
आकर्ण्य रणवृत्तान्तं प्रयान्तीं कपिलां शुचा ।३४।
विललाप भृशं तत्र हे तात जननीति च ।
चिताञ्चकार योगीन्द्रश्चन्दनैराज्यसंयुताम् ।३५।

अपने प्राणों के स्वामी को मृत सुनकर सती रेणुका वहां गई थी और वह मुनि के शव को वक्षःस्थल पर संस्थापित कर एक क्षण के लिये मूर्छित हो गई थीं ।।३१।। इसके अनन्तर उसने चेतना प्राप्त की और पतिव्रता वह रोने लगी थी । वह हे वत्स । हे राम-हे राम-आओ ऐसा बोली थी ।।३२।। थोड़ी ही देर में पुष्कर से शीघ्र भृगु वहां आ गये थे । मन के अनुसार गमन करने वाले और योग के वेत्ता उसने भक्ति पूर्वक माता को आकर प्रणाम किया था ।३३। राम ने वहां पर अपने पिता को मृत और अपनी माता को शोक से दुःखित देखा था और रण का समस्त वृत्तान्त तथा शोक से कपिला का गमन करना श्रवण किया था ।।३४।। यह सुनकर परशुराम ने हे तात, हे जननी—यह कहते हुये अत्यन्त विलाप वहाँ पर किया था और इसके पश्चात् उस योगेन्द्र ने चन्दन की लकड़ियों से घृत समन्वित चिता बनाई थी ।।३५।।

रेणुका राम मादाय तूर्णं कृत्वा स्ववक्षसि ।
चुचुम्ब गण्डेशिरसि रुरोदोच्चै र्भृशंमुहुः ।३६।
राम राम महाबाहो क्व यामि त्वां विहाय च ।
वत्सवत्सेतिकृत्वैवंविललापभृशंमुहुः ।३७।

मत्प्राणाधिक हे वत्स मदीय वचनं शृणु ।
पित्रो शेपक्रियाकृत्वापुत्र युद्धे न यास्यसि ।३८।
गृहे तिष्ठ सुख वत्स तपस्या कुरु शाश्वतीम् ।
समर नैव सुखद दारुणैः क्षत्रियैः सह ।३६।
मातुर्वचनमश्रुत्वा प्रतिज्ञा ता चकार ह ।
नि सप्तकृत्वोनिर्भूपाकरिष्यामिध्रुवमहीम् ।४०।
कार्त्तवीर्य्यं हनिष्यामि लीलया क्षत्रियाधमम् ।
पितृ श्वतर्पयिष्यामिक्षत्रियक्षतजेन च ।४१।
इत्युदीर्य्य पुरो मातु विललाप मुहुर्मुहुः ।
हित तथ्य नीतिसार वोधयामास मातरम् ।४२।

रेणुका ने राम को लेकर शीघ्र अपने वक्षः स्थल से लगाया था और उसके गण्ड एव शिर मे चुम्बन किया था । इसके पश्चात् वह बहुत ही अधिक ऊँचे स्वर से बार-बार रुदन करने लगी थी ॥३६॥ हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! तुझे त्यागकर मैं कहा जाऊँ । हे वत्स ! हे वत्स ! ऐसा कह कहकर वह अत्यन्त बार-बार विलाप कर रही थी ॥३७॥ हे मेरे प्राणो से भी अधिक प्रिय ! हे वत्स ! अब तू मेरे वचन का श्रवण कर । अपने माता पिता की शेप क्रिया करके हे पुत्र ! तू युद्ध मे मत जाना ॥३८। हे वत्स ! घर मे ही सुख पूर्वक रहना और शाश्वती अर्थात् निरन्तर होने वाली तपस्या करना ! इन दारुण क्षत्रियो के साथ युद्ध करना कभी सुख देने वाला नही होता है ॥३९॥ परशुराम ने माता के इस वचन को न सुनकर उस समय ही यह प्रतिज्ञा अपनी माता के समक्ष मे की थी कि मैं निश्चय ही इक्कीस बार इस भूमि को क्षत्रिय राजाओ से रहित कर दूगा। ।४०। इस क्षत्रियो मे महान् अधम कार्त्तवीर्य का लीला से ही हनन कर दूगा और अपने पितृगणो को क्षत्रिय के रक्त के द्वारा तृप्त करूगा ॥४१॥ इतना माता के आगे कहकर वह परशुराम बार-बार विलाप करने लगे थे । फिर हित-तथ्यो का

सार और नीतिका सार माता को समझाया था ॥४२॥

पितुः शासन हन्तारं पितुर्वधविधायकम् ।
यो न हन्ति महामूढोरौरवसंव्रजेद्ध्रुवम् ।४३।
अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुविहिंसकः ।४४।
सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुवाचकः ।
एकादशते पापिष्ठा वधार्हा वेदसम्मतः ।४५।
द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति ।
वपनं ताड़नञ्चैवंवधमाहुर्मनीषिणः ।४६।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र आजगाम भृगुः स्वयम् ।
अतित्रस्तो मनस्वी च हृदयेनविदूयता ।४७।
दृष्ट्वा तं रेणुका रामो विनयञ्च चकार ह ।
सतावुवाच वेदोक्तं परलोकहिताय च ।४८।

परशुराम ने कहा—पिता के शासन का हनन करने वाले और पिता के वध को करने वाले को जो पुत्र हनन नहीं करता है वह महान् मूढ़ पुत्र निश्चय ही रौरव नरक में पतित होता है ॥४३॥ अग्नि लगाने वाला-विष देने वाला-शस्त्र हाथ में लेकर धन का अपहरण करने वाला-क्षेत्र और स्त्री का अपहरण करने वाला-पितृ बन्धु विहिंसक-निरन्तर मन्द कार्य करने वाला-निन्दक और कटु वचन बोलने वाला ये ग्यारह मनुष्य महान् पापिष्ठ हैं और वध के योग्य हैं—ऐसा वेद के सम्मत सिद्धान्त हैं ॥४५॥ हे सति ! ब्राह्मणों के धन का लेना-उनको स्थान से निकाल देना वपन कराना और विप्रों का ताड़न करना इन सब कार्यों को मनीषी लोग वध ही कहते हैं ॥४६॥ इसी बीच में वहां पर भृगु स्वयं आ गये थे। यह मनस्वी थे तो भी विदूयमान हृदय से अत्यन्त त्रस्त हो गये थे ॥४७॥ रेणुका और राम ने उनको देख कर उनसे विनती की थी और उसने उन दोनों से परलोक के हित लिये जो वेदोक्त सिद्धान्त था वह कहा था ॥४८॥

मद्वंश जातो ज्ञानी त्वं कथं विलपसे सुत ।
जलबुद्बुदवत् सर्वं संसारे च चराचरम् ।४६।
सत्यसारं सत्यबीजं कृष्णं चिन्तय पुत्रक ।
यद्गतं तद्गतं वत्स गतं मा पुनरागतम् ।५०।
यद्भवेत्तद्भवत्येव भविता यद्भविष्यति ।
सत्यं नैषेकिकं कर्म निषेकः केन वार्य्यते ।५१।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च यत् कृष्णेन निरूपितम् ।
निरूपितयत्तत्कर्मकेनवत्सनिवार्य्यते ।५२।
मायाबीजं मायिनाञ्च शरीरं पाञ्चभौतिकम् ।
सङ्केतपूर्वकं नाम प्रातःस्वप्नसमं सुत ।५३।
क्षुधा निद्रा दया शान्तिः क्षमा कान्त्यादयस्तथा ।
यान्ति प्राणा मनो ज्ञानं प्रयाते परमात्मनि ।५४।
वेदोक्तञ्चैव यत् कर्म कुरु तत् पारलौकिकम् ।
सच बन्धु सपुत्रश्चपरलोकहिताय य ।५५।

भृगु ने कहा—हे पुत्र ! तू मेरे वंश में समुत्पन्न हुआ है और परम ज्ञानी है फिर ऐसा क्यों विलाप कर रहा है ? इस संसार में यह सभी चर और अचर एक जल के बुद-बुदे के तुल्य ही होता है ॥४६॥ हे पुत्र ! सत्य का सार और सत्य का बीज कृष्ण का चिन्तन करो । हे वत्स ! जो हो गया वह हो ही गया वह फिर गया हुआ आगत नहीं होता है ॥५०॥ जो होने वाला है वह होता ही है और जो होने को है वह भी होगा ही । सत्य नैषेकिक कर्म है । जो निषेक है वह किसके द्वारा वारण किया जाता है ॥५१॥ भूत-भव्य और भविष्य जो भी श्री कृष्ण ने निरूपित कर दिया है हे वत्स ! वह निरूपित कर्म ऐसा है कि उसे किसी के भी द्वारा टाला नहीं जाया करता है ।५२। मायियों का माया बीज शरीर पाञ्च भौतिक होता है । हे सुत ! यह सङ्केत पूर्वक जो उसका एक नाम है वह तो प्रातः कालीन स्वप्न के समान ही होता है ॥५३॥ क्षुधा-निद्रा

दया-शान्ति-क्षमा तथा कान्ति आदि सब परमात्मा के चले जाने पर प्राण-ज्ञान और मन सभी चले जाया करते हैं ।।५४।। इसलिये अब पारलौकिक वेद में कथित जो कर्म हैं वह करो। परलोक की भलाई के लिये जो होता है वही बन्धु और पुत्र होता है ।५५।
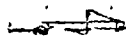
५६-परशुरामेण राजसमीपे दूतप्रेषणम् ।

स प्रातराह्निक कृत्वा समालोच्य च तैः सह ।
दूतप्रस्थापयामास कार्त्तवीर्य्याश्रमंभृगुः ।१।
स दूतः शीघ्रमागत्य वसन्त राजसंसदि ।
वेष्टितं सचिवैः सार्द्धमुवाच नृपतीश्वरम् ।२।
नर्म्मदातीरसान्निध्ये न्यग्रोधाक्षयमूलके ।
स भृगुर्भ्रातृभिः सार्द्धं त्वं तत्र गन्तुमर्हसि ।३।
युद्धं कुरु महाराज ज्ञातिभिर्ज्ञातिभिः सह ।
त्रिः सप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यतिमहीमिति ।४
इत्युक्त्वा रामदूतश्च जगाम रामसन्निधिम् ।
राजा विधाय सन्नाह समरं गन्तुमुद्यतः ।५।
गच्छन्तं समरं दृष्ट्वा प्राणेशं सा मनोरमा ।
तमेव वारयामास वासयामास सन्निधौ ।६।
राजा मनोरमां दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणः ।
तामुवाच सभामध्ये वाक्यं मानसिकं मुने ।७।

इस अध्याय में परशुराम के द्वारा राजा के समीप में दूत के भेजने का वृत्तान्त निरूपित किया गया है। नारायण ने कहा—उस भृगु ने प्रातः काल का आह्निक कर्म करके उन सबके साथ विचार

करके कार्त्तवीर्य राजा के आश्रम मे दूत को भेजा था ॥१॥ वह दूत शीघ्र ही वहा आया और राज ससद मे वास करने वाले-सचिवो से परिवेष्टित नृपतियो के ईश्वर कार्त्तवीर्य से बोला—।२। राम दूत ने कहा—नर्मदा नदी के तट पर समीप मे ही अक्षय न्यग्रोध (वट) के मूल मे वह भृगु ऋषि विद्यमान हैं। आप अपने समस्त भाइयो के साथ वहा जाने को योग्य होते हैं ।३॥ हे महाराज ! आप जाति वाले और अपने क्षत्रि वालो के साथ युद्ध करिये। वह इक्कीस बार इस भूमि तल को भूपो से रहित करेंगे ।४। इतना सन्देश कहकर वह परशुराम का दूत परशुराम के समीप मे चला गया था। फिर राजा ने अपना सन्नाह बनाकर समर करने को वह उद्यत हुआ था ।५। युद्ध करने को जाने वाले अपने प्राणो के नाथ को देखकर उस मनोरमा ने निवारण किया था और अपने पास ही उसको रख लिया था ।६। राजा ने मनोरमा को देखकर प्रसन्न मुख और नेत्र वाले ने उससे कहा था। हे मुने ! उसन सभा के मध्य मे अपने हृदय के वाक्य बोले थे ॥७॥

मामेवाह्वयते कान्ते जमदग्निसुतो महान् ।
स तिष्ठन्नर्म्मदातीरे रणाय भ्रातृभिः सह ।८।
सम्प्राप्य शङ्कराच्छस्त्र मन्त्रञ्च कवच हरेः ।
त्रि सप्तकृत्वो निर्भूपा कर्त्तुमिच्छति मेदिनीम् ।६।
आन्दोलयति मे प्राणान्मन सक्षुभित मुहुः ।
शश्वत्स्फुरति वामाङ्ग हृष्टस्वप्नंभृगुप्रिये ।१०।
तैलाभ्याङ्गितमात्मानमदर्श गर्दभोपरि ।
विभ्रन्तमोड्रपुष्पस्य माल्यञ्च रत्नचन्दनम् ।११।
रक्तवस्त्रपरीधान लौहालङ्कारभूषितम् ।
हसन्तञ्चैव क्रीडन्त निर्वाणाङ्गारराशिना ।१२।
भस्माच्छन्नाञ्च पृथिवी जवापुष्पान्विता सति ।
रहित चन्द्रसूर्य्याभ्या रक्तसध्यान्वित नभः ।१३।

कार्त्तवीर्यर्जुन ने कहा—हे कान्ते ! महान् जमदग्नि का पुत्र मुझको ही बुला रहा है। वह इस समय नर्मदा के तट पर स्थित है और भाइयों के साथ मुझे युद्ध के लिये बुला रहा है।८। उसने भगवान् शङ्कर से हरि का मन्त्र–कवच और अस्त्र प्राप्त कर लिया है। वह इक्कीस वार इस भूमि को राजाओं से रहित करना चाहता है।६। वार-वार संक्षुभित मेरा मन हो रहा है और मेरे प्राणों को आन्दोलित करता है। मेरा वाम अङ्ग स्फुरण कर रहा है। हे कान्ते ! मैंने आज स्वप्न देखा है उसका तुम श्रवण करो।१०। मैंने अपने आपको सम्पूर्ण शरीर में तेल लगाकर गधे के ऊपर बैठा हुआ देखा है और ओड्र पुष्प की माला तथा रक्त चन्दन धारण करने वाला अपने आपको देखा है।११। मैंने स्वप्न में देखा है कि मैं लाल वस्त्र धारण करने वाला तथा लोहे के भूषण पहिने हुये हूँ और निर्वाणाङ्गारों के समूह से क्रीड़ा कर रहा हूँ तथा हंस रहा हूँ।१२। हे सति ! मैंने स्वप्न में इस भूमि को भस्म से आच्छन्न तथा जया के पुष्पों से समन्विता देखा है। यह आकाश मण्डल ऐसा देखा है जिसमें सूर्य और चन्द्र दोनों में कोई भी नहीं है।१२।१३।

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि श्रुतं सर्वं त्वयेरितम्।
शोकार्त्तानाञ्च वचनं नप्रशंस्यं सभासुच।१४।
सुख दुःखं भयं शोकं कलहः प्रीतिरेव च।
कर्मभागार्हकालेन सर्वं भवति सुन्दरि।१५।
कालो ददाति राजत्वं कालो मृत्युं पुनर्भवम्।
कालः सृजतिसंसारं कालः संहरतेपुनः।१६।
करोति पालन कालः कालरूपी जनार्दनः।
कालस्यकालः श्रीकृष्णो विधातुर्विधिरेवच।१७।
संहर्त्तुर्वापि संहर्त्ता पातुः पाता निषेककृत्।
स निषेको निषेकेण ददाति तपसां फलम्।१८।
कः केन हन्यते जन्तुर्निषेकेण विना सति।१६।

क्रीडागारे क्षणं तस्थौ कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि ।
पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः । ०।

हे कान्ते ! मैंने तुम्हारे द्वारा कथन किया हुआ सब भली भाँति सुन लिया है । सभाओं में शोक से आर्त्तों का वचन प्रशंसनीय नहीं होते हैं ॥१४॥ सुख दुख भय शोक कलह और प्रीति मे सभी हे सुन्दरि ! कर्मों के भोग के योग्य काल से ही हुआ करते है ।१५। यह काल ही राजपद देता है और काल ही मृत्यु तथा पुनर्जन्म दिया करता है । काल से ही इस संसार का सृजन होता है और काल ही फिर इसका संहार किया करता है ।१६। काल के रूप वाले भगवान् जनार्दन इस समृति का पालन किया करते हैं । काल का भी काल श्री कृष्ण हैं जो विधाता के भी विधाता होते हैं ॥१७॥ वह संहार करने वाले के भी संहर्त्ता हैं और माता के भी पालन एवं रक्षण करने वाले निषेक कर्त्ता हैं । वही निषेक से तपो के फल को दिया करते हैं । निषेक के बिना कोई भी जन्तु किसी के द्वारा हे सति ! क्या कभी हनन किया जाता है ? ॥१८।१६॥ वह कार्त्तवीर्य उस समय अपने उस क्रीडागार मे थोडी देर तक स्थित रहा था और अपनी कान्ता को वक्ष स्थल मे लगाकर उसने उसको बार-बार देखती हुई को चुम्बित किया था ॥२०॥

परशुरामश्च समरे तं राजेन्द्र ददर्श ह ।
रत्नालङ्कारभूपाढ्यै राजेन्द्रकोटिभिः सह ।२१।
रत्नातपत्रभूपाढ्य रत्नालङ्कारभूषितम् ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्ग सस्मितं सुमनोहरम् ।२२।
राजा दृष्ट्वा मुनीन्द्र तमवरुह्य रथादहो ।
प्रणम्य रथमारुह्य तस्थौ नृपगणै सह ।२३।
ददौ शुभाशिषं तस्मै रामश्च समयोचितम् ।
प्रोवाच च गतार्यञ्च स्वर्गं गच्छेतिसानुगः ।२४।

उभयोः सेनयोर्युद्धं बभूव तत्र नारद।
पलायिता रामशिष्या भ्रातरश्च महाबलाः ॥
क्षतविक्षतसर्वाङ्गाः कार्त्तवीर्य्यप्रपीड़िताः ।२५।
नृपस्य शरजालेन रामः शस्त्रभृतां वरः।
न ददर्श स्वसैन्यञ्च राजसैन्यं स्वमेव च ।२६।
चिक्षेप वह्नि रामश्च बभूवाग्निमयं रणे।
निर्वापयामास राजा वारुणेनावलीलया ।२७।
पपात शूलं समरे रामस्योपरि नारद।
मूर्च्छामवाप स भृगुः पपात च हरिं स्मरन् ।२८।

इसके अनन्तर परशुराम ने उत राजेन्द्र को युद्ध भूमि में देखा था। जोकि रत्नालङ्कारों तथा करोड़ों राजाओं के साथ भूषित होकर वहां आया हुआ था ॥२१॥ रत्नों के छात्र से विभूषित तथा रत्नालङ्कारों से सुशोभित चन्दन से उक्षितसर्वाङ्ग वाले स्मित से युक्त परम सुन्दर मुनीन्द्र को देख कर राजा रथ से उतरा और मुनीन्द्र को प्रणाम करके फिर रथ पर नृपगणों के साथ स्थित हो गया था ॥२२।२३॥ परशुराम ने भी समायोचित उसको शुभाशीर्वाद दिया था। और उस गतार्थ को सानुग स्वर्ग को जाओ—यह कहा था ॥२४॥ हे नारद! वहां पर दोनों की सेनाओं का युद्ध हुआ था। उस समय परशुराम के शिष्य और महान् बलवान् भाई लोग सब भाग गये थे। कार्त्तवीर्य के द्वारा सभी क्षत विक्षत अङ्गों वाले एवं प्रपीड़ित हो गये थे ॥२५॥ राजा के शरों के जाल से शस्त्रधारियों में परम श्रेष्ठ परशुराम ने अपनी सेना-राजा की सेना और अपने आपको भी उस समय नहीं देखा था ॥२६॥ राम ने रण में अग्नि से परिपूर्ण वह्निका क्षेपण किया था। राजा ने वारुणअस्त्र के द्वारा लीला से ही उसको शान्त कर दिया था ।२७। हे नारद! फिर राजा ने राम के ऊपर शूल का प्रहार किया था उससे युद्ध भूमि में वह भृगु मूर्च्छा को प्राप्त हो गये और हरि का

स्मरण करते हुये भूमि पर गिर गये थे ॥२८॥

राजेन्द्रोत्तिष्ठ समरं कुरु साहसपूर्वकम् ।
कालभेदे जयो नृणां कालभेदे पराजयः ।२९।
अधीतं विधिवद्दत्तं कृत्स्ना पृथ्वी सुशासिता ।
यशः कृतञ्चसंग्रामात्त्वयाहंमूर्च्छितोऽधुना ।३०।
जिताः सर्वे च राजेन्द्रा लीलया रावणाजितः ।
जिताऽहंदत्तशूलेनशम्भुनाजीवितः पुनः ।३१।
रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः ।
मूर्ध्ना प्रणम्य तं भक्तयायथार्थोक्तिमुवाच ह ।३२।
किमधीतं किं वा दत्तं कावा पृथ्वी सुशासिता ।
गताः कतिविधाभूपानाइशाधरणीतले ।३३।
इत्युक्त्वा कार्तवीर्य्यश्च रामं नत्वा च सस्मितः ।
आरुरोह रथं शाघ्रं गृहीत्वासशरधनुः ।३४।
रामस्ततो राजसैन्यां ब्रह्मास्त्रेण जघान ह ।
नृपं पाशुपतेनैव लीलया श्रीहरिं स्मरन् ।३५।

परशुराम ने कहा—हे राजेन्द्र ! उठो और साहस के साथ युद्ध करो। काल के भेद होने पर ही मानवों का जय और पराजय होता है ॥२९॥ आपने विधि पूर्वक दत्त से अध्ययन किया है और सम्पूर्ण भूमि का सुशासन किया है। आपने यश प्राप्त किया है। इस समय आपने इस संग्राम में मुझे मूर्छित कर दिया है ॥३०॥ आपने तो सभी राजाओं को तथा रावण को भी लीला से ही जीत लिया है। आपने दत्त के दिये हुए शूल से मुझे भी जीत लिया था किन्तु शम्भु ने मुझे पुनः जीवित कर दिया है ॥३१॥ राम के इस वचन को सुन कर परम धार्मिक राजा ने उस मुनिको मस्तक टककर भक्ति से प्रणाम किया और यथार्थ उसके बोला था ।३२।

राजा ने कहा-मैंने क्या पढ़ा है-क्या दिया है और क्या पृथ्वी का शासन किया है ? मुझ जैसे न मालूम कितने ही राजा इस धरणी तल में समुत्पन्न होकर चल बसे हैं ॥३३॥ यह कह कर कार्त्त-वीर्य ने राम को प्रणाम किया था और स्मित के सहित होकर रथ पर आरूढ़ होकर उसने शीघ्र ही उसके शर के सहित धनुष ग्रहण कर लिया था ॥३४॥ इसके अनन्तर राम ने ब्रह्मास्त्र से राजा की सेना का हनन किया था। राजा ने पाशुपत अस्त्र से श्री हरि का स्मरण करते हुये हनन किया था ॥३५॥

एवं त्रिःसप्तकृत्वश्च क्रमेण च वसुन्धराम् ।
रामश्चकार निर्भूपां लीलया च शिवंस्मरन् ।३६।
गर्भस्थं मातृक्रोड़स्थं शिशुं वृद्धञ्च मध्यमम् ।
जघान क्षत्रियं रामः प्रतिज्ञा पालनाय वै ।३७।
कार्त्तवीर्य्यंश्च गोलोकंजगामकृष्णसन्निधिम् ।
जगाम परशुरामश्च स्वालयंश्रीहरिस्मरन् ।३८।
त्रि सप्त कृत्वो निर्भूपाँ महीं दृष्ट्वा महेश्वरः ।
पर्शुना रमणं दृष्ट्वा पर्शुरामञ्चकार तम् ।३९।
देवाश्च मुनयो देव्यः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ।
सर्वे चक्रुः पष्पवृष्टिं राममूर्द्ध्नि च नारद ।४०।
स्वर्गे दुन्दुभ्यो नेदुर्हरिशब्दो बभूव ह ।
परशुरामस्य यशसा शुभ्रेण पूरितं जगत् ।४१।

इस प्रकार से परशुराम ने इक्कीस वार क्रम से इस वसुन्धरा को भूपों से रहित किया था और शिव का स्मरण करते हुए लीला से ही कर दिया था ॥३६॥ राम ने गर्भ में स्थित-माता की गोद में स्थित शिशु-वृद्ध और प्रौढ़ सभी क्षत्रियों को अपनी प्रतिज्ञा के परि-पालन के लिये हनन कर दिया था ॥३७॥ कार्त्तवीर्य राजा भी कृष्ण की सन्निधि में गोलोक को चला गया था और परशुराम श्री हरि का

स्मरण करते हुए अपने निवास के आश्रम को चले गये थे ॥३८॥ महेश्वर ने इक्कीस बार भूमि को भूपो से रहित देखकर परशु के साथ रमण करने वाले राम का नाम परशुराम रख दिया था ॥३९॥ हे नारद ! उस समय मे देवता-मुनि-दविया-सिद्ध गन्धर्व और किन्नरो ने राम के मस्तक पर पुष्पो की वृष्टि की थी ॥४०॥ स्वर्ग मे दुन्दुभि बजने लगी थी और सवत्र हरि शब्द की ध्वनि हो रही थी । परशुराम के शुभ यश से यह सम्पूण जगती तल पूरित हो गया था ॥४१॥

५७-गरोश्वरसमीपे रामस्य शिवशिवादर्शनप्राथनम् तयोः कथोपकथनञ्च

यास्याम्यन्त. पुरभ्रात प्रणामकर्त्तुमीश्वरम् ।
प्रणम्यमातर भक्त्या यास्यामित्वरितगृहम् ॥१॥
त्रि सप्तकृत्वो निर्भूपा कृतापृथ्वोच लोलया ।
कार्त्तवीर्य्यः सुचन्द्रश्च हतोयस्यप्रसादतः ॥२॥
नानाविद्या यतो लब्धा नानाशास्त्र सुदुर्लभम् ।
त गुरु जगता नाथ द्रष्टुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥३॥
क्षण तिष्ट क्षणतिष्ठ शृणु भ्रातरिद वचः ।
रह स्यत्तनियुक्तो न द्रष्टव्यः स्त्रीयुतः पुमान् ॥४॥
स्त्रीमयुक्त पुरुप यः पश्यति नराधम. ।
करोति रसभङ्ग वा कालसूत्र व्रजेद् ध्रुवम् ॥५॥
तत्र तिष्ठति पापीयान् यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
विशेपतश्च पितर गुरु भूतपति द्विज ॥६॥

स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवम् सप्तसु जन्मसु।
श्रोणीवक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियाः।
कामतोऽपि विमूढश्च सोऽन्धो भवति निश्चितम् ।७।

इस अध्याय में गणेश्वर के समीप में राम का शिव और शिवा के दर्शन की प्रार्थना तथा उन दोनों के कथोप कथन का वर्णन किया गया है। परशुराम ने कहा-हे भाई ! मैं अब ईश्वर को प्रणाम करने के लिये अन्तःपुर में जाऊगा और भक्ति पूर्वक माता को प्रणाम करके फिर शीघ्र अपने गृह को जाऊगा ॥१॥ मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वी को लीला से भूपों से रहित कर दिया है और कार्त्तवीर्य और सुचन्द्र को जिस देव एवं देवी की कृपा से मार डाला है उनके दर्शन करना चाहता हूँ ॥२॥ जिनसे मैंने अनेक विद्याऐं प्राप्त की थीं और विविध प्रकार के दुर्लभ शास्त्रों की अध्ययन किया है उन गुरुदेव जगत के नाथ का इस समय मैं दर्शन करना चाहता हूं ॥३॥ श्री गणेश्वर ने कहा-हे भाई ! क्षण भर रुको और एक क्षण भर ठहर कर मेरे वचन का श्रवण करो। रहःस्थल में नियुक्त अपनी पत्नी सहित किसी भी पुरुष का दर्शन नहीं करना चाहिए ॥४॥ जो नराधम स्त्री के सहित पुरुष को एकान्त स्थान में देखता है अथवा भंग कर देता है वह निश्चय ही काल सूत्र नामक नरक में जाता है ॥४॥५॥ हे द्विज ! वहाँ उस नरक में वह पापी पुरुष जब तक चन्द्र और सूर्य स्थित रहते हैं तब तक उस नरक में पड़ा रहता है। विशेष कर वह महान् पापिष्ठ होता है जो ऐसी स्थिति में अपने पिता-गुरु और भूत पति को देखता है ॥६॥ ऐसे पुरुष का स्त्री से सात जन्मों तक विच्छेद हो जाता है। जो स्त्री का श्रोणी-वक्षःस्थल और पराई स्त्री का मुख देखता है वह भी इस दण्ड का भागी होता है। जो काम से विमूढ़ होता है वह निश्चय ही अन्धा होता है ॥७॥

गणेशस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भृगुनन्दनः।
तमुवाच महाकोपान्निष्ठुरं वचनं मुने ।८।

अहो श्रुतं किं वचनमपूर्वंनीतिमुत्तमम् ।
इदमेवमयो नैव श्रुतमीश्वरवक्त्रतः ॥९॥
श्रुतं श्रुतौ वाक्यमिदं कामिनाञ्च विकारिणाम् ।
निर्विकारस्य च शिशोर्न दोषः कश्चिदेव हि ।
यास्याम्यन्तःपुरं भ्रातस्तव किं तिष्ठ बालक ॥१०॥
अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानमाप्नोति ज्ञानिनः ।
पितुर्भ्रातुर्मुखाज्ज्ञानं दुर्लभं भाग्यवान् लभेत् ॥११॥
श्रुतज्ञानं विशिष्टञ्च ज्ञानिनामपि दुर्लभम् ।
किञ्चिन्मम मन्दबुद्धेः शृणु भ्रातर्निवेदनम् ॥१२॥
योनिर्गुणः स निर्लिप्तः शक्तियोनहि संयुतः ।
सिसृक्षुः शक्तियोगात्सो निर्गुणः सगुणो भवेत् ॥१३॥
यानि च शरीराणि भोगाङ्गानि महामुने ।
प्राकृतानि च सर्वाणि श्रीकृष्णविग्रहं विना ॥१४॥

गणेश के इस वचन का श्रवण कर भृगुनन्दन हँस गये थे और हे मुने ! महान् क्रोध में फिर उस गणेश्वर से यह निष्ठुर वचन बोले ॥८॥ परशुराम ने कहा—मैंने आज यह कैसा अपूर्व वचन सुना है यह कैसी उत्तम नीति का वचन है । मैंने ईश्वर के मुख से कभी भी ऐसा वचन नहीं सुना था जो इस समय आप मुझे सुना रहे हैं ॥९॥ मैंने काम के विकार वालों के सम्बन्ध में ऐसा वचन श्रुति में सुना है किन्तु जो शिशु काम विकार के दोष से रहित होता है उसको कोई भी दोष नहीं होता है । हे बालक ! ठहरो, आपको इससे क्या मतलब है । मैं तो हे भाई ! अन्तःपुर में जाऊँगा ॥१०॥ गणपति ने कहा—अज्ञान के अन्धकार से आच्छन्न पुरुष ज्ञानी से ज्ञान को प्राप्त करता है । पिता-भाई के मुख से तो कोई विरला भाग्यवान् पुरुष ही दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया करता है ॥११॥ आपने हे भाई ! ज्ञानियों को भी दुर्लभ विशिष्ट ज्ञान सुना होगा किन्तु कुछ मन्द बुद्धि वाले मेरा भी हे भाई यह निवेदन श्रवण करिए ॥१२॥ जो निर्गुण है वह निर्लिप्त है वह

शक्तियों से भी संयुत नहीं होता है। जब वह सृजन करने की इच्छा वाला होता है तो शक्ति में आश्रित होकर निर्गुण भी सगुण हो जाया करता है ॥१३॥ हे महा मुने ! जितने भी ये शरीर हैं वे सब भोग के योग्य हुआ करते हैं और सभी प्राकृत होते हैं केवल श्रीकृष्ण ही का विग्रह अप्राकृत होता है ॥१४॥

गणेशवचनं श्रुत्वा स तदा रागतः सुधीः।
पर्शुहस्तः पर्शुरामो निर्भयो गन्तुमुद्यतः ।१५।
गणेश्वरस्तदा दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाययत्नतः।
वारयामास संप्रीत्या चकार विनयं पुनः ।१६।
रामस्तं प्रेपयामास हूंकृत्वातु पुनः पुनः।
बभूव च ततस्तत्रवाग्युद्धं हस्तकर्पणम् ।१७।
पर्शुनिक्षेपणं कर्त्तुमनश्चक्रे भृगुस्तदा।
हाहाकृत्वा कार्त्तिकेयो बोधयामास संसदि ।१८।
अव्यर्थमस्त्रं हे भ्रातर्गुरुपुत्रे कथं क्षिप।
गुरुवद् गुरुपुत्रञ्च मा भवान् हन्तुमर्हति ।१६।
पर्शुं क्षिपन्तं कुपितं रक्तपद्मदलेक्षणम्।
गणेशो रोधयामास निवर्त्तस्वेत्युवाच तम् ।२०।
पुनर्गणेशं रामश्च प्रेरयामास कोपत।
पपात पुरतो वेगाच्छिन्नमानो गजाननः ।२१।
गजाननः समुत्थायधर्मं कृत्वातु साक्षिणम्।
पुनस्तंबोधयामास जितक्रोधः शिवात्मजः ।२२।

नारायण ने कहा—उस समय में गणेश ने बहुत कुछ समझाया तो भी गणेश के वचनों को सुना अनसुनाकर वह सुधी राग से परशु हाथ में लेकर निर्भय होते हुए परशुराम अन्दर गमन करने को समुद्यत हो हो गये थे ॥१५॥ गणेश ने उस समय उठकर देखा तो शीघ्र ही यत्न पूर्वक नीति के साथ पुनः उनको रोका था और विनती की थी ॥१६॥

राम ने "हूम"-यह कहकर बार-बार भेजा था। इसके पश्चात् वहाँ बाणयुद्ध और हाथा पाई हो गई थी ॥१७॥ उस समय राम ने अपने परशु का निक्षेपण करने की मन में इच्छा की थी तब स्वामि कार्तिकेय ने हाहाकार करके उस सदन में समझाया था ॥१८॥ हे भाई ! गुरु पुत्र पर इस अपने अव्यर्थ अस्त्र को कैसे फेंकना चाहते हो ? गुरु का पुत्र तो गुरु के ही तुल्य माना जाता है। उसे आप हनन करने के योग्य नहीं हैं ॥१९॥ परशु को फेंकते हुए अत्यन्त कुपित और रक्त कमल के समान नेत्रों वाले परशुराम को गणेश ने रोका था और उसको लौट जाओ-यह कहा था ॥२०॥ राम ने क्रोध से फिर गणेश को प्रेरित किया था। छिन्न मान होता हुआ गजानन वेग से आगे गिर पड़े थे ॥२१॥ गजानन (गणेश) उठकर धर्म को साक्षी करके फिर क्रोध को जीतने वाले शिव के पुत्र ने उनको समझाया था ॥२२॥

निवर्त्तस्व निवर्त्तस्वेत्युच्चार्य्य च पुनः पुनः ।
प्रवेशने ते का शक्तिरीश्वराज्ञा विनाप्रभो ।२३।
मम भ्राता त्वमतिथिर्विद्यासम्बन्धतो ध्रुवम् ।
ईश्वरप्रियशिष्यश्च सहामि तेन हेतुना ।२४।
नह्यहं कार्त्तवीर्य्यश्च भूपास्ते क्षुद्रजन्तवः ।
अतो विप्रन जानासिमाऽऽवविश्वेश्वरात्मजम् ।२५।
क्षण तिष्ठ निवर्त्तस्व समरे ब्राह्मणातिथे ।
क्षणान्तरे त्वयासार्द्धं यास्यामीश्वरसन्निधिम् ।२६।
हेरम्बवचनं श्रुत्वा प्रजहास पुनःपुनः ।
परशुं क्षेप्तुं मनश्चक्रे प्रणम्य शङ्करं हरिम् ।२७।
परशुं क्षिपन्तं कोपेन पर्शुरामं गजाननः ।
दृष्ट्वा मुमूर्च्छ देवेशो धर्मं कृत्वातु साक्षिणम् ।२८।

गणेश ने 'लौट जाओ-लौट जाओ''-ऐसा बार-बार उच्चारण करके राम को रोका था और कहा था हे प्रभो ! ईश्वर की आज्ञा के

बिना आपकी अन्दर प्रवेश करने में क्या शक्ति है ? ॥२३॥ आप मेरे भाई हैं जोकि निश्चय ही विद्या के सम्बन्ध से होते हैं-आप इस समय अतिथि के स्वरूप वाले हैं और ईश्वर के परम प्रिय शिष्य हैं इसीलिये मैं यह सब आपकी हठधर्मिता को सहन कर रहा हूँ ॥२४॥ अन्यथा मैं कार्त्तवीर्य नहीं हूँ और न मैं क्षुद्र जन्तु वे राजाओं का समूह ही हूं जिनको आपने मार गिराया था। हे विप्र ! आप मुझे विश्वेश्वर के पुत्र को नहीं जानते हैं ॥२५॥ हे ब्राह्मण ! हे अतिथे ! एक क्षण मात्र ठहर जाओ। समर में लौट जाओ। एक क्षण के अन्तर में तुम्हारे साथ मैं ईश्वर के समीप में जाऊंगा ॥२६॥ नारायण ने कहा–हे रम्ब (गणेश) के वचन को सुनकर राम बार-बार हंस गये थे। और उसने हरि शंकर को प्रणाम करके अस्त्र के क्षेपण करने का मन किया था ॥२७॥ क्रोध से परशु को फेंकते हुए मरने की इच्छा वाले परशुराम को गजानन ने देखा तो देवेश ने धर्म को साक्षी किया था ॥२८॥

चकारहस्तं योगेन सतदा कोटियोजनम् ।
योगीन्द्रस्तत्र सन्तिष्ठन्भ्रामयित्वा पुनःपुनः ।२६।
शतधा वेष्टयित्वा तु भ्रामयित्वा तु तत्रवै ।
ऊद्ध्वमुत्तोल्य वेगेन क्षुद्राहिं गरुड़ो यथा ।४०।
सप्तद्वीपांश्च शैलांश्च काञ्चनीं सप्त सागरान् ।
क्षणेन दर्शयामास रामं योगेन स्तम्भितम् ।३१।
क्षणेन चेतनां प्राप्य पपात वेगतो भुवि ।
बभूव दूरीभूतञ्च गणेशस्तम्भनं भृगोः ।३२।
सस्मार कवच स्तोत्रं गुरुदत्तं सुदुर्लभम् ।
अभीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शम्भुं जगद्गुरुम् ।३३।
चिक्षेप परशुं मव्यर्थं शिवतुल्यञ्च तेजसा ।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने ।३४।
पितुरव्यर्थमस्त्रञ्च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम् ।
जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थञ्चकारह ।३५।

निपत्य पर्शुर्वेगेन छित्वा दन्तं समूलकम् ।
जगाम रामहस्तञ्च महादेवबलेन च ।३६।

उस समय उस योगी द्र ने योग से अपने हाथ एक करोड योजन का कर दिये थे वह बार बार वहां उसे फिराकर खडा ही रह गया था । सौ बार वेष्टित करके और वहा पर उसने वेग के साथ ऊपर उठाकर एक सर्प को गरुड की भांति घुमाया था ॥२९॥३०॥ योग के द्वारा राम को सात द्वीप शैल काञ्चनी और सात सागरो को दिखा दिया था जोकि राम क्षण भर के लिये स्तम्भित हो गया था ॥३१॥ एक क्षण म चेतना प्राप्त कर वह बड वेग से भूमि पर गिर पडा था और भृगु का गणेश के द्वारा किया हुआ स्तम्भन दूर हो गया था ॥३२॥ उस समय राम ने गुरु के द्वारा प्रदान किया हुआ कवच और स्तोत्र का स्मरण किया था जोकि बहुत दुर्लभ था । अभीष्ट देव श्री कृष्ण-गुरु और सम्पूर्ण जगत् के गुरु शम्भु का स्मरण किया था ॥३ ॥ उस अव्यर्थ और तेज से शिव के तुल्य परशु को फेंक दिया था । हे मुने ! वह परशु ग्रीष्म काल के मध्याह्न समय के सूर्य की प्रभा से सौ गुनी प्रभा के गुण वाला था ॥३४॥ गणपति ने अपने उस अव्यय अस्त्र को स्वयं देखा था और वाम दन्त से उसे ग्रहण कर लिया था तथा उसे व्यर्थ नही होने दिया था ॥३५॥ परशु ने वेग से गिर कर उस दांत को मूल के सहित छिन्न कर दिया था और वह महादेव के बल से राम के समीप में चला गया था ॥३६॥

हाहेति शब्दमाकाशे देवाश्चक्रुर्महाभिया ।
वीरभद्र• कार्त्तिकेय क्षेत्रपालाश्च पार्षदा ।३७।
पपात भूमौ दन्तश्च सरक्त शब्दमुच्चरन् ।
पपात गैरिकयुक्तश्च महास्फाटिकपर्वत ।३८।
शब्देन महता विप्र चकम्पे पृथिवी भिया ।
कैलासस्था जना सर्वे मूर्च्छामापु क्षण भिया ।३९।

निद्रा बभञ्ज निद्राया निद्रेशस्य जगत्प्रभो ।
आजगाम बहिः शम्भुः पार्वत्या सह सम्भ्रमात् ।४०।
पुरो ददर्श हेरम्बं लोहितास्यं क्षतं नतम् ।
भग्नदन्तं जितक्रोधं सस्मितं लज्जितं मुने ।४१।
पप्रच्छ पार्वती शीघ्रं स्कन्दं किमिति पुत्रक ।
स च तां कथयामास वार्त्तां पौर्वापरीं भिया ।४२।
चुकोप दुर्गा कृपया रुरोद च मुहुर्मुहुः ।
उवाच शम्भोः पुरतः पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ।४३।

उस समय में समस्त देवगण-वीरभद्र-कार्त्तिकेय-सब पार्षद तथा क्षेत्र पाल ने महान् भय से आकाश में हाहाकार किया था ॥३७॥ गणेश का वह दांत रक्त के सहित बड़ी ध्वनि करता हुआ भूमितल पर गिर गया था और ऐसा प्रतीत हुआ था मानों गैरिक से युक्त महा स्फटिक का पर्वत भूमि पर गिर पड़ा हो ॥३८॥ उस समय गणेश के बांये दांत के गिरने से ऐसी महा ध्वनि हुई थी कि हे विप्र ! पृथिवी भय से कांप गई थी तथा कैलास गिरि पर रहने वाले सभी मनुष्य भय से क्षण भर के लिये मूर्च्छित हो गये थे ॥३९॥ निद्रा के ईश जगत् के प्रभु की निद्रा का भंग हो गया था । शम्भु पार्वती के साथ सम्भ्रम से बाहिर निकल आये थे ॥४०॥ सामने शिव ने और पार्वती ने गणेश को देखा था जो रक्त से लिपड़े हुए मुख वाले-क्षत-नत-जित क्रोध-सस्मित-लज्जित और टूटे हुए एक दांत वाले थे ॥४१॥ हे मुने ! फिर पार्वती ने शीघ्र ही स्कन्द से पूछा था कि हे पुत्र ! यह कैसे हुआ है ? उस स्कन्द ने आगे पीछे की सम्पूर्ण बात पार्वती से भय के साथ कहकर सुनादी थी ॥४२॥ तब तो दुर्गा देवी बहुत ही क्रोधित हुई थीं और बार-बार वह रुदन करने लगीं थीं । फिर पार्वती अपने पुत्र गणेश को अपनी छाती से लगाकर शम्भु के आगे उसे करके बोलीं थीं ॥४३॥

तन्त्र महाविज्ञान

लोक में व्याप्त विभिन्न प्रकार के तन्त्र सम्बन्धी भ्रमों को दूर करने और तान्त्रिक विषयों का जनोपयोगी बौद्धिक व वैज्ञानिक विश्लेषण करने वाली वर्षों की अथक खोज का परिणाम, दो खण्डों में प्रकाशित यह पुस्तक मौलिक सूझ बूझ से ओत प्रोत है। जनसाधारण में फैले उपेक्षा भाव को यह आकर्षण में परिवर्तित कर देगी, ऐसा हमारा विश्वास है क्योंकि तन्त्र एक उच्चकोटि की वैज्ञानिक साधना प्रणाली है जिसकी सहायता से साधक भौतिक व आत्मिक दोनों क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त कर सकता है।

प्रथम खण्ड में तन्त्र की महत्ता, प्रमाणिकता प्राचीनता, गोपनीयता उसके अर्थ सिद्धान्त भाव, आचार व पूजा पर प्रकाश डाला गया है। पञ्चमकारों की तथाकथित घृणित साधनाओं का वास्तविक रहस्य समझाया गया है। शक्तिपात, नाद बिन्दु, कला मन्त्र, वर्ण, मातृका, यन्त्र, बीजाक्षर आदि विषयों का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण किया गया है जिसमें तन्त्र की वैज्ञानिकता पर कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता।

दूसरे खण्ड में शक्ति साधना के विश्वव्यापी प्रसार, इतिहास, विज्ञान दार्शनिक रूप, तात्विक विवेचन व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर खोजपूर्ण सामग्री दी गई है। वेद उपनिषद पुराण योग वसिष्ठ महाभारत गीता, आरण्यक वेदान्त व सांख्य में प्राप्य शक्ति की महत्ता का दिग्दर्शन किया गया है। दुर्गा लक्ष्मी काली सरस्वती व दस महाविद्याओं काली, तारा षोडशी भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, बगलामुखी मातङ्गी और कमला के स्वरूप व साधना विधानों का विशद वर्णन किया गया है जिससे साधक इच्छित तान्त्रिक सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है।

इस तरह से तान्त्रिक विषयों का वैज्ञानिक प्रतिपादन और साधना विधान दोनों रत्न आ गये हैं जिससे ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय बन गया है।

मूल्य २ खण्ड १५) मात्र

प्रकाशक :—संस्कृति संस्थान ख्वाजाकुतुब बरेली (उ० प्र०)

बौद्धिक एवं वैज्ञानिक विवेचन की एक मौलिक कृति

विष्णु रहस्य

लेखक :—डा० चमन लाल गौतम, पू० सम्पादक 'जीवन यज्ञ' मथुरा, 'युग संस्कृति', बरेली

"यह अपने विषय की प्रथम पुस्तक है। इसमें भगवान विष्णु के वैज्ञानिक स्वरूप को उद्‌घाटित करने का प्रयत्न किया गया है और वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, गीता, पुराण, स्मृति और भारतीय प्राचीन वाङ्‌मय में वर्णित विष्णु के स्वरूप को भी यथावत रूप में प्रकाशित किया गया है। इसके अतिरिक्त बौद्ध, जैन एवं संत साहित्य के साथ मध्यकालीन काव्य साहित्य में भी वर्णित विष्णु स्वरूप को प्रकट करते हुए भारतीय ललित कलाओं में निहित विष्णु स्वरूप को भी प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार विष्णु की व्यापक मान्यता का स्पष्ट चित्र लेखक ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है।"

इस कृति में अवतारवाद पर वैज्ञानिक रीति से विचार करते हुए विष्णु के विभिन्न अवतारों का जहां रहस्य उद्‌घाटित किया गया है, वहां विष्णु के मूल स्वरूप तथा विभिन्न अवतारी स्वरूपों से सम्बद्ध अनेक देव, मुनि आदि पात्रों व नायकों तथा उनके आयुध आदि विभिन्न पदार्थों के रहस्य को भी प्रकाशित करने का यथाशक्ति मौलिक प्रयास किया गया है।"

यह लेखक का मौलिक प्रयास है और साथ ही इस क्षेत्र में यह सर्वप्रथम पथ प्रदर्शक प्रयास है, अतः सर्वथा प्रशंसनीय व अभिनन्दनीय है।"

—'साहित्य परिचय' आगरा